A study of the Erotic sentiment in Hindi Poetry

From 1600 A D 1850 A. D

रीतिकालीन कविता एव श्रृङ्गार रस का विवेचन

सन् १६०० से सन् १८५० तक

(आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी० एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत)

परीक्षक

डा० धीरेन्द्र वर्मा (प्रयाग विश्वविद्यालय)
डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (काशी विश्वविद्यालय)
डा० भगीरथ मिश्र (लखनऊ विश्वविद्यालय)

प्रकाशक

सरस्वती पुस्तक सदन, मोतीकटरा, आगरा

प्रकाशक
फूलचन्द गुप्त संचालक
सरस्वती पुस्तक सदन
मोतीकटरा, आगरा

प्रथमावृत्ति १००० { संवत् २०१० } सन् १९५३ दिसम्बर

मुद्रक
राकेशचन्द्र उपाध्याय,
आगरा पॉपूलर प्रेस, आगरा

गिरि तैं ऊँचे रसिक-मन बूड़े जहाँ हजारु,
बहे सदा पसु नरनु कौं प्रेम पयोधि पगारु ॥

—बिहारी

अपनी बात

हिन्दी के शृङ्गार रस विषयक काव्य का निर्माण कुछ ऐसी परिस्थितियों में हुआ कि कहीं-कहीं उसमें मर्यादा विशेष का अतिक्रमण होगया। यथा —

"शृङ्गार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाता राजा महाराजाओं की रुचि थी जिनके लिये कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।" ×

× × × ×

इसके अतिरिक्त राजदरबारों में हिन्दी कविता को अधिकाधिक आश्रय मिलने के कारण कृष्ण भक्ति की कविता को अधःपतित होकर वासनामय उद्‌गारों में परिणत हो जाने का अधिक अवसर मिला। तत्कालीन नरपतियों की विलास चेष्टाओं की परितृप्ति और अनुमोदन के लिये कृष्ण एवं गोपियों की ओट में हिन्दी के कवियों ने कलुषित प्रेम की शत सहस्र उद्‌भावनाएँ कीं।

× × × ×

यह ठीक है कि अधिकांश कवियों ने सौंदर्य को केवल उद्दीपन मान कर नायक नायिका के रति भाव की व्यंजना की है, पर कुछ ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने रीति के प्रतिबन्धों से बाहर जाकर स्वकीय सुन्दर रीति से सौंदर्य की वह सृष्टि की है जो मनोमुग्धकारिणी है। +

×(पृष्ठ संख्या २४१, हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल)

+(पृष्ठ सं० २४३, हिन्दी भाषा और साहित्य, डा० श्यामसुन्दर दास)

उपर्युक्त समालोचना यद्यपि सर्वथा उपयुक्त एवं संतुलित है, परन्तु कतिपय साहित्य प्रेमियों ने इनके वाक्याथ पर ही विशेष ध्यान और बल दिया और समालोचनाओं के "उत्तरार्द्ध" को पढ़ने की भी आवश्यकता न समझी गई। परिणामस्वरूप हिन्दी के कुछ आलोचकों ने शृङ्गार रस का इस प्रकार विवेचन किया कि वह अश्लीलता एवं कामुकता का पर्याय समझा जाकर हेय बन गया तथा हिन्दी के शृङ्गारी कविगण कामुकता की शिक्षा देने वाले, शृङ्गार च्यवक पिलाने वाले (और न मालूम क्या क्या) कहे जाने लगे। यही कारण कि शीलवान सामान्य पाठक हिन्दी के शृङ्गार साहित्य के नाम मात्र से चौंक पड़ता है और हिन्दी में शृङ्गार रस परक साहित्य के निर्माताओं को वह निन्द्य समझने लगा है। मेरे विचार से ये दोनों धारणाएँ भ्रांत हैं।

भरतमुनि "रसमत" के प्रवर्तक और प्रथम आचार्य हैं। अभिनव गुप्त, राजा भोज तथा विश्वनाथ, इस मत का पिष्ट पेषण करने वालों में मुख्य हैं। इनके मतानुसार काव्यानन्द सर्वथा अलौकिक होता है। अलौकिक चमत्कार समन्वित होने से वह ब्रह्मानन्द सहोदर ठहरता है। परन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिक उसे अलौकिक न मानकर साधारण आनन्द ही बताता है। डा० राकेश ने काव्यानद को रुचि और लोकव्यवहार से सम्बद्ध बताया है। उनके विचार से रुचि मस्तिष्क का अधिक स्थायी संस्थान है, क्रियाशील होते ही वह आनन्दरूप हो जाता है। अतः आनन्द रुचि प्रकाशन के अतिरिक्त और कुछ नहीं ठहरता है।+ अपने पक्ष के समर्थन में डा० राकेश ने अभिनव गुप्त द्वारा की गई सहृदय की परिभाषा उद्धृत की है और उसके अनुवाद स्वरूप (Heart full of responsiveness) और Ready to identify himself with them इन दो शब्दों का प्रयोग किया है।× मेरे विचार से हृदय की संवेदनशीलता (Heart full of responsiveness) के अनुसार हृदय में वासनात्मक

+ page 81, Psychological Analysis of Rasa

× पृष्ठ संख्या ६१।

संस्कारों की उपस्थिति की पूर्व स्वीकृति है तथा (Ready to identify himself with them) आत्मविस्मृति का भाव निहित है। यही आत्मविस्मृति रस सिद्धान्तान्तर्गत साधारणीकरण है, जो सर्वथा अलौकिक है। काव्यानुशीलन में पूर्व जन्म के संस्कारों का महत्त्व बताकर मैंने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से काव्यानन्द को अलौकिक एवं ब्रह्मानन्द सहोदर सिद्ध किया है।

कतिपय मनोवैज्ञानिकों ने रस और मनोवेग (Emotion) को पर्याय वाची मान कर उन्हें समान अर्थी और समान धर्मी बताया है। मेरे विचार से मनोवेग केवल चित्त के आवेग अथवा मस्तिष्क की उत्तेजित दशा है। यह आवश्यक नहीं है कि मनोवेग के उद्बुद्ध हो जाने पर हमारा मन तन्मयी होकर आनन्दावस्था को प्राप्त हो ही जाए। मैंने बताया है कि रस आनन्द मय मन की एकाग्रावस्था होने के कारण रस सिद्धि साध्य है और मनोवेग केवल साधन मात्र। रस मनोवेग नहीं मनोवेग का आस्वाद्य है।

शृङ्गार रस का स्थायी भाव "रति" है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक उसे प्रजनन वृत्ति (The instinct of sex) (के मनोवेग काम) (Lust) के समकक्ष ठहराकर शृङ्गार रस में कामुकतापूर्ण चर्चा का होना अनिवार्य मानता है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह उर्दू की गज़ल का अर्थ स्त्रियों की बातें अथवा काम चर्चा होता है, मैंने मूल वृत्तियों (Instincts) तथा उनसे सम्बन्धित मनोवेगों (Emotions) के विवेचन द्वारा सिद्ध किया है कि शृङ्गार रस का "रति" स्थायी भाव मनोविज्ञान का काम नहीं है, "रति" स्थायी भाव के अन्तर्गत काम, वात्सल्य, आत्मसमर्पण, सामाजिकता, आत्मरक्षा, और संघर्ष ये मनोवेग साधारण रूप से तथा अन्य मनोवेग विशेष परिस्थितियों में आ जाते हैं। यह बात रस सिद्धान्तर्गत शृङ्गार रस के रसराजत्व के साथ मेल खा जाती है। इसी आधार पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी शृङ्गार आदि रस एवं रसराज बताया गया है। वह सर्वत्र व्याप्त है, तथा अन्य स्थायीभाव व्यभिचारी आवश्यक ये रति स्थायी भाव को परिपुष्ट करते हैं।

स्वदेश, विदेश प्राचीन तथा आधुनिक सिद्धान्तों की वैज्ञानिक समीक्षा

कर मैंने "शृङ्गार रस" से सम्बन्धित निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं।

१—काम एक मौलिक मनोवेग (Primary emotion) है—और यह मैथुन अथवा प्रजनन प्रवृत्ति (Pairing, or mating instinct) से सम्बद्ध है।

२—शृङ्गार रस का स्थायी भाव "रति" है और उसका व्यावहारिक रूप "प्रेम" है। "रति" के अन्तर्गत काम, वात्सल्य, आत्मसमर्पण आदि अनेक मनोवेग समा जाते हैं, प्रेम एक मनोवृत्ति (Sentiment) है। विभिन्न मनोवेगों के सम्मिश्रण, उनकी पुनरावृत्ति और क्रमिक मौलिक भाव के समावेश के द्वारा "प्रेम" का निर्माण होता है। वह एक स्थिर एवं व्यवस्थित मनो दशा है, जिसमें वात्सल्य भाव (Tender feeling) छोटों के प्रति स्नेह, काम (lust) आत्मसमर्पण (Submission) तथा आत्मप्रतिष्ठ (Self Assertion) का सुखद संयोग रहता है।

३—काम भाव में आत्मसमर्पण आदि कोमल भावों के योग द्वारा प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। इस प्रेम भाव का पूर्ण प्रस्फुरण मानव के दाम्पत्य जीवन में देखने को मिलता है। आर्य ऋषियों ने जीवन की तीन एषणाओं, पुत्रेष्णा वित्तेष्णा तथा लोकेष्णा, की चर्चा दाम्पत्य प्रेम को ही ध्यान में रख कर की थी। शृङ्गार रस का इसी दाम्पत्य प्रेम से सीधा सम्बन्ध है।

सर्वेरसाश्च भावाश्च तरंगा इव वारिधौ
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र स प्रेमसंज्ञकः

इसी को साहित्य शास्त्रियों ने "रति" स्थायी भाव कहा है "रतिमनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्।" "साहित्य दर्पण"।

४—"प्रेम" मनोदशा में समस्त मूल प्रवृत्तियाँ और उनसे सम्बन्ध भाव अन्तर्भूत हो जाते हैं। शृङ्गार रस को 'आदि रस' एवं 'रसराज' कहने का यही कारण है।

५—पात्र भेद से 'रति' अथवा 'प्रेम' के तीन भेद ठहरते हैं। (१) छोटों के प्रति (२) बराबर वालों के प्रति तथा (३) बड़ों के प्रति प्रथम और तृतीय में वात्सल्य और दैन्य पूर्ण, आत्मसमर्पण के भाव मिश्रित

रहते हैं। द्वितीय में दाम्पत्य भाव, स्त्री पुरुष का पारस्परिक आकर्षण रहता है।

अपने से बड़ों के प्रति आकर्षण में "पूज्य भाव" रहता है। इसे हम श्रद्धा कहते हैं। उच्च स्तर पर यही भक्ति बन जाती है, अथवा ब्रह्म विषयक रति का ही नाम भक्ति है।

५—दाम्पत्य प्रेम में आत्मसमर्पण, अपत्यस्नेह आदि कोमल भावों के संयोग के कारण "काम" का बहुत कम लगाव रह जाता है। इस प्रकार (अ) काम और प्रेम का कामुकता और विलासिता के साथ नाममात्र का सम्बन्ध है। (ब) शृङ्गार रस के अन्तर्गत प्रेम का पूर्ण परिपाक एवं प्रकर्ष होता है तथा (स) शृङ्गार रस पूर्ण-काव्य के बिना संसार में शुष्कता फैल जाए।०

एकत्व प्राप्त करने की सबसे अधिक प्रबल इच्छा का नाम ही प्रेम है।
The desire and pursuit of the whole is called Love
अर्थात् पूर्णत्व प्राप्ति की इच्छा एवं खोज (will Durant)

नरनारी के आकर्षण प्रत्याकर्षण में हमें एकत्व स्थापन की इच्छा का स्वरूप देखने को मिल जाता है। वियोगावस्था में प्रेम और प्रेमी की निकाई निखरती है। प्रेम प्रकर्ष की आत्यन्तिक अवस्था में प्रेमी को विश्व में सर्वत्र अपना प्रेम पात्र ही दिखाई देने लगता है। प्रेम की इसी दशा में प्रेमी प्रेमिका का साधारण प्रेम विश्व में व्याप्त होकर असाधारण बन

० शृंगारी चेत्, कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्
स चेत कविर्वीतरागी नीरसं व्यक्तमेव तत्
—'महर्षि व्यास'
यत्किंचल्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा—
तच्छृंगारेणोपमीयते।
—'भरतमुनि'
किसी से तो आख़िर भी होती मुहब्बत,
बुतों से, न होती खुदा से तो होती।

आता है लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम बन जाता है, जीवोन्मुखी प्रेम ईश्वरोन्मुखी प्रेम का रूप धारण कर लेता है। एकत्व स्थापन के अभाव में जीव विकल हो उठता है। इसी पृथकत्व का नाम वियोग है, जिसे जीव किसी भाव सहने को तैयार नहीं होता। वियोग वह विषम ज्वाल है जिसमें तप्त होकर जीव स्वर्ण कुन्दन बन जाता है। अपने प्रीतम को अखिल विश्व में देखने का व्यावहारिक रूप हम दाम्पत्य प्रेम में देख सकते हैं।

लौकिक व्यवहार का प्रेम अपनी विषमताओं के कारण मनुष्य को ऐसे प्रेम और प्रेम पात्र की ओर अग्रसर करता है जहाँ (१) पूर्ण एवं स्थायी आनन्द की प्राप्ति हो (२) अनन्त एवं अक्षय सौंदर्य से साक्षात्कार हो तथा (३) कभी वियोग न हो। मेरे विचार से ईश्वरोन्मुखी प्रेम के मूल में यही वियोग भावना ठहरती है कहीं मधुर मिलन की घोजनाएँ समाप्त न हो जायें, इस भय के कारण, भक्त जन मिलन सुख लूटने की अपेक्षा चिर वियोग के झूले में झूलना अधिक पसन्द करते हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान विशारदों ने भक्ति भावना के मूल में काम भावना को ठहराया है। डा० हैवलौक एलिस के विचार से काम की असफलता अथवा दाम्पत्य प्रेम की निराशाएँ ही भक्ति-भावना को जन्म देती हैं। कुछेक भक्तजनों के जीवन वृत्तों को देखकर साधारण पाठक उक्त कथन को सत्य ही मान लेता है। सूरदास तथा तुलसीदास के गार्हस्थ जीवन की ऐसी ही कहानी है। यहाँ गौतम बुद्ध का भी स्मरण कर लेना आवश्यक होगा। उनके गार्हस्थ जीवन में किसी प्रकार की विषमता नहीं थी और वह अपनी पत्नी को सोता हुआ छोड़ आए थे।

सम्भव है धर्म भावना के मूल में "काम" भाव भी रहता हो, परन्तु हमारे विचार से उसका मूलभूत कारण है आदर्श भावना। संसार की नश्वरता विरक्ति एवं वैराग्य उत्पन्न करती है और स्थायी आनन्द की खोज में साधक उस कल्याण मार्ग पर चल पड़ता है।

सगुण मार्गी और निर्गुण मार्गी दोनों ही श्रेणियों के भक्त कवियों की रचनाओं की समीक्षा के फल स्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि

"हमारे अनुभवों में दाम्पत्य प्रेम ही आध्यात्मिक अनुभवों के कुछ निकट पहुँचता है। दो हृदयों की अभिन्नता अखिल विश्व जीवन की एकता के अनुभव पथ का द्वार है। प्रकृति के समस्त महाभूत प्रेम के परमधाम को प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं। प्रकृति और पुरुष के इस चिर वियोग का अनुभव ही मानव जीवन और उसकी अनेक साधनाओं का सर्वोपरि फल है।'

शृङ्गार रस का वर्णन करने वाले रीतिकालीन कवियों पर नायिका भेद-कथन के कारण विशेष रूप से अंगुल निर्देश किया जाता है। इसके मूल आक्षेप हैं (१) नायिका भेद शृङ्गार रसान्तर्गत विभाव पक्ष का केवल उपांग मात्र है, परन्तु इन कवियों ने उसका सब से अधिक विस्तारपूर्वक कथन किया है तथा (२) ये वर्णन अनेक स्थलों पर अश्लील एवं अस्वाभाविक हैं। इस सम्बन्ध में मेरा यह उत्तर है नायिका-भेद-कथन के अन्तर्गत स्त्री पुरुषों की मनोदशा का पूर्ण मनोवैज्ञानिक विवेचनात्मक वर्णन किया गया है। अतः इस विषय को विस्तार देना आवश्यक था। हो सकता है कि इस प्रसंग में विभिन्न देश, प्रान्त एवं व्यवसाय की स्त्रियों के वर्णन जैसी कुछ अनावश्यक बातें आ गई हों। गणिका के विभेद, उसकी दशा दशाओं के निरूपण तथा अनभिज्ञ नायक का वर्णन आदि ऐसे कथन हैं जो एक दृष्टिकोण विशेष से रस प्रसंग के प्रतिकूल ठहरते हों परन्तु इतना सुनिश्चित है कि इन वर्णनों में कविजनों ने अपने मनोवैज्ञानिक अध्ययन, जीवन के गम्भीर निरीक्षण, विश्लेषणात्मक निरूपण का परिचय देते हुए हमारे सम्मुख मानव जीवन का जीता जागता एवं वास्तविक मानचित्र (नकशा) उपस्थित किया है। चाहें तो हम उससे शिक्षा ले सकते हैं। इसी कारण मैंने भी नायिका भेद के विषय का एक पृथक अध्याय में विवेचन किया है।

अश्लीलता के सम्बन्ध में दो बातें निवेदन करनी हैं। शृङ्गार रस के वर्णन में मर्यादा एवं शील विशेष का अतिक्रमण हो ही जाता है। प्रत्येक देश और प्रत्येक समय का साहित्य हमारे उक्त कथन की पुष्टि करेगा। वर्तमान समय में प्रगतिशील साहित्य के नाम पर लिखे जाने वाले प्रेम

और प्रीति के गीत तथा सिनेमा संसार के कामुक गाने इसके सबसे बड़े प्रमाण हैं। और दूसरे तत्कालीन लोकरुचि, विशेष कर आश्रयदाता राजाओं और बादशाहों की विलास प्रियता के कारण ये कविराज मकरध्वज की पिचकारियाँ चलाने को विवश थे। पाठ संख्या दो तथा चार के अन्तर्गत मैंने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं तत्कालीन परिस्थितियों के विस्तृत विवेचन द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि रीतिकाल का शृङ्गार रस परक साहित्य धार्मिक एवं साहित्यिक परम्पराओं का प्रतिफल तथा समसामयिक लोक-रुचि का आवश्यक परिणाम था। अब तक, अश्लीलत्व दोष के कारण न तो उसकी उपेक्षा ही की जा सकती है और न उसके सृजन-कर्त्ता ही किसी प्रकार निन्दय हैं। कला के उत्कर्ष की दृष्टि से रीतिकालीन शृङ्गार साहित्य हिन्दी साहित्य सागर को अक्षय निधि है। आवश्यकता है केवल गम्भीर अध्ययन एवं निष्पक्ष दृष्टिकोण की।

नायिका भेद कथन के विस्तृत विवेचन द्वारा हम निम्न लिखित निष्कर्षों पर पहुँचे हैं।

१—नायिका भेद कथन करते समय आचार्य जन के सम्मुख काम शास्त्र की कारिकाएँ भी रहती थीं। यह कथन साहित्यिक एवं मनोवैज्ञानिक होने के अतिरिक्त कामशास्त्र समन्वित है अधिक खुले हुए वर्णनों का कारण यही है।

२—नायिका भेद के आदि आचार्य भरतमुनि हैं। उन्होंने अभिनय के विचार से इसका कथन किया था। बाद में चरित्र चित्रण को पूर्ण एवं दोष विहीन बनाने के विचार से काव्य का यह उपांग साहित्य में भी गृहीत हो गया।

३—नायक के सम्बन्ध के आधार पर स्वकीया, मध्या और प्रौढ़ा वाला नायिका भेद का वर्ग सब से अधिक महत्त्व पूर्ण एवं सम्पूर्ण नायिका भेद का आधार है।

४—मूल रूप से नायिकाओं के आठ या दस भेद ठहरते हैं। ये भेद नायिकाओं की मनोवैज्ञानिक अवस्था एवं नायक की स्थिति पर अवलम्बित हैं। किन्हीं आचार्यों ने आठ नायिकाएँ लिखी हैं और किन्हीं ने

देश। उन्होंने न तो इस वर्गीकरण का आधार लिखा है और न इनके वर्णन का कोई क्रम ही निर्धारित किया है। रहीम और देव ने "काला नुसार वर्ग" के अन्तगत इनका कथन किया है। "ग्वाल" कवि ने इन्हें संयोग शृङ्गार और विप्रलम्भ शृङ्गार इन दो मार्गों में विभाजित करके इनके दो उपवर्ग कर दिए हैं। इन नायिकाओं की मनोवैज्ञानिक स्थिति का विवेचन करके मैंने "रसलीन" द्वारा निर्धारित क्रम को उपयुक्त बता कर प्रभुदयाल मीतल का १ समर्थन किया है।

५—गणिका के विस्तार को अस्वाभाविक बताया है, तथा यह स्पष्ट किया है कि गणिका का प्रेम सर्वथा मिथ्या होता है। उसका एक मात्र कार्य एवं उद्देश्य है धन बटोरना तथा कामुक पुरुषों को निचोड़ कर कहीं का न रखना।

६—समय की गति को देखते हुए जब कि २५ और १० वर्ष की आयु वाली कन्याओं के विवाह एक साधारण सी बात बन गई है, मेरा सुझाव है कि ऊढ़ा परकीया के समान अनूढ़ा परकीया के भी विभेद किए जाएँ और उसका भी सविस्तार विवेचन किया जाए। उन दिनों अल्प वयस्का कन्याओं के विवाह की प्रथा थी। इसी कारण इन आचार्य कवियों ने अनूढ़ा परकीया की चर्चा भर की है, उसके विभेद आदि करके विस्तृत वर्णन नहीं लिखे हैं।

७—नायिका भेद कथन करते समय आचार्यों ने परकीया के वाचिक एवं कायिक पक्षों पर ही ध्यान दिया है। उसके मानसिक पक्ष की उपेक्षा करदी है।

८—नायिका भेद कथन ने हिन्दी साहित्य की विपुल सामग्री उपलब्ध की। उसके नैतिक स्तर के सम्बन्ध में भले ही मतभेद हो, परन्तु इस बात से सभी सहमत हैं कि इसके द्वारा प्रचुर साहित्य का निर्माण हुआ। इस क्षेत्र में हिन्दी के कविगण अपने अग्रज संस्कृत के आचार्य कवियों से भी आगे बढ़ गए हैं। हिन्दी साहित्य का यह अंग काव्य सौन्दर्य और काव्य परिभाषा दोनों ही दृष्टियों से संस्कृत साहित्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण एवं विकसित है।

---

१ ब्रजभाषा साहित्य में नायिका निरूपण पृष्ठ सं० १६८

हिन्दी के आचार्य कवियों ने रस के दोषों पर विचार नहीं किया इसी कारण उनके द्वारा दिए गए उदाहरणों में दोषों की छानबीन नहीं की गई है। इनकी रचनाओं में संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित कतिपय दोषों की ओर संकेत मर कर दिया है।

इस काल के प्रतिनिधि कवियों द्वारा लिखी गई शृङ्गार रस की रचनाओं को विश्लेषणात्मक समीक्षा के फलस्वरूप कतिपय महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले गए हैं। यथा—

१—इन वर्णनों में साहित्य, धर्म, मनोविज्ञान तथा कामशास्त्र, चारों का समावेश एवं समन्वय है।

२—इन कवियों ने शृङ्गार रस का केवल रसराज के रूप में निरूपण ही नहीं किया है, अपितु अन्य सभी रसों की उपेक्षा कर दी है।

३—इन रचनाओं में स्वाभाविक प्रकृति वर्णन का सर्वथा अभाव है। महलों की दीवालों के भीतर ही इन्होंने प्रकृति को देखने का प्रयत्न किया है।

४—रीतिकालीन काव्य में काव्य के कला पक्ष की प्रधानता है। भाव पक्ष गौण है।

५—राधा-कृष्ण के स्वरूपण की अत्याधिक विकृति इस साहित्य का सबसे बड़ा अभिशाप है।

६—इन कवियों ने स्वकीया प्रेम की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है और एक स्वर से गणिका की निन्दा की है। किसी ने भी परकीया के प्रेम को श्रेष्ठ नहीं बताया है।

समाज के अंग होने के नाते इन कविजनों ने परकीया और गणिका के वर्णन किए अवश्य हैं, परन्तु उनके प्रेम की ओर जाने वालों को सावधान कर दिया है, वेश्यागामी पुरुषों से स्पष्ट कहा है कि वे इसके चक्कर में न पड़कर अपने धन, धर्म और यौवन को व्यर्थ ही नष्ट न करें।

स्पष्ट है कि इन कवियों ने न तो अश्लीलता का प्रतिपादन ही किया है और न समाज को कामुकता का पाठ ही पढ़ाया है।

शृङ्गार भावना हमारे जीवन का अत्यन्त व्यापक एवं सर्वाधिक महत्व

पूर्ण सत्य है। उसकी उपेक्षा करना जीवन के विमुख होना है। उसके निषेध की चर्चा करना प्रत्यक्ष सत्य को अस्वीकार करने के समान बाल हठ है। यह निर्विवाद है कि जीवन में शृङ्गार सेवन और साहित्य में शृङ्गार-वर्णन, दोनों ही अवसरों पर शृङ्गार भावना का उन्नयन अनिवार्य है। न शृङ्गार रस सम्बन्धी काव्य ही उपेक्षणीय है और न उसके वर्णी यता कविजन ही निन्दा के पात्र हैं। प्रेम की मनोदशा का वर्णन ही शृङ्गार साहित्य है।

प्रस्तुत सामग्री उपलब्ध करने के लिए मैंने स्वदेश, विदेश के अनेक ग्रन्थों से सहायता ली है। उनके रचयिताओं में कुछ स्वर्गलोक में हैं और कुछ इसी लोक में। प्रथम के प्रति अत्यन्त विनम्रतापूर्वक मैं नतमस्तक हूँ तथा द्वितीय के प्रति कृतज्ञतापूर्वक आभार प्रदर्शित करना अपना धर्म मानता हूँ।

प्रस्तुत समीक्षा करने में मुझे गुरुवर पं० जगन्नाथ जी तिवारी, श्रद्धेय बाबू गुलाबराय जी, आदरणीय सेठ श्री कन्हैयालाल जी पोद्दार तथा अपने मित्र श्री प्रभुदयालु जी मीतल से अपार सहायता प्राप्त हुई है। उन्हें धन्यवाद देकर मैं अपना भार हल्का नहीं करना चाहता, परन्तु उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करना एक गुरुतर कर्त्तव्य-पालन समझता हूँ।

गुरुवर श्री हरिहर नाथ टण्डन के निर्देशन में तो इसको लिखा ही गया है। अत: यह ग्रन्थ उन्हीं का है और उन्हीं को सादर समर्पित है।

बारहसैनी कॉलेज अलीगढ़।	विनीत— राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

अनुक्रमणिका

अध्याय १

शृङ्गार रस का विवेचन

विषय	पृष्ठ संख्या
(अ) शृङ्गार रस और उसके भेद	१
रस का महत्व	१
रस और रसों की संख्या	२
शृङ्गार ही आदि रस है	५
शृंगार रस का स्थायीभाव रति	८
शृंगार रस के विभाव	११
शृंगार रस के अनुभाव	१३
शृंगार रस के संचारी भाव	१५
शृंगार रस का परिपाक	१७
शृंगार रस के भेद	१९
करुणात्मक वियोग शृंगार	२३
शृंगार रस की व्यापकता	२५
शृंगार रस राज है	३३
(ब) शृंगार रस में विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता तथा विरह के विभिन्न तत्व	३७
वियोग अथवा दश दशायें	३८
विप्रलम्भ शृंगार में प्रेम का पूर्ण प्रकर्ष	३९
विरह; प्रेम का पोषक	४१

विवरण			पृष्ठ संख्या
(स) वियोग शृंगार का पारलौकिक पक्ष			४८
(द) शृंगार रस का मनोविज्ञानिक विवेचन			७७
रस सिद्धि	..	....	७७
काव्यानन्द		..	८४
भाव का विवेचन	..	...	८५
हमारे मौलिक अनुभाव	...	..	६६
शृंगार रस और प्रेम		....	१०२
काम का विवेचन			१०१
निष्कर्ष			११३

अध्याय २

हिन्दी के रीतिकाव्य की पृष्ठभूमि

(अ) संस्कृत साहित्य का प्रभाव			१२५
शृंगार साहित्य	...	..	१२५
रीति साहित्य		....	१३५
अलंकार सम्प्रदाय		..	१३६
रीति सम्प्रदाय	..	..	१४६
वक्रोक्ति सम्प्रदाय		.. ..	१४८
ध्वनि सम्प्रदाय		..	१५१
नायिका भेद	..	...	१५४
हिन्दी का रीतिकाव्य	...	..	१५६
(ब) वैष्णव एवं गौडीय साहित्य का प्रभाव			१६१
बौद्ध धर्म का अन्त एवं वैदिक धर्म का उत्थान			१६१
भक्ति भावना का विकास		...	१६४
वैष्णव आचार्य	..		१६६
राधा कृष्ण की उपासना का विकास		..	१८०
निम्बार्काचार्य का सिद्धान्त			१८४

विवरण	पृष्ठ संख्या
वल्लभाचार्य और उनका पुष्टिमार्ग	१९८७
देवदासी प्रथा	२०३
मराठा की भक्ति	२०४
जयदेव और उनका गीतगोविन्द	२०५
चंडीदास	२०७
विद्यापति	२०८
चैतन्य महाप्रभु और गौड़ीय सम्प्रदाय	२११
मीराबाई	२१६
अष्ट छाप के कवि	२२०
अन्य कवि	२२१

अध्याय ३

हिन्दी के शृंगार साहित्य में स्वतन्त्र विकास

(अ) नायिका भेद

नायिका भेद की परम्परा	२२७
हिन्दी में नायिका भेद का विकास	२३६
नायिका भेद के अन्य कवि	२४४
नायिका भेद के सांगोपांग विवेचन की परिपाटी	२४५
नायिका भद का विस्तार प्रेम	२५१
निष्कर्ष	२६४

(ब) शृंगार रस निरूपण २८०

अध्याय ४

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि तथा तत्कालीन वातावरण

मुसलमानों का आगमन	२८७
मुसलमानों का शासक के रूप में बसना	२९०
नवीन युग का प्रवर्त्तन	२९१
धार्मिक परिस्थितियां और सूफी मत	२९२

विवरण पृष्ठ संख्या

उर्दू कविता २९७
मुगल शासन का वैभव ३०२
समाज की दशा .. ३०९
निष्कर्ष ३१२

अध्याय ५

प्रतिनिधि कवियों की समीक्षा

रीतिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ ३२१
भक्तिकाव्य .. ३२५
प्रबन्ध काव्य ३२५
वीर काव्य ३२५
दोहा, कवित्त तथा सवैया की प्रधानता .. ३२६
रीति ग्रन्थों का निर्माण .. ३२६
नायिका भेद तथा नखशिख वर्णन ... ३२६
ऋतु वर्णन तथा बारह मासे ३३१
शृङ्गारी कवियों के दो विभाग ३३१
(अ) सेनापति, बिहारी तथा घनानन्द
सेनापति ३३३
तत्कालीन वातावरण का प्रभाव .. ३३३
शृङ्गार रस का वर्णन ३३६
बिहारीलाल
तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव ... ३६०
शृङ्गार रस का वर्णन .. ३६८
घनानन्द ३८४
तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव ... ३८६
शृङ्गार रस का वर्णन ३९४
(ब) केशवदास, मतिराम, पद्माकर तथा ग्वाल ४१३

विवरण	पृष्ठ संख्या
केशवदास	४११
तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव	४१४
शृङ्गार रस का वर्णन	४१८
विशेषतायें	४३०
मतिराम	४३६
तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव	४४१
शृङ्गार रस का वर्णन	४४७
विशेषतायें	४५७
पद्माकर	
तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव	४६१
शृङ्गार रस वर्णन	४६८
विशेषतायें	४८०
ग्वाल	
तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव	४८४
शृङ्गार रस का वर्णन	४८८
विशेषतायें	५०१
समीक्षा के निष्कर्ष	५०८
अध्याय ६	
उपसंहार	
शास्त्रीय निरूपण की दृष्टि से शृङ्गार रस वर्णन का हिन्दी काव्य में स्थान।	५११
शृङ्गार रस का समाज और धर्म भावना पर प्रभाव	५१६
विज्ञान और अर्थ के वर्तमान युग में शृङ्गार	५१९
नायिका भेद कथन की आवश्यकता	५२५
शृङ्गार सत्साहित्य की सृष्टि	५२७

प्रथम अध्याय

शृङ्गार रस का विवेचन

(अ) शृङ्गार रस और उसके भेद।
(ब) शृङ्गार रस में विप्रलम्भ शृङ्गार की प्रधानता तथा विरह के विभिन्न तत्त्व
(स) वियोग शृङ्गार का पारलौकिक पक्ष
(द) शृङ्गार रस का मनोवैज्ञानिक विवेचन

अध्याय १

शृङ्गार रस का विवेचन

(शृङ्गार रस और उसके भेद)

भारतीय साहित्य शास्त्र में 'रस सिद्धान्त' का विशेष महत्व है, रस को काव्य की आत्मा माना गया है, 'रसात्मक' वाक्य काव्यं ॥साहित्यदर्पण॥ अन्य समस्त काव्यांगः रीति, गुण, अलंकार, ध्वनि आदि, अंग रूप होकर रस का उत्कर्ष बढ़ाने वाले माने गये हैं। यद्यपि विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न अंगों को प्रधानता प्रदान की तथापि कोई भी रस की उपेक्षा नकर सका। ध्वनिवादी भी रस ध्वनि को मुख्य मानते एवं प्रधानता देते हैं। मम्मटाचार्य ने काव्य की परिभाषा तद्दोषौ शब्दार्थौ × सगुणावनलंकृती पुन क्वापि (काव्य प्रकाश) में यद्यपि दोष रहित और "गुण युक्त" शब्द और अर्थ को प्रधानता दी है, तथापि उन्होंने जो गुण और दोषों का विवेचन किया है वह रसों के ही सम्बन्ध में है, दोषों के सम्बन्ध में यह कहते हैं।

मुख्यार्थ हतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्य'।
उभयोपयोगिन स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपिस' ॥

अर्थात्—मुख्य अर्थ के ज्ञान के विघातक कारणों को दोष कहते हैं, काव्य में रस तो मुख्य होता ही है, परन्तु उसी रस के आश्रित (उपकारक होने के कारण) अपेक्षित वाच्य अर्थ भी मुख्य होता है, और रस तथा वाच्य अर्थ इन दोनों के उपयोग में आने वाले शब्दादिक भी हैं, अतएव इन शब्दों और अर्थों में भी दोष होता है। ॥ काव्य प्रकाश, सप्तम उल्लास ॥

× तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती, पुन क्वापिः (काव्यप्रकाश)

और गुणों की परिभाषा में उन्होंने इन्हें रस के "उत्कर्ष हेतवः" ही बताया है। यथा—

ये रसस्यांगिनोधर्मा शौर्यादयइवात्मन ।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युर चलस्थितयो गुणा ॥

अर्थात्—मनुष्य के शरीर में प्रधान आत्मा के जैसे शूरता आदि गुण होते हैं वैसे ही काव्य में प्रधान रस के उत्कर्ष को बड़प्पन देने वाले जो धर्म हैं वे ही गुण कहलाते हैं और इनकी स्थिति अचल या नियत (अवश्य उपस्थित) रहती है। काव्य प्रकाश, अष्टम उल्लास -

तात्पर्य यह है कि गुण उन्हें कहते हैं जो रस की शोभा बढ़ाने वाले होते हैं,-वे बिना रस के रहते भी नहीं और रहते हैं तो अवश्य रस के उपकारक होते हैं।

रस का सिद्धान्त भारतीय अध्यात्मवाद के भी अनुकूल पड़ता है। आत्मा को आनन्द स्वरूप ही माना गया है, "रसो वै स: रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति" ॥ तैत्तिरीय उपनिषद्, ११ ७-१ ॥

आनन्द प्राप्ति के लिये ही नाटक और काव्य का सृजन हुआ था तथा नाटकों के ही सम्बन्ध में भरतमुनि ने सर्वप्रथम इसकी व्याख्या की थी।

रस और रसों की संख्या—

रस सिद्धान्त के अनुसार स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से परिपुष्ट होकर रस संज्ञा को प्राप्त होता है। रस के स्वरूप का आस्वादन ही काव्य के अध्ययन और अनुशीलन का सर्वोपरि फल है, इसकी निष्पत्ति भाव विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से मानी गई है। रस सिद्धान्त के आदि प्रवर्तक श्री भरतमुनि ने रस सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण सूत्र लिखा है, "विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्ति" अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

उक्त सूत्र कुछ इस प्रकार लिखा गया है कि उसके अर्थ करते समय मनचाही कल्पना की जा सकती है, उसमें 'संयोग' और 'निष्पत्ति' ये दो शब्द विशेष रूप से विवाद के विषय रहे हैं, इनकी व्याख्या विभिन्न आचार्यों ने अनेक

प्रकार से की है। इस विवेचना के प्रसंग में चार आचार्यों के सिद्धान्तों को प्रमुखता दी जाती है। यथा—

१—भट्ट लोल्लट का उत्पत्तिवाद २—श्री शंकुक का अनुमितिवाद ३—भट्ट नायक का भुक्तिवाद तथा ४—अभिनव गुप्त का अभिव्यक्तिवाद।

इनमें अभिनवगुप्ताचार्य का मत ही सबसे अधिक मान्य हुआ और उसके अधिकांश अनुवर्ती आचार्यों ने उसे स्वीकार किया।

अभिनव गुप्त के मतानुसार जिस प्रकार मेंहिमी में गंध समाई रहती है उसी प्रकार हमारे हृदय में वासनात्मक संस्कार सुप्त पड़े रहते हैं। जल-सिंचन द्वारा जिस प्रकार पृथ्वी की सुगन्ध प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार विभावादि का संयोग प्राप्त होते ही हमारे सुषुप्त वासनात्मक संस्कार उद्‌बुद्ध होकर चमत्कृत आनन्द उत्पन्न कर देते हैं, रस का आस्वादन सर्वथा अलौकिक है, यह ब्रह्मानन्द के समान है, इस सिद्धान्त से समस्त साहित्य मर्मज्ञ सहमत हैं; साहित्यदर्पणकार ने तो स्पष्ट ही लिखा है कि "परमार्थतस्तु खड पुवाय वेदान्त प्रसिद्ध ब्रह्म सत्त्ववद् विलम्ब"—अर्थात् रस वास्तव में वेदान्त प्रसिद्ध ब्रह्म की भाँति अखंड और अवेद्य है।" रस को अनिर्वचनीय और अलौकिक कहने का भी यही अभिप्राय है।

रस प्रकरण में रत्यादि स्थायी भावों की एवं उनके परिपाक, परिष्कार साधारणीकरण आदि की विशद और विस्तृत विवेचनाएँ की गई हैं।

आचार्यों के मतानुसार हमारे मन के प्रभावित होने के मुख्यतया ९ प्रकार हैं अर्थात् नौ ऐसे मुख्य भाव हैं जिनके जाग्रत और परिपुष्ट होने पर एकाग्र होकर मन आनन्दमग्न हो जाता है।

इन नौ में से प्रत्येक स्थायी भाव के आधार पर एक रस की कल्पना की गई है। यथा शृङ्गार रस, हास्यरस, वीर रस, अद्‌भुत रस, रौद्र रस, करुण रस, भयानक रस, वीभत्स रस, तथा शान्त रस।

किन्हीं आचार्यों ने दसवाँ वात्सल्य रस भी माना है, वात्सल्य रस का स्थायी भाव 'स्नेह" है, जो छोटों के प्रति प्रेम, रति' का ही एक भेद होने के

कारण शृङ्गार रस के ही अन्तर्गत आ जाता है। इस प्रकार रसों की संख्या ४ ही ठहरती है।

महामुनि भरत के मतानुसार मूल रस चार ही हैं। वे लिखते हैं, तेष मुत्पत्ति हेतवश्चत्वारो रसा शृङ्गारो रौद्रो वीरो वीभत्स इति, (नाट्यशास्त्र) इसके उपरान्त वे लिखते हैं कि "शृङ्गार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत और वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति हुई, शृङ्गार की अनुकृति हास्य का रौद्र का कार्य, करुण का वीर का कार्य अद्भुत का और वीभत्स दर्शन भयानक का जनक है।"

भरत मुनि ने आठ रसों का उल्लेख किया है, इसलिये नाटक में आठ ही रस माने गये हैं, कालान्तर में आचार्यों ने नवें शान्त रस की भी कल्पना की। इस प्रकार रसों की संख्या ६ निश्चित हुई। पंडितराज जगन्नाथ लिखते हैं, "जो लोग नाटकों में शान्त रस नहीं है, यह मानते हैं, उन्हें भी किसी प्रकार की बाधा न होने के कारण एवं महाभारतादि ग्रन्थों में शान्त रस ही प्रधान है, यह बात सब लोगों के अनुभव से सिद्ध होने के कारण उसे काव्यों में अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा, इसी कारण मम्मट ने भी अष्टौ नाट्ये रसास्मृता इस तरह आरम्भ करके 'शान्तोपिनवमो रसः' इस तरह लिखकर उपसंहार किया है।" रस गंगाधर)

काव्य प्रकाशकार लिखते हैं, निर्वेदस्थायिभावोस्ति शान्तोपि नवमो रसः' जिसका स्थायी भाव निर्वेद है, नवां वही 'शान्त' रस है।

संसार की अनित्यता का अनुभव होने पर तथा विषयों से विरक्ति हो जाने पर निर्वेद होता है, वही निर्वेद शान्त रस का स्थायी भाव है। आचार्यों के मतानुसार उत्तमयोगी का निर्वेद ही स्थायी भाव माना जा सकता है, साधारण कारणों से क्षणिक विरक्ति-जन्य निर्वेद को सञ्चारी भाव ही कहा जाता है। पंडितराज जगन्नाथ 'निर्वेद की व्याख्या यों करते हैं, 'नित्यानित्यवस्तु विचार जन्मा विषय विरागाख्यो निर्वेदः 'गृहकलहादिजस्तु व्यभिचारी' जिसकी उत्पत्ति नित्य और अनित्य वस्तुओं के विचार से होती है, जिसका नाम विषयों से विरक्ति है,

उसे निर्वेद कहते हैं, वही निर्वेद यदि गृह-कलहादि जन्य हो, तो
व्यभिचारी होगा। (रस गगा

रसों की संख्या ६ पर आकर समाप्त हो गई है, यह नहीं कहा जा सक
नवीन रसों की कल्पना एवं उद्भावना बराबर होती रही है और अब भी
रही है। इस सम्बन्ध में हम केवल इतना ही निवेदन करेंगे कि रसों की
संख्या तो निर्विवाद है, किन्तु अन्य रसों के सम्बन्ध में सर्वसम्मत निर्णय
हो सका है। इसका सम्बन्ध हमारी प्रारम्भिक सहज वृत्तियों से है।

आचार्यों ने रसों के भिन्न-भिन्न देवता भी माने हैं तथा उनके लिये अ
अलग वर्ण निर्धारित किये हैं, ये देवता पौराणिक परम्परा के अनुस
माने गये हैं।

शृङ्गार ही आदि रस है—रस की उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'अग्निपुरा
में लिखा है।

अक्षरं ब्रह्म परमं सनातनमजं विभूम्,
आनन्द' सहजस्तस्य व्यज्यते सद्दाच्यन,
व्यक्ति' सातस्यचैतन्य चमत्कार रसाह्वया,
आद्यस्तस्य विकारो यः सोऽहंकार इतिस्मतः,
ततोभिमानस्तत्रेद समार्त भुवनत्रयम्,
अभिमानाद्रति सा चपरिपोषमुपेयिषु,
रागाद्भवति शृङ्गारो रौद्रस्तेण मान् प्रजायते,
वीरोवष्टम्भज' संकोचभूर्वो मत्स इष्यते,
शृङ्गाराज्जायते हासो रौद्रात्तु करुणोरस'
वीराच्याद्भुतनिष्पत्तिः स्याद्वोभत्साद्भयानक'

जो अक्षर, पर ब्रह्मसनातन, अज और विभु है, उसका सहज आन
कभी-कभी प्रकट हो जाता है, यह अभिव्यक्ति चैतन्य, चमत्कार और रस
होती है, उसके आदि विकार को अहंकार कहते हैं, उसके अहंभाव से अभिम
'ममता' का आविर्भाव हुआ, जो भुवन में व्याप्त है, ममता संकलित अभिम
से रति की उत्पत्ति हुई, यही रति शृङ्गार रस की जननी है।

माद को राग 'रति' से शृंगार की, तीक्ष्णता से रौद्र की, गर्व से वीर की तथा संकोच से वीभत्स की सृष्टि हुई, फिर शृंगार से हास्य रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत और वीभत्स से भयानक का आविर्भाव हुआ।

कतिपय विद्वान स्वयं अपने प्रति प्रेम को ही वात्सल्य प्रेम आदि प्रेम के स्वरूपों का कारण मानते हैं। अपने आप से विमुख न जायें, इस भय के निवारण के लिए ही बालक अन्य लोगों से प्रेम करने लग जाता है। सारांश यह है कि प्रेम के अंकुर जन्म के साथ ही हमारे हृदय में उत्पन्न हो जाते हैं। यथा

शृंगार की सृष्टि सृजन का कारणीभूत और विश्व प्रपंच का आधार है। पुराणों में श्रद्धा और मनु के योग से सृष्टि का प्रारम्भ माना है।

> ततो मनुः श्राद्धदेव संज्ञायामास भारत,
> श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान आत्मवान्।
>
> (भागवत)

सायण ने श्रद्धा का परिचय इस प्रकार दिया है, "काम गोत्रजा श्रद्धा नर्षिका" श्रद्धा काम गोत्र की बालिका है, इसीलिए उसे कामायनी भी कहा है।

भारतीय शास्त्रों में काम की व्यापकता का अन्य अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है।

> कामो जज्ञे प्रथम नैनं देवा,
> आपु पितरो न मर्त्या।
> ततस्त्वमसि ज्यायानं विश्वाहा महांस्ते
> काम नमः इति करोमि ॥अथर्ववेद ६, २ १६॥

अर्थात् हे काम तू सबसे प्रथम उत्पन्न होकर देव, पितर और मर्त्य सबको प्राप्त हुआ, कोई तुझ से बचा नहीं, इसलिए इस विश्व में तू व्यापक और सबसे महान् है। मैं तुझे नमस्कार करता हूँ।

तथा

> कामस्तदग्रे, समवर्ततापि मनसो
> रेतः प्रथमं यदासीत् ॥ ऋक १०, १२९, ४ ॥ –

अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति के पहले मन की सर्व व्यापिनी वृद्धि का मूल तत्त्व काम प्रकट हुआ। गीता में भी धर्म से अविरुद्ध काम को ईश्वरीय विभूतियों में सम्मिलित किया गया है "धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि, भरतर्षभ ॥ गीता ७, ११ ॥ मनुस्मृति में भी "यद् यद्धि क्रियते कर्म" 'जो भी कर्म किया जाता है वह काम की चेष्टा है' कह कर काम की व्यापकता का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

अपने "कामायनी" महाकाव्य में कविवर जयशंकर प्रसाद ने काम एवं उसके आगमन का सुन्दर चित्रण किया है। उन्होंने भी

> "जो आकर्षण बन हँसती थी,
> रति थी अनादि वासना वही।"

कह कर "रति" को आदि वासना ठहराया है। सृष्टि की रचना में भी काम ही की प्रधानता है। भगवान् ने भी एक से बहुत होने की कामना की थी। एकोऽहं बहुस्याम की भावना से ही सृष्टि का प्रसार हुआ।

'शृङ्गार' शब्द का अर्थ साहित्यदर्पणकार के मतानुसार

> शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः
> उत्तम प्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते।

काम के उद्भेद, अङ्कुरित होने को शृंग कहते हैं, उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस "शृङ्गार" कहलाता है, उस लक्षण में भी "उत्तम प्रकृति" विशेष ध्यान देने योग्य है।

रसमञ्जरीकार 'सेठ कन्हैयालाल पोद्दार' के अनुसार "शृङ्गार" यौगिक शब्द है, "शृङ्ग" और 'आर" इसके दो भाग हैं। शृङ्ग का अर्थ "कामोद्रेक" 'काम की वृद्धि' है। "आर" शब्द "ऋ" धातु से बना है। 'ऋ" का अर्थ "गमन" है। गति का अर्थ यहाँ प्राप्ति से लिया जाता है, अतः शृंगार शब्द का अर्थ है "कामवृद्धि की प्राप्ति"। चूंकि स्थायी भाव "रति" विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के एकीकरण से रस अवस्था को प्राप्त होकर कामी जनों के चित्त में काम की वृद्धि करता है इसीलिए वह शृङ्गार कहलाता है। 'अंकुरित काम ही अपनी प्रिया रति से मिलकर सृष्टि की उत्पत्ति करता है।"

साधारण बोल चाल में भी कामदेव के अङ्कुरित होने को "सींग" निकलना कहते हैं। जब कोई व्यक्ति कुमारावस्था को पार कर युवावस्था में प्रवेश करने लगता है तो प्राय कहा जाता है, अब उसके सींग निकलने लगे हैं, अथवा परिपक्वावस्था की प्राप्ति होने पर भी यदि कोई व्यक्ति साधारण सी बात नहीं समझ पाता है, तो कहा जाता है, अब क्या तुम्हारे सींग पूँछ निकलेंगे। इस सींग निकलने से अभिप्राय उसके शरीर में यौवन चिन्हों और हृदय में शृङ्गारी भावों के उत्पन्न होने से रहता है।।

वास्तव में व्यापक अर्थ में काम आकांक्षा का ही पर्याय है और उसे इसी व्यापक अर्थ में ग्रहण भी किया जाना चाहिए। आकांक्षा में भोगेच्छा भी सम्मिलित है किन्तु काम उसी तक सीमित नहीं, विद्वत् समाज शृङ्गार रस को उसमतासे पृथक् नहीं मानता। रसमत के प्रथम आचार्य भरतमुनि के मतानुसार संसार में जो कुछ पवित्र, उत्तम और दर्शनीय है, वही शृङ्गार है, यथा "यत्किंच लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीय वा तच्छृङ्गारेणोपमीयते"
(नाट्यशास्त्र)

अर्थात् ससार में जो कुछ दर्शनीय अर्थात् सुन्दर है, साथ ही पवित्र, उत्तम और उज्ज्वल है, उसका जिसमें सरस एव हृदयग्राही वर्णन, विचार अथवा प्रदर्शन होगा वह शृङ्गार रस कहला सकेगा।

शृङ्गार रस का विश्लेषण

शृंगार रस का स्थायी भाव, रति —जो भाव चिरकाल तक चित्त में रहता है, एव जो काव्य, नाटकादि में आद्योपान्त उपस्थित रहता है, प्रभावशीलता और प्रधानता में औरों से उत्कर्ष रखता है, साथ ही जिसमें विभावादि से सम्बन्धित होकर रस रूप में परिणत होने की शक्ति रहती है, स्थायी भाव कहा जाता है।

जो भाव रस अवस्था को प्राप्त हो, वही स्थायी है। साहित्य दर्पण में स्थायी भाव का लक्षण इस प्रकार दिया गया है।

> अविरुद्धा विरुद्धावायं तिरोधातुमक्षमाः
> आस्वादांकुर कन्दोऽसौ भाव स्थायीति सम्मत ।

अर्थात् अविरुद्ध अथवा विरुद्ध भाव जिसे छिपा न सकें और जो आस्वादन अङ्कुर का, अर्थात् आस्वादन रूप रस तथा आनन्द का, मूल हो अर्थात् जब हो वही स्थायी भाव कहलाता है।

माला मधि ज्यों सूत्र त्यों,
विभावादि में आनि,
आदि अन्त रस माँहि थिर, थाई भाव बखानि।
॥ रसिक रसाल ॥

रस गंगाधर में स्थायी भाव के विषय में लिखा गया है,

विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न य
आत्मभावं नयत्याशु सस्थायी लवणाकरः,
चिरंचित्ते वतिष्ठन्ते संबध्यन्ते नुबन्धिभि,
रसत्व ये प्रपद्यन्ते प्रसिद्धा स्थायिनोत्र ते,
सजातीय विजातीये रतिरस्कृत मूर्तिमान,
यावद्र संवर्त्तमान स्थायिभाव उदाहृतः।

जो भाव विरोधी एवं अविरोधी भावों से विच्छिन्न नहीं होता, किन्तु विरुद्ध भावों को भी शीघ्र अपने में परिणत कर लेता है, उसका नाम स्थायी है, उसकी अवस्था लवणाकर के समान होती है, जो प्राप्त समस्त वस्तुओं को लवण बना देता है। जो भाव बहुत समय तक चित्त में रहते हैं, विभावादिकों से सम्बन्ध करते हैं, और रस रूप बन जाते हैं, वे स्थायी कहाते हैं, जो मूर्तिमान भाव सजातीय और विजातीय भावों से तिरस्कृत न किया जा सके और जब तक रस का आस्वादन हो, तब तक वर्तमान रहे उसे स्थायी भाव कहते हैं।

भरतमुनि कहते हैं:—

यथा नाराणां नृपति शिष्यनां च यथा गुरुः,
एवंहि सर्वभावानां भावः स्थायी महानिह।
(नाट्यशास्त्र)

अर्थात् जैसे मनुष्यों में राजा, शिष्यों में गुरु, वैसे ही सब भावों में स्थायी भाव श्रेष्ठ होता है।

वास्तव में स्थायी भाव वासनारूप से विराजमान रहते हैं, और जब विभावादि द्वारा उनको उद्बुद्ध होने का अवसर मिलता है, तभी वे जागृत होकर और अनुभाव और संचारी भाव की सहायता से रस रूप में दिखाई देते हैं। कोई अविरुद्ध या विरुद्ध भाव स्थायी भाव को तिरोहित नहीं कर सकता।

जब जो स्थायी भाव उत्पन्न होता है, तब उसी की प्रधानता रहती है। स्थायी भाव के लिए चार बातें अनिवार्य ठहरती हैं, (१) वासनात्मकता, (२) सजातीय अथवा विजातीय भावों के योग से नष्ट न होना। उलटे वे तो उसके पोषक एवं सहायक बन जाते हैं, (३) अन्य भावों को अपने में लीन कर लेना तथा (४) विभाव अनुभाव तथा संचारी भावों के योगसे परिपुष्ट होकर, रस रूप हो जाना।

जब रति स्थायी भाव पूर्णतया पुष्ट और चमत्कृत होता है तब उसे शृङ्गार रस कहते हैं। साधारणतया रति का अर्थ है, प्रीति, प्रेम, अनुराग आदि। प्रकृतिवाद में रति शब्द का अर्थ इस प्रकार लिखा है, रति, संज्ञा, स्त्रीलिंग, स्मरप्रिया, काम, पत्नी, अनुराग, आसक्ति, क्रीड़ा, रमण, संभोग।

हिन्दी शब्द सागर में यह अर्थ लिखा गया है—

रति, संज्ञा, स्त्रीलिंग, प्रीति, प्रेम, अनुराग, मोहब्बत।

प्रदीपकार लिखते हैं—

रतिस्तु मनोनुकूले स्वर्थेषु सुखसंवेदनं।

मन के अनुकूल अर्थों में सुख प्रसूत ज्ञान का नाम रति है।

सुधा सागरकार लिखते हैं,

"स्मरकरम्बितान्त' करणयो' स्त्रीपु सयो
परस्पररिरंसा रति स्मृता।

स्त्री पुरुष के कामवासनामय हृदय की परस्पर रमणेच्छा का नाम रति है। रसगंगाधर के मतानुसार स्त्री पुरुष की एक दूसरे के विषय में जो प्रेम नामक

चित्तवृत्ति होती है उसे 'रति' स्थायी भाव कहते हैं। वही प्रेम यदि गुरु, देवता अथवा पुत्र के विषय में हो, तो व्यभिचारी भाव कहलाता है।

कविवर पद्माकर ने 'रति' का लक्षण इस प्रकार दिया है।

सुप्रिय चाह से होत जो सुमन अपूरब प्रीति,
ताहीं को रति कहत हैं, रस मन्थन की रीति।

(जगद्विनोद छन्द से २, १)

महाकवि देव द्वारा दिये गये रति के लक्षण से भी यही सुप्रिय चाह वाली बात पुष्ट होती है।

नेक जो प्रियजन देखके, आन भाव चित होय।
सो तासों रति भाव है, कहति सुकवि सब कोय॥

महाकवि देव ने ५ प्रकार का प्रेम लिखा है। यथा—

सानुराग, सौहार्द, भक्ति, वात्सल्य और कार्पण्य।

साधारण शृङ्गार को सानुराग प्रेम, कुटुम्ब, परिवार और इष्टमित्र विषयक प्रेम को सौहार्द, छोटों द्वारा बड़ों के प्रेम को भक्ति और बड़ों द्वारा छोटों के प्रेम को वात्सल्य तथा दुःख से आर्द्र होकर किये गये प्रेम को कार्पण्य कहते हैं।

शृंगार रस के विभाव—विभाव, कारण, निमित्त और हेतु पर्याय हैं, एक ही अर्थ के बोधक हैं,

"विभावः कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्यायाः" "नाट्यशास्त्र"

साहित्य दर्पण में विभाव का लक्षण यों दिया गया है।

विभाव—'रत्याद्युद्बोधका लोकेविभावा' —'काव्यनाट्ययो'

अर्थात्—लोक में जो रति आदिक के उद्बोधक हैं, वे ही काव्य और नाटकों में विभाव कहलाते हैं, इसकी व्याख्या ग्रन्थकार ने स्वयं-इस प्रकार की है।

"ये हि लोकेरामादिगतरति हासादीनामुद्बोधकारणानि सीता दयस्त एव काव्येनाट्ये च निवेशिता सन्तः विभाव्यन्ते आस्वादाङ्कुरप्रादुर्भावयोग्या क्रियन्ते सामाजिक रत्यादिभावाः 'एभिः' इति विभावा उच्यन्ते।"

लोक में सीता आदिक जो रामचन्द्रादि की रति आदि के उद्दीपक प्रसिद्ध हैं, वे ही यदि काव्य और नाटक में निवेशित किये जावें तो विभाव कहलाते हैं क्योंकि ये सहृदय द्रष्टा तथा श्रोताओं के इत्यादि भावों को विभावित करते हैं। भरतमुनि ने इसी बात को तनिक फेर से कहा है। -

बह्वोऽर्था विभाव्यन्ते वागंगाभिनयाश्रया,
अनेन यस्मात्तामार्य विभाव इति कथ्यते।

"नाट्यशास्त्र"

रति आदि जो विशेष प्रकार के मनोविकार हैं और जो काव्य एवं नाटकों में स्थायी भाव कहे जाते हैं, उन रति आदि स्थायी भावों के उत्पन्न होने के जो कारण होते हैं उन्हें 'विभाव' कहते हैं, इनको विभाव इसलिये कहा गया है कि इनके द्वारा स्थायी और व्यभिचारी भावोंमित, वाणी का विशेषतया ज्ञान होता है।

सामाजिकों के हृदय में वासना रूप में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में स्थित रति आदि स्थायी एवं व्यभिचारी भावों को ये ही विभावन अर्थात् आस्वाद के योग्य बनाते हैं, इन्हें रस के उत्पादक 'कारण' ही समझना चाहिये। विभाव अन्तस्थ की प्रसुप्त भावनाओं को विशेष रूप से प्रवर्तित करते हैं।

विभावों के दो भेद होते हैं, (१) आलम्बन विभाव, जिसका आलम्बन करके स्थायी भाव "रति इत्यादि मनोविकार" उत्पन्न होते हैं।

(२) उद्दीपन विभाव—रीति आदि मनोविकारों को जो अतिशय दीपन करते हैं। उत्पन्न स्थायी भाव को यदि उत्तेजना न मिले तो वह अनुत्पन्न के समान ही है, जल न मिलने से जरता अंकुर नष्ट हो जाता है।

यदि उद्दीपन विभाव न हो तो स्थायी भाव शीघ्र ही शान्त हो जायगा, आलम्बन की निष्क्रिय उपस्थिति से जी न ऊब जाये इसी से उसकी चेष्टाओं को उद्दीपन माना है।

शृङ्गार रस के आलम्बन विभाव नायक नायिका हैं, हिन्दी साहित्य में, विशेषकर ब्रजभाषा काव्य में इनके अनेक भेदों का विशद वर्णन किया गया है।

शृङ्गार रस के उद्दीपन विभाव—माधुरी एवं माहुठ दोनों ही प्रकार के

होते हैं, यथा सखा, सखी, दूती, मानुषी तथा ऋतु, वन, उपवन, केलि, कुञ्ज, सड़ाग, एकान्त स्थान, पवन, चन्द्र, चांदनी, भ्रमर, कोकिल, गानवाद्य आदि प्राकृत उद्दीपन विभाव हैं।

शृंगार रस के अनुभाव—जो स्थायी भावों का अनुभव कराने में समर्थ हों, अनुभाव है, "अनुभावयन्ति इति अनुभावा।"

अमरकोषकार लिखते हैं कि "अनुभावो भाव बोधकः" अनुभाव वास्तव में शारीरिक चेष्टायें हैं। इन्हीं के द्वारा रति आदि स्थायी भाव काव्य में शब्दों द्वारा और नाटक में आश्रय की चेष्टाओं द्वारा प्रकट होते हैं। अनुभाव रस उत्पन्न हो जाने की सूचना भी देते हैं और रस की पुष्टि भी करते हैं, साहित्यदर्पण में अनुभाव की व्याख्या इस प्रकार की गई है।

उद्बुद्ध कारणैः स्वैर्वहिर्भाव प्रकाशयन्
लोक य: कायरूप सो अनुभाव' काव्यनाट्यो

अपने अपने कारणों 'विभावादिकों' से उत्पन्न कर अपना 'वहिर्भाव' अर्थात् बाह्य स्वरूप दिखाते हुए लोक में रति आदि के जो कार्य होते हैं, वही काव्य में अनुभाव कहलाते हैं।

अनुभवों की संख्या अगणित है तथा इनकी विस्तृत व्याप्ति है।

भाव मन में रहते हैं, हाव वे भाव हैं जिनका कि भृकुटि नेत्रादि द्वारा बाह्य व्यंजन होता है। नायिका आलम्बन भी हो सकती है और आश्रय भी। नायिका को यदि आश्रय माना जाय तब तो हाव अनुभाव ही ठहरते हैं किन्तु वह आश्रय होते हुए भी नायक के लिए आलम्बन बन जाती है, इस दृष्टि से आलम्बन की चेष्टायें होने के कारण हावों को उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत गिना जाना चाहिये।

हाव का एक उदाहरण देखिये —

रही दहेंड़ी ढिंग धरी, भरी मथनियां बारि।
फेरति करि उलटी रई, नई विलोवनि हारि॥ "बिहारी"

उक्त दोहे में 'विभ्रम' हाव है। मन की विह्वलता के कारण विपरीत व्यवहार होने लगा है। दहेंड़ी पास रक्खी है लेकिन नायिका मथानी में ही पानी डालती है।

और उसकी रई से बिलोने लगती है। यह व्यवहार नायक के प्रति नायका के प्रेम का सूचक है। अतः अनुभाव ही होगा, किन्तु नायका का यह व्यवहार नायक के लिए उद्दीपन का कार्य करेगा।

कभी कभी प्रेम के न होने पर भी नायका अनुलेपन आदि हाव किया करती है। अनुराग शून्य वेश्याएँ इसका जीता जागता उदाहरण है। नायक को आकर्षित करने के लिए भी हावों का प्रदर्शन किया जाता है। किन्तु नायक पक्ष में वे सदैव ही उद्दीपन का कार्य करते हैं। कैसा ही निश्चेष्ट नायक क्यों न हो, हावों की चोट से अवश्य ही विह्वल हो जायगा। हाव निश्चय ही 'रति' भाव को उद्दीपन करने में विशेष रूप से सहायक होते हैं। हाव प्रत्येक दशा में रति स्थायी भाव का दीपन करते हुए शृङ्गार रस का पोषण करते हैं, अतएव इन्हें उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत रखना ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

अनुभावों के चार भेद होते हैं—सात्विक अनुभाव कायिक अनुभाव, मानसिक अनुभाव, तथा आहार्य अनुभाव।

सात्विक अनुभाव—आत्मा में अन्तर्भूत रस को प्रकाशित करने वाला अन्तःकरण का धर्म विशेष 'सत्व' कहलाता है। इसी सत्व गुण से उत्पन्न शरीर के स्वाभाविक अंग विकार को सात्विक अनुभाव कहते हैं। 'काव्यप्रकाश' और साहित्य दर्पण में सात्विक भावों की गणना अनुभावों के अन्तर्गत ही की गई है। केवल गोबलीवर्द न्यायानुसार ये पृथक् भी कहे जा सकते हैं, देवजी ने इन्हें तन संचारी की संज्ञा देकर संचारी भाव के अन्तर्गत माना है, इनकी संख्या ८ है। यथा—(१) स्तम्भ, (२) स्वेद (३) रोमाञ्च, (४) स्वरभंग, (५) कम्प, (६) वैवर्ण्य, (७) अश्रु, (८) प्रलय। अनेक आचार्यों ने इनके लक्षण और उदाहरण दिये हैं।

कायिक अनुभाव—मनोभावों के अनुसार आंख, भौंह, हाथ, आदि शरीर के अंगों द्वारा की गई कटाक्ष आदि चेष्टाओं को कायिक अनुभाव कहते हैं।

मानसिक अनुभाव—अन्तःकरण की भावना के अनुसार मन मानस में, आमोद प्रमोद, हर्ष विषादादि की तरंगें उठती हैं। उन्हें मानसिक अनुभाव कहते हैं।

आहार्य अनुभाव—भाँति भाँति के वेश धारण को आहार्य अनुभव कहते हैं।

शृङ्गार रस में प्राय सभी प्रकार के अनुभावों का समावेश पाया जाता है।

शृङ्गार रस के संचारी भाव—चित्त की विभिन्न आदि विभिन्न वृत्तियों को व्यभिचारी या सचारी भाव कहते हैं। सचारी शब्द 'सम्' उपसर्ग और चर धातु से मिलकर बना है। इसका अर्थ है सब भावों को भले प्रकार रसत्व की ओर ले जाने वाला अथवा साथ-साथ चलने वाला, अर्थात् जो भाव स्थायी भाव में विद्यमान रहकर या उनके साथ-साथ उन्हें उपयोगी एव पुष्ट बनाते, रस रूप तक पहुँचाते तथा अवसरगवत उन्हीं में उत्पन्न होकर उन्हीं में विलीन हो जाते हैं, उन्हें संचारी भाव कहते हैं। ये ध्वनि रूप से स्थायी भावों के पोषक एवं सहायक होते हुए भी रस-सिद्ध-काल तक स्थिर नहीं रहते हैं। इसी कारण इन्हें व्यभिचारी भाव भी कहते हैं, इन्हें व्यभिचारी भाव कहने का एक और भी कारण है। एक ही संचारी भाव कई एक रसों में सम्मलित हो जाता तथा रस की पुष्टि करता है, विविध आचरण के कारण जिस प्रकार मनुष्य व्यभचारी कहलाता है ठीक उसी प्रकार विविध प्रकार से आचरण करने वाले होने के कारण इन्हें भी व्यभिचारी भाव की संज्ञा प्रदान की गई है। अन्य सचारी अथवा मन संचारी भी इनकी संज्ञा है। इनकी संख्या कुल मिलाकर ३३ मानी गई है, यथा (१) निर्वेद (२) ग्लानि (३) शंका (४) असूया (५) मद (६) श्रम (७) आलस्य (८) दीनता (९) चिन्ता (१०) स्मृति (११) मोह (१२) धृति (१३) क्रीड़ा (१४) चपलता (१५) हर्ष (१६) आवेग (१७) जड़ता (१८) गर्व (१९) विषाद (२०) औत्सुक (२१) निद्रा (२२) अपस्मार (२३) स्वप्न (२४) विबोध (२५) अमर्ष (२६) अवहित्था (२७) उग्रता (२८) मति (२९) व्याधि (३०) उन्माद (३१) मरण (३२) त्रास (३३) वितर्क। विभिन्न आचार्यों एवं कवियों ने इनके सुन्दर लक्षण एवं उदाहरण दिये हैं। साहित्यदर्पण तथा अन्य रीति ग्रन्थों में उपर्युक्त ३३ संचारी भाव ही माने हैं, परन्तु महाकवि देव ने एक चौंतीसवां 'छल' संचारी भाव भी माना है। नाट्यशास्त्र में भी इसका उल्लेख है। गुप्त रीति से

क्रिया सम्पादन करना 'कृत' कहलाता है। इसकी उत्पत्ति अपमान, कुचेष्टा प्रतीप आदि से होती है।

रति को सहायता पहुंचाने वाले भावों को "शृङ्गार रस" के संचारी भाव कहते हैं। उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा, इन चार संचारी भावों को छोड़ कर शेष २९ संचारी भाव शृङ्गार रस में होते हैं। इतने अधिक संचारी भाव अन्य किसी रस में नहीं होते। देव के मतानुसार शृङ्गार रस में सम्पूर्ण तेतीस संचारी आ जाते हैं। इसके प्रमाण स्वरूप उन्होंने अपना निम्नलिखित छन्द उद्धृत किया है।

वैरागिनि किधौं, अनुरागिनि सुहागिनि तू
देव बड़भागिनि लजाति और लरति क्यों
सोवति जागति अरसाति हरषाति अनखाति
बिलखाति दुख मानति डरति क्यों
चौंकति चकति उचकति औ बकति
बिथकति और थकति ध्यान धीरज धरति क्यों
मोहति मुरति सतराति इतराति साह
चरज सराहैं आहचरज मरति क्यों। "शब्द रसायन"

इसका स्पष्टीकरण स्वयं कवि के ही शब्दों में सुनिये।

वैरागिनि 'निर्वेद' 'उत्कंठता' है अनुरागिनि
'गर्व' सुहागिनि जानि भाग 'मदते' बड़भागिनि
'लज्जा' लज्जति 'अमर्ष' लरति सोवति 'निद्रा' लहि
'बोध' जगति 'आलस्य' 'अलस हर्षति' 'सुहर्ष' गहि
अनखाति 'असूया' 'ग्लानि' "श्रम' बिलख दुखित दुख "दीनता"
"संकहि डराति, चौंकति," त्रसति "चकित" अपरमति "लीनता"
उचकि "चपल" 'आवेग' "व्याधि" सो बियकिसु धीरति
"जड़ता" थकति "सुध्यान" "चित" "सुमिरन" "धर" "धीरति
"मोह-मोहि" "अवहित्थ" "मुरति सतराति" 'उग्र' गति
इतरैबो "उन्माद" साहचरजै सराह "मति"

अरु आड्चरज वहु 'तक' 'करि' मरने तुल्य मूरछि परति
कहि देव देव तैतीस हूँ संचारिन तिय सचरति,

"शब्द रसायन"

साहित्यदर्पणकार ने श्रृंगार रस का परिचय इस प्रकार कराया है।

"श्रृंग हिमन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुकः
उत्तम प्रकृति प्रायो रस श्रृंगार इष्यते
परोढ़ां वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम्
आलम्बन नायिका स्युर्दक्षिणाद्याश्चनायका
चन्द्र चन्दन रोल मरुताद्युद्दीपन मतम्
भ्रु विक्षेपकटाक्षादि रनुभाव: प्रकीर्तित:
त्यक्त्वौग्र्य मरणालस्य जुगुप्सा व्यभिचारिण
स्थायी भावो रति: श्यामवर्णोऽयं विष्णु देवत ।

अर्थात्—"कामदेव के उद्भेद 'अंकुरित' होने का श्रृंग कहते हैं। उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस 'श्रृंगार' कहलाता है। परस्त्री तथा अनुराग शून्य वैश्याओं को छोड़ कर अन्य नायिकाएँ तथा दक्षिण आदि नायक इस रस के आलम्बन विभाव माने जाते हैं, चन्द्रमा चन्दन भ्रमर आदि इसके उद्दीपन विभाव होते हैं, अनुरागपूर्ण भ्रुकुटि भग और कटाक्ष आदि इसके अनुभाव होते हैं, उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़ कर अन्य निर्वेदादि इसके संचारी भाव होते हैं इसका स्थायी भाव रति है, वर्ण श्याम है एवं इसके देवता विष्णु भगवान हैं, ' मिश्र हास्य रस तथा शत्रु, करुण, वीभत्स रौद्र एवं भयानक रसों को बतलाया गया है।'

श्रृंगाररस का परिपाक—विभावन केवल विभावों का ही नहीं वरन् अनुभाव और संचारी का भी होता है, और इसी प्रकार अनुभव न केवल अनुभाव का ही नहीं होता वरन् विभाव तथा संचारी का भी होता है। अनुभाव भावों के कार्य हैं तथापि सहृदय के मन में रस की जागृति और पोषण करने में सब कारण रूप बनते हैं।

७

जो लोक में कार्य होते हैं वे काव्य में कारण बन जाते हैं। काव्य प्रकाशकार के मतानुसार :—

> कारणान्यथकार्याणि सहकारिणि यानि च
> रत्यादे स्थायिनो लोके तानि चे नाट्यकाव्ययो"
> विभावा अनुभावश्च वण्यते व्यभिचारिण'।
> व्यक्त सतैर्विभावाद्यै स्थायी भावोरसस्मृत' ॥

लोक व्यवहार में रति आदि चित्तवृत्तियों के या मनोविकारों के जो कारण कार्य और सहकारी कहे जाते हैं, नाटक और काव्य में वे ही रति इत्यादि स्थायी भावों के कारण कार्य और सहकारी कारण न कहे जाकर क्रमशः विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं।

लौकिक अनुभाव, विभावों और स्थायी भाव के कार्य होते हैं, किन्तु काव्य में विभावन सम्फार द्वारा वे कारण होते हैं। साहित्य दर्पणकार लिखते हैं —

> कार्यकारण संचारिरूपा आदि हि लोकः।
> रसोद्बोध विभावाया' कारणान्येव ते मता' ॥

अर्थात् लोक में कार्य कारण तथा संचारी रूप रस से उद्बोधन में कारण रूप होते हैं। ये विभावादि सभी एक पृथक् समझे जाते हैं तब एक रस की उत्पत्ति नहीं होती, रस की उत्पत्ति में ये सब मिलकर एक अलौकिक आनन्द उत्पन्न कर देते हैं।

शृङ्गार रस के परिपाक को इस प्रकार समझा जा सकता है कि "पुरुष स्त्री, नर नारी अथवा नायक नायिका के हृदय में रति अर्थात् प्रेम भाव सदैव ही बीज रूप से विद्यमान रहता है। साधारण अवस्था में वह प्रसुप्त बना रहता है। परन्तु कारण विशेष से किंवा विशेष परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर वह जाग्रत उद्दीप्त और परिपुष्ट होकर शृङ्गार रस की संज्ञा को प्राप्त हो जाता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जल-सिंचन द्वारा पूर्व अनुकूल मात्रा में प्रकाश एवं वायु प्राप्त होने पर शुष्क बीज अङ्कुरित होकर पत्र, पुष्प, फलादि से पूर्ण होकर लहलहा उठता है।"

यह रति भाव नायक नायिका और सखा सखी वन उपवन आदि के आश्रय

से स्पष्ट होकर शृङ्गार रस का स्वरूप ग्रहण करता है, इसलिये इनको शृङ्गाररस के विभाव कहते हैं। नायक के हृदय का प्रसुप्त रति भाव नायिका के दर्शन, श्रवण अथवा स्मरण के कारण जाग्रत और ऋतु, वन, बाग आदि के कारण उद्दीप्त होता है, इसलिये नायक नायिका और ऋतु आदि रति के कारण होने से 'विभाव' को रस का कारण माना गया है।

नायक अथवा नायिका में रति के जाग्रत एवं उद्दीप्त होजाने पर प्रिय मिलन की उत्कट इच्छा होती है। जिसके फलस्वरूप चिन्ता, शंका, हर्ष, मोह आदि मानसिक भावों का उदय और अस्त होता रहता है। ये ही मानसिक भाव संचारी भाव कहलाते हैं। ये ही संचारी भाव नायक अथवा नायिका के चित्त की अनेक विरुद्ध अविरुद्ध प्रतिकूल अनुकूल वृत्तियों के कारण जल की तरंगों की भाँति घटते बढ़ते उठते एवं विलीन होते हुए स्थायी भाव 'रति' को सहायता पहुँचाते रहते हैं।

नायक नायिका के इन घटते बढ़ते उठते एवं विलीन होते हुए मानसिक भावों की क्रिया जब मन से बाहर होकर कर्मेन्द्रियों द्वारा प्रकट हो जाती है, तभी निकटस्थ व्यक्तियों अथवा नायक-नायिका को भी पारस्परिक रति' भाव का अनुभव होता है, इसलिये कर्मेन्द्रियों द्वारा प्रकट हुई इन चेष्टाओं को आचार्यों ने शृङ्गार रस के 'अनुभाव' कहा है, जो कि रति के कार्य हैं, इनके द्वारा रति को पूर्ण सहायता प्राप्त होती है। अंग संचालन की विविध क्रियाएँ कटाक्ष भ्रू निक्षेप आदि शृङ्गार रस के अनेक अनुभाव हो सकते हैं। स्वेद रोमांच आदि 'सात्विक भावों' को भी अनुभाव के अन्तर्गत मानने का यही कारण है।

इस प्रकार 'रति' भाव प्रारम्भ से ही नायक नायिका में रहता हुआ विभाव, संचारी भाव, और अनुभाव से परिपुष्ट होकर शृङ्गार रस' के पूर्ण परिपाक का कारण होता है।

शृंगार रस के भेद—साधारणतया शृङ्गार रस के दो भेद माने गये हैं– (१) संयोग या सम्भोग शृङ्गार तथा (२) वियोग अथवा विप्रलम्भ शृङ्गार।

प्राय संयोग के पूर्व ही प्रेम उत्पन्न हो जाता है। इसे हम पूर्वानुराग कहते हैं। इस प्रकार शृङ्गार के तीन भेद ठहरते हैं। यथा—

(१) अयोग निर्योग पूर्वानुराग (२) संयोग शृङ्गार तथा (३) विप्रलम्भ शृङ्गार।

संयोग या सम्भोग शृंगार—जब स्त्री पुरुष के संयोग के समय प्रेम हो।

पारस्परिक प्रेम के वशीभूत होकर जब नायक नायिका एक दूसरे के दर्शन मिलन, स्पर्श और आलाप आदि में संलग्न होते हैं, उस अवस्था को संयोग शृंगार कहते हैं।

'काव्य प्रकाश' में शृङ्गार वर्णन के अनेक भेद बताए गये हैं।

नायक नायिका का परस्पर (१) अवलोकन (२) आलिंगन (३) सर्वांग चुम्बन इत्यादि (४) पुष्प चयन (५) जल क्रीड़ा (६) सूर्यास्त (७) चन्द्रोदय (८) छहों ऋतुओं का वर्णन, इत्यादि। यथा—

तत्र शृंगारस्य द्वौ भेदौ सम्भोगो विप्रलम्भश्च
तत्राद्य: परस्परावलोकनालिंगनाधरपानपरि चुम्बनाद्यनन्तत्वाद
परिच्छेद एक एव गण्यते, (काव्य प्रकाश चतुर्थउल्लास)

संयोग शृङ्गार में ही दस हावों की उत्पत्ति होती है। साहित्यदर्पणकार ने 'संभोग शृङ्गार' का लक्षण इस प्रकार दिया है।

दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ।
यत्रानुरक्तौ अन्योन्यं सम्भोगो अयमुदाहृत:॥
संख्यातुम शक्य-न्तयाचुम्बनपरिरम्भणादिबहुभेदात्।
अयमेक एव धीरै कथित: संभोग शृंगार॥

अर्थात् एक दूसरे के प्रेम में पगे नायक और नायिका जहाँ परस्पर दर्शन, स्पर्श आदि करते हैं, वह संभोग शृङ्गार कहलाता है। चुम्बन, आलिंगन आदिक इसके अनन्त भेदों की गिनती नहीं हो सकती। अत: सम्भोग शृङ्गार नामक एक ही भेद माना है।

इसी के अन्तर्गत एकान्त स्थान, वन, उपवन, सखी, सदन, ऋतु-वर्णन, स्नानादि का उल्लेख होता है। यथा—

आपुस में रस में रहसैं विहसैं बनि राधिका कुञ्जविहारी।
श्यामा सराहति श्याम की पागहिं श्याम सराहत श्यामा की सारी॥
एकहि दर्पन देखि कहै तिय नीके लगो पिय प्यौ कहै प्यारी।
'देव' सुवालम बाल को बाद विलोकि भई बलि मैं बलिहारी॥
'देव'

२—दोऊ चोर मिहीचिनी खेलु न खेलि अघात,
दुरत हिये लपटाय के छुअत हिये लपटात॥ 'बिहारी'

३—सावनी तीज सुहावनी को सजि सूहे दुकूल सबै सुख साधा।
त्यों 'पद्माकर' देखे बनै, न बनै कहते अनुराग अबाधा॥
प्रेम के हेम हिंडोरन में, सरसै बरसै रस रंग अगाधा।
राधिका के हिय झूलत साँवरो साँवरे के हिय झूलत राधा॥
'पद्माकर'

विप्रलम्भ शृंगार—जब स्त्री पुरुष के वियोग समय प्रेम हो।

जब अनुराग के उत्कट होने पर भी प्रिय संयोग का अभाव रहता है उस अवस्था को विप्रलम्भ अथवा वियोग शृंगार कहते हैं।

साहित्य दर्पण में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है।

'यत्रानुरतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ,' अर्थात् जहाँ अनुराग तो अति उत्कृष्ट है, परन्तु प्रिय समागम नहीं होता, उसे विप्रलम्भ कहते हैं। इस सम्बन्ध में 'सेनापति' का निम्न लिखित कवित्त देखिये।

नीके हौ निठुर कंत, मन लै पधारे अन्त
मैन मयमत, कैसे बासर बराइ हौं,
आसरो अवधि को सो अवध्यो बितीत भई
दिन दिन पीत भइ, रही मुरझाइ हौं

सेनापति प्रानपति सांची हौं कहत, एक
पाइ कै तिहारे पाइ प्रानन को पाइहौं
इकली डरी हौं, घनु देखि के डरी हौं खाइ
बिस की डरी हौं, घनस्याम मरि जाइहौं

विप्रलम्भ शृङ्गार के चार भेद होते हैं। (१) पूर्वानुराग (२) मान (३) प्रवास और (४) करुण।

पूर्वानुराग—इसका वर्णन अन्त में करेंगे।

मान—प्रिय अपराध सूचित प्रेमयुक्त कोप को 'मान' कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं। यथा—

'अ' प्रणयमान—नायक नायिका में भरपूर प्रेम होने पर भी जो कोप होता है उसे प्रणयमान कहते हैं। इसमें प्रेम की वृद्धि करना ही ध्येय होता है। इसलिए यह कभी-कभी अकारण भी पैदा कर लिया जाता है।

'ब' ईर्ष्यामान—नायक को परस्त्री पर प्रेम करते देख, सुन या उसका अनुमान करके ईर्ष्या से जो कोप किया जाता है, उसे ईर्ष्यामान कहते हैं। यह प्रायः स्त्रियों में ही होता है। पुरुषों को तो ऐसे अवसर पर क्रोध ही आता है।

परस्त्री के साथ प्रेम सम्बन्ध का अनुमान तीन प्रकार से लगाया जाता है। (१) परस्त्री के प्रेम सम्बन्ध में स्वप्न में नायक के कुछ बड़बड़ाने से (२) नायक के शरीर पर रति चिह्न देखकर (३) नायक के मुँह से अचानक परस्त्री का नाम निकल जाने से।

ईर्ष्यामान के तीन भेद हैं—(१) लघुमान (२) मध्यम मान तथा (३) गुरुमान। यह भेद मान निवृत्ति के अनुसार ही है। लघुमान मीठी-मीठी बातों से ही दूर हो जाता है और गुरुमान में पैर तक छूने पड़ते हैं।

साहित्यकारों ने मान भंग करने के उपायों का भी वर्णन किया है।

प्रवास—प्रियतम के परदेश निवास को प्रवास कहते हैं। नायक नायिका में से एक का विदेश में होना 'प्रवास' कहलाता है।

प्रवास के तीन कारण माने गये हैं—(१) कार्यवश, (२) शापवश, (३) भयवश। कार्यवश प्रवास समय-सम्बन्धानुसार तीन प्रकार का होता है।

(१) भूत प्रवास (२) भविष्य प्रवास तथा (३) वर्तमान प्रवास।

करुणात्मक वियोग शृंगार—जहाँ नायक नायिका को किसी कारण वश परस्पर मिलन की आशा नहीं रहती, वहाँ करुणात्मक वियोग मानना चाहिये। जब नायक अथवा नायिका किसी एक की मृत्यु हो जाने से अथवा अन्य किसी कारणवश मिलन की सम्भावना ही सर्वथा नष्ट हो जाये, तब विरह करुण में परिणत हो जाता है। ऐसे अवसर पर शुद्ध करुण ही मानना चाहिए। मिलन की असम्भव आशा होते हुए भी जहाँ रति का भाव विद्यमान रहता है, वहाँ करुणात्मक वियोग शृङ्गार होता है। शृङ्गार रस का स्थायी भाव 'रति' है। रति का भाव या अभाव ही करुणात्मक वियोग शृङ्गार और शुद्ध करुण में भेद का कारण होता है।

करुणात्मक वियोग शृङ्गार तथा शुद्ध करुण रस के बीच में एक निश्चित रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। इनमें केवल स्तर मात्र का भेद है। साधारण तथा मूर्च्छा करुणात्मक वियोग शृङ्गार की अन्तिम सीमा होती है, ऐसा समझ लेना चाहिये।

साधारणतया करुणात्मक वियोग शृङ्गार जीवन के साथ ही सम्बद्ध रहता है। जीवन लीला समाप्त होने के साथ वह भी समाप्त हो जाता है। मृत्यु होने के साथ वह शुद्ध करुण में परिणत हो जाता है। परन्तु बहुत से आचार्यों का यह मत है कि मरण के पश्चात् भी जब किसी दैवी कारणवश शरीर मिलने की आशा लगी रहती है तब करुणात्मक वियोग शृङ्गार होता है। कादम्बरी में पुंडरीक और महाश्वेता का उपाख्यान इसका उदाहरण है।

सीता वनवास के पश्चात श्री रामचन्द्रजी का विलाप करुणात्मक वियोग शृङ्गार का सुन्दर उदाहरण है। यथा—

> हा हा प्यारी फटत हृदय यह जगत शून्य दरसावे,
> तन बंधन सब भये शिथिल से अन्तर ज्वाल जरावे,
> तो बिनु अनु डूबत जिय तम में छिन छिन धीरज छीजै
> मोह विवश भज छोर राम यह मन्द भाग्य का कीजै

पूर्वानुराग—प्रथम दर्शन द्वारा नायक नायिका के परस्पर अनुरक्त होने पर भी किसी कारणवश मिलन न हो सकने से उनके हृदय में जो प्रेम पूर्ण अभीप्सा होती है, उसे पूर्वानुराग कहते हैं। इसे वियोग भी कहते हैं। देखिये 'पद्माकर' का पूर्वानुराग सम्बन्धी यह कवित्त—

> मधुर मधुर मुख मुरली बजाय धुनि,
> धमक धमारन की धाम धाम कै गयौ,
> कहै 'पद्माकर' त्यौं अगर अबीरन की,
> करि कै चला चली छला छली चितै गयौ,
> को है वह ग्वालिनी गुवालन के संग माँहि
> छैल छवि वारो रस रंग में भिजै गयौ,
> च्वैगयौ सनेह फिर छ्वै गयौ छरा को छोर
> फगुआ न देगयौ हमारो मन लै गयौ, —'जगद्विनोद'

दर्शन के भेद—प्रत्यक्ष देखकर, स्वप्न में देखकर, चित्र देखकर अथवा तत्सम्बन्धी चर्चा सुनकर चार प्रकार से दर्शन होता है। अतः इन कारणों के अनुसार दर्शन के चार भेद माने गये हैं—(१) प्रत्यक्ष, (२) चित्र दर्शन, (३) स्वप्न दर्शन तथा (४) श्रवण दर्शन। दर्शन भेद के उदाहरण यथा स्थान आगे दिये जायेंगे।

पूर्वानुराग के भेद—'साहित्यदर्पणकार' ने पूर्वानुराग के तीन भेद किये हैं—(१) नीलीराग (२) मञ्जिष्ठराग, (३) कुसुम्भ राग।

नीली राग—जो बाहरी चमक दमक तो कम दिखावे परन्तु हृदय से कभी दूर न हो।

मञ्जिष्ठा राग—जिसमें चमक दमक खूब दीख पड़े और साथ ही कभी नष्ट न हो।

कुसुम्भ राग—जिसमें चमक दमक भी कम हो, और जो शीघ्र ही दूर हो जावे। पूर्वानुराग के अन्तर्गत वियोगजनित दस दशाओं का वर्णन होता है। यथा—(१) अभिलाषा, (२) चिन्ता (३) स्मरण, (४) गुण, (५) उद्वेग, (६) प्रलाप (७) उन्माद, (८) व्याधि, (९) जड़ता, (१०) मरण।

इस प्रकार व्यापकता की दृष्टि से पूर्वानुराग अथवा वियोग शृङ्गार को विप्र

खग्म श्रृंगार का उपभेद न मानकर यदि श्रृंगार रस का तीसरा भेद ही मान लिया जावे, तो कोई हानि नहीं है।

शृंगार रस की व्यापकता—श्रृंगार रस का स्थायी भाव प्रेम है, जो जन्म से ही जड़ चेतन, सब में विद्यमान रहता है।

मनुष्य ही नहीं प्राणी मात्र प्रेम से प्रभावित होते हैं। प्रात काल ऊषा की अरुण राग रंजित और कान्त रविकर आमीद से सुसज्जित देखकर विहग वृन्द अपना अलौकिक गान प्रारम्भ कर देते हैं। विकसित पुष्पों को देखकर भृंग गुंजार करने लगते हैं। कुसुमाकर जब कुसुमावलि का माल्य धारण कर दिशाओं को सुरभित करता है, पादप पंक्ति को नवल पल्लव-समार से सजाता है, तो कोयल कूकने लगती है। क्षितिज पर उठती हुई मेघमाला को देखकर केकी शोर मचाने लगते हैं, वीणा की मधुर ध्वनि सुनकर चंचल मृग और विषधर सर्प भी मोहित हो जाते हैं। यह सब उसी रति अर्थात् प्रेम का चमत्कार है, जो श्रृंगार रस का कारण है।

इतना ही नहीं प्रेम के कारण प्राकृतिक जड़ पदार्थ भी परस्पर मिलन की चाह करते हैं।

> मुज लता पड़ी सरिताओं की
> शैलों के गले सनाथ हुए
> जलनिधि का अचल व्यजन बना
> धरणी के दो दो साथ हुए
> कोरक अंकुर सा जन्म रहा
> हम दोनों साथी झूल चले
> हम भूख प्यास से जाग उठे
> आकांक्षा तृप्ति समन्वय में
> रति काम बने उस रचना में
> जो रही नित्य यौवन वय में
>
> × × × ×
>
> यह लीला जिसकी विकस चली
> वह मूल शक्ति थी प्रेम कला

उसका संदेश सुनाने को
संसृति में आई वह अमला। "कामायनी, प्रसाद"

यह प्रेम अथवा रति जड़ चेतनता की गाँठ है, सूक्ष्म सुधारों की सुखमन है, यह सब में सर्वत्र एव सर्वथा व्याप्त है। संसार के जितने भी क्रिया कलाप एवं कार्यक्रम चल रहे हैं, ये सब इसी दाम्पत्य भाव अथवा जोड़े की भावना के फलस्वरूप हैं। संसार में कदाचित् ही कोई वस्तु अथवा प्राणी अकेला हो। सब अपने जोड़े के साथ हैं अथवा उसकी खोज में लीन हैं। +

I

+ The fountains mingle with the river
And the rivers with the ocean,
The winds of Heaven mix for ever
With a sweet emotion
Nothing in the world is single
All things by a law divine
In one spirit meet and mingle
Why not I with thine ?

II

See the mountains kiss high Heaven
And the waves clasp one another
No sister-flower would be forgiven
If it disdained its brother;
And the sunlight clasps the earth
And the moon beams kiss the sea,
What is all this sweet work worth
If you kiss not me ?

(Love's Philosophy, William Shellev)

अर्थात् झरने सरिताओं में और सरिताएँ सागर में मिलती हैं। आकाश में विचरण करने वाले वायु एक मधुर भाव लिए हुए आपस में मिले रहते

'रति' कार्य की सहधर्मिणी है, जो प्रेममयी, आसक्तिमयी, रमणशीला और क्रीडाकला पुत्तलिका है। काम यदि सौन्दर्य सरसीरुह है, तो रति उसकी आभा है, काम यदि राका है, तो रति उसकी कौमुदी है। शृङ्गार रस का दोनों के साथ आधार आश्रय का सम्बन्ध है शृङ्गार रस रूपी शिशु का एक जनक है और दूसरी जननी। भाव द्वय काम रति परायण है। अतएव उसके आंगण में शृङ्गार रस शिशु माय रमण करता रहता है। ललित कलायें जिनसे सारा चराचर सज्जितभूत है इसी के आश्रित हैं। ६४ कलाओं का वर्णन कामसूत्र में हुआ है।

शास्त्रों में कामदेव का परिचय इस प्रकार दिया गया है,

"स्वयं भगवान विष्णु वैकुंठ में भगवती लक्ष्मी द्वारा आराधित होते हैं, ये इन्दीवराभ चतुर्भुज शङ्ख, पद्म, धनुष और बाण धारण करते हैं, सृष्टि में धर्म की पत्नी श्रद्धा से इनका आविर्भाव हुआ। वैसे देव जगत में ये ब्रह्मा जी के संकल्प पुत्र माने जाते हैं। मानसिक क्षेत्र काम संकल्प से ही व्यक्त होता है, संकल्प के पुत्र हैं काम और उनके छोटे भाई हैं क्रोध, काम यदि पिता संकल्प के कार्य में असफल हों, तो क्रोध उपस्थित होता है। (कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक)"कामात् क्रोधोभिजायत" (गीता) का यही अभिप्राय है यथा

है। इस विश्व में कोई भी वस्तु अकेली नहीं है। देव का विधान ही कुछ ऐसा है कि वे एक शक्ति में मिलकर पारस्परिक संयोग को प्राप्त हो जाती है, फिर क्यों न तुमसे मिलूँ।

पर्वतों के उच्च शिखर गगन का चुम्बन करते हैं, सागर की लहरें एक दूसरे से संयुक्त रहती हैं प्रत्येक पुष्प पारस्परिक प्रेम में आबद्ध है। सूर्य की रश्मियाँ पृथ्वी से मिलतीं तथा निशीथ में का किरण जाल सागर का चुम्बन करता है। विश्व में फैली हुई यह मधुरिमा किस काम की, यदि तुम मेरा चुम्बन न करो अर्थात् विश्व प्रपञ्च का मूलाधार ही प्रेमी प्रेमिका का मधुर सम्मिलन है।

इसी सर्वव्यापी सौन्दर्य तथा प्रेम से शृङ्गार की उत्पत्ति मानी गई है। इसके शुद्ध तथा वासनात्मक दोनों ही स्वरूप होते हैं।

ध्यायतो विषया पुंस संगस्तेषूपजायते
संङ्गात्सञ्जायते काम, कामात्क्रोधोऽभिजायते
"गीता अ० २, श्लोक ६"

अर्थात् विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष का उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है आसक्ति से कामना होती है और कामना से क्रोध उत्पन्न होता है।

कामदेव योगियों के आराध्य हैं। तुष्ट होकर यह मन को निष्काम बना देते हैं। कवि, भावुक, कलाकार और विरही सौन्दर्य की प्राप्ति के लिए इनकी आराधना करते हैं। इन पुष्पायुध के पञ्चबाण प्रख्यात् हैं—नील कमल, मल्लिका, आम्रमौर चम्पक और शिरीष कुसुम इनके बाण हैं।

यह सौन्दर्य सौकुमार्य और सम्मोहन के अधिष्ठाता हैं। भगवान ब्रह्मा तक को उत्पन्न होते ही इन्होंने क्षुब्ध कर दिया था, ये तोते के रथ पर मकर (मछली) के चिन्ह से अंकित लाल ध्वजा लगा कर विचरण करते हैं।

भगवान शंकर समाधिस्थ थे। देवता तारकासुर से पीड़ित थे। तारक का निधन भगवान शंकर के पुत्र से ही शक्य था। देवताओं ने काम को भेजा। एक बार मन्मथ पुरारि के मन में क्षोभ उत्पन्न करने में सफल हो गये, पर दूसरे ही क्षण प्रलयंकर की तृतीय नेत्र ज्वाला ने इन्हें भस्म कर दिया। काम-पत्नी, 'रति' के विलाप स्तवन से तुष्ट आशुतोष ने वरदान दिया अब यह बिना शरीर के ही सबको प्रभावित करेगा।

कामदेव अनंग हुए। द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण के यहाँ रुक्मिणी जी के पुत्र रूप में यह उत्पन्न हुए। भगवान प्रद्युम्न चतुर्व्यूह में से हैं। ये मन के अधिष्ठाता हैं।

काम की व्यापकता के विषय में गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो स्पष्ट ही लिख दिया है।

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे, सकल भुवन अपने बस कीन्हे,
'बालकाण्ड'

अरविन्दमशोकञ्च चूतञ्च नव मल्लिका
नीलोत्पलञ्च पञ्चैते पंच बाणस्य सायका

मोह न अध कीन्ह केहि केही, को जग काम नचाव न जेही।

काम का प्रभाव ऐसा है कि उसके सम्मुख बड़े-बड़े धीरों का धैर्य एवं वीरों का बल भी भाग जाता है। इसके सम्मुख सबको हार ही माननी पड़ी है। चक्रवर्ती राजा दशरथ कैकयी के सम्मुख अपराधी की भाँति पहुँचते हैं।

सो सुनु तिय रिस गयौ सुखाई देखहु काम प्रताप बड़ाई।
सूल कुलिस असि अंगवनि हारे, ते रतिनाथ सुमन सर मारे।

दशरथ जी का यह कहना है कि 'प्रिया प्राण सुत सरबस मोरे, परिजन प्रजा सकल बस तोरे।' यही सिद्ध करता है कि काम के वशीभूत होने के कारण वह स्वयं कैकेयी के अधीन हैं। यह है काम का विलास पक्ष।

क्यों न फिरै सब जगत में करत दिगविजै मार,
जाके दृग सावंत सर कुवलय जीतन हार। 'मतिराम'

जिस समय भगवान भवानीपति पर आक्रमण करने के लिए कामदेव अपनी पूर्ण शक्ति का विस्तार का प्रयास करता है उस समय की दशा का काव्य ग्रन्थों में अत्यन्त उत्तम वर्णन किया गया है। शृङ्गार रस की व्यापकता का एक मनोहर चित्र कवि कुलगुरु कालिदास जी ने पूर्ण सहृदयता से अंकित किया है। उसमें वे हिरण हिरणी, चकवा चकई, और पशु पक्षियों के पारस्परिक प्रेम का वर्णन करते हुए आगे कहते हैं "इतना ही नहीं प्रभूत पुष्प, स्तवक, स्तन और प्रवालोपम अधर पल्लव से सुशोभित लता वधूटियों ने भी अपनी आनत शाखा बाहु द्वारा पादप समूह को आलिंगन करना आरम्भ कर दिया।"

(कुमार सम्भव)

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इस विषय का सुन्दर वर्णन किया है।

ये सजीव जग अचर चर नारि पुरुष अस नाम
ते निज निज मरजाद तजि भए सकल बस काम।
सबके हृदय मदन अभिलाषा
लता निहारि नवहिं तरु साखा।
नदी उमगि अंबुधि कहुँ धाई
संगम करहिं तलाव तलाई।

जड़ असि दया जड़न्ह के बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी॥
पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए काम बस समय बिसारी॥
मदन अंध ब्याकुल सब लोका। निसि दिननहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला॥
इन्ह कै दसा न कहेउ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि कामबस भए बियोगी॥
भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे।
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबला मय।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं।
धरी न काहू धीर सब के मन मनसिज हरे।
जो राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ। 'रामचरितमानस'

'इस प्रकार यदि हम आँखें खोल कर देखें तो प्राणिमात्र ही नहीं अपितु पेड़, लता वेलें, पुष्प, पत्ते सब जगह हमें कामदेव और रति देवी का विहार, स्पष्ट ही दिखाई देगा और वहीं रस रूप में शृङ्गार देव भी अपना प्रभाव विस्तार करते दृष्टिगोचर होंगे। वास्तव में बात यह है कि संसार में जो कुछ है वह सब परस्पर रूप से एक दूसरे के साथ ग्रथित है। यह सम्बन्ध मानव बुद्धि के परे भले ही हो किन्तु इस सम्बन्ध द्वारा कहीं ज्ञात और कहीं अज्ञात रूप से संसार का सृजनादि समस्त मंगलमूलक कार्य यथाक्रम होता रहता है।' —'रस कलश'

सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति शृङ्गार अथवा दाम्पत्य भावना के ही आश्रित है। सन्तान की उत्पत्ति व्यक्ति की भावी आत्मरक्षा का पोषक है। आत्मा के विस्तार के लिये ही संतति का विधान है। अपनी आत्म रक्षा के विचार से ही व्यक्ति पुत्र की कामना करता है।

प्रेम भाव में प्रजनन के अतिरिक्त द्वैत में अद्वैत भाव उत्पन्न कर देने की भी शक्ति है। पति-पत्नी, नर-नारी, एक दूसरे के साथ पानी और शक्कर की भाँति घुल मिलकर एक हो जाते हैं। एक का सुख दुःख दूसरे के सुख दुख का सहज कारण बन जाता है।

प्रेम-प्रकर्ष से प्रसूत यह आत्मोत्सर्ग का भाव आगे चलकर विश्व के अथवा जगतहित में परिणत हो जाता है। यह प्रेम का उन्नयन है। इस दशा में प्रिय मिलन का क्षोभ भी जाता रहता है। फिर तो केवल यही एक इच्छा रह जाती है कि "प्यारे जीवें, जग हित करें, गेह चाहें न आवें।"

—"प्रिय प्रवास"

प्रेम अथवा शृङ्गार भावना में बड़े-बड़े हिंस्र पशुओं तक को वश में करके विनम्र बना देने की शक्ति है। शेर और गजराज भी दम्पति-मिलन के समय अत्यन्त सरल एवं अहिंसाशील बन जाते हैं, फिर इस मानव की तो शक्ति ही क्या है जो शृङ्गार साम्राज्य का प्रसार होने पर अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाये रख सके। मृगया के लिये निकले हुए महाराज दुष्यन्त की महर्षि कण्व के आश्रम में पहुँचते ही एक दम वृत्ति बदल गई थी। शकुन्तला का देखते ही वह इस सोच में पड़ गये थे कि जिन हिरणों के नयनों से मेरी हृदयेश्वरी ने बाँकी चितवन ग्रहण की है, उन हिरणों पर मैं क्यों कर बाण चला सकता हूँ" ?

शृ गार रस रसराज है—भरत मुनि ने उज्ज्वल पवित्र एवं उत्तम कह कर शृङ्गार को चरमसीमा पर पहुँचा दिया। शृङ्गार की उज्ज्वलता एवं पवित्रता की व्याख्या विद्यावाचस्पति शालिग्राम शास्त्री इस प्रकार करते हैं,—"ऋतुओं ऋतुओं का वर्णन, सूर्य और चन्द्रमा का वर्णन, उदय और अस्त, जल-विहार वन विहार, प्रभात, रात्रि क्रीड़ा चन्दनादि लेपन, भूषण धारण, तथा जो कुछ स्वच्छ, उज्ज्वल वस्तुएँ हैं उन सबका वर्णन शृङ्गार रस में होता है।"

शृङ्गार रस का गुणगान अनेक कवियों और आचार्यों ने किया है।

(१) नवहू रस को भावहू, तिनके भिन्न विचार।
सबको "केशवदास" कहि, नायक है सिंगार॥ 'केशव'

(२) नव रस में सिंगार रस सिरे कहत सब कोय॥ 'पद्माकर

(३) भूलि कहत नव रस सुकवि सकल मूल सिंगार
जो संपति दंपतनि की जाको जग विस्तार
विमल शुद्ध सिंगार रस 'देव' अकास अनन्त
उड़ि-उड़ि खग ज्यौं और रस विवस न पावत अन्त॥ 'देव'

नव रस सब संसार में नव रस में सिंगार,
नव रस सार सिंगार रस, युगल सार सिंगार ॥ 'पूर्व'

इस प्रकार काव्य शास्त्रोक्त रसों में शृङ्गार को सर्वश्रेष्ठ माना गया है, उसके महत्व, प्रभाव एवं व्यापकत्व के कारण आचार्यों ने उसे 'रसराज' कहा है। रसों का महत्व उनके स्थायी भाव, विभाव और संचारी भावों पर अवलम्बित है। इस दृष्टि से विचार करने पर शृङ्गार रस अन्य रसों से बड़ा ठहरता है।

शृङ्गार रस का स्थायी भाव 'रति" अथवा प्रेम है, जो जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हमारे साथ रहता है। यह तो निर्विवाद है ही कि जीवमात्र के जीवन का मुख्यभाव प्रेम है, यह चिरन्तन, शाश्वत और सत्य है। यह सर्व व्यापी एवं सर्वोपयोगी है। इसमें तन्मयता की चरमसीमा एवं आत्मत्याग की पूर्ण प्रतिष्ठा है।

महाकवि भवभूति ने करुण रस को सब रसों का मूल माना है। +

कुछ विद्वान वीर को सब रसों का कारण मानते हैं, और कुछ शान्त रस को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, कुछ विद्वानों ने अद्भुत रस को अत्यधिक महत्ता प्रदान की है।

विस्तार भय से हम यहाँ अधिक विवेचन तो न करेंगे, परन्तु इतना निश्चित है कि अन्य सब रस शृङ्गार से उत्पन्न होकर शृङ्गार में ही विलीन हो जाते हैं। इस बात को 'रस रत्नाकर" में बड़ी अच्छी तरह समझाया गया है। यथा—

रामचन्द्र जी का विवाह प्रसंग ही ले लीजिए, पुष्पवाटिका में परस्पर दर्शन के कारण सीता के कारण सीता राम के हृदयों में मंजु 'शृङ्गार' अङ्कुरित होता है, दोनों के विवाह की चर्चा सुन कर सारे समाज में हर्ष हास्य छा जाता है परन्तु

+ एको रसः करुण एव निमित्तभेदा
द्भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्
आवर्त बुद्बुद तरङ्गमयान् विकारा
नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समस्तम् ॥

स्वयंवर के समय धनुष भंग होता न देखकर, समस्त सामाजिक शोक 'करुण' से द्रवीभूत होने लगते हैं, उस समय राजा जनक की निराशापूर्ण अनुचित बातें सुनकर लक्ष्मण को क्रोध 'रौद्र' आ जाता है, जो रामचन्द्रजी उन्हें 'शान्त-शान्त' करते हैं, थोड़ी देर बाद ही धनुष भंग होने के कारण एक ओर उपस्थित राजे महाराजे भयभीत 'भयानक' होते हैं और दूसरी ओर रामचन्द्रजी अद्भुत 'अद्भुत' क्षमता देखकर सबको आश्चर्य होता है, कुछ अभिमानी राजाओं के हृदयों में अपनी असमर्थता के कारण ग्लानि 'वीभत्स' उत्पन्न होती है, फिर परशुराम जी आ जाते हैं, लक्ष्मण की उनसे झड़प होती है और अन्त में राम सीता का विवाह हो जाता है। इस प्रकार शृङ्गार रस के कारण अन्य सब रसों की उत्पत्ति हुई और वे फिर सब के सब 'शृङ्गार' में ही विलीन हो गये।"

उपर्युक्त उदाहरण में शान्त रस की उत्पत्ति के बारे में शंका उठना स्वाभाविक है, परन्तु यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि प्रेम की अधिकता के कारण विश्व में सिवाय प्रेम पात्र के और कुछ नहीं दिखाई देता। प्रेम की चरम परिणति उस समय समझनी चाहिये जब प्रमपात्र समस्त विश्व में व्याप्त हो जाय। ऐसी दशा प्राप्त हो जाने पर यार की लाली के कारण दशों दिशायें रंजित दिखाई देने लगती हैं। फिर उसे यार की लाली कहें चाहे साहिब का दीदार। प्रेम की अधिकता ही अन्त में निर्वेद का कारण बनती और प्रेमी को विरक्त बना देती है।

प्रम-भाव की व्यापकता परलोक में भी मनोकामना पूर्ण कराने का बचन सबसे प्रबल साधन है।

> प्रेम प्रेम सों होय प्रेम सों पारहिं जइय,
> प्रेम बँध्यों संसार प्रेम परमारथ पइये। —'नन्ददास'

विभावों की दृष्टि से भी शृङ्गार सर्वश्रेष्ठ ठहरता है। शृङ्गार के आलम्बन नायक और नायिका हैं। इनका अनुराग पारस्परिक होता है, अर्थात् आश्रय और आलम्बन अन्योन्याश्रित हो जाते हैं। उनमें काया छाया का सम्बन्ध होकर उनका द्वैत भाव ही लुप्त हो जाता है। दोनों ओर से समान आकर्षण होने के साथ ही उनका अनुराग तन्मयता की उस पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है कि एक

दूसरे के लिये वे भावों तक का उत्सर्ग कर देते हैं। आलम्बन की इस रस की स्थायी अनुभूति कर सकता है।

उद्दीपन विभाव— की दृष्टि से भी अन्य रस शृङ्गार के सम्मुख गौण पड़ जाते हैं। अन्य रसों के उद्दीपन केवल मानुषी होते हैं, परन्तु शृङ्गार के उद्दीपन दैवी और मानुषी प्राकृतिक और अप्राकृतिक, जड़ और जंगम सभी होते हैं। विश्व का कण कण इसका पोषक एवं सहायक है। ये उद्दीपन हर जगह, हर समय एवं हर ऋतु में उपलब्ध रहते हैं। उद्दीपनों की प्रचुरता के कारण भी शृङ्गार का रसराजत्व स्वयं सिद्ध है।

अनुभावों की दृष्टि से भी शृङ्गार रस सर्वश्रेष्ठ है। जितने अधिक अनुभाव शृङ्गार के होते हैं, उतने अन्य किसी रस के नहीं होते। हावों का उल्लेख तो केवल शृङ्गार रस के ही अन्तर्गत; अनुभावों के साथ; होता है। सात्विक भावों का पूर्ण परिष्कार भी इस रस में ही हो पाता है।

संचारी भावों—की दृष्टि से तो शृङ्गार रस अनुपमेय है। संख्या की दृष्टि से रसों में व्यभिचारियों का क्रम यों ठहरता है।

हास्य में ३
अद्भुत में ४
बीभत्स में ५
वीर में ६
रौद्र में ८
भयानक में १०
करुण में ११
शृङ्गार में २१। साथ ही अधिकांश संचारी सुखद स्वभाव वाले हैं। अतः शृङ्गार रस का 'रसराज' होना स्वतः सिद्ध है।

इस रस की विशेषता एक और है। इसके साथ रसों का भी निर्वाह ध्यान किया जा सकता है और अन्य रस शृङ्गार के अंगी रूप में लिये जा सकते हैं। शृङ्गार रस के देवता स्वयं रसराज श्रीकृष्ण हैं। फिर उसके रसराज होने में सन्देह क्यों कर? इसके अन्तर्गत सुखद और

कुशलत सभी प्रकार के अनुभाव आजाते हैं। इस दृश्यमान जगत् के लिये सहृदयता और सहानुभूति अत्यन्त आवश्यक है। शृङ्गार में कम से कम प्रेम पात्र के लिये ये सदैव पूर्णरूप में विद्यमान बनी रहती हैं। संयोग और वियोग दो भेद होने से इसके वर्णन का क्षेत्र अत्यन्त विस्तीर्ण एवं व्यापक बन जाता है। जब से रस निरूपण प्रारम्भ हुआ है, तब से लेकर आज तक विद्वानों की दृष्टि में शृङ्गार 'रस राज' रहा है और आगे भी रहेगा। महाराज भोज 'रस विचार प्रकरण' में लिखते हैं।

यथा:

'शृंगार मेव रस नाद् रस मामनाम' 'सरस्वती कंठाभरण'

अर्थात् यद्यपि अन्य आचार्यों ने अनेकों रस स्वीकार किये हैं, पर हमारी समझ में एक मात्र रस शृङ्गार ही है, और तो सब भ्रम के ही रस हैं।

महाकवि देव ने तो शृंगार का आग्रहपूर्वक 'रसराज' सिद्ध किया है। ×

× निर्मल स्याम सिंगार हरि देव अकास अनंत
उड़ि उड़ि खग ज्यों और रस विवस न पावत अंत,
भाव सहित सिंगार में नव रस झलक अजस्त्र,
ज्यों कंकन मणि कनक को ताही में नवरत्न
—'भवानीविलास प्रथम विलास

इसीलिये—तीन मुख्य नौ हूँ रसनि द्वै द्वै प्रथम निलीन
प्रथम मुख्य तिन तिनहूँ में दोऊ तेहि आधीन
—'वही अष्टम विलास'

भूलि कहत नव रस सुकवि सकल मूल सिंगार
तेहि उछाह निर्वेद लै वीर शान्तह संचार
'भवानी विलास प्रथम विलास'

अर्थात् नौ रसों में मुख्य रस तीन हैं। शृङ्गार, वीर, शान्त। शेष रस इन तीनों के ही अन्तर्गत आजाते हैं। फिर इन तीनों में शृङ्गार ही मुख्य है क्योंकि शेष दो का भी अन्तर्भाव इसमें हो जाता है, उसी के उत्साह से वीर और उसी के निर्वेद से शान्त का जन्म होता है। इसलिये वास्तव में एक मात्र शृङ्गार रस ही मूल रस है।

भिन्न-भिन्न नूतन होने वाले सौन्दर्य के सुखद एवं मन्द-मन्द परिवर्तनों से चित्त को लगा के रखना, वियोग में उसकी स्मृति एवं तज्जन्य शोक के भले-बुरे रूपों में मन को लीन रखना, चित्त में प्रिय वस्तु सन्निकर्ष से उसकी प्राप्ति का सुख धीरे धीरे आस्वादन करना ही शृङ्गार रस है। इसमें परिवर्तन होते हैं, परन्तु वे इतने क्रमिक होते हैं कि चित्त तो लगा ही रहता है, साथ ही चित्त में एक अपूर्व प्रसन्नता भी उत्पन्न होती है। शृङ्गार समस्त सुखों का मूल रसों का राजा प्रेम प्रमोद का अधिष्ठाता और प्रीति का माया है। इस रस की तीव्रता, विस्तार शक्ति और प्रभावशीलता अन्यान्य सभी रसों से बहुत बढ़ी चढ़ी है।

|| २ |

शृङ्गार रस में विप्रलम्भ शृङ्गार की प्रधानता तथा विरह के विभिन्न तत्व

वियोगी होगा पहिला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान॥ पंत

व्यापकता एवं प्रभाव की दृष्टि से विप्रलम्भ शृङ्गार निश्चय ही शृङ्गार रस का अत्यधिक महत्वपूर्ण अङ्ग है। निर्विवाद रूप से सम्भोग शृङ्गार की अपेक्षा उसका अधिक महत्व है। साहित्यदर्पणकार का स्पष्ट मत है।

"न विना विप्रलम्भन सयोग' पुष्टि मश्नुते
कषायिते हि वस्त्रादो भयानरागो विवर्धते:"

अर्थात् बिना वियोग के संयोग शृङ्गार परिपुष्ट नहीं होता, कषायित वस्त्रादि पर ही अच्छा रग चढ़ता है। (रगने से पहिले अमार के छिलके के काढ़े में वस्त्र को भिगोना 'कषायित' करना कहाता है)। प्रखर सूर्य की किरणों से तप्त होने के बाद ही वृक्ष की शीतल छाया के वास्तविक सुख का अनुभव प्राप्त होता है। महाकवि सूरदास ने भी विरहिणी व्रजांगनाओं के मुख द्वारा उद्धव के सम्मुख इसी प्रकार की बात कहलाई है।

ऊधो, विरहौ प्रेम करे,
ज्यों बिनुपुट पट गहै न रंगहि, पुट गहि रसहि परै।
जो आवों घट धहत अनल तनु तौ पुनि अमिय भरै॥

—(भ्रमरगीतसार)

विप्रलम्भ शृङ्गार पांच कारणों से होता है अभिलाषा हेतुक, ईर्ष्या हेतुक, विरह हेतुक, समीप रहने पर भी गुरुजनों की लज्जा के कारण समागम न हो

सकता प्रवास हेतुक तथा शाप हेतुक। तात्पर्य यह है कि मिलन के पूर्व मिलन के समय तथा मिलन के पश्चात् प्रत्येक अवस्था में एक दशा में विरह शृङ्गार का हेतु होता है, यहाँ तक कि संयोग समय भी पुष्टि हेतु प्रणयमान का सहारा लिया जाता है। यह प्रणयमान जैसा हम देख चुके हैं विप्रलम्भ शृङ्गार का ही एक उपभेद है।

साहित्यदर्पणकार ने प्रिय वियोगजनित एकादश दशायें मानी हैं—

(१) अङ्गों में असौष्ठव (२) सन्ताप (३) पांडुता (४) दुर्बलता (५) अरुचि (६) अधीरता (७) अस्थिरता (८) तन्मयता (९) उन्माद (१०) मूर्च्छा (११) मरण ।

वियोग जनित दस दशाएँ—हिन्दी कवियों ने वियोग जनित दस दशाओं का ही वर्णन किया है। उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है, वे इस प्रकार हैं।

१ अभिलाषा—वियोगावस्था में नायक नायिका के परस्पर मिलने की इच्छा को 'अभिलाषा' कहते हैं। यह अवस्था पूर्वानुराग में विशेषकर से पाई जाती है।

२. चिन्ता—प्रिय प्राप्ति अथवा चित्त शान्ति-साधन-विचार को 'चिन्ता' कहते हैं। अहितकारी विचार या प्रिय पदार्थ के ध्यान को 'चिन्ता' कहते हैं।

३ स्मरण—वियोग समय में प्रिय के संयोग समय की पिछली बातों, चेष्टाओं और समागम सुखों को याद करने को 'स्मरण' कहते हैं।

४ गुण कथन—वियोग काल में प्रिय के गुणों का वर्णन करना 'गुण कथन' कहलाता है।

५ उद्वेग—प्रिय वियोग से व्याकुल होकर किसी विषय में चित्त न लगने का नाम 'उद्वेग' है।

६ प्रलाप—वियोग से अत्यधिक व्यथित होकर प्रिय की अनुपस्थिति में भी उसे उपस्थित मानकर अलौकिक किम्वा निरर्थक वार्तालाप एवं चेष्टा करने को 'प्रलाप' कहते हैं।

७ उन्माद—वियोग जनित व्यथा के कारण बुद्धि विपर्यय हो जाने से

विरही द्वारा वृथा व्यापार करने, जड़ चेतन विवेक रहित होने और व्यर्थ हँसने, रोने आदि को 'उन्माद' कहते हैं।

८. जड़ता—वियोग जनित दुःखातिरेक के कारण शरीर के स्तब्ध हो जाने का नाम जड़ता है। इसमें व्यक्ति सुध बुध भूल कर निस्तब्ध और निश्चेष्ट हो जाता है। अंगों तथा मन के चेष्टा शून्य होने और इन्द्रियों की गति के अवरोध को 'जड़ता' कहते हैं।

९. व्याधि—वियोग व्यथा से उत्पन्न सताप के कारण शरीर के रोग ग्रस्त पांडु अथवा कृश हो जाने को 'व्याधि' कहते हैं।

१० मरण—प्राण परित्याग का नाम मरण है। परन्तु साहित्य में वियोगावस्था जनित नैराश्य की पराकाष्ठा को ही 'मरण' कहते हैं। इसीलिये कविगण मरण का स्पष्ट वर्णन न करके उसके स्थान पर मूर्च्छा, अथवा मृत व्यक्ति के सुयश, वीरता आदि गुणों का वर्णन करते हैं।

विप्रलम्भ शृंगार में प्रेम का पूर्ण प्रकर्ष—विरहावस्था में शृंगार रस का पूर्ण प्रस्फुटन एवं परिपाक होता है। विरहावस्था में पूर्ण मानसिक मिलन रहता है, मिलने की इच्छा ज्यों ज्यों तीव्र होती जाती है, त्यों त्यों प्रेम की अधिकता तथा प्रेम की गहराई बढ़ती जाती है। मन की इसी तीव्रता के कारण प्रेमियों को कोई भी पृथक् नहीं कर पाता है। विरह वह नौका है जिस पर बैठ कर प्रेमी प्रेम सागर में उठती हुई लहरों में झूला झूलते और अन्तरिक्ष तक फैले हुए प्रेम पयोधि का पूर्ण दर्शन करते हैं। विरहाग्नि में तप कर प्रेमी का स्वरूप निखर उठता है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार अग्नि में तपने के बाद ही स्वर्ण की निकाई निखरती है। अग्नि परीक्षा के बाद ही तप्त कांचन वर्ण निखार पाता है, सुवर्ण और विरही दोनों का।

विरहावस्था की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत मानसिक पक्ष तो प्रबल रहता है और ऐन्द्रिकता न्यूनातिन्यून हो जाती है। सच्चे विरह में इन्द्रिय-जन्य-सुख प्राप्त की कामना तो प्रायः नष्ट ही हो जाती है, इसमें केवल प्रिय दर्शन की इच्छा ही शेष रह जाती है। आगे चलकर वह भी जाती रहती

है। फिर तो केवल एक ही उत्सुकता रह जाती है कि प्रेमपात्र का कुशल समा-चार मिलता रहे, प्रेमपात्र कहीं भी रहे सुखी रहे। इस प्रकार प्रेम क्रमशः चपल क्रीड़ा वृत्ति छोड़ कर शान्त आराधना के रूप में परिणत हो जाता है।

अग्नि परीक्षा के बाद ही आप जान सकते हैं कि सुवर्ण विशुद्ध है, अथवा उसमें मिलावट है। ठीक यही बात आप प्रेमी पर भी लागू समझ लीजियेगा। विरहावस्था में ही प्रेमी की वास्तविकता और उसके प्रेम का वास्तविक स्वरूप विदित हो पाते हैं। विरह के झकोले झेल कर भी जो विचलित न हो, जिसे अपने प्रियतम में कोई दोष न दिखाई दे, मिलन की इच्छा किये हुए ही जो प्राण धारण करे तथा मिलन इच्छा को ही उर में धारण किये हुए जो प्राणों का उत्सर्ग भी करे, वही सच्चा प्रेमी है। यथा—

१—जिन बोलन सुबोल अमोल भये
अंग केलि कलोलन मोल लिये
जिनकों चित लालची लोचन रूप अनूप
पियूष सु पीय जिये
जिनके पद 'केशव' पानि हिये सुख मानि
सबै दुख दूर किये
तिनको संग छूटत ही फिहरे फटि कोटिक
टूट भयो न हिये —केशवदास'

× × × ×

२—छूट्यो ऐबो जैबो प्रेम पाती को पठैबो छूट्यो
छूट्यो दूरि दूरि हू ते देखिबो दृगन तें
जेते मधियाती सब तिन सों मिलाप छूट्यो
कहिबो संदेस हू को छूट्यो सकुचन तें
परी सब बातें 'सेनापति' लोक लाज काज
दुरजन त्रास छूटी जतन जतन तें
उर भरि रही, चित चुभि रही देखो एक
प्रीति की लगन क्यों हूँ छूटति न मनतें। 'सेनापति'

बिना परिचय के प्रेम असम्भव है, 'बिनु जाने को जानु' यह प्रेम प्रथम मिलन में भी हो सकता है, तथा साहचर्य के कारण भी। मिलन थोड़ी सी देर के लिये ही क्यों न हो, केवल मानसिक ही क्यों न हो, मिलने वाले मन तो मिल ही जाते हैं। इसी प्रकार प्रथम दर्शन में प्रेम की उत्पत्ति को पूर्वानुराग कह कर उसके चार भेदों का वर्णन कर दिया गया है, प्रत्यक्ष दर्शन, चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन तथा श्रवण दर्शन। तज्जन्य प्रेम कहानियाँ साहित्य में भरी पड़ी हैं।

प्रेमांकुर उत्पन्न होने के बाद मिलन की इच्छा स्वाभाविक है। इसी को 'अभिलाषा' कहा गया है। अब या तो मिलन होता है अथवा किन्हीं कारणों वश नहीं हो पाता है। यदि मिलन हो गया, तो अभिलाषा पूर्ण हुई और सम्भोग शृङ्गार प्रारम्भ हो गया।

प्रेमी सदैव एक साथ रहते हों, ऐसा देखने में कम आता है। उन्हें अलग होना ही पड़ता है। यदि पति पत्नी हुए तब भी और पति पत्नी न बन पाए तब भी। कार्यवश, शाप वश, किसी न किसी कारण उन्हें बिछुड़ना ही पड़ता है। थोड़े दिनों के लिये अथवा दीर्घ काल के लिये। इस प्रकार संयोग के पूर्व और संयोग के बाद, दोनों ही दशाओं में प्रिय मिलन इच्छा की प्रबलता बनी रहती है। ऐसे में यदि कोई व्यक्ति, उनके माता पिता आदि, उनके मिलन में बाधक हों अथवा बहुत दिनों तक प्रियतम का कोई समाचार न मिल सके, तो अहितकारी विचारों का आना, मन में भाँति-भाँति की शंकाओं का उठना तर्क वितर्क होना स्वाभाविक है। इसी को 'चिन्ता' कहा गया है। (चिन्ता)

प्रियतम से न मिल सकने की दशा में उसकी याद बार बार सताती है। कभी-कभी उसकी मीठी बातें याद आती हैं, तो कभी उसके साथ का उठना बैठना तथा खेलना खाना याद आता है। प्रियतम ने इस प्रकार मेरा हाथ पकड़ कर मुझे उठाया था, मुझे गिरते हुए बचाया था, मुझे झूले पर झुलाया था, मुझे अपनी गोदी में लिटा कर मेरे सिर पर हाथ फेरा था, और मैं सो गई थी, आदि बातों की याद आना, उसके समागम के सुखों का स्मरण होना स्वाभाविक ही है। 'स्मरण'

वियोग काल में प्रियतम की चर्चा करने से मन का बोझ हल्का हो जाता तथा कुछ समय के लिए चैन मिल जाता है। "गुण कथन"

यदि प्रीतम अब भी नहीं आते यदि मिलन की बेला दूर ही हटती जाती है तो व्याकुलता एवं विरह व्यथा बढ़ जाना स्वाभाविक है, न कोई बात ही सुहाती है और न किसी काम में मन ही लगता है, "उद्वेग"। कभी-कभी ऐसा भ्रम भी होने लगता है कि प्रियतम आ गये और आया हुआ समझ कर विरही चाहे कुछ कह बैठता है—'प्रलाप'। 'प्रलाप' की यह अवस्था हमारी दिन प्रति के जीवन में घटित होती रहती है। हमारा कोई प्रिय जन आने को है, हम प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं, सड़क पर कोई भी तांगा, इक्का मोटर आता दिखाई देता है, हम यही समझेंगे कि बस यह उन्हीं का का है। यदि कहीं आकर वह मकान के नीचे ही रुक जाये, तब तो हम आवाज ही दे बैठते हैं 'कहो तो आगये। फिर चाहे उसमें अन्य कोई व्यक्ति ही क्यों न निकलें? वियोग व्यथा सची मर्म व्यथा है। यह ज्यों-ज्यों बढ़ती है, त्यों-त्यों बुद्धि नष्ट होती जाती तथा विवेक क्षीण होता चला जाता है। ऐसी दशा में बुद्धि का विपर्यय 'उन्माद' हो जाय एवं व्यर्थ हंसना रोना कोई अस्वाभाविक बात नहीं।

इस मर्म व्यथा के बहुत दिनों तक बने रहने पर शरीर भी क्षीण होने लगता है। आखिर कोई कब तक सहे? सहनशीलता की भी हद होती है। विरह तो एक प्रकार का व्याधि रोग है, जिसकी औषधि केवल प्रिय-मिलन ही है। इस विरह-व्याधि के अत्यधिक सन्ताप के कारण शरीर कृश हो हो जाता, उसका रंग पीला पड़ जाता, उसको तरह-तरह के रोग लग जाते जाते हैं। 'व्याधि' और 'जड़ता' अपनी सीमा को पार कर जाती हैं।

अत्यधिक सन्ताप एवं शरीर कृश हो जाने पर मनुष्य के अंग शिथिल पड़ जाते हैं उसको अपनी सुध-बुध सब भूल जाती और वह निश्चेष्ट एवं निष्प्राण सा हो जाता है। विरही 'जड़ता' की दशा में प्राप्त हो जाता है।

'व्याधि' के इतने अधिक बढ़ जाने पर भी यदि उपयुक्त औषधि प्राप्त न हो सके, यदि फिर भी प्रिय मिलन न हो पाये तब तो रोग असाध्य ही

समझिये, रोगी का जीवन समाप्त ही समझिये। उसे मूर्छा आने लगती है और वह मरणासन्न हो जाता है। 'मरण'

परन्तु प्रेमी मरते बहुत कम हैं, कम से कम साहित्यिकों द्वारा चित्रित। प्रिय-मिलन-तृष्णा में उसके प्राण पखेरू अटके ही रहते हैं और अन्त में प्रियतम मिलन हो ही जाता है। अतः स्पष्ट है कि विरह के साथ साथ प्रेम परिपुष्ट एवं परिष्कृत होता रहता है। प्रेमी को संसार में केवल अपना प्रियतम ही दिखाई देता है तथा वही उसका एक मात्र जीवनाधार होता है। मन की ऐसी विकसित अवस्था में प्रेमी का द्वैत भाव सर्वथा लुप्त हो जाता है। उसके मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द मधुर एवं प्रेमोत्पादक होता है। उसकी वाणी में साधारणीकरण करने की क्षमता होती है, उसकी बातों में सब का चित्त रम जाता है, मधुरतम संगीत वही है जो सुखद स्मृतियाँ जगा कर एक मीठी कसक उत्पन्न करने में समर्थ हो।

प्रियतम के सम्बन्ध में हम क्या-क्या सोचते हैं अथवा सोच सकते हैं तथा प्रियतम के प्रति हमारा प्रेम कितना है, किम् बहुना हम कितने पानी में हैं, इसका पूर्ण आभास हमें विरहावस्था में ही मिल सकता है। मानसिक मिलन पूर्णतया परिपुष्ट होने के कारण विरहावस्था में हमारे चित्त की एक-एक वृत्ति जाग्रत हो उठती है, हमारे मन का एक-एक विकार सजग होकर हमारे सम्मुख आ जाता है और एक तरह से हमारी प्रेम परीक्षा होने लगती है।

यहाँ एक बात बता देना आवश्यक है। सम्भोगावस्था में भी प्रेम को परिपुष्ट करने के लिए विप्रलम्भ अनिवार्य है। चिर साहचर्य के कारण प्रेम का वेग कम हो जाता है। प्रेम एक सरिता है। यदि प्रेमी अलग-अलग रहते हैं, तब उसके प्रवाह के लिए रास्ता खुला रहता है और वह अबाध रूप से बहता रहता है। प्रेमियों के मिल जाने से प्रवाह मन्द हो जाता और उसके प्रवाह में कुछ शिथिलता आ ही जाती है। मिठाई चाहे कितनी सुन्दर एवं स्वादिष्ट हो, परन्तु निरन्तर सेवन करने से मुँह मार ही जाती है। मुँह का स्वाद बदलने के लिए अथवा मिठाई का स्वाद बनाए रखने के लिए नमकीन अथवा चरपरी वस्तु का सेवन अपेक्षित है। "मीठी भावे लौन पै और मीठे पै लौन"।

यही कारण है कि संयोग शृङ्गार का 'मान' एक अनिवार्य तत्त्व है। 'मान' भी विरह का ही स्वरूप, शृङ्गार का एक अंग है। रूठने और मनाने में एक विचित्र आनन्द रहता है। मानिनी नायिका के मान भंग होते ही प्रेम प्रवाह को एक नवीन गति प्राप्त हो जाती है। प्रत्येक गृहस्थ को इसका अनुभव होता ही है, अधिक नहीं, तो कम से कम एक दो बार तो अवश्य ही। सहृदय व्यक्तियों का तो इसे जीवन ही समझिये। इसका सारांश यह हुआ कि 'विप्रलम्भ' शृङ्गाररस का महत्त्वपूर्ण अंग है, तथा बिना इसके संयोग का सुख सम्भव नहीं, 'करुण विप्रलम्भ' तो जीवन की वह अनोखी स्थिति है जहाँ मृत्यु के बाद भी मिलने की आशा रहती है। मजनूँ को पूरा यकीन था कि वह अपनी लैला से मैसर में अवश्य ही मिलेगा, क्या हुआ जो यहाँ न मिल का। इसी तरह 'कादम्बरी' में पुण्डरीक के मृत्यु के समय आकाशवाणी होने पर महाश्वेता को उससे मिलने की आशा बंध गई थी।

सच्चा प्रेमी अपने प्रियतम के योग क्षेम की सदैव ही कामना करता है। उसका प्रियतम जहाँ भी रहे, सुख से रहे उसका बाल भी बाँका न हो। प्रेम की पराकाष्ठा वहीं समझनी चाहिये जहाँ प्रेमी अपने लिए प्रिय से कुछ नहीं चाहता। प्रिय के दर्शन का आग्रह भी छोड़ देता है। आत्मोत्सर्ग की यह पराकाष्ठा केवल विरह में ही दिखाई दे सकती है। विरहिणी गोपियों को कृष्ण मिलें या न मिलें, परन्तु जहाँ भी रहें सुख से रहें। प्रियतम की मंगल कामना ही प्रेमियों का सर्वस्व है। यथा—

> जहँ जहँ रहो राज करो तहँ तहँ लेहु कोटि सिर भार,
> यह असीस हम देति सूर' सुनु, न्हात खसै जनि बार।
>
> "भ्रमरगीतसार"

विरही चाहे यह भले ही कहता फिरे कि 'प्रीति करि काहू सुख न लह्यो' (भ्रमरगीतसार) परन्तु वह यह कभी नहीं चाहता कि उसका प्रेम दूर हो जाये। वियोगी प्रेम-पाश तुड़ाकर भागना नहीं चाहता, उसे एक विशेष प्रकार की सुखद कसक का अनुभव होता रहता है। विरह जनित इस अतिकष्ट परिस्थिति में प्रेमी किसी न किसी प्रकार आत्मसमाधान करता रहता है।

परन्तु वह प्रेम को एक क्षण के लिए भी हृदय से नहीं निकालना चाहता। देखिए—

हम तो दुहूँ भाँति फल पायो,
जो ब्रजनाथ मिले तो नीको, नतरु जग जस गायो।
—"भ्रमरगीतसार"

वास्तव में विरह से प्रेम की पुष्टि होती, और वह पक्का होता है। बिना पुट के वस्त्र पर रंग नहीं चढ़ता। जब तक घड़े ने अपना तन, अपना अहंकार नहीं जला डाला तब तक कौन उसके हृदय में सुधा भरने आवेगा। विरहाग्नि में जल कर शरीर मानो कुन्दन हो जाता है। मन का वासनात्मक मैल जलाकर विरह उसे निर्मल कर देता है।

विरह अगनि जरि कुन्दन होई, निरमल तन पावै पै सोई।
—"उसमान"

प्रेमानन्द का सुख या तो विरहिणी ही लूटती है अथवा वह सुहागिनि जो अपने बिछुड़े प्रियतम से मिल चुकी है।

विरह अगनि तन मन जला, लाग रहा ततजीव,
कै वा जाने विरहिनी, कै जिन भेंटा पीव। "जायसी"

यदि विरहाग्नि में प्रेम का प्रकर्ष न होता तो विरही क्यों उसे सहते और तरह-तरह के नाम धराते? और फिर कविगण प्रेम के संवेदनात्मक स्वरूप को क्यों पाते? विरहाग्नि का यह सुख गूंगे के गुड़ के समान है।

ज्यों-ज्यों विसम वियोग की अनल ज्वाल अधिकाय,
त्यों-त्यों तिय के देह में नेह उठत उफनाय। "मतिराम"

विरह दाह में वियुक्त प्रिय का ध्यान चन्दन और कपूर से भी अधिक शीतल और सुखदायी होता है। इसी से उस दाह में दग्ध होने के लिए विरही प्रेमी का चित्त सदा व्याकुल और अधीर बना रहता है।

इसमें सन्देह नहीं कि आत्यन्तिक विरहासक्ति ही प्रेम की सबसे ऊँची अवस्था है। इसमें जब अहंकार जल जाता है तब जीवोन्मुखी प्रेम ईश्वरोन्मुखी हो उठता है। विरह की अग्नि से जब स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही शरीर भस्मीभूत

हो जाता है, तब कहीं इस प्रेम विभोर जीवन का उस परम तत्व से तादात्म्य हो पाता है। देखिये—

> बिरहा कहै कबीर सौं, तू जनि छाड़े मोहि।
> पार ब्रह्म के तेज में, तहाँ ले राखौं तोहि ॥ —"कबीर"

मौलाना रूम की रोती हुई बाँसुरी कहती है "जिसका हृदय वियोग के मारे टुकड़े-टुकड़े न हो गया हो, वह मेरा अभिप्राय कैसे समझ सकता है। यदि मेरी दरद भरी दास्तान सुननी है, तो पहले अपने दिल को किसी प्यारे के वियोग में टुकड़े टुकड़े कर दो फिर मेरे पास आओ, तब मैं बताऊँगी कि मेरी क्या हालत है। मैंने अच्छे बुरे सभी के पास जाकर अपना रोग रोया पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। सुना और सुनकर टाल दिया। जिन्होंने सुना और ध्यान दिया, मैं उसको बहिरा जानती हूँ; और जिन्होंने चिल्लाते देखा, पर न जाना कि क्यों चिल्ला रही है, मैंने समझ लिया कि वे अन्धे हैं। मेरे रोने के रहस्य को एक वही जान सकता है, जो आत्मा की आवाज को सुनता तथा पहचानता है। वास्तव में मेरा रुदन आत्मा के रुदन से जुदा नहीं है।"

॥ वियोगी हरि ॥ "प्रेम योग"

विरह प्रेम का पोषक—बिना प्रेम के विरह की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। इसी तरह बिना विरह के प्रेम का भी अस्तित्व नहीं है। जहाँ प्रेम है, वहाँ विरह है। प्रेम की अग्नि को विरह पवन ही प्रज्वलित करता है। प्रेम के अंकुर को विरह जल ही पल्लवित करता है। प्रेम दीपक की बाती को यह विरह ही उकसाता रहा है।

> जहाँ प्रेम तहाँ विरहा आनहु, विरह बात जनि लघु करि मानहु
> जेहि तन प्रेम आगि सुलगाई, विरह पौन होइ वे सुलगाई।
> प्रेम अकुर जहाँ सिर काढ़ा, विरह नीर सों छिन छिन बाढ़ा।
> प्रेम दीप जहँ देति दिखाई, विरह देइ छिन उसकाई —"उसमान"

इस खेलदेन की दुनियाँ में विरही का दर्शन दुर्लभ है। शायद ही कभी कोई सच्चा विरही देखने को मिले। सन्त चरणदास ने सतवादी विरहियों की विरह साधना का सुन्दर वर्णन किया है।

यह विरहिन बौरी भई, जानत ना कोइ भेव
अगिन बरै हियरा जरै भये कलेजे छेव
जाप करै तौ पीव का, ध्यान करै तौ पीव
जिव विरहिन का पीव है, पिव विरहिन का जीव।

युगों से कसक सो रही है। इसी से जीव भी बेहोश पड़ा है और सुरत भी सो रही है। कौन इन्हें जगावे? द्वार पर खड़े प्यारे स्वामी से कौन इस जीव को मिलावे? एक मात्र विरह ही कसक को जगा सकता है और कसक जीव को जगा सकती है, और सुरत को जीव जगा लेगा।

विरह जगावे दरद को, दरद जगावे जीव।
जीव जगावे सुरत को, पंच पुकारे पीव॥ —"दादू"

प्रिय-विरह निश्चय पूर्वक सुरत और जीव का सद्गुरु है। जिसने यह महामहिम गुरु मन्त्र ले लिया, उसका उसी क्षण प्रेम देव से तादात्म्य होगया। जिसने यह दुस्साध्य साधन साध लिया, उसे आत्मसाक्षात्कार होगया।

। ३ ।

वियोग शृङ्गार का पारलौकिक पक्ष

सृष्टि की विविध प्रसूतियों में पारस्परिक प्रत्याकर्षण एवं एकत्व स्थापित करने की अभिलाषा के कारण ही संसार के सब व्यापार और व्यवहार चल रहे हैं। एकत्व प्राप्त करने की सबसे अधिक प्रबल इच्छा का नाम ही प्रेम 'है' ।×

पति पत्नी अथवा नर-नारी के आकर्षण, प्रत्याकर्षण में हमें एकत्व स्थापन का स्वरूप देखने को मिल जाता है। एक दूसरे की ओर आकर्षित होकर जब वे नहीं मिल पाते हैं, अथवा संयोग होकर जब वे किसी कारण वश एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं तब अपने प्यारे से दूर रहने के कारण वे दुखी होते और विरह की विषमज्वाला में दग्ध होने लगते हैं। इसी विषमज्वाला में तप्त होकर प्रेम और प्रेमी की वास्तविक निकाई निखरती है। इसी दशा का नाम वियोगावस्था है।

ज्यों ज्यों प्रेम का प्रकर्ष बढ़ता जाता है त्यों त्यों प्रेमी प्रेममय होता जाता है। आध्यात्मिक अवस्था में प्रेमी को विश्व में सर्वत्र अपना प्रेम पात्र ही दिखाई देने लगता है। संसार के कण-कण में उसे प्रेम-पात्र की झाँकी मिलती और सर्वत्र उसी की छवि छिटकी हुई दिखाई देने लगती है। विश्व के कण-कण में जब प्रेम पात्र प्रतिभासित होने लगता है, तब प्रेमी को समस्त विश्व ही प्रेममय प्रतीत होने लगता है।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति
सर्वं भूतेषु घारयमानं ततो न विजुगुप्सते। —"ईशोपनिषद्"

प्रेमी प्रेमिका का साधारण प्रेम ही विश्व में व्याप्त होकर असाधारण प्रेम बनता है। आध्यात्मिक भाषा में हम कह सकते हैं कि लौकिक प्रेम परलौकिक

× Chapter III The mansion of philosophy III Durant.

प्रेम के रूप में परिणत हो जाता है, अथवा जीवोन्मुखी प्रेम ईश्वरोन्मुखी प्रेम हो उठता है। वस्तु एक ही है, केवल स्तर मात्र का भेद है। एकत्व स्थापन के अभाव में जीव अथवा आत्मा विकल हो उठता है। उसे अपने अन्य तत्व, प्रीतम अथवा परमात्मा से पृथक् रहना सह्य नहीं होता। इसी पृथकत्व का नाम विछोह अथवा वियोग है। मूल में एक ही प्रेरणा है, एकत्व-स्थापन की। प्रेम प्रकर्ष में अपने पराये का भेद जाता रहता है। अपने प्रीतम को अखिल विश्व में देखने का व्यावहारिक रूप हमें स्त्री पुरुष के प्रेम में देखने को मिल जाता है।

स्त्री पुरुष के लौकिक प्रेम के मार्ग में अनेक बाधायें एवं कष्ट हैं। प्रथम तो मिलन होना ही कठिन होता है और यदि संयोग हो भी जाता है, तो वह प्रायः अल्पकालीन ही ठहरता है। पारस्परिक मत-वैषम्य के कारण प्रेमी अलग हो जायें, उत्कट अनुराग होने पर भी किसी कारणवश उन्हें पृथक् रहना पड़े अथवा कालान्तर में दो में से एक की मृत्यु तो होती ही है। इस प्रकार लौकिक प्रेम अस्थायी और अन्त में दुःखदायी ठहरता है। लोक का अस्थायित्व प्राणी के हृदय में कभी-कभी निर्वेद अथवा विरक्ति के भाव उत्पन्न कर ऐसे प्रेम की ओर चलने की प्रेरणा प्रदान करता है, जो स्थायी हो, कभी न्यून न हो तथा जहाँ सुख ही सुख हो, मिलन के पश्चात् विछोह न हो। प्रेम की यही भावना मनुष्य को ईश्वर प्रेम की ओर अग्रसर कर देती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रेम पात्र में किसी कारण वश विरूपता अथवा कुरूपता आ जाने के कारण प्रेम का प्रवाह कुछ अवरुद्ध हो जाता है अर्थात् प्रेमी के हृदय में प्रेम पात्र के प्रति प्रेम कम हो जाता है और वह अन्य स्वरूपवान प्रेम पात्र की खोज में चल पड़ता है। तलाक आदि की प्रथायें प्रेम प्रकर्ष को कम करने वाले इन्हीं कारणों के फल स्वरूप चल पड़ी हैं। लोक की इस विषम गति को देखकर सच्चा प्रेमी एक सच्चा साधक या सच्चा योगी बन जाता और वह आदर्श प्रेम तथा आदर्श प्रेम पात्र की खोज में चल पड़ता है। मानव द्वारा आदर्श की कल्पना एवं खोज सर्वथा मनोवैज्ञानिक है।

इस चराचर जगत को साधारण तौर पर तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। जड़, अर्द्ध चेतन तथा पूर्ण चेतन।

(१) जड़ के अन्तर्गत तलवार, चाकू, पत्थर, मशीन आदि जड़ पदार्थ आते हैं। इनका गुण है पूर्ण जड़त्व, अर्थात् धमता शीलता। अच्छा चाकू वही है जो जहाँ लगे, जिसके लगे, गहरा घाव कर दे। पत्थर जिसकी खोपड़ी में लगेगा, उसे आहत कर देगा। चलती मशीन के बीच में जो भी वस्तु आजायगी, कट जायगी। बिना सोचे विचारे, बिना देश काल पात्र का विचार किये जो पूर्ण धमता के साथ अपना कार्य करें, जड़ हैं। इस प्रकार कार्य करने वाले व्यक्तियों पर भी हम जड़ता का आरोप कर देते हैं।

(२) अर्ध चेतन के अन्तर्गत पशु पक्षी आते हैं, जिन्हें हम मूढ़ योनि भी कहते हैं। इनका गुण है, जीवन, शारीरिक बल। पशु के अच्छे होने की यही पहिचान है कि उसमें पूर्ण पशुत्व हो। अच्छी मुर्गी वही है, जो अधिक अंडे दे। अच्छी गाय वही है जो प्रत्येक वर्ष ब्याए। जिन स्त्रियों के अधिक बच्चे उत्पन्न होते हैं, उनके लिए हम कहते ही हैं कि वह कुतिया अथवा सुअरिया की तरह बच्चे देती है। मनुष्यों के शारीरिक बल के लिये साहित्यिक भाषा में "पशुबल" शब्द का प्रयोग किया ही जाता है।

३—पूर्ण चेतन के अन्तर्गत मनुष्य योनि आती है। उपर्युक्त गुणों में से कोई भी गुण मानव का आदर्श नहीं ठहरता। मानव समाज में उसी व्यक्ति का अधिक आदर होता है जो अधिक बुद्धि विवेक से सम्पन्न हो। अधिक बच्चे वाली स्त्रियों तथा पहलवानों का समाज में अपना अलग / स्थान है, परन्तु उनके द्वारा समाज का हित साधन न होने से समाज उन्हें विशेष आदर भाव से नहीं देखता है। मानव समाज में विचारक एवं द्रष्टा का ही विशेष सम्मान होता है। सूक्ष्म द्रष्टा ऋषि गण त्रिकालज्ञ अथवा आत्म द्रष्टा बन कर समाज के पूज्यनीय बन गये। आत्म दर्शन मानव का सबसे बड़ा गुण और उद्देश्य रहा है, इस विश्व का सबसे बड़ा आदर्श भी यही है। अतएव आदर्श की ओर अग्रसर होना पूर्णत्व की प्राप्ति में चरम पद मानव को सबसे बड़ी और अन्तिम प्रेरणा है। इस प्रकार ईश्वरोन्मुखी प्रेम के मूल में निम्नलिखित कारण ठहराते हैं।

(१) उससे पूर्ण एवं स्थायी आनन्द की प्राप्ति होगी।

(२) उसमें अनन्त एवं अक्षय सौन्दर्य से साक्षात्कार होगा।

(३) समस्त सुन्दर इच्छाओं की पूर्ति की आशा वहीं हो सकती है।

यही कारण है कि भक्तजनों ने अनन्त शील और अनन्त-शक्ति के साथ अनन्त-सौन्दर्य की भी प्रतिष्ठा की है। अतएव सौन्दर्य ही सुख प्राप्ति का सबसे प्रबल आश्वासन है।

प्रेम एक प्रबल मनोदशा है। प्रियतम से मिलन की इच्छा एक अत्यन्त प्रबल प्रवृत्ति है, प्रीतम से वियोग होने पर उसकी पुरानी बातों की याद आती और भविष्य में मिलन होने पर भाँति-भाँति के सुखद संलाप एवं कार्यों की कल्पना की जाती है। हम अनेक तरह यहाँ घूमते थे, अमुक प्रकार हम यहाँ बातें किया करते थे, इत्यादि अब मिलने पर हम अमुक प्रकार रहा करेंगे, अमुक प्रकार विभिन्न कार्य करेंगे इत्यादि। ये बातें नित्य व्यवहार में घटित होने वाली हैं। ईश्वर विषयक होने पर इन्हीं को गुण कथन स्मरण तथा मनोराज्य कहा जाता है।

मनोराज्य का स्थूल रूप हमें भोजन की वृत्ति में मिल जाता है। एक रोगी है। उसे पिछले २५ दिन से अन्न नहीं मिला है। अगले चार दिन बाद उसे अन्न मिलने की आशा है। अब आप भोजन सम्बन्धी उसके मनोराज्य की कल्पना कीजिये। वह भोजन सम्बन्धी अनेक योजनायें बनाया करता है। पिछले समय में खाये हुए भोजन की वह याद करता तथा ४ दिन बाद प्रारम्भ होने वाली अपनी भोजन योजनाओं की मधुर कल्पना किया करता है। ४ दिन बाद उसे सूखी रोटी मिलती है और उसमें उसे बड़ा आनन्द मिलता है। परन्तु जैसे ही उसे सब कुछ खाने की छूट मिल जाती है, वैसे ही वह अपने साधारण जीवन में तल्लीन हो जाता और उसकी समस्त योजनायें समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार ईश-दर्शन अथवा आत्म साक्षात्कार किंवा प्रीतम मिलन की प्रबल क्षुधा साधकों को सताती रहती है और वे मिलन की मधुरतम कल्पनाएँ किया करते हैं। यह मिलन अत्यधिक सुखदायी होता है। उसके निश्चिय मात्र से नव जीवन का सचार होने लगता है। स्वायंभु मनु और उनकी पत्नी सतरूपा ने भगवत्प्राप्ति के लिये तपस्या की। तपस्या की विकटता ने उनके शरीर को सुखाकर अस्थिमात्र बना दिया। भागवतदर्शन का वरदान माँगने के लिये केवल आकाशवाणी सुनकर ही वे प्रफुल्लित हो उठे थे।

मागु मागु बरु भै नभ बानी,
परम गंभीर कृपामृत सानी।
मृतक जिआवनि गिरा सुहाई,
स्रवन रंध्र होइ उर जब आई।
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए,
मानहुँ अबहिं भवन ते आए।

"बालकाण्ड, रामचरितमानस"

ऐसे प्रेम पात्र का साक्षात मिलन तो अवश्य ही सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला होगा। भक्त जनों द्वारा विभिन्न मनोरागों की मधुर कल्पनाओं के मूल में यही बात ठहरती है। कहीं मधुर मिलन की योजनाएँ समाप्त न हो जायें इस भय से वे मिलन की अपेक्षा चिर वियोग के झूले में झूलना अधिक पसन्द करते हैं। भक्ति साधन और साध्य दोनों ही है। भक्ति का सबसे बड़ा फल भक्ति ही है।

अपने में लघुत्व का अनुभव तथा आदान-प्रदान प्रेम के दो प्रधान तत्व हैं। प्रत्येक प्रेमी अपने हृदय में यह समझता है कि उसका प्रेम-पात्र अत्यन्त महान् है और मैं उसके योग्य अभी नहीं हूँ, न मालूम वह मुझे स्वीकार करेगा या नहीं। जीव और परमात्मा के सम्बन्ध में तो यह बात प्रत्यक्ष है ही, साधारण लोक-व्यवहार में भी प्रेमियों ने अपने प्रेम-पात्र को परमात्मा से कुछ कम नहीं माना है। परमात्मा के डर से चाहे उसे परमात्मा न कहा हो, परन्तु उसमें परमात्मा के समस्त गुणों का निस्संकोच आरोप किया गया है। बिना अपने में लघुत्व और प्रेम पात्र में महत्व का आरोप किए प्रेम लता पनपती फूलती ही नहीं है। पति-पत्नी जब तक एक दूसरे को परमात्मा का स्वरूप, सर्व गुणों की खानि समझते रहते हैं, तब तक प्रेम प्रगाढ़ अबाध रूप में बहता रहता है। वहाँ एक ने दूसरे में अवगुणों और त्रुटियों के दर्शन किये कि प्रवाह की गति बाधित हो जाती है। जब तक अपने से पोषण महान् की प्रतीति की प्रेरणा न हो, तब प्रेम की उत्पत्ति कठिन ही समझिये। अपने से बड़े के साथ मिलकर अधिक बड़े होने के भाव का ही नाम प्रेम है। भक्त जन अथवा साधक गण अनन्त एवं परम तत्व के साथ एकाकार होने की कामना करते हैं अतएव वे अत्यन्त

भाव से प्रभु की आराधना करते रहते हैं। दैन्य और कार्पण्य भक्तों के बहुत बड़े पक्ष हैं।

राम सौ बड़ो है कौन मो सौ कौन छोटो
राम सो खरो है कौन मो सौ कौन खोटो। 'तुलसीदास'

प्रेम पात्र के साथ नमक पानी की तरह एक हो जाना ही प्रेम का सर्वोपरि आनन्द एवं फल है। अखिल विश्व में व्याप्त परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापन का ही नाम मोक्ष है * इसी मोक्ष की साधना का नाम धर्म है। $

प्रेम में आदान प्रदान अथवा लेन देन के भाव से यह अभिप्राय है कि प्रत्येक प्रेमी यही चाहता है कि उसका प्रेम-पात्र भी उससे प्रेम करे, उसे अपना ले, अत्यधिक विरह में प्रेम प्रकर्ष की दशा में वह भले ही प्रिय मिलन एवं प्रिय दर्शन का आग्रह छोड़ दे, परन्तु वह इतना अवश्य चाहता है कि उसके प्रेमपात्र को इसके प्रेम का पता चल जाए। ×

इस प्रवृत्ति के मूल में मुख्यतः दो बातें ठहरती हैं। एक तो इसमें सृष्टि का

---

* Moksha is mergence in to and identification with the universal self Dr Bhagwan Das

$ "Religion is world loyalty" Prof Whitehead.

God is that which makes for unity, evil is that which makes for separateness" (Chapter XV, ends & Means, Aldous Huxley)

× या निरमोहिनि रूप की राशि जऊ उर
हेतु न ठानति ह्वै है,
बारहि बार बिलोकि घरी घरी सूरति
तौ पहिचानति ह्वै है,
ठाकुर या मन की परतीति है, जो पै सनेह
न मानति ह्वै है;
आवत हैं नित मेरे लिये, इतनी तो विसेष
कै जानति ह्वै है,

विधान है अर्थात् अपने प्रेमपात्र के हृदय में सान्निध्य या सम्पर्क की इच्छा उत्पन्न करने का प्रयास है और दूसरे इसमें अन्यसंयोग के द्वारा प्रेम को सफल बनाने का सुख-स्वप्न है। ×

अपने इष्टदेव द्वारा अपने प्रेम की स्वीकृति प्राप्त करने के मोह का संवरण भक्त जन भी नहीं कर सके हैं। यथा—

मारुति मन रुचि भरत की लखि लषन कही है
कलिकालहु नाथ नाम सों प्रतीति प्रीति एक
किंकर की निबही है ॥१॥
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है
कृपा गरीब निवास की, देखत गरीब को साहब
बाँह गही है ॥२॥
बिहँसि राम कह्यौ सत्य है, सुधि मैं हूँ
लही है
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ सो
परी रघुनाथ हाथ सही है ॥३॥ '२७९' 'विनय पत्रिका'।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का एक सम्प्रदाय अमुक्त काम को ही समस्त कार्य कलापों के मूल में मानता है। उनके विचार से अमुक्त काम वासना ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने के लिये हमें प्रेरित किया करती है। इस मत के प्रवर्तक हैं सिगमण्ड फ्राइड (Sigmund Frond) इस विचार परम्परा के और भी कई अनुयायी हैं। डा० रवलोक एलिस के मतानुसार ही भक्ति भावना के मूल में भी यही अमुक्त काम वासना अथवा दाम्पत्य जीवन की असफलता ही समझनी चाहिये। यथा—

"जो धार्मिक क्षेत्र में आगत हैं उन्हें प्रेम और धर्म का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध भली-भाँति विदित है। प्रेम और धर्म मानव जीवन के सबसे

× अर्थात् प्रिय को अपने प्रेम की सूचना देना उसके मन को अपनी ओर आकर्षित करना है, अथवा प्रिय को अपने मन की सूचना देना उसके मन को अपने मन से मिलने के लिये न्योता देना है। 'लोभ और प्रीति', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

अधिक विस्फोटकारी मौलिक मनोवेग हैं। एक क्षेत्र में उत्पन्न स्पन्दनों द्वारा अन्य क्षेत्र का प्रभावित होना अनिवार्य है। इन दोनों क्षेत्रों में यदि आपस में सक्रिय सहयोग एवं सम्बन्ध हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। अन्यथाच काम भाव अधिक व्यापक एवं स्पष्ट हैं। अवकाश पाकर अगर यह धर्म भाव में परिणित हो जाये, तो यह स्वाभाविक है। यथ मानुषी प्रेम का दैवी रूप में बदल जाने का यही रहस्य है।

धर्म भाव का सबसे बड़ा स्रोत योनि भाव है। भगवत्प्रेम और दाम्पत्य प्रेम दोनों ही मनोदशाएँ समान रूप से वेगवती होती हैं।"

सम्भव है कतिपय भक्त जनों के प्रारम्भिक जीवन को दृष्टि में रख कर मनो विश्लेषक उक्त मत स्थिर करने को बाध्य हुए हों। गोस्वामी तुलसीदास, विरल ◦ गाथः महात्मा सूरदास आदि के गार्हस्थ्य जीवन में दाम्पत्य प्रेम अधिक सफल नहीं हो सका था। परन्तु यहाँ विचारणीय बात एक है। क्या ये लोग केवल दाम्पत्य प्रेम की निराशा के फल स्वरूप ही भगवत प्रेम की ओर बढ़े थे?

वर्षा की अँधेरी रात में तुलसीदास अपनी पत्नी के पीछे-पीछे जब अपनी ससुराल पहुँचे, तो अपनी पत्नी रत्नावली द्वारा दी गई निम्नलिखित भर्त्सना लोक प्रसिद्ध है।

अस्थि धर्म मय देह यह, जामें ऐसी प्रीति,
सो कहुँ श्री रघुनाथ में होत न तो भव भीति॥

उक्त भर्त्सना में महत्वपूर्ण बातें दी हैं। अस्थि धर्म मय अर्थात् सहज एवं शीघ्र ही नष्ट होने वाली वस्तु के प्रति आकर्षण का संकेत तथा श्री रघुनाथ जी की प्रीति द्वारा भव भीति नष्ट होने की सम्भावना इन्हीं दो विचारों को लेकर तुलसीदास चल पड़े थे। अन्य भक्त जन भी इसी भाव से प्रेरित होकर चलते हैं। संसार के पदार्थों की नश्वरता कभी-कभी उन पर इतना गहरा प्रभाव डालती है कि वे अक्षय एवं सर्व सत्य पदार्थ की खोज में चल पड़ते हैं, उस महा पदार्थ की प्राप्ति के साथ उन्हें अनन्त आनन्द की प्राप्ति की पूर्ण आशा लगी रहती है। उन्हें विश्वास रहता है कि उस चिर स्थायी वस्तु में चिर स्थायी आनन्द भी होगा। क्षण भंगुर वस्तुएँ केवल क्षणिक सुख का ही कारण बन सकती

हैं। महात्मा गौतम बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति का भी ऐसा ही इतिहास है। राजकुमार सिद्धार्थ पर सांसारिक दुःखों का गहरा प्रभाव पड़ा। वह ऐसे स्थान की खोज में चल पड़े जहाँ न बुढ़ापा हो, न रोग हो, न दुःख हो और न मृत्यु हो। साधकों ने बताया कि ऐसा स्थान केवल मनुष्य का हृदय ही है। संसार से विरक्त होकर महातत्त्व के साक्षात्कार का प्रयत्न करो, उसकी झलक मिलते ही सारी भव-भीति दूर हो जायगी। ऐसा ही हुआ, कुमार सिद्धार्थ गौतम बुद्ध बन गये। कहने का अभिप्राय यह है कि धर्म भाव के मूल में काम भाव भी हो सकता है, परन्तु काम भाव उसका एक मात्र कारण नहीं है। धर्म भाव के मूल में प्रायः आदर्श भावना रहती है। चिर-स्थायी सौन्दर्य एवं आनन्द की खोज की उत्कट अभिलाषा संसार के सुख, भोग, विलास आदि की अनित्यता किंवा उनके परिणाम में दुःख देखकर मनुष्य उन्हें व्यर्थ समझने लगता है और अन्त में उस पदार्थ की खोज में चल पड़ता है, जो सदैव एक रस रहता हो, सदैव आनन्द देता हो तथा जिसकी प्राप्ति के बाद फिर दुःख एवं बन्धनों में न पड़ना पड़ता हो ऽ

संसार की असारता के सम्बन्ध में अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसी

ऽ उत्खातं निधि शंकया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः,
मन्त्राराधन तत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णे धुना मुञ्च माम्
—'वैराग्यशतक भर्तृहरि' ॥

अर्थात् धन मिलने की आशा से मैंने जमीन खोदी, रसायन सिद्धि के लिये मैंने अनेक पहाड़ी धातुओं को फूँका, धनोपार्जन की आशा से मैं समुद्र पार भी गया, अनेक राजाओं की अनेक प्रकार सेवा कर उन्हें प्रसन्न भी किया और रात रात भर मरघट पर बैठ मंत्र भी जगाए, किन्तु मेरे हाथ कुछ भी न लगा अतः तृष्णा हे देवी अब तो मेरा पीछा छोड़ो।

प्रकार लिखा है। + सांसारिक सुखों को एक बुद् बुदे के समान व्यर्थ एवं धोखे में डालने वाला समझ कर जब हम वास्तविक तत्त्व 'रस' की खोज में पग बढ़ने को ठानते हैं, तभी पारलौकिक प्रेम का उदय हुआ समझ लेना चाहिए उस वास्तविक पदार्थ का वियोग जीव के लिये असह्य है।

यह निर्विवाद है कि मानव जीवन में काम का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इतना ही क्यों, यह जीवन के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एवं व्यापक मनोवेगों में से एक है। जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी रूप में यह जीवन के साथ लगा ही रहता है। दाम्पत्य प्रेम में उसका उन्नयन हो जाता है, जीव केवल स्वार्थमय न रह कर त्यागशील भी बन जाता है। वह केवल काम तृप्ति में ही लिप्त न रह कर अपने प्रेम पात्र तथा बाल बच्चों के सुख सुविधा का भी ध्यान करने लगता है। इस प्रकार उसके हृदय में कोमल भावनाओं का जन्म होता है, इन कोमल भावनाओं की अन्तिम परिणिति ही भक्ति भावना है, जहाँ व्यक्ति अपने लिये कुछ भी नहीं चाहता। लोक का योग-क्षेम ही उसके

यथा—पुराणान्ते श्मशानान्ते मैथुनान्ते च या मति
सा मतिः सर्वदा चेत्स्यात् को न मुच्यते बन्धनात्।
अर्थात् साहित्य और जीवन सबके अन्त में दुःख के ही दर्शन होते हैं।

\+ The two sisters by the goal are set
Colb disappointment and regret
One disenchants the winners' eyes
And strips of all its worth the hrise
while one augments its geudy show
More to enhance the loser's owe
The Victor sees his fairy gold,
Transformed, when wono, to drossy mold
But Still the vanquished mourns his loss
And ruls, as gold, that glittering dross
(Part XXX I can to first, Rokeby-Sir weltdf-scott.)

सुख का एकमात्र कारण बन जाता है। उपासना में थोड़ा बहुत स्वार्थ का भाग लगा रहता है, विशुद्ध भक्ति सर्वथा निष्काम हो जाती है। उपासना में द्वैत का भाव बना रहता है, भक्ति में यह भेद नहीं के बराबर हो जाता है।

दाम्पत्य प्रेम के मूल में प्रिय के साथ एकत्व स्थापन की भावना रहती है। द्वैत में अद्वैत स्थान की यही भावना आगे चल कर ईश्वर प्रेम का कारण बनती है। अपनी प्रिया के प्रगाढ़ परिरम्भन में जिस प्रकार पुरुष थोड़ी देर के लिए समस्त संसार को भूल जाता है, उसी प्रकार परम प्रिय परमात्मा के सायुज्य द्वारा जीव सदा के लिये संसार को विस्मृत कर बैठता है, यथा—

> तपया प्रिक्या स्त्रिया संपरिष्वक्तो न,
> बाह्य किंचन वेद, नातङ्, एवमेवायं
> पुरुष प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न
> बाह्य किंचन वेद नान्तरम्, तद्वा
> अस्य एतदाप्त कामं आत्मकाम
> अकामं रूपम् —"बृहदारण्य, उपनिषद् ४।३।२१,"

अर्थात्—जिस प्रकार अपनी पत्नी के आलिंगन समय पुरुष को बाहर भीतर का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है, ठीक उसी प्रकार उस विश्वात्मा से संयोग समय जीव को अन्य कोई वस्तु नहीं दिखाई देती है, क्योंकि उस दशा में उसकी समस्त इच्छाओं और कामनाओं की पूर्ति हो जाती है," १

---

1 "Just as when a man is embraced by his dear wife, he knows nothing outside nor anything inside similerly when the individual self is embraced by the Sunivereal self, he knows nothing outside nor anything inside; for in he has attained an end which involves the fulfilment of all other ends, being verily the attainment of Atman which leaves no other ends to be filled" (page 348, chapter VII, An Encyclilopaedio History of Indian Philosophy Vol II)

"हमारे अनुभवों में सम्मस्त प्रेम हो, आध्यात्मिक अनुभव कुछ-कुछ निकट पहुँचता है," दो हृदयों की यह अभिन्नता अखिल जीवन की एकता के अनुभव पथ का द्वार है, प्रेम का यह एक रहस्यपूर्ण महत्त्व है।

× × × ×

भक्ति राग की यह दिव्य भूमि है जिसके भीतर सारा चराचर जगत आ जाता है, "लौकिक प्रेम का पारलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो जाने का यही रहस्य है। २

कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी अपने मोह के भक्ति रूप में परिणित होने की बात कही है, यथा—

जे किछु आनन्द आछे दृश्ये गन्धे गाने,
तोमार आनन्द रबे तार माझखाने,
मोह मोर मुक्तिरूपे उठिबे ज्वलिया,
प्रेम मोर भक्तिरूपे रहिबे फलिया। "गीतांजलि, पृष्ठ १०८"

सौन्दर्य के फल आकर्षण एव आसक्ति दोनों ही हैं प्रियतम, प्यारे अथवा इष्टदेव का सौन्दर्य ऐसा हो जिसके सम्मुख विश्व का अन्य कोई भी सौन्दर्य हमें अपनी ओर न खींच सके यही कारण है कि भगवान के सौन्दर्य को पृथ्वी, जल, आकाश तीनों लोकों के सुन्दरतम पदार्थों द्वारा निर्मित बताया गया है—

नील सरोरुह नील मनि नील नीलधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥
"बालकांड, रामचरितमानस"

भगवान के सौन्दर्य की कामदेव से तुलना करने में भी एक विशेष हेतु लगा रहता है। चूंकि काम अथवा आसक्ति जीवन की एक बलवती मौलिक वृत्ति (instinct) है इस कारण भगवद्-भक्ति में भी किसी न किसी रूप में उसका लगाव बना ही रहता है। आकर्षण को स्थिर स्थायी बनाये रखने वाला "काम" ही अन्त में जाकर मोक्ष का कारण बनता है। कामदेव ने स्वयं अपने आप को मोक्ष ही कह डाला है।

---

२ लोभ और प्रीति, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

-सुख का एकमात्र कारण बन जाता है। उपासना में थोड़ा बहुत स्वार्थ का भाव लगा रहता है, विशुद्ध भक्ति सर्वथा निष्काम हो जाती है। उपासना में द्वैत का भाव बना रहता है, भक्ति में यह भेद नहीं के बराबर हो जाता है।

दाम्पत्य प्रेम के मूल में प्रिय के साथ एकत्व स्थापन की भावना रहती है। द्वैत में अद्वैत स्थान की यही भावना आगे चल कर ईश्वर प्रेम का कारण बनती है। अपनी प्रिया के प्रगाढ़ परिरम्भन में जिस प्रकार पुरुष थोड़ी देर के लिए समस्त संसार को भूल जाता है, उसी प्रकार परम प्रिय परमात्मा के सायुज्य द्वारा जीव सदा के लिये संसार को विस्मृत कर बैठता है, यथा—

तपया प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न,
बाह्य किंचन वेद, नान्तरं, एवमेवायं
पुरुष' प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न
बाह्य किंचन वेद नान्तरम्, तद्वा
अस्य एतदाप्त कामं आत्मकाम
अकामं रूपम् —"बृहदारण्यक उपनिषद् ४।३।२१,'

अर्थात्—जिस प्रकार अपनी पत्नी के आलिंगन समय पुरुष को बाहर भीतर का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है, ठीक उसी प्रकार उस विश्वात्मा से संयोग समय जीव को अन्य कोई वस्तु नहीं दिखाई देती है, क्योंकि उस दशा में उसकी समस्त इच्छाओं और कामनाओं की पूर्ति हो जाती है," १

1 "Just as when a man is embraced by his dear wife, he knows nothing outside nor anything inside similarly when the individual self is embraced by the Universal self, he knows nothing outside nor anything inside, for in he has attained an end which involves the *fulfilment of all other ends, being verily the* attainment of Atman which leaves no other ends to be filled" (page 348, chapter VII, An Encyclopaedic History of Indian Philosophy Vol II.)

"हमारे अनुभवों में दाम्पत्य प्रेम ही, आध्यात्मिक अनुभव कुछ-कुछ निकट पहुँचता है," दो हृदयों की यह अभिन्नता अखिल जीवन की एकता के अनुभव पथ का द्वार है, प्रेम का यह एक रहस्यपूर्ण महत्त्व है।

× × × ×

भक्ति राग की वह दिव्य भूमि है जिसके भीतर सारा चराचर जगत आ जाता है, "लौकिक प्रेम का पारलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो जाने का यही रहस्य है। २

कवीन्द्र रवीन्द्र न भी अपने मोह के भक्ति रूप में परिणित होने की बात कही है, यथा—

> जे किछु आनन्द आछे दृश्ये गन्धे गाने,
> तोमार आनन्द रबे तार माझखाने,
> मोह मोर मुक्तिरूपे उठिबे ज्वलिया,
> प्रेम मोर भक्तिरूपे रहिबे फलिया। "गीतांजलि, पृष्ठ १०८"

सौन्दर्य के फल आकर्षण एवं आसक्ति दोनों ही हैं, प्रियतम, प्यारे अथवा इष्टदेव का सौन्दर्य ऐसा हो जिसके सम्मुख विश्व का अन्य कोई भी सौन्दर्य हमें अपनी ओर न खींच सके, यही कारण है कि भगवान के सौन्दर्य को पृथ्वी, जल, आकाश तीनों लोकों के सुन्दरतम पदार्थों द्वारा निर्मित बताया गया है—

> नील सरोरुह नील मनि नील नीलधर श्याम।
> लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥
> 'बालकांड, रामचरितमानस'

भगवान के सौन्दर्य की कामदेव से तुलना करने में भी एक विशेष हेतु लगा रहता है। चूँकि काम अथवा आसक्ति जीवन की एक बलवती मौलिक वृत्ति (instinct) है, इस कारण भगवद्-भक्ति में भी किसी न किसी रूप में उसका लगाव बना ही रहता है। आकर्षण को चिर स्थायी बनाये रखने वाला "काम" ही अन्त में आकर मोह का कारण बनता है। कामदेव ने स्वयं अपने आप को मोह ही कह डाला है।

२ लोभ और प्रीति, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

यो मां प्रयतते हंतु मोक्षमास्थाय पंडित ।
तस्य मोक्ष रतिस्थस्य नृत्यामि च हसामि च ॥

"महाभारत, अश्वमेध पर्व, पाठ १३।"

अर्थात्—जो पण्डितगण मोक्ष की इच्छा कर के मुझे नष्ट करने की ठानते हैं, उन्हें देखकर मुझे हंसी आती है और मैं उन्हें तरह-तरह के नाच नचाता हूँ। मोक्ष की इच्छा भी तो मेरी एक रूप है।

इस प्रकार शान्त रस एक निषेधात्मक रस ठहरता है। परन्तु मनुष्य का सर्वथा इच्छा रहित अथवा निष्काम हो जाना असम्भव है, उसे कम से कम भगवत् दर्शन की इच्छा तो लगी ही रहती है। अतएव शान्तरस के स्थायीभाव 'निर्वेद' के मूल में दो भाव ठहरते हैं। वैराग्य और भक्ति। विश्व की नश्वरता के प्रति उत्पन्न क्रोध का उपचित रूप का नाम वैराग्य है और प्रभु दर्शन की उत्कट इच्छा ही भक्ति है।१

हमारे अनुभवों में दाम्पत्य प्रेम ही आध्यात्मिक अनुभवों के कुछ-कुछ निकट पहुँचता है। हम अपने अनुभव से बाहर नहीं जा सकते। हमारी भाषा हमारे अनुभवों से ही बनी है। इसीलिए हम को आध्यात्मिक भावों के प्रकट करने में, शृंगार की भाषा का व्यवहार करना पड़ता है। बहुत से आध्यात्मिक भावों का शृंगार की भाषा में निरूपण किया गया है। विश्व-कवि रवीन्द्र की कविता में भी आध्यात्मिक भाव शृंगार की भाषा में वर्णित हैं। यथा—

तोमर काछे राखि नियार साजरे अहंकार
अलंकार ने माझे पड़े मिलनें से आ डालकर।
तोमार कथा ढाके जे तार मुखर झंकार

१ Vairagya-Sublimated anger against the Transient

Bhakti-sublimated love and a onging and aching for the Eternal, generally, conceived as embodied in some ideal divine for or another (Chapter x, Science of Emotion Dr Bhagwan Das)

अर्थात् "मुझे अलंकार का अहंकार नहीं है। आभूषण हमारा संयोग नहीं होने देते। उनकी झंकार से तेरी धीमी आवाज़ दब जाती है।"

भक्ति भावना को व्यक्त करने के लिए हर देश और हर काल के कवियों ने शृङ्गार की भाषा का प्रयोग किया है। किन्हीं भक्तजनों ने उसे प्रियतम के रूप में देखा और किन्हीं ने उसे अपनी प्रियतमा बताया। परमात्मा पुरुष रूप होने से उसे प्रियतम के रूप में समझना भारतीय विचारधारा के अधिक अनुकूल सिद्ध हुआ फारस में वह माशूक बन गया। परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखने की परम्परा सूफी साधक भारतवर्ष में भी ले आए। भगवान् को बालक रूप में स्मरण करना भी शृङ्गार भाव के ही कारण है, ऐसा समझ लेना चाहिए। हिन्दी भाषा के निर्गुणवादी कवि कबीर और सगुणवादी कवयित्री मतवाली मीरा ने शृङ्गारिक भाषा का अधिक प्रयोग किया है, सूफी कवि जायसी के पद्मावत में तो ऐसी अनेक सूक्तियां भरी पड़ी हैं। उपसंहार में उन्होंने स्वयं पद्मावत को एक अन्योक्ति बताकर राजा रत्नसेन और पद्मावती के मिलन को जीव और परमात्मा का मिलन ही कह दिया है।

मैं यह अरथ पंडितन्ह बूझा,
कहा कि हम्ह किछु और न सूझा।
चौदह भुवन जो तर उपराहीं,
ते सब मानुष के घट माहीं॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा,
हिय सिंघल बुधि पदमिनी चीन्हा।
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा,
बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनियाँ धंधा,
बाचा सोई न एहि चित बंधा।
राघव दूत सोई सैतानू,
माया अलाउदीं सुलतानू॥

प्रेम कथा एहि भांति बिचारहु,
बूझि लेहु जो बूझै पारहु।
तुरकी अरबी, हिन्दुई भाषा जे ती आहि।
जेहि मंह मारग प्रेम कर सबै सराहैं ताहि॥
—"उपसंहार पद्मावत"

अन्य उदाहरण लीजिये —

कैसे दिन कटि है, जतन बताए जइयो
एहि पार गंगा ओहि पार यमुना, बिचवा,
मड़इया हमको छवाये जइयो।
अंचरा फाटि के कागद बनाइन, अपनी,
सुरतिया हियरे लिखाये जइयो।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, बहियाँ,
पकरि के रहिया बताये जइयो।

आगे चल कर कबीर ने मृत्यु को प्रियतम से मिलने का साधन मान कर उसका गौना बताया है और उसका वर्णन शृङ्गारिक भाषा में किया है।

आई गवनवां की सारी, उमिरि अब हीं मोरी बारी,
साज समाज पिया ले आये, और कहरिया चारी,
बम्हना बेदरदी अचरा पकरि के, जोरत गंठिया हमारी
सखी सब गावत गारी
गवन कराय पिया ले चाले, इत उत बाट निहारी
छूटत गाँव नगर से नाता, छूटे महल अटारी
करमगति टरै न टारी —'कबीर'

भक्तिन मीरा ने तो स्पष्ट ही गिरधर गोपाल को अपना पति घोषित किया है और उनके साथ एक सेज पर सोने की बात कही है—

१ मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई,
जाके सिर मोर मुकट मेरो पति सोइ॥
२ पिय के पलंगा जा पौढ़ूंगी मीरा हरि रंग रांगूंगी।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि मीरा की माधुर्य भावना 'रति' का परिष्कृत रूप ही है। प्रिय मिलन के समय उनके चरणों में लिपट जाने की ही चर्चा की गई है।

या मोहन के मैं रूप लुभानी
सुन्दर बदन कमल दल लोचन बाँकी चितवन मंद मुस्कानी,
जमना के नीरे तीरे धेनु चरावे बंसी में गावे मीठी बानी,
तन मन धन गिरधर पर वारू चरण कमल मीरा लपटानी॥

मीरा ने केवल कृष्ण को पुरुष तथा अन्य जीवों को स्त्री रूप ही बताया। द्रविड भाषा की कवयित्री पम्दाल ने कहा था कि 'अब मैं पूर्ण यौवन को प्राप्त हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को अपना पति नहीं बना सकती।' अस्तु

पारलौकिक अथवा पारमार्थिक प्रेम रहस्योन्मुख कहा जाने लगा और इससे सम्बन्धित रचनाएँ 'रहस्यवाद' के अन्तर्गत रखी गई। इस रहस्य भावना के प्रवायन के मूल में सन्त कवि थे। इन सन्त कवियों की उपासना निराकारो पासना थी, अतएव उनकी वाणी में अपने उपास्य के प्रति जो संकेत मिलते हैं वे केवल आभास के रूप में हैं और रहस्यात्मक हैं। भक्त जब चिन्तन के क्षेत्र में प्रवेश करके आकार का परित्याग करके अगोचर की ओर अग्रसर होने लगता है उस समय उसे रहस्यात्मक शैली का आश्रय लेना ही पड़ता है। इस प्रकार रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है। वेदों और उप निषदों में भी इसकी झलक विद्यमान है। जहाँ कहीं भी निर्गुण ब्रह्म की सत्ता का उल्लेख किया गया है, वहाँ बराबर रहस्यात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। भगवद्गीता में भगवान की विभूतियों का वर्णन अत्यन्त रहस्यपूर्ण है।*

प्राचीन ऋषि चिन्तन द्वारा ही अद्वैतवाद के सिद्धान्त पर पहुँचे थे। अद्वैत-वाद के मूल में एक दार्शनिक सिद्धान्त है, कवि कल्पना या भावना नहीं। भारत वर्ष में यह ज्ञान क्षेत्र से निकला और अधिकतर ज्ञान क्षेत्र में ही बना रहा। परन्तु यहूदी, ईसाई, इसलाम आदि मतों के बीच तत्वचिन्तन की पद्धति अथवा

* अध्याय १०।

ज्ञानकांड का स्थान न होने के कारण उसका महत्व रहस्यवाद के ही रूप में है सका और अरब, फारस आदि में जाकर यह भाव क्षेत्र के बीच मनोहर रहस्य के रूप में फैला।

× × × ×

अद्वैतवाद के दो पक्ष हैं। आत्मा और परमात्मा का मिलन तथा ब्रह्म और जगत की एकता। दोनों मिलकर सर्ववाद की प्रतिष्ठा करते हैं। "सर्व खल्विदं ब्रह्म"।

रहस्यवाद भी दो प्रकार का होता है। साधनात्मक और भावात्मक भारत- वर्ष का योगमार्ग साधनात्मक रहस्यवाद है 'साधना' के क्षेत्र में सूफियों और ईसाई भक्तों की भी दृष्टि उसी पथ पर है, परन्तु भाव क्षेत्र में आकर सूफी भक्त विभूतियों में भी उसकी छवि का अनुभव करते आये हैं।

पहुते जोति जोति ओहि भई
रवि, ससि, नखत, दिपत ओहि जोती

× × × ×

नयन जु देखा कमल भा निरमल नीर सरीर,
हँसत जो देखा हँस भा दसन जोति नग हीर।

—'पद्मावत जायसी'

यहाँ लौकिक दीप्ति और सौंदर्य द्वारा परोक्ष ज्योति और सौन्दर्य सत्ता की ओर सुन्दर संकेत है।×

हिन्दी के परवर्ती कवियों पर भी इस परम्परा का प्रभाव पड़ा।

मैं जान्यो निरधार, यह जग कांचा कांचसो,
एकै रूप अपार प्रतिबिम्बित लखियतु जहाँ॥ —'बिहारी'

सर्ववाद का भावात्मक प्रणाली पर निरूपण हमें गीता के १० वें अध्याय विभूतियोग में मिलता है। इस प्रकार अवतारवाद का मूल भी रहस्य भावना ही ठहरती है।

× जायसी का रहस्यवाद जायसी ग्रन्थावली की भूमिका।
'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल'

हिन्दी की निर्गुण शाखा के कबीर, दादू आदि सन्त कवियों में प्रेम तत्व पिपासुक्त सूक्तियों का है। कबीर 'हरि मोर पिउ मैं राम की बहुरिया' आदि वाक्यों द्वारा यथास्थान माधुर्य भाव को व्यक्त करते दिखाई देते हैं। राम की यह बहुरिया कभी तो प्रिय से मिलने की उत्कण्ठा और मिलन के मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन करती है और कभी विरह दुःख निवेदन करती दिखाई देती है।

निर्गुण पन्थी कवियों के अतिरिक्त सगुण साहित्य के रचयिता भी इस रहस्यभावना से प्रभावित हुए हैं। रहस्य-भावना से ओत-प्रोत कवियों ने परोक्ष जगत की झाँकी दिखाने के लिये अन्योक्ति-पद्धति का अवलम्बन किया है। यथा—

१—हंसा प्यारे सरवर तजि कहाँ जाय,
जेहि सरवर बिच मोती चुनते,
बहु विधि केल कराय
सूख ताल पुरइन जल छोड़े, कमल गया कुँभिलाय,
कहै कबीर जो अब की बिछुरे, बहुरि मिले कब आय।
—'कबीर'

इसमें दृश्यमान जगत और जीवन के मार्मिक स्वरूप का निरूपण है।

२—चकई री चलि चरन सरोवर जहाँ
न प्रेम वियोग।
निसि दिन राम राम की वर्षा, भय
रुजनहिं दुख सोग।

× × × ×

जेहि सर सुभग मुक्ति मुक्ता फल, सुकृत
अमृत रस पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि विहंगम यहाँ
कहा रहि कीजै। 'सूरदास'

भक्त सूरदास की वाणी यहाँ इस लोक का अतिक्रमण करके आदर्श लोक की ओर स्पष्ट संकेत कर रही है।

इसी अन्योक्ति पद्धति को रूपान्तर में कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपने विशाल प्रकृति निरीक्षण के बल पर पल्लवित किया और उसे पूर्ण भव्य स्वरूप प्रदान किया। इसी की एक शाखा छायावाद के नाम से हिन्दी में आई। प्रतीकवाद आदि इसी के विभिन्न रूप हैं। रहस्य भावना की यह परम्परा हिन्दी में आज तक अविच्छिन्न धारा के रूप में समाई हुई है। यथा—

(१) भरा नैनों में मन में रूप
किसी छलिया का अमल अनूप
जल थल मानस व्योम में जो छाया है सब ओर
खोज-खोजकर खो गई, मैं पागल प्रेम विभोर।—"प्रसाद"

(२) पाई जाती जगत जितनी वस्तु है जो सबों में,
मैं प्यारे को विविध रंग और रूप में देखती हूँ।
—"हरिऔध"

(३) शून्य काल के पुलिनों पर आकर
चुपके से मौन,
इसे बहा जाता लहरों में, वह रहस्यमय
कौन।—"महादेवी वर्मा"

गोपन प्रवृत्ति अस्पष्टता आदि तत्त्वों का समावेश हो जाने के कारण आज के दिन हिन्दी में रहस्य-भावना का रूप कुछ-कुछ विकृत हो गया है। अपने अपनत्व को यदि हम सर से पैर तक, शिख से नख तक, विश्व व्याप्ति के भाव से एक बार भी देखलें तो अणु-अणु में उसी का प्रतिबिम्ब दिखने लग जावें। फिर संयोग हो अथवा वियोग, उसकी सूरत अथवा मूर्ति हमारी आँखों से ओझल न हो सकेगी। निर्जन वनों के बीच मर्मर करते हुए पत्तों में, बसन्त के विहगों केलि-कूजन में, प्रत्येक ध्वनि में, निस्तब्धता तक में, उसी एक की ही मधुर टेर सुनाई देगी।

सकते हैं। नयनों में बसा हुआ प्यारे का रूप दिखाई दे जायेगा। ब्रज बालाओं की कृष्ण के प्रति प्रीति ऐसी ही थी। संयोग, वियोग हर समय कृष्ण उनके पास हो बने रहते थे। उद्धव जैसे प्रकांड पंडित को उन्होंने यह कह कर निरुत्तर कर दिया था—

"ऊधो तुम कहत वियोग तजि करो,
जोग तब करें जब वियोग होइ स्याम को।—"मतिराम"

लौकिक क्षेत्र में यह प्रेम कृष्ण के प्रति गोपियों का अविच्छिन्न प्रेम है, प्रेम का अनन्य स्वरूप है। पारलौकिक पक्ष में इसी को हम आत्मा और परमात्मा के बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव का विपर्यय कह सकते हैं। अद्वैतवादी इसी का "एकोऽहं द्वितीयोनास्ति" कह कर निरूपण करते हैं। प्रेम प्रेम है, क्या लौकिक, क्या पारलौकिक, इश्क इश्क है, सच्ची सूरत में क्या मजाज़ी और क्या हक़ीक़ी?

जब कोई किसी के प्रेम में रंग जाता है, तो फिर उसे प्रिय के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। घर बार, बाग बगीचे, भीतर, बाहर, उसे कहीं भी अच्छा नहीं लगता है, यहाँ तक कि समस्त सुखदाई वस्तुएँ दुखदायी बन जाती हैं।

घर ना सुहात ना सुहात बन बाहिर हू,
बाग ना सुहात जे खुशहाल खुशबोई सों।
कहै पद्माकर घनेरे धन धाम त्यों ही,
चन्द ना सुहात चाँदनी हू जोग जोही सों।
साँझ ना सुहात ना सुहात दिन माँझ कछू,
व्यापी यह बात हो बखानत हों तोही सों।
रात ना सुहात ना सुहात परभात आली,
जब मन लागि जात काहू निरमोही सों।— "पद्माकर"

वियोगिनी गोपियाँ कृष्ण प्रेम में सराबोर थीं, कृष्ण के बिना उनका जीवन सर्वथा नीरस हो गया था, वृन्दावन के हरे भरे वृक्ष उनके जीवन के प्रतिकूल पड़ते थे, इसीलिए उन्होंने ब्रज के वनों को कोसा था—

मधुबन तुम कत रहत हरे,
बिरह वियोग श्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे।

× × × ×

कौन काज ठाढ़े रहे बन में काहे न उकठि भरे। —"सूरदास"

समस्त संसार राग-रंग में मस्त है, परन्तु विरहिणी की वेदना सबके उल्लास और आनन्द को देख कर और भी अधिक बढ़ जाती है।

होली पिया बिन मोहि न भावे घर
आंगन न सुहाय,
दीपक जोय कहा करूं हेली पिय
परदेश रहावे।
सूनी सेज जहर ज्यूं लागे
सुसक सुसक जिय जावे। —"मीरा"

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा वर्णित विरह का स्वरूप सर्वथा भिन्न है। उसके कारण राम सीता की खोज में निर्जन वनों में और पहाड़ों में तो घूमे ही थे, वह लता वृक्षों और वन के पशु पक्षियों से अपनी प्यारी सीता का पता भी पूछते फिरे थे, परन्तु वह हताश ही करके बैठ न गये, उनके विरह ने उनके लिए अपना बल और पराक्रम दिखाने का एक मनोहर क्षेत्र उपस्थित कर दिया और वह अन्याय, अनीति और अत्याचार के दमन में रत होकर पृथ्वी का भार उतारने में संलग्न हुए थे। इसे राम का रामत्व कहें अथवा परिस्थितियों की प्रेरणा! राम ने जो कुछ भी किया वह केवल अपनी प्रियतमा को प्राप्त करने के लिये। अंगद के समझाने पर भी यदि रावण सीता को लौटा देने के लिये तैयार हो जाता, तो सम्भवतः राम लंका से यों ही बिना पृथ्वी का भार उतारे लौट आये होते। अस्तु,

संसार की नश्वरता और चंचलता शाश्वत और अचल वस्तु के चिन्तन का कारण बनती हैं तथा जरा और मृत्यु की जिज्ञासा जाग्रत करती हैं। इस जीवन के बाद भी कुछ है, यह विचार मानव को कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर करता है। मनोविश्लेषक कहते हैं कि अपना नाम अमर रखने की

यदि वे व्यक्ति भगवत्प्रेम की ओर दौड़ता है, वह सोचता है कि यदि मेरी गिनती भक्तों में होने लगी, तो संसार मुझे याद करेगा और मेरा सम्मान करेगा। उस समय उसके अन्दर आत्म प्रतिष्ठा (self assertion) द्वारा आत्म रक्षा (self Preservation) की मौलिक वृत्तियाँ (Instincts) कार्य करती हैं। लौकिक प्रेम जब पारलौकिक प्रेम की ओर बढ़ जाता है तब सारा संसार ही दुःखप्रद प्रतीत होने लगता है। विश्व की प्रत्येक वस्तु उसे मार्ग का रोड़ा दिखाई देने लगती है, वह उनसे दूर भागना चाहता है। भगवत्प्रेमियों अथवा साधकों के विरागी हो जाने का यही भेद है।[१]

वियोग की यह तल्लीनता मानव तक ही व्याप्त न समझना चाहिये। विश्व का कण-कण उस परम तत्व के विरह में निरन्तर घूमता रहता है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि का निरन्तर चक्कर लगाना उसी परम विरह का फल है। प्राणियों का लौकिक वियोग इस परम वियोग का आभास मात्र है।

---

१ भगवत् दर्शन के अभाव में साधक को अपना जीवन निरर्थक प्रतीत होने लगता है।

> आली रे मेरे नैना बान पड़ी,
> चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरति उर बिच आन अड़ी
> कब की ठाढ़ी पन्थ निहारूं अपने भवन खड़ी
> कैसे प्राण पिया बिनु राखूं जीवन मूल पड़ी। —"मीरा"

इस विरह के कठिन कसाले झेलने के लिए तैयार होने का मुख्य कारण यह है कि उस संयोग के बाद फिर कभी भी वियोग नहीं होता है।

> बिरहिन बैठो रंग महल में मोतियन की लड़ी पोवै,
> एक बिरहन हम ऐसी देखी अंसुअन की माला पोवै।
> तारा गिण गिण रैण बिहानी, सुख की घड़ी कब आवै,
> मीरा के प्रभु गिरधर नागर मिलके बिछुड़ न जावै।
> —"मीरा"

विरह की आगि सूर जरि कांपा
रातिउ दिवस जरै ओहि तापा।*

विश्व व्यापी इस विरह भावना की ओर गोस्वामी तुलसीदास ने भी संकेत किया है।

सुन मन मूढ़ सिखावन मेरो।
हरिपद विमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझ सबेरो,
बिछुरे रवि ससि, मन नैनन ते पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन महं तहं रिपु राहु बड़ेरो,
यद्यपि अति पुनीत सुर सरिता तिहुं पुर सुजस घनेरो
तजे चरन अजहूं न मिटत नित बहिबो ताहू केरो।S

इसी शुद्ध भाव क्षेत्र में समस्त सृष्टि उसी परम तत्व में लीन होने को तड़पती हुई जान पड़ती है।

× × × ×

प्रेमपात्र के सम्बन्ध से अनेक वस्तुओं के साथ तादात्म्य, एक प्रकार का सुहृदय भाव स्थापित हो जाता है। कहते हैं मजनू को लैला के कुत्ते से भी गहरी मोहब्बत थी। प्रिय के वस्त्र, आभूषण आदि को छाती से लगा कर प्रिय समागम का अनुभव करना, विरहियों के लिए एक साधारण सी बात है। प्यारे के विरह में जलने वाला प्रत्येक पदार्थ विरहिणी मीरा को प्रिय है क्योंकि उसे देखकर प्यारे की याद हरी हो उठती है। यथा—

मतवारे बादर आये रे हरि के सनेसो,
कबहूं न लाये रे,
दादुर मोर पपइया बोलें कोयल सबद
सुनाये रे।
कारी अंधियारी बिजरी चमके विरहणि
अति डरपाये रे,

*—पद्मावत
S—विनय पत्रिका ८८

गाजे बाजे पवन मधुरिया मेहरु अति
झड़ लाये रे।
कारी नाम विरह कारी मीरा मन
हरि भाये रे॥

ऐसे प्यारे प्रिय की ओर ले जाने वाला मार्ग अत्यन्त प्रिय लगे, यह सर्वथा स्वाभाविक है।

यह पथ पलकन्ह आइ बोहारौं,
सीस चरन कै चलौं सिधारौं।*

भक्तजन साष्टांग दण्डवतें कर करके ब्रजभूमि की परिक्रमा करते हुए आज दिन भी देखे जा सकते हैं।

ऐकान्तिक साधारण प्रेम उदार बनकर भक्ति का रूप धारण करता है। इसीलिये बताया गया है कि भगवान् से प्रेम करने का सब से सरल उपाय यह है कि विश्व के प्रत्येक पदार्थ से प्रेम किया जाए। जो लोक में परमात्मा की व्यक्त प्रकृति का सरल आभास नहीं पा सकता है, वह कैसे कह सकता है कि उसे ईश दर्शन की अभिलाषा है? लोक की भलाई के लिए सब कुछ सहने को तैयार व्यक्ति ही भक्त बने जाने की इच्छा करने का अधिकारी है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसी भक्त जीवन की इच्छा की थी। यथा—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें संत सुभाव गहौंगो।
जथा लाभ सन्तोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम, सीतल मन, पर गुन नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देह जनित चिन्ता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरिभक्ति लहौंगो॥ऽ

*—पद्मावत।

ऽ—विनय-पत्रिका १७२

विरह की आगि सूर जरि कांपा
राति दिवस जरै ओहि तापा ।*

विश्व व्यापी इस विरह भावना की ओर गोस्वामी तुलसीदास ने भी संकेत किया है ।

सुन मन मूढ़ सिखावन मेरो ।
हरिपद विमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझ सवेरो,
बिछुरे रवि ससि, मन नैनन ते पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन महं तहं रिपु राहु बड़ेरो,
यद्यपि अति पुनीत सुर सरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो ।S

इसी शुद्ध भाव प्रेम में समस्त सृष्टि उसी परम तत्व में लीन होने को मचलती हुई जान पड़ती है ।

× × × ×

प्रेमपात्र के सम्बन्ध से अनेक वस्तुओं के साथ तादात्म्य, एक प्रकार का सुहृदय भाव स्थापित हो जाता है। कहते हैं मजनू को लैला के कुत्ते से भी गहरी मोहब्बत थी। प्रिय के वस्त्र, आभूषण आदि को छाती से लगा कर प्रिय समागम का अनुभव करना, विरहियों के लिए एक साधारण सी बात है। प्यारे के विरह में जलने वाला प्रत्येक पदार्थ विरहिणी मीरा को प्रिय है क्योंकि उसे देखकर प्यारे की याद हरी हो उठती है। यथा—

मतवारे बादर आये रे हरि के सनेसो,
कबहुँ न लाये रे,
दादुर मोर पपइया बोले कोयल सबद
सुनाये रे।
कारी अँधियारी बिजरी चमके बिरहणि
अति डरपाये रे,

---

*—पद्मावत
S—विनय पत्रिका ८०

गाजे बाजे पवन मधुरिया मेहर अति
झड़ लाये रे।
कारी नाम विरह कारी मीरा मन
हरि भाये रे॥

ऐसे प्यारे प्रिय की ओर से आने वाला मार्ग अत्यन्त प्रिय लगे, यह सर्वथा स्वाभाविक है।

वह पथ पलक ह जाइ बोहारों,
सीस चरन के चलों सिधारों।*

भक्तजन साष्टाङ्ग दण्डवतें कर करके व्रजभूमि की परिक्रमा करते हुए आज दिन भी देखे जा सकते हैं।

ऐकान्तिक साधारण प्रेम उदार बनकर भक्ति का रूप धारण करता है। इसीलिये बताया गया है कि भगवान् से प्रेम करने का सब से सरल उपाय यह है कि विश्व के प्रत्येक पदार्थ से प्रेम किया जाए। जो लोक में परमात्मा की व्यक्त प्रकृति का सरल आभास नहीं पा सकता है, वह कैसे कह सकता है कि उसे ईश दर्शन की अभिलाषा है? लोक की भलाई के लिए सब कुछ सहन को तैयार व्यक्ति ही भक्त कहे जाने की इच्छा करने का अधिकारी है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसी भक्त जीवन की इच्छा की थी। यथा—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें संत सुभाव गहौंगो।
जथा लाभ सन्तोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, सम, सीतल मन, पर गुन नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देह जनित चिन्ता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरिभक्त लहौंगो॥×

*—पद्मावत।
×—विनय-पत्रिका १०२

विरह में जब प्रेम चरम सीमा को पहुँच जाता है, तब प्रेमी दुःख की अनुभूति के परे हो जाता है और उसकी सारी वेदना प्रिय को भुगतनी पड़ती है। भगवान् को आर्त-भक्त-प्रिय होने का यही कारण समझ लेना चाहिए। यह अवस्था योगियों के परकाय प्रवेश जैसी अवस्था है।

प्रेम का क्षीर सागर अपार और अगाध है। विरहाग्नि से तप्त प्रेम द्वारा प्राप्त दृष्टि सर्वथा आनन्दमयी और निर्मल हो जाती है। विरह भाव पर आरूढ़ प्रेमी जब इस शुभ और निर्मल क्षीर सागर को पार करने लगता है, तब उसे चारों ओर सौन्दर्य का विकास एवं प्रसार दिखाई देने लगता है। शुभ्रता के प्रभाव से विरही "जीव संज्ञा" को त्याग कर शुद्ध आत्म-स्वरूप हो जाता है।*

अत्यधिक विरह जन्य पूरारूढ़ प्रेम में प्रिय-दर्शन के अतिरिक्त और कोई कामना शेष ही नहीं रह जाती है। लौकिक सुखों की तो चर्चा ही क्या है, स्वर्ग की तृष्णा और नरक का भय आदि भी विलीन हो जाते हैं। पद्मिनी की खोज में जाता हुआ राजा रत्नसेन समुद्र के बीचोबीच विचार करता है कि—

> नाहीं सरग न चाहौं राजू
>
> ना मोहि नरक सेति किछु काजू
>
> चाहौं ओहि का दरस पावा
>
> जेहि मोहि आनि प्रेम पथ लावा।[१]

निष्कामता का यह भाव पारलौकिक पक्ष में अपनी चरमावस्था को सहज ही प्राप्त हो जाता है। परमात्मतत्त्व के दर्शन के सम्मुख तीनों लोकों का सुख राज्य, मोक्ष, पद सब कुछ अप्राप्य हो जाते हैं। सुनिये राम दर्शन के लिए जाते हुए भरत के ये वचन :—

---

*"जो एहि क्षीर समुद्र महँ परे। जीव गँवाइ हंस होइ परे।" क्योंकि फिर वे "बहुरि न आइ मिले एहि छारा" (पद्मावत)। प्रेम की यह ज्योति अलौकिक है, और वह साधक धन्य है जिसके हृदय में विरह ताप द्वारा ऐसी ज्योति प्रज्वलित करने की सामर्थ्य हो।

१—पद्मावत।

अरथ न धरम न कामरुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन ॥*

कागभुशुण्डि ने तो अपने गुरुदेव से स्पष्ट कह दिया था कि—

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा
तब सुनिहउँ निरगुन उपदेशा ।×

प्रेम की अत्यधिकता के कारण हृदय में फिर किसी अन्य भाव के लिये स्थान रह ही नहीं जाता है। जिस हृदय में विरह की बेलि फैल रही हो वहाँ दूसरी चर्चा क्यों कर समा सकती है? विरहिणी प्रमदाओं ने इसी कारण उद्धव के ज्ञानोपदेश से मुँह फेर लिया था। प्रेम का अपनी चपल क्रीड़ा छोड़कर आराधना के रूप में परिणत हो जाना ही प्रेम का भक्ति में पर्यवसान है।

पारलौकिक पक्ष के विरह को इस लोक में व्यक्त करने में विरहिणी गोपिकायें विशेष समर्थ सिद्ध हुई हैं। उनके विरह वर्णन का हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व है। श्रीमद्भागवत में वर्णित 'रासलीला' एवं 'उद्धव-गोपी-संवाद' को लेकर हिन्दी में 'रास पञ्चाध्यायी' और 'भ्रमरगीत' सम्बन्धी अनेक रचनायें हुई हैं। इस विषय को लेकर प्राचीन, अर्वाचीन समस्त भक्त कवियों ने अपनी रसना पवित्र की। सूरदास, नन्ददास, सोमनाथ, रत्नाकर, कविरत्न सत्यनारायण, हरिऔध आदि कवियों ने इस प्रेम पयस्विनी की दिव्य धारा में गो खोलकर अवगाहन किया और मनमोहन की मुरली की मधुर टेर सुनी। उस बाँसुरी की टेर क्षण क्षण नवीन एवं मधुरतर ही प्रतीत होती रहती है। उसे सुनते-सुनते किसी का जी नहीं अघाता। बस 'तनिक और' यही इच्छा लगी रहती है।

लौकिक दृष्टि से रास पंचाध्यायी संभोग शृंगार की एक सजीव रचना है। जिसमें कृष्ण और गोपियों की रास क्रीड़ा का वर्णन किया गया है। ज्योत्स्ना विमण्डित रात्रि में सुधावर्षिणी मुरली की टेर सुनकर गोपियाँ अपने-अपने घरों से निकल पड़ती हैं। वे कृष्ण दर्शन के लिए व्याकुल हो जाती हैं। अनन्यता और तल्लीनता के कारण उन्हें लोक मर्यादा का ध्यान ही नहीं रहता और वे आकर कृष्ण

---

*—अयोध्याकाण्ड रामचरितमानस।

× उत्तरकाण्ड रामचरितमानस।

को चारों ओर से घेर लेती हैं। श्रीकृष्ण उन्हें पतिव्रत धर्म आदि की शिक्षा देते और उनसे अपने अपने घर लौट जाने को कहते हैं। इस व्यवहार से गोपिकाओं के हृदय को ठेस लगती है और वे मुरझा जाती हैं। सान्निध्य होते हुए भी प्रेम के अभाव के कारण वे विरह से सताई जाने लगती हैं।

जबै कह्यो पिय जाउ, अधिकम्पित चिंता बाढ़ी।
पुतरिन की सी पाँति, रहि गई इक टक ठाढ़ी॥

× × ×

हिय भरि विरह उसास, उसासन संग आवत भर।
चले कछुक मुरझाय, मद भरे अधर बिम्ब वर+॥

गोपियाँ अनुनय-विनय करती हैं। रास प्रारम्भ होता है। रास करते-करते श्रीकृष्ण अन्तर्हित हो जाते हैं। गोपियाँ विरहातुरा होकर उन्हें खोजने लगती हैं। वे कुञ्ज-कुञ्ज के लता वृक्षों से कृष्ण का पता पूछती फिरतीं और कृष्ण को आर्त भाव से पुकारने लगती हैं।

क्वासि क्वासि पिय महाबाहु, यों बदति अकेली।
महा विरह की धुनि सुनि रोवत मृगबेली॥*

इसके बाद श्रीकृष्ण प्रकट हो जाते और महारास प्रारम्भ होता है।

मुघरे साँवरे पिय संग,
निरततियाँ ब्रजबाला।
ज्यों घन मंडल मंजुल खेलति दामिनि माला,

+नन्ददास कृत रास पंचाध्यायी १, ४३, ४२

* वही २, ४४

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम्।
श्रीमद्भागवत स्कंध १०, अ० ३०, ३९

यह महारास अद्भुत था। इसे देख कर जड़, चेतन, देव, नर, सब मोहित हो गये थे।*

गोपिकाएँ कृष्ण वल्लभाएँ हैं। लौकिक दृष्टि से उनका यह आचरण नितान्त गर्हित प्रतीत होता है, उनका रातभर कृष्ण के साथ विहार करना परकीयता एवं निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। लोक में उक्त शंका उत्पन्न होगी, प्र यकार को इसका पूर्णज्ञान था अत: रास के बीच में ही ग्रन्थकार ने कृष्ण के पारब्रह्म रूप की ओर संकेत कर दिया है। किशोर कृष्ण को रास क्रीड़ा में मग्न देखकर ब्रह्मादि देवताओं को पराजित करने वाला कामदेव उस समय वहाँ आता है। कृष्ण उल्टे उसी के मन का मंथन कर डालते हैं।

> तब आयौ वह काम पंचसर कर हैं जाकें,
> ब्रह्मादिक कौं जीति बढ़ि रह्यो अति मद ताकें।
> निरखि ब्रज बधू संग, रंग भीने किसोर तन।
> हरि मनमथ करि मथ्यौ, उलटि वा मनमथ कौ मन।

काम का पराभव इस लौकिक शृङ्गार को साधारण कोटि के ऊपर उठा देता है। भक्त जनों ने कृष्ण और गोपियों के प्रेम में पारलौकिक पक्ष को ग्रहण किया है। वैष्णव कवियों ने कृष्ण को परमब्रह्म परमात्मा के रूप में ही अङ्कित किया है। गोपिकाओं का विरह साधारण लौकिक विरह नहीं, यह परमात्मा से आत्मा का वियोग है। कृष्ण और गोपियों का मिलन, साधारण संयोग नहीं, वह परमात्मा के साथ अनेक आत्माओं का एकीकरण है।×

पुरुष रूप में परमात्मा और स्त्री रूप में आत्मा की कल्पना भारतीय दार्शनिकों के दीर्घकालीन चिन्तन का फल है। ब्रह्म पुराण में स्पष्ट लिखा है कि परमात्मा ने सृष्टि की इच्छा से अपने आपको दो भागों में विभक्त किया। एक भाग पुरुष रूप में और दूसरा भाग स्त्री रूप में आविर्भूत हुआ।+

---

* नन्ददास कृत रासपंचाध्यायी २ २४

× वही २

+ द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषो ऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यान्तु सो ऽसृजत् विविधाः प्रजाः ॥ "ब्रह्मपुराण"

इसी विचार धारा से प्रभावित होकर निर्गुणपन्थी सन्त कवि भी राम को प्रीतम रूप में ग्रहण करने को बाध्य हुए। उनके द्वारा वर्णित विरह-निवेदन में भी यही दृष्टिकोण परिलक्षित होता है।

हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया।
राम मोर बड़ा मैं तन की लहुरिया॥

× × × ×

बालम आओ हमा गेह रे,
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब कोय कहै तुम्हारी नारी,
मोकों यह संदेह रे।

तथा विरहिन देय संदेसरा, सुनो हमारे पीव।
जल बिन मछली क्यों जिये, पानी में का जीव।—'कबीर'

प्रेम परलोक की वस्तु नहीं, वह इसी लोक की वस्तु है, वह हमारे हृदय में जन्म से ही विद्यमान है। पारलौकिक प्रेम का मार्ग भी इसी लोक में होकर जाता है। अपने प्रिय में परमात्मा की झलक पाकर ही हम परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कर सकते हैं। संसार में सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत करने का एकमात्र आधार प्रेम है। हम या तो किसी को अपना बना लें अथवा किसी के हो जावें। प्रत्येक दशा में अनन्यता अपेक्षित है। प्रेम का वास्तविक आनन्द स्वरूप हमारे सम्मुख तभी प्रकट हो सकेगा जब हम अपने प्रेम को विश्व व्यापी बना लें। अन्यथा वह चिरन्तन न बन सकेगा।

सान्ध्य प्रभात, नित्य अनेक मेघ खंड रक्तवर्ण होते दिखाई देते हैं। परन्तु वे किस अनुराग से लाल हैं, इस पर विरले ही ध्यान देते हैं। प्रकृति के समस्त महाभूत प्रेम के परम धाम को प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं। प्रकृति और पुरुष के इस चिर वियोग का अनुभव ही मानव जीवन और उसकी अनेक साधनाओं का सर्वोपरि फल है।

पृथ्वी और स्वर्ग, जीव और ईश्वर दोनों एक थे। न जाने किसने उनके बीच भेद डाल दिया!

(४)

श्रृंगार रस का मनोवैज्ञानिक विवेचन

रस सिद्धि—जनश्रुति नन्दिकेश्वर को रस सम्प्रदाय का सर्वप्रथम आचार्य मानती है, किन्तु उनके आचार्यत्व का कोई विशेष प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अतः भरतमुनि को ही रस मत का प्रवर्तक और सर्व प्रथम आचार्य स्वीकार किया गया है।

भरत ने वास्तव में रूपक को प्रधानता प्रदान की। भरत के उपरान्त बहुत समय तक रस मत अधिक लोकप्रिय नहीं रहा। परवर्ती अनेक आचार्यों ने रस को केवल नाटकों के उपयुक्त ही माना, तथा अलंकार रीति आदि को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया। इनमें भामह, दण्डी, उद्भट और रुद्रट के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये सब अलंकारवादी थे।

रस की मनोवैज्ञानिक व्याख्या का श्रेय भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र के टीकाकार अभिनव गुप्त को है। अपनी अतलस्पर्शी प्रतिभा के बल पर अभिनव गुप्त ने ही सर्व प्रथम रस स्थिति से सम्बन्ध रखने वाली अनेक भ्रान्तियों का समाधान किया और रस के महत्व की पूर्ण प्रतिष्ठा की। रस का सब से प्रबल पिष्ट-पेषण किया राजा भोज ने। उनके उपरान्त विश्वनाथ का नाम रस सम्प्रदाय में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

रस सिद्धान्त के अनुयायी रस को काव्य की आत्मा और रस सिद्धि को काव्यानुशीलन की चरम सफलता मानते हैं। उनके मत में काव्यानन्द एक अलौकिक आनन्द है। अलौकिक चमत्कार समन्वित होने से वह ब्रह्मानन्द सहोदर है।*

परन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिक उसे न तो ब्रह्मानन्द ही के समकक्ष मानता है और न उसका अलौकिक होना ही स्वीकार करता है। उसके मत में रस का अर्थ है अभिरुचि हमें जिस वस्तु अथवा चर्चा में अभिरुचि होगी, वही हमें अच्छी लगेगी। स्तर भेद से इसके घनत्व में अन्तर किंवा प्रगाढ़ता का आना स्वाभाविक ही है। कुछ काव्यों तथा नाटकों में हमें अधिक आनन्द आता है और कुछ में कम। अभिरुचि का स्तर भेद ही इसके मूल में है। अपने कथन

---

* 'रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' तैत्तिरीय उपनिषद् ११, ७, १

की पुष्टि में वे सबसे प्रबल यह तर्क उपस्थित करते हैं कि रस सिद्धान्त के आचार्य भरतमुनि ने भी रस का प्रतिपादन किसी अलौकिक आनन्द की प्राप्ति के हेतु नहीं किया था। रस की चर्चा 'रूपक' एवं नाट्य रचना के सम्बन्ध में की गई है, और नाट्य शास्त्र की रचना जनसाधारण के मनोरंजन के हितार्थ हुई थी।×

विनोदजननं लोके नाट्यमेतद्भविष्यति नाट्यशास्त्र १, ११०।

"रसो वै स रस ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति" आदि वाक्यों की प्रामाणिकता के विषय में ही संदेह किया जाता है।+

Dr A. Sankaran calls them wholy unhistorical Theories of Rasa and Dwni, page 3

रस के अलौकिक होने के पक्ष में सब से बड़ा तर्क यह उपस्थित किया जाता है कि यदि काव्यानन्द अलौकिक न हो तो हमें करुण काव्य के पठन-पाठन एवं दुःखान्त नाटक के श्रवण एवं अनुशीलन में क्यों कर आनन्द आए। दुःख एवं करुणा की ओर सामाजिक अग्रसर ही क्यों हो। अश्रुधारा के मध्य में होकर आनन्द की रेखा खींच देना ही काव्य का सर्वोपरि गुण है। डॉ० राकेश ने उक्त तर्क के विषय में अनेक प्रमाण उपस्थित किये हैं। उनका कहना है कि इसमें अलौकिकता की कौन सी बात है। लौकिक व्यवहार में भी हम करुणा एवं दुःख की ओर अग्रसर होते ही हैं। दुःखी के दुःख में हाथ बटाना तथा

× It is definitely not in search of any Perennial Bliss that thousands of the enthusiastic cinemagoers assemble at the picture house every day and in each city ...Even according to Bharat, the theatre is for the sake of entertainment.

Page 4 Psychological studies in Rasa by Dr Rakesha Gupta

+ Page 3 Theories of Rasa and Dhwani, Dr Sankaran

किसी की करुण कहानी सुनना मानव स्वभाव का एक बहुत बड़ा गुण और मनुष्य जीवन का एक मुख्य अंग है। इस प्रकार वह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काव्यानन्द सर्वथा लौकिक ही है। काव्य में जब तक हमारी रुचि बनी रहती है, तब तक हमें आनन्द आता रहता है। मन उचटा मानो काव्यानन्द भी समाप्त हुआ, फिर चाहे हम काव्य विशेष का पढ़ना जारी ही क्यों न रखें। =

काव्यानन्द को रुचि और लोक व्यवहार से सम्बद्ध बताते हुए डा० राकेश ने दो अन्य आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के उद्धरण उपस्थित किये हैं। यथा—

1 Relish of poetry is gennine interest to Perceive it अर्थात् वास्तविक अभिरुचि द्वारा काव्यानुभूति ही काव्यानन्द है (Page 180 Instinct of man, B James Drener)

उक्त लेखक ने अभिरुचि को उपयोगिता का भाव (Faculty of worthwhileness) बताया है।

2. The greater the interest, whether painful or pleasurable, the greater the attention may be regarded as a self-evident truth (P 131, Elements of psychology, by Mellove and Drummond)

अर्थात् जितनी ही अधिक अभिरुचि (चाहे सुखमय हो चाहे दुःखमय, होगी स्वभावतः) चित्त उतना ही अधिक एकाग्र होगा।

डा० राकेश के मतानुसार जहाँ तक काव्य का सम्बन्ध है, रुचि और आनन्द पर्यायवाची हैं रुचि मस्तिष्क का अधिक स्थायी संस्थान। क्रियाशील होते ही वह आनन्द रूप हो जाता है अतः आनन्द सिवाय रुचि प्रक्रयन होने के और कुछ नहीं ठहरता *

= Page 5 Psychological studies in Rasa.

* The terms relish and interest are almost synonymous with each other with reference to poetry, Interest is comparatively a permanent disposition of the mind and becomes relish when it is in action, and Relish is

इस प्रकार इनके मत में काव्यानुभूति अन्य सुख दुःख अनुभूतियों के समान ही हमारी एक साधारण अनुभूति है। कलाकार की कला तथा पात्र का अभिनय कौशल ही हमें अपनी ओर आकर्षित करते और उन्हीं से प्रभावित होकर हम काव्य की प्रशंसा कर बैठते हैं। यहाँ पूर्व-जन्म के संस्कारों का निराकरण करके व्यक्ति के अनुभव एवं उसकी अभिरुचि को प्रधानता प्रदान की गई है।

हम अभी बता चुके हैं कि रस की मनोवैज्ञानिक व्याख्या का श्रेय अभिनव गुप्त को है। इसी कारण संस्कृत साहित्य शास्त्र में अभिनव गुप्त का स्थान अद्वितीय है। डा० राकेश ने भी उनका उद्धरण देकर अपने पक्ष का समर्थन किया है।* "According to अभिनव गुप्त" सहृदय येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशात् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते हृदय संवाद भाजः सहृदयाः।

उक्त परिभाषा में heart full of responsiveness तथा ready to indentify himself with them ये दो वाक्यांश विशेष महत्व के हैं।

तन्मय होने का भाव (Indentifying with something other than one's ownself निश्चय ही एक उच्च स्तर की बात है। तदाकारता

---

nothing but a manifestation of interest If a poetical piece interests us, we must relish it And if we relish its perception, it must interest us xx "Page 81 Psychological studies in Rasa

*"Or a sahasadaya is one who with his wide experience of the world and with his constent acquaintance with the works of the great artists has got a heartfull of respons veness to the situation's described in poetry or on the boards and ready to indentify himself with them"

में निश्चय ही आत्म विस्मृति का भाव निहित रहता है और यह साधारण, लौकिक अभिरुचि से भिन्न ठहरती है। यही रस सिद्धान्त का साधारणीकरण है, जिसकी अनुभूति मधुमती भूमिका में मानी गई है। भावशक्ति अथवा साधारणीकरण की शक्ति थोड़ी बहुत सभी में होती है, अन्यथा जीवन की स्थिति ही असम्भव हो जाय, परन्तु जिस व्यक्ति की अनुभूतियाँ विशेष सजग होंगी, उसमें साधारणीकरण की शक्ति भी विशेष होगी। ऐसा ही व्यक्ति भावमय, भाषा के प्रयोग द्वारा अपने समृद्ध भावों के बल पर उनके प्रतीकों को सहज ही ऐसी शक्ति प्रदान कर सकता है, कि वे दूसरों के हृदयों में भी समान भाव जगा सकें, बस यही कवि एवं सच्चा कलाकार है।

हृदय की संवेदनशीलता (Heartful of responsiveness) के अनुसार हृदय में वासनात्मक संस्कारों की उपस्थिति परोक्ष रूप से स्वीकृत है। जल-सिंचन के समय पृथ्वी की सुगन्ध उसकी संवेदनशीलता प्रकट करती है। काव्य की सरसीमता सहृदय के हृदय में पूर्व संस्कारों को उद्बुद्ध करती और उसे एक चमत्कृत आनन्द का अनुभव कराती है।

काव्यानन्द में तन्मयता के अतिरिक्त अभिरुचि, व्यक्तिगत अनुभव एवं ध्यान मग्नता का निश्चय ही अपना स्थान एवं महत्त्व है, किन्तु उसे लोक-व्यवहार के स्तर पर लाकर खड़ा कर देना हमारे विचार से काव्यानन्द के महत्त्व को बहुत कुछ कम कर देना है।

इसमें निर्विवाद है ही कि काव्य, श्रव्य, पाठ्य किंवा दृश्य की आनन्द मग्नता में हमें स्वार्थ सम्बन्धों के संकुचित वायु मण्डल से ऊपर 'चाहे थोड़ी ही देर के लिए सही' उठा ले जाती है। यह आनन्द मग्नता एवं लोक विस्मृति की दशा कितने समय तक रहती है, यह बात दूसरी है, परन्तु इस लोक को भुला देने की काव्यानन्द में शक्ति अवश्य है। कलाकार की साधना, सहृदय के परिमार्जित संस्कार तथा काव्यानुशीलन की परिस्थितियों की अनुकूलता इस आनन्द विभोर करने वाली दशा की अवधि को बढ़ाने में अनिवार्यतः क्षमता शील है। यदि कवि अच्छा काव्य लिखने में समर्थ न हुआ, पाठक यदि एवं तथा सहृदय न हुआ, तो इसमें बेचारे काव्यानन्द का क्या दोष है? और

फिर संस्कृत साहित्य के रचयिताओं के सम्मुख सदैव आध्यात्मिक दृष्टिकोण रहता था। भारतीय तत्वज्ञान के अधिक मान्य होने के कारण रस सिद्धान्त विशेष लोक प्रिय हुआ। काव्यानन्द, प्रथम ब्रह्मानन्द की प्राप्ति को जीवन का परम लक्ष्य माना गया। इसी कारण रस सिद्धि और सत्वगुण का प्रादुर्भाव साथ-साथ माने गए हैं। इसी कारण उन्होंने रस शब्द में प्रायतः "सार" और स्वाद दोनों का सम्मिश्रण किया था और परमात्मा को सृष्टि का सार और चिदानन्द रूप दोनों ही मानकर रस को ब्रह्मानन्द सहोदर बता दिया था।

ब्रह्मानन्द तथा काव्यानन्द में सतोगुण का प्राबल्य रहता है। काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। ब्रह्मानन्द में सतोगुण का प्रकाश होने के कारण मन तमोगुण और रजोगुण में असम्पृक्त रहता है, यही बात काव्यानन्द के सम्बन्ध में भी कही गई है।

> सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्द चिन्मयः,
> वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः,
> लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः,
> स्वाकारवदभिन्नत्वे नायमास्वाद्यतेरसः
> रजस्तमोभ्याम स्पृष्ट मनः सत्वमिहो च्यते।
>
> "साहित्य दर्पण ३, २, ३, ४"

अर्थात् सतोगुण की प्रधानता के आधिक्य के कारण रस अखण्ड और स्वयं प्रकाशित होने वाली आनन्द की चेतना से पूर्ण रहता है। इसमें अन्य किसी ज्ञान का स्पर्श भी नहीं रहता है और यह ब्रह्मानन्द का सहोदर भासित होता है। संसार से परे का, (यह होता तो इसी लोक का है किन्तु साधारण लौकिक अनुभव से कुछ ऊपर उठा हुआ सा होता है) चमत्कार इसका जीवन प्राण है। किन्हीं किन्हीं सहृदय रसिकों द्वारा अपने से अभिन्न रूप में, (अर्थात्) आस्वाद करता और आस्वाद में कोई भेद नहीं रहता इसका आस्वाद किया जाता है। मन की सात्विक अवस्था वह होती है जिसमें रजोगुण और तमोगुण का स्पर्श नहीं रहता।

'दशरूपककार' धनञ्जय ने भी काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द का आस्वाद कहा है। "स्वादः काव्यार्थ संभेदादात्मानन्द समुद्भवः "दशरूपक ४, ४३"

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि सुख और आनन्द दो भिन्न वस्तुएँ हैं। आनन्द अतीन्द्रिय और स्थायी होता है।

हम लोक व्यवहार में भी दुःख और करुणा की ओर आकर्षित होते हैं और नाटक में भी। किसी की करुण कहानी सुनकर हम कभी-कभी अपने आप को भूल जाते हैं, यहाँ तक कि आत्मोत्सर्ग की भावना भी हमारे अन्दर जागरूक हो उठती है, इस परदुःखकातरता को यदि हम लोक से परे की वस्तु मान लें, तो हानि ही क्या है? लोक परलोक कोई दो भिन्न देश न होकर मानसिक संस्थापन के दो पृथक् स्तर मात्र हैं। एक दशा वह है जहाँ हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थों में ही तल्लीन रहते हैं और दूसरी अथवा उच्चतर दशा वह है जहाँ हम व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़कर आत्मोत्सर्ग करने को तत्पर अथवा परमार्थ भावना से प्रेरित हो जाते हैं। लोक में घटित होने वाली इन्हीं करुण घटनाओं के मार्मिक वर्णन हमें यदि इसी परमार्थ भावना की ओर ले जाते हैं, तो हमारे विचार से यह सर्वथा स्वाभाविक ही है। इस परमार्थ भावना में परमार्थ तत्त्व के साक्षात्कार द्वारा इस अलौकिक-आनन्द की सृष्टि उसका सहज परिणाम है। इस अलौकिक आनन्द की प्राप्ति के लिए कठिन साधना अपेक्षित है। कच्चे साधक और कच्चे योगी का ध्यान बार-बार उचट जाता है, यह सभी जानते हैं। काव्यानन्द यदि आनन्दानुभूति है, तो वह एक अलौकिक अनुभूति है, और यदि वह गहन अभिरुचि का प्रकाशन मात्र है तो यह अलौकिक कोटि का प्रकाशन है। यह अलौकिक चमत्कारमय्या रस दशा में सहृदय का हृदय लोक हृदय के साथ साम्य प्राप्त कर विश्वात्मा के साथ तदाकार हो जाता है, इसी को आचार्य शुक्ल ने हृदय की मुक्तावस्था[1] कहा है।

---

[1] जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है इसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष मानते हैं। "कविता क्या है",—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

रसमत के प्रवर्तक भरत आदि आचार्यों ने मनोरंजन और लोकरंजन, दोनों तत्वों की एक साथ ही चर्चा की है। लोकरंजन से अभिप्राय स्वार्थ सम्बन्धों से ऊपर उठना ही है।

काव्यानन्द—साहित्य शास्त्र में काव्यानुभूति अथवा काव्यानन्द सम्बन्धी प्रायः पाँच सिद्धान्त मिलते हैं।३

(१) काव्य का आनन्द प्रत्यक्षतः ऐन्द्रिय आनन्द है। इस मत का प्रवर्तक था प्लेटो। आधुनिक युग में इस मत का सबसे बड़ा पोषक हुआ ग्यू याय।

(२) काव्य का आनन्द आत्मिक आनन्द है। आत्मा सहज सौन्दर्य रूप है, सहज आनन्दरूप है। काव्य उसी का उपकरण है, अतः यह स्वभावतः आध्यात्मिक अनुभूति है। स्वदेश विदेश के आदर्शवादी आचार्य इसी मत को मानते हैं।

३—काव्यानन्द कौतूहल का आनन्द है अर्थात् मूल वस्तु और उसके काव्यांकित रूप की तुलना से प्राप्त आनन्द है। यह एरिस्टाटल का मत है।

४—काव्यानन्द सहानुभूति का आनन्द है। इस मत के प्रवर्तक हैं क्रोचे

---

३ पृष्ठ ६२, रीति काव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र।

डा० राकेश के मत में "काव्यानन्द मस्तिष्क की एक क्रिया है जिसका निर्माण काव्यानुभूति की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया स्वरूप भावुक के मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले विविध बोध द्वारा होता है। उनके मतानुसार उपर्युक्त पाँच सिद्धान्तों में एक भी सिद्धान्त मनोविज्ञान की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है।

उनके मतानुसार काव्य कला से प्राप्ति होने वाला आनन्द ठीक वैसा ही है जैसा आनन्द हमें सरकस देख कर प्राप्त होता है।

Poetic relish is a mental phenomenon and is composed of the feeling which are worked in the mind of the perceiver as a psychological relation to his perception of poetry. Feelings thus evoked can correspond with the emotion depicted in poetry' (Psychological on Analysis of Rasa Page 83)

२—काव्यानन्द सभी प्रकार के लौकिक आनन्दों से भिन्न एक अनुपम और विचित्र आनन्द है जो स्वतः सापेक्ष है। यह बहुत पुराना सिद्धान्त है। इस युग में डा० भ्रैडले द्वारा इसकी पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने काव्यानन्द के तत्वों काव्यानन्द द्वारा उत्पन्न चेतना के विभिन्न स्वरूपों आदि का विशद एवं विस्तृत विवेचन किया है।

<u>भाव का विवेचन</u>—शृङ्गार रस की चर्चा करने के पूर्व हम यह आवश्यक समझते हैं कि मनोविज्ञान में प्रयुक्त होने वाले कतिपय शब्दों के स्वरूप को स्पष्ट कर लिया जाए, ताकि यह स्पष्ट हो जाये कि स्थायी भाव, संचारी भाव, अनुभाव, तथा विभाव को मनोविज्ञान किस दृष्टि से देखता है, तथा शृङ्गार रस के स्थायी भाव 'रति' का मनोविज्ञान में क्या स्थान है।

साधारण रूप में हम कह सकते हैं कि बाह्य जगत के संवेदनों (Sensations) से मनुष्य के हृदय में जो विकार उठते हैं, वे ही मिल कर भाव की संज्ञा को प्राप्त होते हैं।

मनोविज्ञान में भाव (Feeling) हमारी सुख दुखात्मक अनुभूति है। मनोवेग (Emotion) भाव प्रधान होते हैं, किन्तु उनमें तीव्रता और वेग की मात्रा अधिक रहती है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने मनोवेग (Emotion) का स्वरूप इस प्रकार ठहराया है—

"विशेष बाह्य स्थितियों के संवेदन अथवा स्मृति एवं कल्पना के स्वतन्त्र विचारों द्वारा जाग्रत मनोदशा ही भाव है। जिसके दो प्रधान गुण हैं। भावात्मक अनुभूति और प्रयत्न ।"*

2—Emotion is a moved or stirred up state of the organism It is a stirred up state of feeling that is the way it appears to the individual himself It is a disturbed muscular and gradular activity that is the way it appears to the external observer (Psychology- page 338 R.S woodworth)

*Elements of psychology, Hellove and Drummond.

जीवधारी के शरीर की उत्तेजित अथवा मथित दशा ही भावदशा है। अथवा मनोवेग की दशा है। बोध पूर्ण चेतना अन्य इसभाव का स्वयं व्यक्ति को अनुभव होता है और उसकी मांस पेशियों एवं स्नायुओं के संचरण द्वारा अन्य व्यक्तियों को उस मनोदशा का पता चलता है।*

तथा—"एक जीव की अन्य जीव के प्रति स्थिति के ज्ञान के साथ इच्छा का संयोग ही मनोवेग (Emotion) है।" +

"हमारी मूल वृत्तियों द्वारा प्रेरित अनुभव और कार्य ही मनोवेग है। उनके मत में मूल वृत्तियों (Instincts) का सबसे अधिक महत्व है। मनोवेग उन्हीं का एक परिवर्द्धित स्वरूप है। उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि हमारी मूल वृत्ति के जाग्रत होते ही उस वृत्ति की अनुकूल पेशियों और स्नायुओं में ओज का संचरण होने लगता है। ओज संचरण की यह अवस्था उत्तेजना की अवस्था होती है, और प्रत्येक परिस्थिति में इस उत्तेजना में एक ऐसी विशिष्टता वर्तमान रहती है जिसके कारण हम उसे भय, क्रोध, घृणा आदि पृथक्-पृथक नाम दे सकते हैं। मूल वृत्ति की जागृति और उत्तेजना में निहित विशिष्टता, दोनों भाव के मानसिक रूप हैं, तथा स्नायु और पेशियों में ओज का संचरण उसके शारीरिक रूप के द्योतक है।"S

भाव के मानसिक और शारीरिक रूप के पूर्वापर क्रम को लेकर मनोविज्ञान के पंडितों में बहुत कुछ विवाद हुआ है। जेम्स, लेंग (lange) आदि के मत में भाव का मानसिक रूप शारीरिक रूप परिणाम है। (२) कुछ विद्वान शारीरिक रूप को मानसिक रूप का परिणाम मानते हैं। भारतीय दर्शन भी इसी द्वितीय मत को स्वीकार करता है। चेतना की पृथक् सत्ता स्वीकार करते समय यही मत समीचीन बैठता है। यथा—

काव्यार्थान भावयन्तीति भाव। —"नाट्य शास्त्र पाठ १"

---

* Science of Emotions, Dr Bhagwan Das.)

+ William Jams Phychology, p 376

S Page 321 An outline of Psychology William Mc-Dougall

तथा—विभावेनाहृतो यो अर्थस्त्वनुभावेन गम्यते ।
वागंग सत्वाभिनयैः सभाव इति संज्ञित ॥
"नाट्यशास्त्र पाठ ७,१"

इस प्रकार भाव मस्तिष्क की एक सुनिश्चित जाग्रत अवस्था है। इसे जाग्रत करने का कार्य विभावों द्वारा तथा उसे बाह्य रूप में प्रकाशित करने का कार्य अनुभावों द्वारा सम्पन्न होता है। इसी आधार पर सम्भवतः भरतमुनि ने शान्त रस की चर्चा नहीं की थी। क्योंकि शान्त रस के स्थायी भाव शम्, निर्वेद में मानसिक जागृत का निषेध ही रहता है शम् का अर्थ ही आवेग किंवा भाव रहित बोध है।ß

इस प्रकार मनोवेग (emotion) के तीन प्रधान तत्व अथवा पक्ष ठहरते हैं।

(१) उत्तेजित करने वाला कारण।

(२) मानसिक प्रभाव तथा

(३) शारीरिक प्रभाव अथवा शारीरिक चेष्टाओं में परिवर्तन।

रस के विभाव मनोवेग पक्ष के तत्व संख्या (१) 'उत्तेजक तत्व' के समकक्ष ठहराये जा सकते हैं, तथा अनुभावों को हम तत्व संख्या ३ अर्थात् शारीरिक प्रभाव के समकक्ष रख सकते हैं, स्थायी भाव और संचारी भावों को मनोवेग के मानसिक प्रभाव (Psychic or mental affection) के समान माना गया है। इस प्रकार रस और मनोवेग को पर्यायवाची मान कर उन्हें समान अर्थों और समान धर्मी बताने का प्रयास किया गया है, परन्तु हम इससे सहमत नहीं हैं। मनोवेग और रस में मौलिक अन्तर है। मनोवेग केवल चित्त के आवेग अथवा मस्तिष्क की उत्तेजित दशा है, केवल एक जाग्रतावस्था है। रस आनन्दमय मन की एकाग्रावस्था है। जिस दृष्टिकोण से आधुनिक मनोवैज्ञा

ßSama or tranquillity of mind as indicated by its very name can not be an affected state of consciousness It is therefore an unemotional feeling (Page 148, Psychological studies in Rasa.)

निकों ने मनोवेगों का विवेचन किया है, उसके अनुसार यह आवश्यक नहीं कि मनोवेग उद्बुद्ध हो जाने पर हमारा चित्त तन्मयी होकर आनन्दावस्था को प्राप्त हो ही जाये, हमारे विचार से रस-सिद्ध साध्य है और मनोवेग केवल साधनमात्र, "रस मनोवेग नहीं मनोवेग का आस्वादन है"। संभवतः इसी कारण संस्कृत-साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने प्रकृत भाव की परिभाषा न करके स्थायी भावों और संचारी भावों की परिभाषा की है। वे भाव को सिद्ध मान कर चले हैं। स्थायी भाव तथा संचारी भाव के स्वरूप-स्थापित करते समय हमने देखा था कि स्थायी भाव स्थिर हैं और संचारी भाव अस्थिर। यदि हम संचारीभाव को मनोविज्ञान की दृष्टि से देखें तो सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्थायी भाव एक स्थिर मनोवेग मनोदशा है और संचारी भाव,एक संचरणीय मनःवेग।

रति, शोक, हास्य क्रोध आदि स्थायी भाव सर्वदा स्थायी भाव न होकर कभी-कभी संचारी रूप में भी हमारे सम्मुख आ जाते हैं।

संस्कृत साहित्य शास्त्र के स्थायी भाव की तीन मुख्य विशेषताएँ हैं।

१—वह अपेक्षाकृत स्थिर है।

२—वह अपेक्षाकृत पुष्ट है।

३—और इसी कारण स्थायी भाव ही रस दशा को प्राप्त होता है, संचारी नहीं।

संस्कृत साहित्य शास्त्र में बयालीस भावों की गणना की गई है। इनमें नौ को स्थायी भाव माना है, और शेष तेंतीस को संचारी भाव कहा गया है। क्योंकि केवल ६ भावों में ही उपर्युक्त तीनों विशेषताएँ पाई जाती हैं।

'शम' निर्वेद को मन की स्थिर दशा (उत्तेजित के विपरीत) मानने के कारण शान्त रस को नाट्य रस नहीं माना गया है। इस प्रकार स्थायी भावों की संख्या केवल ८ ही ठहरती है, और भावों की केवल ४१। शम को भाव स्वीकार करने वाले आचार्यों ने निर्वेद को स्थायी और संचारी दोनों रूपों में स्वीकार किया है। 'निर्वेद' जब संसार की असारता के साथ ज्ञान से उत्पन्न होता है तब वह स्थायी भाव होता है और जब वह नैराश्य के कारण उत्पन्न होता है तब संचारी भाव रह जाता है।

आचार्यों ने जिस प्रकार शान्त रस का वर्णन किया है। उससे यह प्रकट होता है कि शान्त रस को रसों में स्थान देने की परम्परा नहीं रही है। 'काव्य प्रकाश' में भी पहिले आठ ही स्थायी भाव गिनाये गये हैं, पीछे से निर्वेद प्रधान शान्त रस को गिनाया है। "निर्वेदस्था विभावाक्य शान्तो पि नवमोरसः"* कह दिया है।

निर्वेद को अमंगल सूचक माना गया है। इसी कारण उसे सचारी भावों में प्रथम स्थान देते हुए संकोच होना स्वाभाविक था। इस सम्बन्ध में काव्य प्रकाश कार ने लिखा है कि अमंगल सूचक होने के कारण निर्वेद को पहिला स्थान नहीं देना चाहिए किन्तु यह स्थायी भाव भी होता है, इसलिए इसका संचारी भावों में प्रथम स्थान दिया है।S

शान्त को रसों में स्थान न दिये जाने के सम्बन्ध में साहित्य दर्पण में कहा गया है कि जहाँ न सुख हो न दुःख हो, न चिन्ता हो, न द्वेष हो, न राग हो, न कोई इच्छा हो।

न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता
न द्वेष रागो न काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः
सर्वेषु भावेषु समः प्रमाणः ॥
"साहित्य दर्पण ३, २४६ की वृत्ति में उद्धृत"

ऐसे स्वरूप वाले शान्तरस में सचारी नहीं हो सकते और यह रस नहीं कहा जा सकता।

शान्तरस को रस न मानने के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि नट में

---

* काव्य प्रकाश ४। ३२

S निर्वेदस्यामंगलप्रायस्य प्रथममनुपा देयत्वेपु पादनं
व्यभिचारित्वे पि स्थापिता भिनायं।
"काव्य प्रकाश ४, ३२ के पश्चात् की वृत्ति"

इसकी मुख्य प्रवृत्ति है संयोग। सभोग की इच्छा स्वाभावतः मित्र मित्र के साथ होती है।

११—परिग्रह वृत्ति (The Acquisitive Instinct) आवश्यकता के विचार से भविष्य के लिए प्रबन्ध करना। इसका मनोवेग है अधिकार भाव (Owner-ship)

१२—निर्माण वृत्ति (The constructive Instinct) इसका मनोवेग है सृजनोत्साह। मनुष्यों के मकान, चिड़ियों के घोंसले मकड़ी के जाले आदि इसके उदाहरण हैं। इनके निर्माण में वृत्ति एवं बोध का सुन्दर सम्मिश्रण पाया जाता है।

१३—चित्त आकर्षित करने की अथवा आर्त्त प्रार्थना वृत्ति (The Instinct of Appeal) इसका मनोवेग दैन्य कार्पण्य। इस वृत्ति के जाग्रत होने पर क्रोध और दुःख एक दूसरे से साथ मिल जाते हैं। इसका उद्देश्य होता है अन्य लोगों से विशेष कर माता पिता से सहायता एवं सुख की प्राप्ति।

इन १३ के अतिरिक्त तीन छोटी वृत्तियाँ और पाई जाती हैं। क्रीड़ा (Play) की वृत्ति अनुकरण की (Imitation) की वृत्ति, तथा हास्य की (Laughter) की वृत्ति।

उपर्युक्त १६ वृत्तियों में १२ वृत्तियाँ प्राय सभी जीवधारियों पशु-पक्षी मनुष्य जलचर आदि में पाई जाती हैं। केवल हास्य की वृत्ति ऐसी है जो केवल मनुष्यों में ही पाई जाती है। जानवर प्रसन्नता का अनुभव भी करते हैं और मर शौन भी, परन्तु वे हँसते नहीं हैं। दूसरों के दोषों और विकृतियों पर हँसने की प्रवृत्ति में बुद्धि तत्व का अधिक संयोग रहता है।

उपर्युक्त सोलह मूल वृत्तियों में अनुकरण, खेल तथा भोजनोपार्जन का सम्बन्ध शारीरिक क्रियाओं से है। अत उनके लिए साहित्य में विशेष स्थान नहीं रह जाता है। सृजनोत्साह और अधिकार भावना अहंकार में समा जाते हैं। कार्पण्य और कातरता प्रायः एक ही वस्तु हैं। इस प्रकार आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार ही सहज वृत्ति मूलक मनोवेगों की संख्या प्रायः दस ही रहती है। काम, हास्य, क्रोध, भय, घृणा, कौतुहल्य, वात्सल्य, अहंकार, कार्पण्य, सहानु

आचार्यों ने जिस प्रकार शान्त रस का वर्णन किया है। उससे यह प्रकट होता है कि शान्त रस को रसों में स्थान देने की परम्परा नहीं रही है। 'काव्य प्रकाश' में भी पहिले आठ ही स्थायी भाव गिनाये गये हैं, पीछे से निर्वेद प्रधान। शान्त रस को गिनाया है। "निर्वेदस्थायि विभावाख्यः शान्तो पि नवमोरसः"* कह दिया है।

निर्वेद को अमंगल सूचक माना गया है। इसी कारण उसे संचारी भावों में प्रथम स्थान देते हुए संकोच होना स्वाभाविक था। इस सम्बन्ध में काव्य प्रकाशकार ने लिखा है कि अमंगल सूचक होने के कारण निर्वेद को पहिला स्थान नहीं देना चाहिए, किन्तु यह स्थायी भाव भी होता है, इसलिए इसका संचारी भावों में प्रथम स्थान दिया है।S

शान्त को रसों में स्थान न दिये जाने के सम्बन्ध में साहित्य दर्पण में कहा गया है कि जहाँ न सुख हो न दुःख हो, न चिन्ता हो, न द्वेष हो, न राग हो, न कोई इच्छा हो।

> न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता
> न द्वेष रागो न काचिदिच्छा।
> रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः
> सर्वेषु भावेषु सम प्रमाणः॥
> "साहित्य दर्पण ३, २४६ की वृत्ति में उद्धृत"

ऐसे स्वरूप वाले शान्तरस में संचारी नहीं हो सकते और वह रस नहीं कहा जा सकता।

शान्तरस को रस न मानने के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि नट में

---

* काव्य प्रकाश ४: ३५

S निर्वेदस्यामंगलप्रायस्य प्रथममनुपा देयेऽपु पादन
व्यभिचारित्वे पि स्थायिता भिमार्थ।

"काव्य प्रकाश २, ३७ के पश्चात् की वृत्ति"

शम् की साधना असम्भव है। नट स्वभाव से चंचल होता है, उसमें शम् कहाँ।*

इसके उत्तर में कहा गया है कि नट निर्लिप्त है, जब करुण में वह दुःखी नहीं होता और रौद्र में वह गुस्सा नहीं करता तब शान्त के अभिनय के लिए ही क्यों आवश्यक समझा जाये कि वह सर्वथा शान्त हो जाये। "कश्चिन्न रसं स्वदते नटः" संगीत रत्नाकर "अनुभावों द्वारा" पद्मासन लगाकर बैठना नासाग्र-दृष्टि करना आदि शान्त रस का भी अभिनय हो सकता है। इस प्रकार शान्त रस केवल काव्य रस ही नहीं नाट्य रस भी माना जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संचारी भावों का निम्न लिखित प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है। S

१—आठों स्थायी भाव मानसिक प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हैं।

२—संचारियों में केवल १४ भाव मानसिक प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हैं।

३—चार संचारी भाव, आवेग रहित भाव।

४—पाँच संचारी भाव केवल शारीरिक संवेदन उत्पन्न करने में समर्थ हैं।

५—शेष संचारी भाव वास्तव में भाव ही नहीं कहे जाने चाहिए, क्योंकि ये मानसिक अथवा शारीरिक किसी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हैं।

श्रम निद्रा आदि पाँच संचारी भावों को शारीरिक प्रभाव उत्पन्न करने वाला माना गया है, उनके सम्बन्ध में भी यही समझना चाहिये कि ग्रन्थकर्ता की दृष्टि में उनका मानसिक प्रभाव ही अभिप्रेत था।

कुछ संचारियों के मानसिक पक्ष की सामर्थ्य देखकर ही सम्भवतः भरत ने

---

* शान्तस्य शमसाध्यत्वान्नटे
च तदसंभवात्।
अष्टावेव रसा नाट्ये
शान्तस्तत्र न युज्यते।
"रस गंगाधर पृष्ठ २१"

S (Page 144 Psychological Analysis of Rasa-Dr Rakesh)

भरतमुनि के विरोध में यह कह डाला था कि स्थायी भावों के समान संचारी भाव भी रस दशा को प्राप्त हो सकते हैं। यथा—

रसनाद्रसत्वमेषां मधुरादीनामिवोक्तमाचार्यैः।
निर्वेदादिष्वपि तन्निकाममस्तीति ते पि रसाः ॥

"काव्यालंकार"—पृष्ठ १५०,

अनुभावों के सम्बन्ध में एक बात समझ लेनी चाहिए। सात्विक अनुभाव अन्य प्रकार के अनुभावों से भिन्न होते हैं अन्य अनुभावों की भाँति इन पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं लगाया जा सकता है। इनका इच्छा पूर्वक अनुकरण नहीं किया जा सकता है, सात्विक अनुभाव मन में उत्पन्न होते हैं, परन्तु वे मन की दशा नहीं हैं। *

स्थायी भाव और संचारी भाव का अन्तर मनोविज्ञान के मनोवृत्ति (sentiment) और मनोवेग (emotion) के बीच पाये जाने वाले अन्तर जैसा है।

मनोवृत्ति (sentiment) एक स्थिर मनोदशा है, मनोवेग (emotion) एक क्षणस्थायी अनुभव है।§

इस प्रकार मनोवृत्ति तथा मनोवेग में स्वाभाविक भेद के अतिरिक्त एक और भेद रहता है। मनोवेग हमारी स्वाभाविक वृत्ति अथवा मूल वृत्तियों

---

*इस सत्त्व नाम मन प्रभवम् "नाट्यशास्त्र"।

§ Emotion is a feeling experience sentiment is an acquired disposition, one gradually built up through many emotional experiences and activities it is an organisation (or a part of total organisation Science of Emotions, Dr Bhagwan Das)

अर्थात् मनोवेग एक क्षणस्थायी अनुभव है। मनोवृत्ति एक स्थिर वृत्ति है जिसका कि अनेक मनोवेगों और मानसिक क्रियाओं द्वारा क्रमशः निर्माण होता है। मनोवृत्ति एक प्रकार का मानसिक संस्थान है अथवा उसका एक अंश है।

में सम्बद्ध है तथा मनोवृत्ति, में अनिवार्यतः बौद्धिक तत्व विद्यमान रहता है, उसका विचार (idea) से सम्बन्ध है।

मनोवृत्ति (sentiment) का निर्माण मनोवेगों के सम्मिश्रण, उनकी पुनरावृत्ति और उनमें बौद्धिक तत्व के क्रमिक समावेश के द्वारा होता है। यह एक स्थिर मनोदशा है। मनोवेगों का सम्बन्ध हमारी मूल प्रवृत्तियों (instincts) से है।

अब केवल दो बातों का विवेचन शेष रह जाता है। मूल प्रवृत्तियों का (instincts) विवेचन तथा मनोवेगों का सम्मिश्रण, पहले हम मूल प्रवृत्तियों को लेते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्राणी मात्र के भीतर कुछ मूल वृत्तियाँ होती हैं। इन्हीं के अनुसार वह प्रत्येक कार्य करता रहता है। हमारी आँख के सामने यदि कोई एकाएक हाथ हिला देता है, तो हमारे पलक बन्द हो जाते है, अथवा यदि कोई भयानक अवसर उपस्थित हो जाये, तो हम चिल्लाने लगते अथवा भाग खड़े होते हैं। हमारे उक्त कार्यों में भय अथवा अपने बचाव की वृत्ति कार्य करती है। कुछ लोग किसी बलशाली व्यक्ति को देखकर भाग खड़े होंगे और कुछ लोग उससे लड़ने को तैयार हो जायेंगे। एक कुत्ता तो ऐसा होता है जो हमारी लाठी को देखकर भाग खड़ा होता है और एक कुत्ता ऐसा होता है जो लाठी को देख गुर्राने लगता है, शायद प्रहार करने पर हमारे ऊपर आक्रमण भी कर दे, यहाँ पर युद्ध की प्रवृत्ति कार्य करती है। समान अवसरों पर सदैव एक ही प्रवृत्ति कार्य करे, ऐसा नहीं होता। प्रवृत्ति भेद, देश, काल और पात्र अवलम्बित है। अमुक जाति, अमुक प्राणी, अमुक अवसर पर अमुक प्रकार व्यवहार करेगा, ऐसा कोई सामान्य नियम स्थिर नहीं किया जा सकता है। प्रायः एक साथ, एक से अधिक प्रवृत्तियाँ भी कार्य करती रहती हैं। मन में भयभीत होते हुए भी हम प्राण बचाने को तैयार हो जाते हैं बन्दर घुड़की इसका सुन्दर उदाहरण है।

एक साथ एक से अधिक वृत्तियाँ (instinct) कार्य करने का कारण है

प्रवृत्ति के साथ उपार्जित ज्ञान (intelligence) का सम्मिश्रण❀ अन्दर को दोनों ही बातों का ज्ञान है। मनुष्य उसे लाठी से मार देता है तथा साथ में लाठी होते हुए भी वह कभी-कभी उसकी घुड़की से डर कर भाग भी है। इसी कारण वह अपने बचाव की तैयारी तथा घुड़की देने के दोनों कार्य एक साथ करने लगता है।

इस प्रकार नित्य व्यवहार तथा जीवन के अनुभवों के द्वारा हमारी सहज प्रेरक वृत्तियों में बुद्धि तत्व का समावेश होता रहता है और हमारे प्रवृत्तिजन्य कार्य क्रमशः बौद्धिक होते पाये जाते हैं। स्पष्ट है कि पशु प्रायः क्योंकर सहज प्रवृत्ति के अनुरूप व्यवहार करते हैं, तथा मानव को बुद्धिसमन्वित प्राणी कहने का क्या कारण है। जीवधारियों में ज्यों-ज्यों हम नीचे से ऊपर की ओर जाते हैं, त्यों-त्यों हमें बुद्धि का तत्व का क्रमिक विकास मिलता जाता है। बुद्धि-तत्व के आधार पर ही जीवधारियों की विभिन्न श्रेणियों का निर्माण हुआ है, जो मनुष्य बिना विचारे चाहे जो कुछ कर बैठता है, उसे हम नित्य व्यवहार में पशुवत बताते ही हैं। बुद्धि विहीन मनुष्यों पर पशुता का आरोप करना हमारा स्वभाव बन गया है। मूर्खों को बैल अथवा गधा कह कर सम्बोधित करने के वाक्यिक प्रयोग से हम भली भाँति अवगत हैं।

जीवधारियों की मूल प्रवृत्तियाँ (instinct) तथा प्रत्येक मूल प्रवृत्ति से सम्बद्ध भाव अथवा मनोवेग (emotion) का क्रम निम्नलिखित है :ऽ

१:—अपत्य स्नेह वृत्ति अथवा संरक्षण की प्रवृत्ति (Parental or Protective instinct) इस प्रवृत्ति से सम्बद्ध मनोवेग है वात्सल्य (love, sacrifice)।

२.—संघर्ष वृत्ति (The instinct of combat)।

जब प्राणी के कार्य क्षेत्र विशेषकर भोजनोपार्जन अथवा मैथुन में कोई

❀Page 13 An outline of Psychology william Mc Dougall

ऽAn outline of Psychology william Mc Dougall (chap v)

मुसकी मुख्य प्रवृत्ति है संभोग । संभोग की इच्छा स्वाभावतः भिन्न-लिंग के साथ होती है।

११—परिग्रह वृत्ति (The Acquisitive Instinct) आत्म-रक्षा के विचार से भविष्य के लिए प्रबन्ध करना । इसका मनोवेग है अधिकार भावना (Owner-ship)

१२—निर्माण वृत्ति (The constructive Instinct) इसका मनोवेग है सृजनोत्साह । मनुष्यों के मकान, चिड़ियों के घोंसले मकड़ी के जाले आदि इसके उदाहरण हैं । इनके निर्माण में वृत्ति एवं बोध का सुन्दर सम्मिश्रण पाया जाता है ।

१३—चित्त आकर्षित करने की अथवा आर्त प्रार्थना वृत्ति (The Instinct of Appeal) इसका मनोवेग दैन्य कार्पण्य । इस वृत्ति के जाग्रत होने पर क्रोध और दुःख एक दूसरे से साथ मिल जाते हैं । इसका उद्देश्य होता है अन्य लोगों से विशेष कर माता पिता से सहायता एवं सुख की प्राप्ति ।

इन १३ के अतिरिक्त तीन छोटी वृत्तियाँ और पाई जाती हैं। क्रीड़ा (Play) की वृत्ति अनुकरण की (Imitation) की वृत्ति, तथा हास्य की (Laughter) की वृत्ति ।

उपर्युक्त १६ वृत्तियों में १२ वृत्तियाँ प्राय सभी जीवधारियों पशु-पक्षी मनुष्य जलचर आदि में पाई जाती हैं । केवल हास्य की वृत्ति ऐसी है जो केवल मनुष्यों में ही पाई जाती है । जानवर प्रसन्नता का अनुभव भी करते हैं और मद होते भी परन्तु ये हँसते नहीं हैं । दूसरों के दोषों और विकृतियों पर हँसने की प्रवृत्ति में बुद्धि तत्व का अधिक संयोग रहता है ।

उपर्युक्त सोलह मूल वृत्तियों में अनुकरण, खेल तथा भोजनोपार्जन का सम्बन्ध शारीरिक क्रियाओं से है । अत. उनके लिए साहित्य में विशेष स्थान नहीं रह जाता है । सृजनोत्साह और अधिकार भावना अहंकार में समा जाते हैं । कार्पण्य और कातरता प्रायः एक ही वस्तु हैं । इस प्रकार आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार ही सहज वृत्ति-मूलक मनोवेगों की संख्या प्रायः दस ही ठहरती है । काम, हास्य, क्रोध, भय, घृणा, औत्सुक्य, वात्सल्य, अहंकार कार्पण्य, सहानु

भूति (उपेक्षा)। प्रथम सात तो संस्कृत साहित्य के स्थायी भाव ही हैं। यदि कार्पण्य और सहानुभूति को शोक के दो तत्त्व मान लें, तो आठवां स्थायी भाव शोक भी इन्हीं में परिगणित किया जा सकता है। यहाँ पर केवल दो बातें रह जाती हैं। अहंकार, कार्पण्य तथा सहानुभूति। संस्कृत साहित्य के स्थायी भावों की गणना में नहीं हैं। वात्सल्य को कुछ आचार्यों ने दसवां स्थायी माना है और कुछ ने उसे रति स्थायी भाव का ही एक उपभेद मान लिया है।

दूसरी विचारणीय बात यह है कि क्या काम और रति समानार्थी हैं। मनोविज्ञान का 'काम' ही क्या संस्कृत साहित्य के शृंगार रस का 'रति' स्थायी भाव है।

वात्सल्य रस को शृंगार रस का उपभेद स्वीकार करते ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि रति स्थायी भाव में कम से कम दो मनोवेग निहित हैं। काम और वात्सल्य। हम यदि अधिक गम्भीरता पूर्वक विचार करें तो हम देखेंगे कि रति स्थायी भाव में काम तथा वात्सल्य के अतिरिक्त आत्मसमर्पण, सामाजिकता, आत्मरक्षा सघर्ष, आदि अन्य कई और मनोवेग आ जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोविज्ञान के मनोवेग (Emotions) संस्कृत साहित्य के स्थायी भाव नहीं कहे जा सकते। रति का चर्चा हम ऊपर कर ही चुके हैं। इसी प्रकार निर्वेद भी एक शुद्ध मनोवेग नहीं है। इसमें एक से अधिक मनोवेगों के साथ बौद्धिक तत्त्व का सम्मिश्रण है और वह एक व्यवस्थित मनोदशा है। तब मनोविज्ञान के क्षेत्र में संस्कृत-साहित्य शास्त्र के स्थायी भावों का क्या स्थान है।

मनोविज्ञान में मनोवेगों के तीन भेद माने गये हैं यथा।

(१) मौलिक मनोवेग (Primry Emotions) के हमारे अनुभव के सर्वमान्य स्वरूप हैं। मौलिक अनुभव हमारी मूल प्रवृत्ति की कार्य शीलता का परिचायक होता है। ये सीधे मूल प्रवृत्तियों (Instincts) से सम्बन्धित है। इनकी चर्चा हम ऊपर कर आये हैं। भय काम आदि मौलिक मनोवेग (Primary Emotions) हैं।[१]

1 (Page 325, an out line of psychology, willion Mec, Dougale)

२—मिश्रित अथवा गौण मनोवेग। (Blended or secondary Emotions) जब एक से अधिक वृत्तियां एक साथ कार्य करती हैं, तो हमें एक ऐसे मनोवेग का अनुभव होता है जिसमें प्रत्येक वृत्ति से सम्बन्धित मनोवेग का प्रभाव परिलक्षित रहता है, इस प्रकार एक मिश्रित मनोवेग का जन्म होता है। इसके स्वरूप को समझने के लिए सूर्य के प्रकाश का ध्यान कर लेना चाहिए। सूर्य की उज्ज्वल रश्मियों में सातों रंग समाए रहते हैं। उनके मिश्रित प्रभाव से श्वेत धूप बन जाती है। दया के भाव में अपत्यस्नेह अथवा संरक्षण भाव तथा सहानुभूति का सम्मिश्रण रहता है। अपमान अथवा तिरस्कार में क्रोध, तथा घृणा के भावों के साथ अहंकार का भाव भी सम्मिलित रहता है। इसी प्रकार प्रशंसा में आश्चर्य एवं आत्म समर्पण के मनोवेगों का सुखद संयोग रहता है।

३—व्युत्पन्न मनोवेग (Derived Emotions) जो मनोवेग स्वतन्त्र न होकर किसी अन्य मनोरेग के आश्रित हो उन्हें व्युत्पन्न मनोवेग कहते हैं। बहुत से मनोवेगों का किसी मूल प्रवृत्ति से सीधा सम्बन्ध नहीं होता। विशेष परिस्थिति अथवा विशेष कारण उपस्थित होने पर वे किसी प्रवृत्ति जन्य कार्य के मध्य में उत्पन्न हो जाते हैं। इन्हें 'व्युत्पन्न' मनोवेग कहते हैं, जैसे हर्ष, सुख, दुःख, नैराश्य, आशा, आशंका, विश्वास। इनके मूल में इच्छा रहती है। किसी इच्छा की पूर्ति अपूर्ति विभिन्न व्युत्पन्न मनोवेगों का कारण बनती है।[१] इस प्रकार हम निम्न लिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

१—संस्कृत साहित्य का रस विवेचन सर्वथा वैज्ञानिक है।

२—स्थायी भाव मौलिक मनोवेगों के समान हैं। अपने स्थायित्व एवं व्यापक प्रभाव के कारण वे मानव जीवन की मूल वृत्तियों के समान ठहरते हैं।

३—संचारी भावों की स्थिति व्युत्पन्न मनोवेगों (Derived Emotions) के समान है। कुछ संचारी भाव मौलिक मनोवेगों के भी समकक्ष

---

१ Chapter XII An outline of Psychology, William Mc dougall

उभरते हैं। कुछ-सचारी भाव मिश्रित मनोवेग (Blended Emotions) भी होते हैं चिन्ता आदि। कोई एक मनोवेग न होकर मनोवेगों के मिश्रण हैं।

४—प्रेम कोई एक मनोवेग (Emotion) नहीं, एक मनोवृत्ति अथवा व्यवस्थित मनोदशा (Sentiment) है।

प्रेम की मनोदशा का निर्माण मौलिक तथा मिश्रित मनोवेगों के साथ व्युत्पन्न मनोवेगों के सुन्दर सम्मिश्रण से होता है। यथा, आकर्षण आदि कोई भी मनोवेग आरम्भ होकर अन्य सहायक मनोवेगों का सहयोग प्राप्त करता रहता है। किसी के प्रति आकर्षित हो जाने पर आत्म प्रतिष्ठा, समर्पण, सामाजिकता आदि विभिन्न प्रकार के भावों की वृद्धि होती रहती है और उसके साथ आशंका, चिन्ता, स्मृति हर्ष, शोक आदि विभिन्न व्युत्पन्न मनोवेगों का संयोग होता रहता है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के मनोवेगों का विभिन्न प्रकार से सयोग होते रहने से हमारे हृदय में एक विचित्र आनन्ददायिनी मनोदशा की प्रतिष्ठा हो जाती है, जिसे हम प्रेम कहते हैं।

<u>हमारे मौलिक अनुभव</u>—व्यापक और तीव्र मनोवेग मानव स्वभाव के मूल अंग स्वीकार किये गये हैं, पाश्चात्य दर्शन में इन्हें मौलिक भाव (Elemental passions) कहा गया है। इनका सीधा सम्बन्ध मानव आत्मा के मूल भूत गुण राग द्वेष से है। आत्मा की प्राथमिक अभिव्यक्ति है अस्मिता, अहकार जिसे आज के मनोविश्लेषण में अह (Ego) या आत्माभिव्यक्ति (Self Assertion) के रूप में निर्विरोध स्वीकार किया है। अहकार की अभिव्यक्ति के दो रूप है।[1] राग और द्वेष। जो मानव जीवन के दो मौलिक अनुभावों, सुख और दुःख के वैज्ञानिक पर्याय मात्र हैं। बाह्य जगत के सवेदनों (Sensations) के कारण हमारे भीतर उठने वाले मनोविकार ही मौलिक अनुभव (Feelings) अथवा वेदना हैं। इन्हें प्रेम करने की प्रवृत्ति (libido) और नाश करने की प्रवृत्ति (Thanatos) कहा गया है। इस सिद्धान्त के

---

1 Pleasure and Pain are, by common consent, the true types of feelings, others are blended (Page 347, An outline of Psychology, "William Mc Dougall)

अनुसार मानव जीवन के मूल प्रेरक भाव केवल दो, राग और द्वेष, सुख दुःख के भाव ही ठहरते हैं ।

कुछ विद्वानों में एक विस्तारभाव को ही जीवन की एक मात्र प्रमुख वासना मान्य है२ । इस प्रकार जीवन का मौलिक भाव केवल एक प्रेम ही ठहरता है । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आयन डी० सटी (Ian D Suttie) ने अपनी पुस्तक (origins of Love and Hate) में इस प्रश्न को लेकर विशद विवेचन किया है । उनके मतानुसार भी मानव जीवन का मौलिक भाव केवल प्रेम अथवा राग है । जीवनेच्छा के विचार से बालक में साथी की आवश्यकता की भावना जन्मजात होती है । यही भावना आगे चल कर पितृ-प्रेम, दाम्पत्य प्रेम आदि रूपों में विकसित होती है ।"

डा० सटी ने आगे चलकर कहा है कि *पृथकत्व के कारण ही निराशा* तथा घृणा का जन्म होता है । घृणा अथवा द्वेष की स्वतन्त्र स्थिति नहीं है । प्रेम की विफलता, राग का पराभव ही घृणा अथवा द्वेष की उत्पत्ति का कारण बनता है । *ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार प्रकाश के अभाव का नाम अन्धकार है*, वैसे अन्धकार की स्वतन्त्र सत्ता नहीं । अतः स्पष्ट है कि घृणा मौलिक भाव नहीं उसकी उत्पत्ति प्रेम नैराश्य से होती है ।१

विलियम मैकडूगल के मतानुसार "हमारी प्रेम 'राग' भावना सामाजिक अनुबन्धों के लिए नये मार्ग खोजती रहती है । युवावस्था में हम अपना प्रेम क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत करते रहते हैं । सभ्यता और संस्कृति का यहीं से आरम्भ मान लेना चाहिए । युवावस्था में ही हमारी बोध वृत्तियाँ पूर्णतः सजग हो जाती हैं ।"*

इस प्रकार राग, स्व विस्तार अथवा संयोग इच्छा ही मानव जीवन के मूल में ठहरते हैं । इस संयोगेच्छा को किन्हीं मनोविश्लेषकों ने पूर्णत्व प्राप्ति की

---

2 Chapter II, Science of Emotions, Dr Bhagwan Das Page 180, An outline of psychology)

1 Chapter IV, origins of Love and Hate.

* Page 180, An outline of Psychology

इच्छा अथवा अपने बिछुड़े हुए भाग की खोज करता है। यह राग ही मूलतः प्रणय का काम है।[1]

मनोविज्ञान के पंडितों के इस विषय में प्रायः तीन मत हैं। (१) फ्रायड का मत, जो 'काम' को जीवन की मूल वृत्ति मानता है। लैंगिकता अथवा योनि भावना को लेकर चलता है। (२) आडलर का मत, जो हीन-भाव अथवा क्षति पूर्ति को लेकर चलता है और (३) युङ्ग का सिद्धान्त जो उक्त दोनों को जीवनेच्छा "या स्वत्वरक्षा, अस्मिता के पोषण" की शाखायें मानता हुआ जीवनेच्छा का मूल मानता है। गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर उक्त तीनों सिद्धान्तों में विशेष मौलिक अन्तर नहीं है। तीनों राग, आकर्षण, संयोगेच्छा अथवा स्वत्व रक्षा (स्व विस्तार जिसका अन्य नाम है) को लेकर चलते हैं। आधुनिक मनोविश्लेषकों के मत में प्रेम आत्मा-रक्षा का रूप है। उसमें अपूर्ण की पूर्णता का भाव लगा रहता है। यौन आकर्षण में भी एक अपूर्ण की पूर्णता रहती है। एक ही पिण्ड में दो योनियों का विकास हुआ। पुरुष में स्त्री की कमी पूरी हो जाती है और स्त्री में पुरुष की। इसीलिए दोनों परस्पर नित्य आकर्षित होते रहते हैं।

डा० भगवान दास ने राग द्वेष को आधार मान कर संस्कृति साहित्य शास्त्र के स्थायी भावों को विभाजित किया है। उनके मतानुसार उत्तम, सम, अधम के आधार पर राग, प्रणय, प्रेम और करुणा का रूप धारण कर लेता है, तथा द्वेष, भय, क्रोध, और घृणा का। इस प्रकार भाव जगत का विस्तार होता जाता है। उनके मत का सारांश इस प्रकार है—

"संस्कृत साहित्य के सभी स्थायी भावों का इन्हीं दो मूल भावों 'राग द्वेष' के अन्तर्गत समाहार हो जाता है। रति, हास, उत्साह और विस्मय साधारणतः अस्मिता के उपकारक होने के कारण राग के अन्तर्गत आ जाते हैं तथा शोक क्रोध, भय और जुगुप्सा अस्मिता के विरोध अथवा अपकारक होने के कारण

---

1 Each of us when separated is but indenture of a man and he is always looking for his other half The desire and pursuit of the whole is Called Love(Chapter III, The Mansions of Philosophy, By will Durant)

द्वेष के अन्तर्गत आ जाते हैं, निर्वेद में इन दोनों का सामञ्जस्य हो जाता है। उसमें अस्मिता की समरसता की अवस्था होती है। पहले 'चार भाव मधुर हैं, अतः सुख की अभिव्यक्ति करते हैं अन्य दुःख की अभिव्यक्ति करते हैं तथा कटु हैं। निर्वेद में दोनों का समन्वय है।१

उक्त विभाजन आत्यन्तिक नहीं कहा जा सकता है। तत्वतः न तो कोई प्रवृत्ति शुद्ध राग ही हो सकती है और न शुद्ध द्वेष ही। वास्तव में राग और द्वेष (Libido and thanatos) के संघर्ष एवं सम्मिश्रण से ही हमारा मानसिक जीवन (Psychic Life) संचालित है। यही कारण है कि हमें शोक में राग और उत्साह के युयुत्सा रूप में द्वेष के अंश मिलते हैं। यही बात 'रति' इत्यादि अन्य स्थायी भावों के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए।

श्रृङ्गार रस और प्रेम—श्रृङ्गार रस का स्थायी भाव है रति और इसका व्यवहारिक रूप है प्रेम। "रति" भाव जब अपने से छोटों के प्रति होता है, तब हम उसे 'स्नेह' कहते हैं, जब बराबर वालों के प्रति होता है, तब हम उसे प्रेम कहते हैं और जब यही "रति" भाव बड़ों के प्रति होता है, तो हम उसे 'श्रद्धा' कहते हैं। विकसित होकर श्रद्धा ही 'भक्ति के रूप में परिणत हो जाती है, अथवा देव विषयक रति का ही नाम भक्ति है। इस प्रकार रति स्थायी भाव द्वारा वात्सल्य, श्रृङ्गार तथा भक्ति इन तीनों रसों का सृजन होता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि श्रृङ्गार रस तभी होता है जब स्त्री पुरुष विषयक प्रेम की चर्चा होती है। दाम्पत्य भाव ही श्रृङ्गार का मूल है अन्यथा समवयस्कों का प्रेम मैत्री ही कहलायगा। पात्र भेद के कारण ही "रति" द्वारा तीन विभिन्न रसों का सृजन होता है, किन्तु तीनों ही दशाओं में स्थायी भाव एक ही, 'रति' ही रहता है। यही कारण है कि वात्सल्य तथा भक्ति रसों को स्वतन्त्र न मान कर "श्रृङ्गार रस" के ही अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। इस प्रकार स्थायी भाव रति तथा तद्जन्य श्रृङ्गार रस अत्यन्त व्यापक ठहरते हैं।

प्रेम के मूल में "काम" मानने वाले सिद्धान्त को मानने वालों में फ्रायड ने यौनि भावना को विश्व के समस्त क्रिया कलापों का मूल माना है। उनके

१ Chapter X The science of Emotions.

मतानुसार यौन भावना बालक में क्षुधा वृत्ति के समान जन्मजात होती है और वही समस्त क्रियाओं का मूल है। डा० मैकडूगल के मतानुसार यह भाव बालक में लगभग ८, ९ वर्ष की अवस्था में उत्पन्न होता है।२

डा० हैवलोक एलिस ने भी योनि भावना की समस्या को सबसे अधिक महत्वपूर्ण और मनशील समस्या बताया है।

काम सिद्धान्त के प्रवर्तक फ्रायड के मतानुसार जीव की सबसे अधिक मूल प्रवृत्ति काम है अर्थात् मैथुन का मनोवेग हमारे हृदय में जन्म जात होता है। दो अवस्थाओं के प्राप्त होने पर "३, ४ वर्ष की आयु में तथा युवावस्था आने पर" यह विशेष रूप से उत्तेजित हो जाता है। २—इसी भाव से प्रेरित होकर बच्चा माता से प्रेम करता है। माता से विछुड़ जाने पर बड़ा होने पर यह उस खोए हुए प्रेम को प्राप्त करने के लिए अन्य व्यक्तियों से प्रेम करने लगता है। इस प्रेम के प्राप्त न होने पर उसके हृदय में घृणा अथवा द्वेष के भाव जाग्रत होने लगते हैं।३

काम वृत्ति अथवा मैथुन के मनोवेग को फ्रायड ने अत्यधिक व्यापक बना दिया है। उसने मानव जीवन की अनेक कुत्साओं का वर्णन करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि माता पुत्र, पिता पुत्री भाई बहिन सबके प्रेम और स्नेह के मूल में योनि भावना ही काम करती है। माता द्वारा अपने बालक के ममत्वपूर्ण थपथपाने में भी फ्रायड ने यौगिकता का उभार देखा

2 In the normal average child, the instinct first begins to play some part at eight or nine years of age Page 161, An outline of psychology

३ Sexual as a means or restoring the lost sense of union with the Mother, "for sexual inter—course and suckling are alike and unique in this respect, that in neither should there by any difference or conflict of interest between the parents" (Basic writings of Sigmund Freud)

है। २ फ्रायड ने क्रोध, घृणि, शाम तथा भक्ति भावना का भी सीधा काम वृत्ति के साथ सम्बन्ध माना है।*

स्त्री और पुरुष के पारस्परिक कामुक आकर्षण को मिस क्यूरेन्ट ने भी अन्य भावों की अपेक्षा अधिक व्यापक माना है। वेल्स ने भी इस पक्ष का समर्थन किया है। उनके विचार से मुसलमानों के गीत तथा सूफी-फकीरों की हाल की दशा प्राप्त होने आदि के मूल में भी यही काम वृत्ति ही कार्य करती है।

मिस क्यूरेन्ट के मतानुसार प्रारम्भ में स्त्री पुरुष एक ही थे। "कोंपल की भाँति नर मादा दोनों भाग जुड़वां थे" प्रकृति ने उन्हें अलग कर दिया। प्रत्येक भाग अपूर्णता का अनुभव करने लगा। फलतः प्रत्येक भाग पूर्णता की प्राप्ति में चेष्टित रहने लगा। बच्चों का उत्पन्न होना उसी पूर्णता प्राप्ति का परिणाम मात्र है। यह पूर्णता कभी प्राप्त हो नहीं पाती और जीवन का चाक चलता रहता है।

फ्रायड ने भी अपने काम सिद्धान्त द्वारा इस संयोग प्रवृत्ति का प्रतिपादन किया है। उसने स्मरण दिलाया है कि हमें ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ

---

२ "Mother's stenderness awakens tho child's sexual instinct and prepors its futuro intensity"

*"In youth, a who re, a devotee in oldage youth has turned out to be much to short

× × × ×

Sexual prematurity often runs parallel with pro mature intellectual development it is found as such in the infantile history of the most distinguished and past) productive individuals, and in such cases, it does not seem to act as pathegenically as when it appears isolated (Basic writings or Sigmund Froid, Contribution I)

पुरुष समाज की के पुरुष की ओर आकर्षित होते तथा स्त्रियाँ पुरुषों को छोड़कर स्त्रियों की ओर ही पुं भाव द्वारा आकर्षित होती हैं। समलिंग के इस आकर्षण में भी अन्य भाग द्वारा संयोग प्राप्त कर पूर्णत्व का आनन्द ही अभिप्रेत रहता है।

संयोगेच्छा अथवा प्रबलतम प्रवृत्ति ने अनेक विद्वानों को अत्यधिक प्रभावित किया है। अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरिऔध और डा० रामप्रसाद त्रिपाठी जैसे हिंदी के मूर्धन्य विद्वान भी इस प्रवृत्ति के मोह में ऐसे पड़ गए कि उन्हें विश्व का प्रत्येक कण उसकी व्याप्ति से प्रेरित ज्ञात पड़ने लगा। यथा—

"सुजन मनोर्मिमी प्रेरणाओं से जाग्रत होकर ही मैदान अपनी हरियाली दिखाते हैं, पुष्प अपने सौन्दर्य और सुगन्ध को प्रकट करते हैं। पक्षीगण अपने चमकीले से चमकीले पंख धारण करते हैं तथा मधुर से मधुर गीत गाते हैं। झिल्ली की झंकार, कोयल की कूक अपने जोड़े के आह्वान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मैदान और वनों की निःस्तब्धता को भंग करने वाले जो ये नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव सुनाई पड़ते हैं ये सब प्रेम के ही असंख्य गीत हैं। मनुष्य की वर्ण प्रियता उसका कला और संगीत के सौन्दर्य और माधुर्य पर प्रेम कविता के ललित पर अनुराग, यह सब ईश्वरदत्त उस प्रेम के कारण है जिसके कारण केवल सुन्दरता के प्रति प्रीति ही उत्पन्न नहीं होती वरन् समग्र सुन्दर और आनन्द दायिनी वस्तुओं का ज्ञान और स्वीकार भी होता है।

संसार प्रकृति पुरुष की रंग स्थली है। नारी पुरुष की प्रकृति पुरुष की अपनी प्रीति का प्रतिबिम्ब मात्र है। क्षितिज पर आकाश और पृथ्वी का सतत एवं निरन्तर मिलन भी चिरन्तन प्रेम का द्योतक है।"५

सृष्टि का सूत्रपात होते ही जब एकता बिखरने अथवा निखरने लगी, तब सबसे पहिले द्वित्व का प्रादुर्भाव हुआ। इन दो प्रभूतियों में पारस्परिक प्रत्याकर्षण होने एवं एकत्व को पुनः स्थापित करने की अभिलाषा के कारण प्रकृति का ही नहीं अपितु संसार का सारा व्यापार एवं व्यवहार चल रहा है। इनके नाम

---

५ रस कलस

सिद्धान्तों ने अपनी अपनी धारणा कल्पना और ध्येय के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप लिये। प्रधानता उनमें जीव और प्रकृति अथवा स्प्रिट और मैटर नाम से अभिहित किया गया, जब उक्त कल्पना को मानुषी रूप दिया गया तब वे पुरुष और स्त्री कहे जाने लगे, जीव और प्रकृति अपने मसेता के मोह में लेखते-कूदते रहे, वे सृष्टि काल से लेकर लगातार आकर्षण विकर्षण अथवा संयोग और वियोग की धूप छाँह में सुख दुःख की लहरों में उठते और गिरते हुए ज्ञात अथवा अज्ञात प्रेरणा द्वारा एकत्व की ओर बढ़ते अथवा चढ़ते चले आए हैं ;१

हमारा विचार है कि उक्त पंक्तियाँ केवल भावावेश में ही धारणा लिख दी गई हैं इसमें काम और प्रेम लौकिक तथा ईश्वर विषयक, दोनों को एक ही धरातल पर रखकर देखा गया है, काम और प्रेम सर्वथा भिन्न है, यह तो आगे चल कर दिखाया जायेगा। यहाँ तो केवल विचारणीय बात यह है कि आकाश और पृथ्वी क्या वास्तव में कहीं मिलते भी हैं। आप सहमत होंगे कि वे केवल मिलते हुए से ही जान पड़ते हैं।

यह निर्विवाद है कि विश्व में नर नारी के संयोग का महत्वपूर्ण स्थान है, सृष्टि रचना के लिए दो की आवश्यकता होती है, यह भी एक स्वयं सिद्ध तथ्य है। इसी कारण प्रारम्भ से ही स्त्री और पुरुष दोनों में एक की भी अनुपस्थिति में संसार को अपूर्ण माना गया है। वैदिक काल में ही देवता की स्त्रियों का विशद वर्णन किया गया है, जैसे विष्णु की पत्नी लक्ष्मी, शिव की शक्ति आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि आर्य विचारधारा के अनुसार दम्पति की कल्पना और संयोग के बिना सृष्टि के अस्तित्व की पूर्णता असम्भव सी रही है। इतना अवश्य है कि वैदिक काल में स्त्री पुरुष का सम्बन्ध केवल शारीरिक आवश्यकता न रह कर नैतिक एवं धार्मिक कर्तव्य के रूप में ही स्वीकार किया गया था।

आधुनिक मनोविज्ञान शास्त्रियों ने काम को केवल अत्यधिक महत्व ही नहीं दिया है, बल्कि उसे योनि आवरण के समकक्ष रखकर अनुचित भी बना दिया है।

१ भूमिका ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद, प्रभुदयाल मीतल,

उनके मत में मनुष्य, पशु, पक्षी सब में काम के बीज जन्म जात होते हैं तथा इसके उपभोग में समस्त इन्द्रियाँ अपना-अपना सर्वाङ्ग व्यापार करती हैं।१

फ्रायड ने इसी बात को वैज्ञानिकता के चश्मे से देखा है। यथा "मानव यौन भावना का एक भंडार है। अन्य मनोवेगों का जन्म तभी होता है जब वायवर में बन्द वाष्प की भाँति योनि भावना बाहर प्रगट हो जाती है। मनुष्य करना तो बहुत चाहता है, परन्तु भयवश रुक जाता है। इसी कारण जीवन मृत्यु आदि की भावना मात्र है।"२

इस प्रकार आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के मत में (१) काम जीवन का सब से अधिक प्रबल मनोवेग है। (२) वह सबसे अधिक व्यापक है। (३) जीव के समस्त कार्य कलापों के मूल में काम ही है।

मैथुन की वृत्ति महत्वपूर्ण मूल वृत्तियों (Instiots) में अवश्य है, परन्तु उसे हम सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानने में असमर्थ हैं। जिस प्राणी को क्षुधा सता रही हो अथवा जिसे अपनी मृत्यु सामने खड़ी दिखाई दे रही हो, उस मैथुन का ध्यान भी न रहेगा। मैथुन में रत आप किसी पशु को डरा कर अथवा डंडा दिखा कर परीक्षा कीजिये। पशु या तो भाग जायेगा, अथवा आप पर गुर्राने लगेगा। शेर जैसा भयंकर जानवर तो आक्रमण ही कर बैठेगा। यहाँ पर मैथुन की प्रवृत्ति को आत्मरक्षा, पलायन, अथवा संघर्ष की प्रवृत्तियों ने दबा दिया।

आप ऐसे व्यक्ति के पास जाइये जो ५ दिन से भूखा प्यासा हो। उससे आप पूछिये कि वह किसी सुन्दरी बाला के साथ सम्भोग करना चाहेगा अथवा दाल रोटी का उपभोग, निश्चय है कि वह दाल रोटी (रूखी सूखी जैसी भी हो) ही माँगेगा। यहाँ काम की अपेक्षा क्षुधा निवृत्ति का मनोवेग अधिक प्रबल ठहरा।

हमें एक प्राचीन कथा याद है। उसमें एक राजा ने दो "पहलवानों" को एक बगीचे में बन्द करा दिया और १०-१५ दिन तक उन्हें भाँति-भाँति के पौष्टिक

1 Chapter II Sexology of the Hindus Sri Calındra Chakvartı

2 Contribution I Basic writings)

पदार्थ खिलाये। एक दिन सन्ध्या समय उसने उस बगीचे में दो सुन्दरियों को भी भेज दिया, और साथ ही यह घोषणा करा दी कि कल प्रातः इन दोनों पहलवानों को मृत्यु दण्ड दिया जायगा। बस वे पहलवान सब कुछ भूलकर एक कोने में जाकर चुपचाप बैठ गये और मृत्यु की घड़ी गिनने लगे। वे दोनों सुन्दरियाँ उनके पास रात भर यों ही बैठी रहीं।

अपने नित्य के जीवन में हम स्पष्ट देखते हैं कि आत्मरक्षा की वृत्ति कहीं अधिक प्रबल ठहरती है। जिस समय हमारी पत्नी बीमार हो, उस समय केवल हम उसके भोग रस का ही ध्यान करते हैं। कहने वाले कह सकते हैं कि काम वासना की भावी तृप्ति के विचार से हम उसकी चिकित्सा में तत्पर होते हैं। परन्तु हमारे घर में जब और कोई व्यक्ति, लड़का, लड़की, भाई, बहिन, माता, पिता, कोई भी बीमार पड़ जाता है तब भी हम मैथुन आदि की बातें भूल जाते हैं।

इसी प्रकार जब कोई भय उपस्थित हो जाता है, उस समय हमें अपने प्राणों की चिन्ता होती है, न कि काम भोग की। पिछले साम्प्रदायिक दंगों के समय स्त्री, पुरुष साथ-साथ मीलों पैदल चलते रहे थे। रास्ते में शायद ही किसी को काम वासना ने सताया हो। गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर हम देखते हैं कि आत्मरक्षा (Self Preservation) की मूल वृत्ति (Instinct) ही सब सब से अधिक बलवान ठहरती है। भय तथा भोजनोपार्जन की वृत्तियाँ वर्तमान की आत्मरक्षा के विचार से कार्य करती हैं तथा प्रजनन और आत्म प्रतिष्ठा की वृत्तियाँ भविष्य की आत्मरक्षा के विचार से कार्य करती हैं।[१]

अतः मैथुन वृत्ति हमारी स्वभाव मूल प्रवृत्ति नहीं है। यह हमारी मूल वृत्तियों (Instincts) में एक प्रमुख एवं प्रबल वृत्ति है। वह काफी व्यापक भी है, निम्न कोटि के जीवों में वह अधिक उग्र एवं समस्त कार्य कलापों की मूल प्रेरणा रहती है। ज्यों-ज्यों हम ऊपर की ओर जाते हैं, त्यों-त्यों उनके साथ

१स होवाच न वा अरे, पत्यु कामाय, पति प्रियो भवति,
आत्मनस्तु कामाय पति प्रियो भवति।
॥बृहदारण्यक उपनिषद् २, ४, २, ५॥

भौतिक तत्व का संयोग ही आने से उसका उपशमन होता है ? अन्त में मानव के काम मनोवेग का पूर्ण उपशमन हो आने से अनेक कोमल भावों की उत्पत्ति हो जाती है। काम की परिणति ही वास्तव में होती है, और वात्सल्य के जाग्रत होने पर कामवृत्ति कुछ मन्द पड़ जाती है।

काम का विवेचन आदि काल से विद्वानों एवं दार्शनिकों के चिन्तन का विषय रहा है। इस विषय का विवेचन करते समय भारतवर्ष के आर्य ऋषियों ने अपने सम्मुख सदैव यह दृष्टिकोण रखा था कि।

१—काम कहीं कामुकता का पर्याय न बन जाये।

२—प्रेम और विलासिता पृथक् पृथक् ही बने रहें।

उनके मत में काम एक मूल प्रेरक भाव है। उसकी सिद्धासिद्धि राग द्वेष अथवा सुख दुःख का कारण बनती है। कामदेव को अनंग कह कर उन्होंने सर्व साधारण को सावधान किया है कि काम अपने अंश रूप में ही उत्पन्न होने पर (अथवा तनिक सा काम उद्भुत होने पर) चित्त को विचलित कर देता है, मन को मथ डालने की शक्ति से समन्वित होने के कारण ही वह मन्मथ है। इस विचार में यथा समय व्यावहारिक विकृतता आती रही और कई बार ऐसे समय आये जब नारी केवल काम-तृप्ति का साधन मात्र रह गई। हिन्दी के रीति कालीन ग्रन्थ और आधुनिक प्रगतिवादी रचनाएं, इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

इस विषय को सर्व प्रथम महादेव के अनुचर नन्दिकेश्वर ने लिया, ऐसी जनश्रुति है। किसी भी ग्रन्थ में उसका नाम उपलब्ध नहीं है। इस विषय के सर्व प्रथम लेखक हैं उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु। श्वेतकेतु के पश्चात् विद्वानों ने इस विषय के एक-एक अङ्ग पर विचार किया। इनमें बाभ्रव्य चारायण, सुवर्णनाभ, घोटकमुख, गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, दत्तक और सुकुमार के नाम उल्लेखनीय हैं।

विषय को सर्व प्रथम ग्रन्थ रूप व्यवस्थित करने का श्रेय वात्स्यायन को प्राप्त है। वात्स्यायन विरचित कामसूत्र ही आजकल इस विषय का सबसे अधिक प्रचलित एवं सर्वमान्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की रचना चन्द्रगुप्त के शासन काल में

हुई थी। एक श्लोक के आधार-पर कल्पन्द १२११ में वात्स्यायन ने कामसूत्र की रचना की थी।१

जीवन का मौलिक भाव ठहराते हुए वात्स्यायन ने काम की इस प्रकार व्याख्या की है, "काम ही प्रेम है, काम ही सुख है तथा काम ही तृप्त्यन्त आनन्द की प्राप्ति एवं सन्तुष्टि है। × × × पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के योग का नाम काम है। इस योग में मस्तिष्क एवं हृदय (अन्तरात्मा) सहायक होते हैं। इस भोग में इन्द्रियों एवं भोग्य पदार्थ के बीच एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस सम्बन्ध में एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है। इसी आनन्दानुभूति का नाम "काम" है।" इस प्रकार इनके द्वारा की गई काम की परिभाषा बहुत व्यापक हो जाती है। यह केवल यौगिक सुख में सीमित नहीं है। काम में जीवन का सम्पूर्ण व्यापार अन्तर्भूत हो जाने से काम का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक बन जाता है, तथा कामजन्य आनन्द रसानुभूति के समकक्ष आ जाने से सत्वगुण समन्वित भी हो जाता है।

वात्स्यायन ने भी काम की स्थिति जन्मजात स्वीकार की है। इतना ही नहीं उन्होंने काम की सिद्धि को जीवन का एक अनिवार्य तत्व भी बताया है। "पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त सुख, रूप रस, गंध, शब्द एवं स्पर्श वस्तुतः काम सिद्धि के सहायक अथवा उद्दीपन मात्र हैं। इनकी सहायता से जिस आनन्द की अधिकतम प्राप्ति होती है वह है स्त्री पुरुष का संयोग। अतः स्त्री-पुरुष-संयोग-जन्य अधिकतम आनन्द का नाम 'काम' है। यह समस्त जीवधारियों के मन पर राज्य करता है। काम की सिद्धि जीवन के लिये उतनी ही अनिवार्य एवं उपयोगी है जितनी मोक्ष प्राप्ति द्वारा पूर्ण निवृत्ति।"

वात्स्यायन ने साधारण और विशेष करके काम के दो भेद माने हैं। उनके लक्षण इस प्रकार हैं।

१—साधारण काम

श्रोत्र त्वक् चक्षुर्जिह्वा घ्राणानामात्म
संयुक्तेन।

---

१ काम विज्ञान, शिवशंकर मिश्र।

मनसाधिष्ठितानां स्वेषु-स्वेषु विषयेष्वानु
नुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः ।

"कामसूत्र अध्याय" २ सू० ११

अर्थात्—आत्म संयुक्त मन द्वारा अधिष्ठित कान, त्वक, आँखें, जीभ और नाक की अपने अपने विषय में अनुकूल प्रवृत्ति का नाम "काम" है ।

२—विशेष काम

स्पर्शविशेष विषयात्वस्याभिमानिक सुखान् ।
विद्धा फलवत्यर्थ प्रतीतिः प्राधान्यात् कामः ॥ —'कामसूत्र २, १२"

अर्थात्—स्त्री या पुरुष के स्पर्श विशेष को लक्ष्य करके अभिमानिक सुख से अनुविद्ध फलवान विषय बोध ही प्रधान "काम" है ।

काम शरीर की स्थिति का कारण है । इसकी स्थिति शरीर के साथ ही है । यह आहार सदृश धर्मवाला, स्वभाव विशिष्ट है । उसकी शिक्षा के लिये गुरु की आवश्यकता नहीं है । यथा—

"काम की उत्पत्ति शरीर के साथ ही है, तथा उसकी शिक्षा के लिए गुरु की आवश्यकता नहीं । काम की शिक्षा बिना उपदेश के ही होती है । प्रणयिनी के साथ रमण उपाय की शिक्षा देने के लिये पशुओं और पक्षियों का कौन गुरु होता है । ॥

वात्सायन ने काम सिद्ध के लिये सौन्दर्य, यौवन, स्वास्थ्य, विद्या आदि सद्गुण अनिवार्य बताए हैं । उनके मत में यौवन में काम का सेवन करना ही पड़ेगा । बिना इसके न तो सृष्टि की रक्षा हो सकती है और न और कोई काम चल सकता है ।१

॥ शरीर स्थिति हेतुत्वादाहार सधर्माणो हि्यर्थाः ।
फल भूताश्च धर्मार्थयोः ।
विनोपदेशं सिद्धोहि कामोनार आतशिक्षत
स्वकान्ता रमणोपाये कोगुरु र्मा पक्षिणाम्

"कामसूत्र अध्याय २,३१,३२"

१—कामसूत्र अध्याय २ ।

भर्तृहरि ने भी "काम" की चर्चा करते हुए कहा है कि जो व्यक्ति काम सिद्धि में असफल रहे, उन्हें कामदेव ने दंड दिया और अपमानित किया।१

वात्सायन ने "कामात् सुखम् प्रजोत्पत्तिश्च" अर्थात् काम के द्वारा सुख और सन्तान प्राप्त होता है, कहकर काम को धर्म और अर्थ से सम्बन्ध कर दिया है। धर्म और अर्थ की सिद्धि द्वारा भी आनन्द प्राप्त होता है। मानव प्रकृति सदैव काम की ओर झुकती है। परन्तु गार्हस्थ्य धर्म पालन के लिये धर्म और अर्थ का भी रहना आवश्यक है। अतएव काम-जन्य-सुख को ही सब कुछ न मानकर काम का सेवन संयम एवं सतर्कता पूर्वक करना चाहिए।

इस शास्त्र का स्वरूप अच्छी तरह समझने वाला धर्म, अर्थ काम तथा अन्य लोगों के विश्वास पर दृष्टि रख कर कार्य करेगा, राग के वश होकर नहीं! ३

इसी को ध्यान में रखकर वात्सायन ने ब्रह्मचर्य व्रत पालन को काम-सिद्धि का सर्वोत्तम साधन बताते हुए जितेन्द्रिय एवं एक पत्नी व्रत होने का उपदेश दिया है।४

कामसूत्र के प्रारम्भ में ही प्रथम अध्याय में जहाँ वात्सायन ने चार प्रकार से उत्पन्न ५ प्रेम की चर्चा की है, वहाँ स्पष्ट बता दिया है कि एक पुरुष एक समय में अधिक से अधिक एक स्त्री को सन्तुष्ट ६ सकता है। जो पुरुष एक से

---

२ तेऽकामेन निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिता। केचित्पंच शिखीकृताश्च जटिला कापालिकाश्चापरे। "शृंगार शतक"

३ धर्मर्थं च कामं च प्रत्ययं लोकमेव च,
पश्यत्येतस्य तत्त्वज्ञो न च रागात् प्रवर्तते। —"कामसूत्र अ० १"

४ रक्षन् धर्मार्थ कामानां स्थितिं स्वां लोक वर्तिनीम् अस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रिय। —"कामसूत्र १, २०"

५ अभ्यास जन्य, आभिमानिक विश्वासोत्पन्न तथा बाह्य पदार्थों के स्पर्श द्वारा उत्पन्न।

६ इस सन्तुष्टि में शारीरिक,मानसिक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकार की तुष्टियाँ समझनी चाहिए।

अधिक स्त्रियों के साथ दाम्पत्य भाव बरतता है, वह जान बूझ कर अपने सिर मुसीबतें और विपदायें मोल लेता है।

वात्सायन ने प्रेम के भेद, काम सिद्धि के उपाय आदि उपांगों का विशद विवेचन किया है।

न्यायशास्त्र के अनुसार आत्मा में इच्छा, द्वेष आदि भाव सदैव वर्तमान रहते हैं। अतएव काम नित्य है। वह सदैव आत्मा के साथ विद्यमान रहता है। परन्तु काम की सेवा न करनी चाहिए। सेवित होने से काम धर्म और अर्थ का विरोधी हो जाता है। काम की सेवा करते हुए न मालूम कितने देवता मनुष्य पशु पक्षी आदि नष्ट हो गये।१

संस्कृत ग्रन्थों में काम का जो विवेचन हुआ है उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि।

(१) साधारण रूप में इच्छा मात्र काम है। जीवनेच्छा का ही दूसरा नाम काम है।२

विशिष्ट अर्थ में स्त्री पुरुष के स्वाभाविक बन्धन को ही काम कहा गया है।३

सारांश यह है कि संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार भी मानस में सर्व प्रथम काम का ही प्रादुर्भाव हुआ था।४

---

१ "पतंग मातंग कुरंग भृंग मीना हताः पंचभिरेव पंच।
एकः प्रमादी सकथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव पंच॥"

२ आत्मा वै काम —'पतञ्जलि योग दर्शन'

३ स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषु वा।
परस्परकृतः स्नेहः काम इत्याभिधीयते॥
—"शार्ङ्गधर १, ६"

४ (अ) काममय एवायं पुरुष 'बृहदारण्यक उपनिषद्'
(ब) कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बंधु मसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्याकवयो मनीषा।
"ऋग्वेद"

(२) क्षुधा के समान काम एक मूल वृत्ति एवं अत्यन्त व्यापक भाव है। यह जन्मजात एवं आत्मा से सम्बन्ध है। अपने गोत्र का विस्तार ही काम है। बिना काम की कल्पना किये संसार का कोई कार्य सम्भव नहीं है। कामेच्छा ही वास्तव में जीवन है। काम रहित मोक्ष की इच्छा उपहास्यास्पद है। १

(३) काम सेवन में संयम की शिक्षा देकर उसे मोक्ष प्राप्ति का एक साधन बताया गया है, तथा अर्थ और धर्म से सम्बन्धित करके उसके उज्ज्वल स्वरूप को ही सामने रखा गया है। इस प्रकार योनि भावना जैसे कलुषित रूप का सर्वथा परिहार ही होगया है।

भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ और काम तीनों को ही महत्व दिया गया है। तीनों का सन्तुलन तथा अविरोध वैयक्तिक और सामाजिक जीवन का आदर्श है, यही मोक्ष और आनन्द का विधायक होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी ने तीनों के अविरोध सेवन का ही उपदेश भ्रातृभक्त परायण भरत को दिया है। २

(४) काम को सत्वगुण समन्वित करके उसे समस्त सद्गुणों को उत्पन्न करने वाला बताया है। काम ही साहित्य क्षेत्र का स्वामी एवं देवता है। देवत्वी

---

१ यो मां प्रयतते हेतु रोक्षमास्थाय पंडितः
तस्य मोक्ष रति स्यस्य नृत्यामि
च हसामिच।
"कामदेव के वचन, महाभारत अश्वमेध पर्व पाठ १३"

२ कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थ धर्मेण वा पुनः
उभो वा प्रीतिलोभेन कामेन न विबाधसे।
कच्चिदर्थ चकामं च धर्म च जयतांवर।
विभज्य काले कालज्ञ सर्वान्वरद सेवसे॥
"वाल्मीकि रामायण अयोध्याकांड १००, ६२, ६३"

ब्रह्मा विष्णु, महेश, कामदेव के ही स्वरूप विशेष हैं। संसार का प्रत्येक पदार्थ जड़ चेतन काम से ही उत्पन्न होता है और काम में ही लय होजाता है।*

५—काम के आध्यात्मिक स्वरूप की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है, ब्रह्म अथवा पुरुष विश्व की एक मात्र सत्ता है, जो अपने आपको जीव और प्रकृति में विभक्त कर लेता है। इन्हें हम आत्म और अनात्म कहते हैं। आत्म का स्वभाव है अपना विस्तार करना अथवा आत्मा का अनात्म को अधिकृत करने का प्रयत्न ही जीवन है। आत्मा सक्रिय है और अनात्म निष्क्रिय। इसी कारण पुरुष को आत्म और नारी को अनात्म रूपा कहा गया है। पुरुष रूप आत्म जिन क्रियाओं द्वारा स्व विस्तार करता है उनमें प्रमुख है मजनन (Mating) अतः मजनन के लिए वह अनात्मरूपा नारी

---

*शोकरा पुरुषा सर्वेस्त्रियः सर्वा महेश्वरी,
विषयी भगवानीशो विषयः परमेश्वरी।
× × × ×
सर्वभूतात्मभूतास्था त्रिलिंगा विश्वरूपिणी,
कामस्यैषाहि सा मूर्ति ब्रह्मा विष्णीश्वरात्मिका।
भूता वा वर्तमाना जनिष्यारचापि सर्वशः,
कामात् सर्वे प्रवर्त्तते लीयते वृद्धिमागताः।
कामः सर्वमयः पुंसा स्वसंकल्पसमुद्भवः,
न कस्तु न शक्यते यच्च परंधातु परंधयत्।
आनन्दमूर्तं दिव्य परं ब्रह्म तदुच्यायते,
परमात्मेति चापयुक्त विकारिवः कामसंज्ञितः।
सुप्तानां जागृतां वाय सर्वेषां यो हृदिस्थितः,
नानाविधानि कर्माणि कुरुते ब्रह्म तन्महत्।
निराकाङ्क्ष महाघोरं स्वसंवेद्य पर ब्रह्मम्,
त्रिवृद् ब्रह्म ततो विश्वं कामस्येच्छा ग्रयं कृतम्।
स्वयंभोम्प्रशक्त्यौ में युक्त्वा काम संकल्प एवहि।
—"शिवपुराण धर्म संहिता पाठ ८"

के सहचर्य की कामना करता है। वात्सल्य भाव इसी आध्यात्मिक क्रिया का प्रतिबिम्ब मात्र है।३

१—जब शारीरिक सम्बन्ध प्रधान रहता है, तब हम उसे काम कहते हैं। उसमें बुद्धि विवेक संयोग होकर जब शारीरिक पक्ष गौण पड़ जाता तथा मानसिक पक्ष प्रधान हो जाता है, तब हम उसे प्रेम कहते हैं। लौकिक प्रेम ही लोकोत्तर प्रेम का कारण बनता है। बिना प्रेम के जीवन अन्धकार मय है।

स्वदेश, विदेश, प्राचीन अर्वाचीन सिद्धान्तों के विवेचन के फलस्वरूप हमारे निम्नलिखित निष्कर्ष निम्न प्रकार ठहरते हैं।

१—मैथुन अथवा प्रजनन प्रवृत्ति (Pairing, Mating or Reproduction) हमारी मूल वृत्तियों में एक प्रमुख वृत्ति है। इस वृत्ति से सम्बद्ध मनोवेग काम (lust) है। काम एक मौलिक मनोवेग (Primary Emotion) ठहरता है।

२—प्रेम एक मनोवृत्ति (Sentiment) है। उसका किसी एक मूल प्रवृत्ति (Instinct) से सीधा सम्बन्ध नहीं ठहरता है। विभिन्न मनोवेगों, के सम्मिश्रण, उनकी पुनरावृत्ति और क्रमिक बौद्धिक तत्व के समावेश के द्वारा प्रेम का निर्माण होता है। यह एक स्थिर मनोदशा है। जिसमें वात्सल्य भाव, काम आत्म समर्पण तथा आत्म प्रतिष्ठा का सुन्दर संयोग रहता है। उक्त मनो वेगों का सम्बन्ध अपत्यस्नेह वृत्ति, प्रजनन वृत्ति, आत्मसमर्पण वृत्ति तथा

३ (अ) एकाकी नारमत आत्मानं द्वेधा,
  व्यभंजत पतिश्च पत्नीश्चाभवत। "वेदोपनिषद्"

अर्थात् वह एक में नहीं रमा। पति और पत्नी रूप में उसने अपने दो भेद कर लिए।

(ब) मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहं,
  सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः,
  तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता। "भगवद्गीता"

आत्म प्रतिष्ठा की वृत्ति से है। हमारे आर्य ग्रन्थों में वर्णित जीवन तीन एषणायें (पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणा) भी इसके साथ मेल खा जाती हैं।ऽ

निम्न कोटि का काम वासना का रूप धारण कर लेता है। यही निम्न वृत्तियों एवं तज्जन्य आचरणों का है। उच्च श्रेणी का काम पुरुषार्थ रूप होकर मनुष्य को जीवन क्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करता है, निम्नकोटि काम वासनायुक्त होकर पाप मार्ग तथा केवल स्वार्थ सिद्धि की ओर अग्रसर करता है। काम के इन दोनों स्वरूपों का दिग्दर्शन 'कामायनी' के 'काम' सर्ग में बहुत अच्छी तरह किया गया है। काम ने मनु को कार्य करने के लिए प्रेरित किया, परन्तु मनु ने उसे वासना रूप में ग्रहण किया और वे पतित होगए। इस वासनायुक्त काम और प्रेम में आकाश-पाताल का अन्तर है।

(१) काम के साथ स्वार्थ-सिद्धि अपना अन्य पक्ष का शोषण करने (Squeeze out) का भाव लगा रहता है। प्रेम में बात एक दम उल्टी है, उसमें आत्म समर्पण तथा उत्सर्ग के भाव लगे रहते हैं।

काम उत्तेजित होने पर हम केवल अपने सुख की सोचते हैं, अपनी वासना को तृप्त करने में तल्लीन हो जाते हैं, अन्य पक्ष वाले को चाहे कितना कष्ट हो। प्रेम प्रकर्ष में हम अपना सुख दुःख त्याग कर केवल प्रेमी के योग क्षेम की ही कामना करने लगते हैं। हम भले ही मर जायें, परन्तु हमारा प्रेमी जहाँ भी रहे अच्छी तरह रहे। काम एक कठोर भाव है तथा प्रेम अत्यधिक कोमल। काम के कारण आसक्ति, क्रोध, घृणा, प्रतिशोध, सन्देह, भय, दम्भ, उग्रता आत्मश्लाघा, स्वार्थान्धता आदि भाव उत्पन्न होते हैं, प्रेम के साथ संकोच, आज्ञाकारिता, विनम्रता, निष्कपटता, भद्रता, दयालुता, शुभचिन्तन, उत्सर्ग, त्याग आदि भावों का उदय होता है।

निम्न कोटि के जीवों में उक्त वस्तुस्थिति हमें अच्छी तरह देखने को मिल

ऽ एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति ... तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्। "बृहदारण्यक उपनिषद् ३ ५, १"

जाती है। उच्च योनियों में काम शुद्ध काम नहीं रह जाता। काम भाव के साथ बुद्धि तत्व के क्रमिक योग द्वारा आत्मसमर्पण एवं कोमलता के भाव आते जाते हैं। इसकी पूर्ण परिणति मानव में हुई है। उसका काम-भाव दाम्पत्य-प्रेम का स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

काम का विशुद्ध रूप हमें अनेक पशु पक्षियों में मिलता है। मक्खी और मकड़ी की गतिविधि का जिन्होंने निरीक्षण किया है, वे जानते हैं कि मैथुन क्रिया समाप्त होते ही मक्खी मक्खे को तथा मकड़ी मकड़े को मार डालती है। स्थिति यह नहीं है कि मक्खा और मकड़ा मैथुन जन्य दुर्बलता आदि के कारण स्वयं मर जाते हों। वास्तविकता यह है कि अपनी प्रिया द्वारा वे मार दिये जाते हैं। मानवों में भी अनुराग शून्य वेश्यायें व्यक्ति का शोषण करके उसे सब तरह बर्बाद कर देती हैं। जहाँ भी नर-नारी का सम्बन्ध केवल मैथुन भाव से प्रेरित होगा, वहाँ केवल कठोरता ही होगी।

काम-सिद्धि होते ही प्राणी अपनी राह लेता है, प्रेम उत्पन्न होने पर वह घर बसाता है। पशु पक्षी आदि भी गुफायें घोंसले आदि बनाकर रहते तथा अपने बच्चों का लालन पालन करते हैं। परन्तु बहुत थोड़े ही दिनों तक। ज्योंही बच्चे बड़े होकर स्वयं भोजनोपार्जन योग्य हो जाते हैं, वे अपने घर से बाहर निकल पड़ते हैं। वे माता पिता को भूल जाते तथा माता पिता उन्हें भूल जाते हैं। जीव कोटि भेदानुसार यह अवधि अवश्य ही न्यूनाधिक होती है। केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपने बच्चों को आजन्म बच्चा ही समझता रहता है, तथा उसके साथ बच्चों जैसा ही व्यवहार करता रहता है। कुत्ते कुतियाओं के आचरण तो आपने भी देखे होंगे। कुछ ही समय पश्चात् वे पिता पुत्री अथवा माता पुत्र के सम्बन्धों को विस्मृत कर बैठते हैं। उनकी तरह व्यवहार करने वाले का मान्य नर नारी भी लोक-व्यवहार में कुत्ते ही कहलाते हैं।

प्रेम भाव का निर्माण, वात्सल्य भाव के साथ आत्म समर्पण तथा काम के सम्मिश्रण द्वारा होता है। कोमल भावनाओं के कारण वह अपना घर बसाता

स्त्री, बच्चों भाई, बहिनों माता पिता आदि के साथ रह कर एक सुखी गृहस्थ बनता है। इस जीवन में उसकी समस्त मौलिक वृत्तियों की अभिव्यक्ति तथा समस्त मौलिक मनोवेगों की तुष्टि होती रहती है। साथ ही उसका व्यवहार क्षेत्र भी विस्तृत हो जाता है। वह केवल अपने ही लिए जीवित रहता, वह जीवित रहता है, अपने परिवार के लिए, अपने समाज के लिए, अपने देश के लिए, और अन्त में विश्व और प्राणी मात्र के लिए। प्रेम के इस प्रकर्ष का कारण है उसके वात्सल्य भाव, अपत्यस्नेह की कोमलता।

डा० मैकडूगल ने अपत्यस्नेह वृत्ति को ज्ञान और सदाचार की जननी ही बताया है। यही कारण है कि मानव अपने माता पिता के संरक्षण में अधिक समय तक रहने के कारण अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक बुद्धि विवेक समन्वित हो गया है। वात्सल्य भाव के कारण बिना विचारे कार्य करने की प्रवृत्ति शिथिल पड़ जाती है।‡

अपत्यस्नेह इतनी प्रबल वृत्ति है कि जिसके कारण प्राणी अन्य प्राणियों के बालकों को भी पाल देता है। मनुष्य अन्य व्यक्तियों के बालकों को तो सहज ही पाल देता है, वह गाय, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, बन्दर, तोता, मैना, तीतर, कबूतर तथा अन्य चिड़ियाएँ, चूहा, नेवला सांप, खरगोश, आदि अनेक पशु पक्षियों को, कभी शेर चीते रीछ जैसे भयानक जन्तुओं को भी बड़े चाव से पालता है। यह वृत्ति पशुओं में भी पाई जाती है। कौवे के द्वारा कोयल के बच्चों का पालन तो सर्व विदित है ही। भेड़ बकरी, गाय आदि साधारण जीवों से लेकर रीछ भेड़िया जैसे हिंस्र पशु तक मनुष्य के बालकों का पालन करते देखे गए हैं।

(४) यही प्रेम शृंगार रस के मूल भूत कारण रूप में स्वीकृत हुआ है।

---

‡ The Parental Instinct is the mother of both Intellect and morality (Page 184, An Outline of psychology, By William Mc. Dougall)

इसी को साहित्य शास्त्रियों ने रति स्थायी भाव का नाम दिया है।१

(६) प्रेम मनोदशा में समस्त मूल प्रवृत्तियों, अपत्यस्नेह संघर्ष, जिज्ञासा, भोजनोपार्जन, निषेध, पलायन, सामाजिक, आत्म प्रतिष्ठा, समर्पण, काम निर्माण, आर्त, प्रार्थना, क्रीड़ा, अनुकरण तथा हास्य "तथा उनसे सम्बद्ध समस्त मनोवेगों" वात्सल्य, क्रोध, उत्सुकता, क्षुधा, घृणा, भय, सहानुभूति, गर्व, उत्सर्ग, काम, परिग्रह, सृजनोत्साह, कामेच्छा, क्रीड़ा, अनुकरण तथा हास्य अन्तर्भूत हो जाते हैं। श्रृंगार को आदि रस एवं रसराज कहने का यही कारण है, जो सर्वथा मनोवैज्ञानिक ठहराता है।

(७) पात्र भेद के कारण रति के तीन प्रकार ठहरते हैं।८ (अ) बड़ों के प्रति, (ब) बराबर वालों के प्रति तथा (स) बच्चों के प्रति। प्रथम और तृतीय में निश्चित रूप से क्रमशः वात्सल्य और दैन्य तथा आत्म समर्पण के भाव निहित रहते हैं। वे निश्चय ही कोमल, उज्ज्वल और पवित्र हैं। द्वितीय भेद के मूल में मुख्य दाम्पत्य भाव, नायक नायिका के पारस्परिक आकर्षण को स्वीकार किया गया है। २

डा० राकेश ने भी (Ratı ıs the feeling of sexual love)३ कह दिया है। यही कारण है कि कतिपय विद्वानों ने दाम्पत्य विषयक रति को ही श्रृंगार रस का कारण माना है और वात्सल्य रस तथा भक्ति रस को स्वतन्त्र रूप में पृथक् रस स्वीकार किया है। परन्तु यहां विचारणीय बात यह है कि उपर्युक्त परिभाषाओं में प्रेम तथा (Sexual Love) शब्द प्रयुक्त किये गये हैं। अतः उसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो जाता है। दाम्पत्य प्रेम केवल नायक नायिका का पारस्परिक आकर्षण नहीं रह जाता है।

---

१ रतिर्मनोनुकूलेर्थे मनसः प्रवणायितम्। —"साहित्य दर्पण"
२ स्त्री पुंसयोरन्यो न्यालम्बनः प्रेमाख्यश्चित्तवृत्ति
विशेषो रतिः 'स्थायीभाव"। —रस गंगाधर पृष्ठ ३८"
3 P 1287 Psychological Studies in Rasa

दाम्पत्य प्रेम गृहस्थ जीवन का कारण बनकर समस्त कोमल भावों को जन्म देता है। जीवन की पवित्रता, मानव के उत्सर्ग, समर्पण स्वार्थ त्याग, संघर्ष आदि के सफल उदाहरण हमें गृहस्थ जीवन में ही मिलते हैं। गृहस्थ की पुरुष, पत्नी पति में शारीरिक आकर्षण का स्थान मानसिक आकर्षण ले लेता है। अन्यथा बूढ़े, रोग वश, अब, धन हीन पति की पत्नी सेवा क्यों कर करे।१ हमारा निश्चित मत है कि दाम्पत्य प्रेम में काम का लगाव तो नाम मात्र को रहता है, उसके भीतर प्रेम का शुद्ध रूप ही प्रधान रहता है। दाम्पत्य भाव के ऊपर गृहस्थ जीवन आश्रित है और गृहस्थ आश्रम को "ज्येष्ठ आश्रम" कह कर मनु महाराज ने उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है, क्योंकि गृहस्थ आश्रम ही समाज की रीढ़ की हड्डी है। उसी के ऊपर समाज टिका हुआ है।१

महर्षि व्यास के कथनानुसार—

शृंगारी चेत कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
सचेत कविवीर्तरागी नीरसं व्यक्तमेवतत्।।

अर्थात् यदि कवि शृंगारी होता है तो उसके काव्य से जगत रसमय हो जाता है किन्तु यदि वह वीतरागी होता है तो चारों ओर नीरसता (शुष्कता) फैल जाती है।

हमारे आर्य ऋषियों के सम्मुख आदर्श दम्पतियों के जीवन के आदर्श थे। उनके मतानुसार संसार में जो कुछ पवित्र, उत्तम और दर्शनीय है, वही शृंगार है। २ हमारा भी यही मत है।

---

१ यथा वायु समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः।
यस्मात्त्रयो प्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।

"मनु संहिता अ० ३, ७७, ७८"

२ "यत्किंचल्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वलं
दर्शनीय वा तच्छृंगारेणोप मीयते"। —"नाट्यशास्त्र"

शृंगार रस के अन्तर्गत प्रेम का पूर्ण परिपाक होता है। इसी का चित्रण करने वाला साहित्य शृंगार साहित्य कहलाता है।४

---

4 Erotic Literature Greek word E (W S, Love) That Literature which has for its Principal Subject the Passion of Love (Vol V Everyman's Encyclopaedia.)

द्वितीय अध्याय

हिन्दी के रीति-काव्य की पृष्ठ भूमि

(अ) संस्कृत साहित्य का प्रभाव
(ब) वैष्णव काव्य और गौडीय काव्य का प्रभाव

(अ)

हिन्दी के रीतिकाव्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव

शृङ्गार साहित्य—शृङ्गार रस का सम्बन्ध सृष्टि के दो मूल महान् तत्वों से है। सौन्दर्य और प्रेम। इन दो तत्वों की प्रधानता, व्यापकता तथा प्रभावुकता स्वयं सिद्ध है। सौन्दर्य का सम्बन्ध रूप विधान से है। सौन्दर्य अनन्त आनन्द प्रद है। रूप रूप दर्शन से जब सौन्दर्य की भावानुभूति होती है तब प्रेम जाग्रत होता है। प्रेम सौन्दर्य का विषयी प्रधान प्रतिरूप है।[1]

भारतीय साहित्य में प्रेम और सौन्दर्य की पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रिया को व्यक्त करने के लिए "रति" शब्द निर्धारित कर दिया गया है। "रति" शृङ्गार रस का स्थायी भाव है। "रति" का अर्थ है ""रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्" अर्थात् मनोऽनुकूल वस्तु में सुख प्राप्त होने का ज्ञान, अथवा प्रिय वस्तु के प्रति मन के उन्मुख होने का भाव, किंवा नायक और नायिका का पारस्परिक अनुराग प्रेम का नाम 'रति' है। इसकी स्थिति के लिये आलम्बन विभाव में नायक तथा नायिका को आलम्बन और आश्रय माना गया है। दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। आलम्बन सौन्दर्य का पात्र है, आश्रय प्रेम का। सौन्दर्य भाव वस्तु है, प्रेम भाव है।

संस्कृत साहित्य के लगभग प्रत्येक ग्रन्थ में हमको शृङ्गार देव के दर्शन होते हैं। वाल्मीकि रामायण से सरल एवं मधुर, और महाभारत जैसे महान् और विशालकाय ग्रन्थों में, आदि कवि अश्वघोष के सौन्दरनन्द, कविगुरु, कालिदास के रघुवंश तथा कुमार सम्भव, संस्कृत महाकाव्यों की बृहत्त्रयी 'भारवि का किरातार्जुनीय माघ का शिशुपाल वध तथा श्री हर्ष का नैषध' आदि महाकाव्यों

---

[1] देखत ही सो मन हरै, सुख अँखियनु को देइ।
रूप बखाने ताहि सो जग चेरो करि लेइ॥ "रस विलास"

में, अश्वघोष का शारिपुत्र प्रकरण, महाकवि भास के स्वप्नवासवदत्ता, कविकुलगुरु कालिदास के विक्रमोर्वशीय अभिज्ञान शाकुन्तल, हर्ष का रत्नावली, भवभूति के मालती माधव, उत्तररामचरित, भट्टनारायण का वेणी संहार राजशेखर का कर्पूरमंजरी, क्षेमीश्वर का नैषधानन्द, जयदेव का प्रसन्नराघव नाटकों में, महा विद्वान मम्मट, उद्भट आदि के रस अलङ्कारादि सम्बन्धी रीति ग्रन्थों में, दंडी के दशकुमारचरित, बाणभट्ट की कादम्बरी आदि गद्य काव्य में तथा महा कवि कालिदास के ऋतुसंहार, मेघदूत, शृङ्गारतिलक, हाल की गाथा सप्तशती, भर्तृहरि के शृङ्गार शतक, अमरुक के अमरुकशतक, बिल्हण की चौर पंचाशिका, गोवर्धनाचार्य की आर्या सप्तशती, जयदेव के गीतगोविन्द, पंडित राज जगन्नाथ के भामिनी विलास आदि गीति काव्यों में हमको शृङ्गार रस की धारा पूर्ण वेग के साथ प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। इनके अतिरिक्त आख्यान साहित्य ऐतिहासिक काव्य तथा चम्पू काव्यों में भी शृङ्गार रस सन्निहित पाया जाता है। उपनिषदों में भी शृङ्गार भावना स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होती है।

तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्य किंचन वेद,
नान्तरं, एवमेवायं पुरुष प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न
बाह्य किंचन वेद, नान्तरम् छायया सम्परिष्वक्तो न
बाह्य वेद नान्तरम्।
निदर्शने श्रुति प्राह मूर्खस्तम् मन्यते विधिम्।
"बृहदारण्यक उपनिषद ४, ३, २१"

यहाँ स्पष्ट ही ब्रह्मानन्द को छाया अथवा स्त्री के आलिंगन सुख के सदृश बताया गया है।

आगे चलकर संस्कृत के कवियों तथा उनके परिवर्ती हिन्दी के कवियों ने शृङ्गार के सहारे हरि भक्ति की प्राप्ति मानी। जयदेव का "यदि हरिस्मरणे सरसं मनो, यदि विलास कलासु कुतूहलम्" बिहारी का तन्त्रीनाद कवित्तरस सरस राग रति-रंग ही है। गोस्वामी तुलसीदास ने "कामिहि नारि पियारि जिमि" कहकर कामी के प्रेम को हरि भक्ति का उपमान बनाया है। कबीर ने भी अपने को "राम की बहुरिया" ही कहा है।

सांसारिक जीवन शृङ्गार प्रधान है। इसी कारण समस्त साहित्य ग्रन्थों में शृङ्गार रस का पूर्ण प्रसार एवं प्रकर्ष पाया जाता है। सांसारिकता का आधार गार्हस्थ जीवन है। गार्हस्थ जीवन पुत्र कलत्र पर अवलम्बित है और पुत्र कलत्रादि मूर्तिमन्त शृङ्गार ही है। अतएव सांसारिकता का सम्बन्ध शृङ्गार है। विश्व के जितने हास विलास वाञ्छनीय हैं, जितने केलिकलाप कमनीय हैं, जितनी क्रियाएँ लोकप्रिय एवं ललित हैं, जितने आचार विचार और व्यवहार प्रशंसनीय हैं। वे प्रायः सब के सब शृङ्गार रस में अन्तर्हित हो जाते हैं।

शृङ्गार की कई श्रेणियां हैं। अपनी उच्चतम अनुभूति में वह आध्यात्मिक अनुभूति का प्रतीक बन जाता है और अपनी निम्न कोटि में वासना के वर्णन से मिलकर कुछ मलिन सा प्रतीत होने लगता है। आध्यात्मिक अनुभूति हम भक्ति भावना तथा अन्य अनुभूति को हम लौकिक शृङ्गार भावना कहते हैं, और इस प्रकार शृङ्गार के मुख्यतया दो स्वरूप ठहरते हैं। हिन्दी साहित्य में हमें शृङ्गार रस सम्बन्धी रचनाओं के दोनों रूप मिलते हैं। दोनों ही प्रकार की रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। पूर्ण सौष्ठव समन्वित होने के कारण वे गौरवशालिनी हैं। वैष्णव धर्म के सम्प्रदायों के महात्माओं ने अपनी उपासना पद्धति में भक्ति पूर्ण शृङ्गार रस की रचनाओं द्वारा राम और कृष्ण की भक्ति की सुर-सरिता प्रवाहित की है और अनेक सुकवियों ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार काव्यशास्त्र के अनुकूल चमत्कारपूर्ण सूक्तियाँ रचकर लौकिक शृङ्गार साहित्य निर्माण किया है। दोनों धाराओं के पीछे एक परम्परा है, जो हिन्दी के शृङ्गार साहित्य की मूल प्रेरणा है। अतः उनके विकास पर विचार करना आवश्यक है।

हिन्दी को संस्कृत साहित्य की परम्पराएँ उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त हुई। हिन्दी का शृङ्गार साहित्य एक प्रकार से संस्कृत साहित्य का ही संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप है।

आर्यों के प्राचीन साहित्य में दो प्रकार की रचनाएँ विशेषरूप से मिलती हैं। (१) आध्यात्मिकता अथवा ज्ञानकांड सम्बन्धी और (२) कर्मकांड सम्बन्धी प्रथम के अन्तर्गत उपनिषद्, दर्शन तथा बौद्धों और जैनों के धर्मग्रन्थ उल्लेखनीय हैं तथा द्वितीय के अन्तर्गत ब्राह्मण ग्रन्थ, गृह्य सूत्रादि, प्राचीन स्मृतियाँ एवं

पौराणिक साहित्य आते हैं। इन रचनाओं का दृष्टिकोण धार्मिक था, और उनका क्षेत्र प्रायः पंडित वर्ग तक ही सीमित था।

विक्रम संवत् के आस पास एक तीसरे प्रकार के साहित्य का सृजन हुआ। इन रचनाओं में ऐतिहासिकतापूर्ण सरस कवित्व का प्राधान्य था जनकवि विरचित सरस कवित्व पूर्ण मुक्तकों, छोटे-छोटे पदों, द्वारा जनसाधारण का मनोरंजन ही इसका उद्देश्य था। आध्यात्मिकता और कर्मकांड से उसका कोई सम्बन्ध न था।

लौकिक काव्य की ये रचनाएँ सर्वप्रथम जनसाधारण की भाषा 'प्राकृति' में हुई। इन प्राकृति को वैयाकरणों ने महाराष्ट्र प्राकृत कहा है। इन सरस रचनाओं का सर्वप्रथम ग्रन्थ गाथा "सतसई" है। इसके रचना काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। परन्तु इतना निर्विवाद है कि इसका संकलन विक्रम के प्रथम शतक में आन्ध्र राजघराने के सातवाहन के वंशज राजा हाल द्वारा किया गया था। संकलन कर्ता ने लिखा है कि उस समय प्रायः एक करोड़ गाथाएँ प्रचलित थीं उनमें से चुनकर सात सौ गाथाएँ इसमें संग्रहीत हैं। सम्भव है इसमें कुछ अतिशयोक्ति हो। फिर भी इतना निश्चित है कि उस समय इस प्रकार की गाथाएँ प्रचलित थीं, और उनका काफी प्रचार था, समाज में उनका इतना अधिक मूल्य एवं महत्व था कि एक नरेश ने उनके संकलन की ओर ध्यान दिया तथा प्रचुर धन व्यय किया।

जब जन साधारण की भाषा प्राकृति में ऐसे सरस एवं लोकप्रिय रचनाओं का बाहुल्य होगया, तो पंडितों का भी स्वभावतया उस ओर ध्यान गया और संस्कृत भाषा में भी इस प्रकार की रचनाएँ होने लगीं।

गाथा सतसई के अनुकरण पर संस्कृत में की गई काव्य रचना का सर्व प्राचीन स्वरूप अमरुक कवि की रचना 'अमरुक शतक' में दिखाई पड़ता है। इसके पूर्व की रचनाएँ यदि थीं, तो वे अप्राप्य हैं। अमरुक का समय विक्रम की नवीं सदी से पूर्व का ठहरता है। "ध्वन्यालोक १० वीं सदी" में इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की गई है।

अमरुक की कविता मनोरम शृङ्गार से ओतप्रोत भरी हुई है। इसमें प्रेम का

चोखा जागता चित्रण किया गया है। कामी तथा कामिनियों की विभिन्न अवस्थाओं से उत्पन्न मनोवृत्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण करके मनोरम विवरण प्रस्तुत किये गये हैं। कहीं पर पति को परदेश जाने के लिये तैयार देख कर कामिनी के हृदय की विह्वलता का चित्रण है, तो कहीं पति के शुभागमन का समाचार सुनकर अंग प्रत्यंग से हर्ष की अभिव्यक्ति करने वाली सुन्दरी का कमनीय वर्णन है। यथा—

> प्रस्थानं वलयैः कृतं प्रियसखैरस्रैरजस्रं गतं।
> धृत्या न क्षणमासितं व्यवसितं चित्तेन गन्तुं पुरः ॥
> यातुं निश्चितचेतसि प्रियतमे सर्वे समं प्रस्थिता।
> गन्तव्ये सति जीवित प्रियसुहृत्सार्थः किमुत्सृज्यते ॥

अर्थ—भावी प्रोषित पतिका अपने जीवन से कह रही है। जब प्रीतम ने जाने का निश्चय किया तब दुर्बलता के मारे मेरे हाथ के कंकण गिर गए, निरन्तर अश्रु भी आने लगे। केवल जाने का समाचार सुनकर नेत्रों से सतत धारा बहने लगी। सन्तोष एक क्षण भी न रहा, मन तो पहिले ही जाने के लिये तैयार था, सब के सब एक ही साथ चलने के लिये तैयार हो गए। हे प्राण, तुम्हें भी तो एक दिन जाना ही है। अपने मित्रों का साथ क्यों छोड़ रहे हो। प्राण प्यारे के जाने की खबर सुनकर तुम भी चल बसो।

नीचे एक मुग्धा नायिका का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है—

> मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारभ्यते,
> मानं धत्स्व धृतिं बधान ऋजुतां दूरे कुरु प्रेयसि।
> सख्यैवं प्रतिबोधिता प्रतिवचस्तामाह भीतानना,
> नीचैः शंस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति।

—"अमरुक शतक" ७०

अर्थ—कोई सखी मुग्धा नायिका को सिखा रही है कि "हे मुग्धे, क्या तुम इसी तरह भोलेपन में दिन बिता दोगी। तनिक नखरे करना सीखो, धैर्य धारण करो, अपने प्यारे के विषय में यह सरलता दूर करो।" सखी से इस प्रकार समझाई गई नायिका डर कर कहने लगी, 'तनिक धीरे बोलो, कहीं ऐसा न हो कि हृदय

में रहने वाले मामेश्वर इन बातों को सुन लें।" नायिका का पति के प्रति अपार अनुराग है।+

संस्कृत साहित्य में उसके बाद की सरस शृङ्गारपूर्ण 'कृष्णाकर्णामृत' उसके रचयिता लीलाशुक हैं।

प्राकृत की "गाथा सतसई" मुक्तक की संस्कृत रचना के समान गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती एक अन्य प्रसिद्ध रचना है। गोवर्धनाचार्य का समय विक्रमी संवत् ११५२ के आसपास माना जाता है। गोवर्धनाचार्य और जयदेव दोनों समकालीन महाकवि थे। दोनों ही बङ्गदेश के अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन के आश्रित थे। महाकवि जयदेव ने "शृङ्गारोत्तर सत्प्रमेयरचनै राचार्य गोवर्धनस्पर्धी कोपि न विश्रुत" कह कर स्वयं गोवर्धनाचार्य के काव्य की प्रशंसा की थी और इन्हें शृङ्गार रस का सिद्ध कवि कहा था। जयदेव विरचित गीतगोविन्द में आनन्दकन्द नन्दनन्दन तथा भगवती राधिका की ललित लीलाओं का जैसा वर्णन हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

आर्या सप्तशती की रचना के पहिले आर्या जैसे छोटे छन्द में किसी अन्य कवि ने ऐसा लाघव नहीं दिखाया था। आर्यासप्तशती में शृङ्गार रस के दोनों पक्षों, (संयोग और वियोग) से सम्बन्धित कुशल एवं सजीव वर्णन हैं। गोवर्धनाचार्य ने नायिकाओं की नाना प्रकार की चेष्टाओं का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है, जो सर्वथा स्वाभाविक है। इस सम्बन्ध में एक बात विशेष-रूप से उल्लेखनीय है। गाथाओं में पाई जाने वाली अन्य सुकुमारता का आर्याओं में सर्वथा अभाव है। आर्याओं की नायिकाओं में नागरिक जीवन की कृत्रिमता आ गई है।

'आर्या सप्तशती' नागरिक स्त्रियों की शृङ्गारिक चेष्टाओं का चित्रण जितना चमत्कार है, ग्रामीण वधूटियों की रस भरी उक्तियाँ उतनी ही मनोहर हैं।

+ सखी सिखावति मान विधि, सैननि बरजति बाल।
हरुये कहि मो हिय बसत, सदा बिहारीलाल॥
—"लालचन्द्रिका-३१२"

संयोग और वियोग के समय प्रेमनियों के हृदय में जो सुचित कल्पनायें अचित क्रीड़ा किया करती हैं, उनके यह सच्चे पारखी थे। देखिए एक उदाहरण।

सा सर्वथैव रक्ता रागं गु ञेव न तु मुखे वहति,
वचन परोत्सव रागाः केवल्ल मास्ये शुकस्येव।

अर्थ—यह नायक नायिका के पारस्परिक अनुराग का वर्णन है। नायिका नायक के प्रति पूर्णतया अनुरक्त है, परन्तु अपने अनुराग को वह मुख द्वारा प्रकट नहीं करती है। अतएव वह उस गुञ्जाफल के समान है जो मुख को छोड़ सर्वाङ्ग में रक्तवर्ण है। दूसरी ओर वचन चातुरी में दक्ष नायक है, जो मुखमात्र से ही अपने प्रेम का स्थापन करता है। अतः वह उस हरे शुक के समान है जिसका केवल मुख ही लाल है।

हाल अमरुक और गोवर्द्धन तीनों ही रचनाएँ शृंगार रस प्रधान हैं और तीनों ही इस विषय में माने हुए कवि हैं। ब्रजभाषा के बिहारी, पद्माकर आदि कवियों ने इन महाकवियों की सूक्तियों से पूरा पूरा लाभ उठाया है। कहीं-कहीं ज्यों का त्यों अनुवाद किया है।

इत आवति चलि जाति उत चली छ सातक हाथ,
चढ़ि हिंडोरे सैं रहै, लगी उसासनु साथ। "बिहारी"

यह बिहारी की एक ऊहात्मक उक्ति है। इस प्रकार की उक्तियाँ मुसलमानी साहित्य में बहुत पाई जाती हैं और कतिपय विद्वान समझ बैठते हैं कि इन उक्तियों के मूल में केवल मुसलमानी साहित्य और वातावरण है। वास्तव में ये उक्तियाँ संस्कृत साहित्य में पाई जाने वाली चमत्कारप्रियता की ओर संकेत करती हैं। यथा.—

प्राप्ता तया तानवमंगयष्टि स्त्वद्वि प्रयोगेण कुरंगदृष्टेः,
यथो गृहस्तम्भ निवर्त्तितेन कम्पं यया श्वासप्तमीरणेन।
"विक्रमांकदेवचरित"

अर्थात्—आपके वियोग से उस मृगनयनी की शरीर-लता इतनी कृश हो गई है कि घर के खम्भे से टकराकर लौटी हुई साँस की हवा से वह काँपने लगती है।

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल,
अली कली ही सौं बन्ध्यो, आगे कौन हवाल॥

बिहारी के इस प्रसिद्ध दोहे पर 'गाथा सप्तशती' की छाप स्पष्ट है।

जाव ण कोस विकासं पावइ ईसीस मालई कलिया,
मअरंद पाण लोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि।
"गाथा सप्तशती ५, ४४"

अर्थात्—"अभी मालती की कली के कोष का विकास भी नहीं हो पाया है कि मकरंद को पान करने के लोभी भौंरे तूने उसका मर्दन आरम्भ कर दिया।"

"गाथा सप्तशती" के अनुकरण पर विरचित आर्या सप्तशती में भी इसी भाव की रचना मिलती है।

अविभक्त संधि बन्धं प्रथम रसो देयपानलुब्धः
यद् विशसि न जानाति खंडयसि कलिकामुखं भ्रमर।

अर्थात्—कली के प्रथम मकरंद रस पान का लोभी भौंरा उसके मुख के जोड़ को खंडित कर रहा है वह उसको विकसित करना नहीं जानता।

मैं मिसिहा सोयो समुझि, मुँह चूम्यो ढिग जाय।
हँस्यो, खिसानी, गल गह्यो, रही गरे लपटाय॥

बिहारी के उक्त दोहे पर "अमरुक" की छाया है।

शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किंचिच्छनै
र्निद्रा व्याजमुपागतस्य सुचिरं, निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्॥
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीम्।
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता॥

इस श्लोक [illegible] के भाव [illegible] समास [illegible]
एक छोटे से दोहे में अत्यन्त [illegible] भी [illegible]
इतना ही है कि दोहे में अधिक [illegible] है।
[illegible] प्रेम [illegible]
संस्कृत वाले [illegible]
वर्णन स्वयं [illegible]
[illegible] दिया

सतसई परम्परा की चमत्कारप्रियता प्रसिद्ध है ही। संस्कृत में, भी दंडी आदि चमत्कारवादी कवियों के प्रभाव से कुछ अलंकारिक रंग ढंग बढ़ गया था। आगे चल कर यह कुछ कम हो गया। मुसलमानी शासन के प्रभाव से उसे पुनः जीवित कर दिया। हिन्दी के कवियों की चमत्कार प्रियता तो सर्व विदित है ही। संस्कृत के मुक्तकारों में भी यह चमत्कार प्रवृत्ति पुनः जाग्रत हो गई थी।

संस्कृत साहित्य में रस-संचार के लिये नाटक और काव्यों की क्रमबद्ध रचना का प्रारम्भ काल विक्रम की तीसरी सदी के पूर्वार्द्ध से मानना चाहिए, भास और शूद्रक के नाटक रस सृष्टि की दृष्टि से संस्कृत की प्रसिद्ध रचनाएं हैं, इनका समय क्रमशः (१०८ सन् तथा २००, ३०० ई०) ठहरता है इनके अतिरिक्त कवि कुलगुरु कालिदास (समय ३७२, ४१३ ईसवी सन्) की रचनाओं का इस क्षेत्र में विशेष महत्व है कालिदास के बाद संस्कृत साहित्य में नाटक एवं काव्य रचना की एक अविच्छिन्न परम्परा मिलती है, हर्ष (७ वीं सदी का मध्य) माघभारवि (७ वीं सदी का उत्तरार्द्ध) भवभूति (७ वीं सदी का उत्तरार्द्ध) आदि कवियों की रचनाएं विशेष उल्लेखनीय हैं, छठवीं सदी के उत्तरार्द्ध में राजा भर्तृहरि ने अपने "शृंगार शतक" की रचना की थी, उसमें प्रेम से प्रभावित कामियों के चित्त की ललित क्रीडाओं का सूक्ष्म विश्लेषण एवं मनोरम वर्णन किया है,

कालिदास और श्री हर्ष, इन दो महाकवियों ने शृंगार रस सम्बन्धी रचनाओं में बड़ी सहृदयता दिखाई है, जिस प्रकार सम्भोग का मधुर स्वरूप देख कर चित्त प्रफुल्लित हो उठता है, उसी प्रकार विप्रलम्भ के रमणीय स्थलों में चित्त पूरी तरह से आत्मग्मग्न हो जाता है, श्री हर्ष ने तो अपने महाकाव्य "नैषध" को "शृंगारामृतशीतगुः" कहकर अन्तर रूपी समुद्र के लिये चन्द्रमा बताया है,

आगे चलकर संस्कृत साहित्य में पृथक् मुक्तक काव्य के अन्य ग्रंथों की रचना हुई। उनमें कालिदास के नाम से प्रचलित "शृंगार तिलक", "घटकर्पर", बिल्हण की चौर पंचाशिका (११ वीं सदी का उत्तरार्द्ध) आदि अपने शृंगार, माधुर्य के लिए

अति प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। यहाँ यह पता देना अप्रासंगिक न होगा कि संस्कृत के ये ग्रन्थ "सतसई" यानी सप्तशती, और अमरुक शतक की परम्परा से तनिक भिन्न हैं। इनकी आत्मा में अभिजात्य की गन्ध पाई जाती है।

संस्कृत साहित्य के इन शृङ्गार मुक्तकों के समानान्तर भक्ति परक मुक्तकों की एक अन्य परम्परा मिलती है। इसके अन्तर्गत "दुर्गा सप्तशती", "चंडी शतक", "वक्रोक्ति पंचाशिका (शिव पार्वती वन्दना) और कृष्ण जीवन से सम्बद्ध कृष्ण लीलामृत अनेक स्तोत्र ग्रन्थ आते हैं। इन ग्रन्थों की आत्मा में भक्ति की प्रेरणा होते हुए भी वातावरण में प्रायः शृङ्गार की ही प्रधानता परिलक्षित होती है। उनमें शिव-पार्वती एवं कृष्ण-राधा ब्याह के वर्णन में कामुकता की झलक स्पष्ट है।

बारहवीं से चौदहवीं सदी तक बंगाल और बिहार में जो राधा कृष्ण की भक्ति के ग्रन्थ रचे गये उनमें काम की सूक्ष्म भावनाओं का एक स्रोत सा बहता दिखाई पड़ता है। वैसे शृङ्गार की भावनाएँ बाल्मीकि रामायण (२०० वर्ष ई० पू०) आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी पाई जाती हैं, और राधा कृष्ण को नायिका नायक का रूप देने में जयदेव (१२ वीं शती) अग्रगण्य हैं परन्तु हिन्दी में सर्व-प्रथम कृष्ण और राधा को नायक और नायिका के रूप में लाने वाले मैथिल कोकिल विद्यापति (१५ वीं सदी का पूर्वार्द्ध) हैं। विद्यापति के गीत जयदेव के छन्दों का हिन्दी संस्करण हैं। इसीलिए वह अभिनव जयदेव कहाते हैं। अतः स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य का शृङ्गार वर्णन एक प्राचीन परम्परा विशेष का एक अंग है। शृङ्गार वर्णन की मुक्तकों के रूप में परम्परा "प्राकृत" से प्रारम्भ हुई, संस्कृत साहित्य में उसका पूर्ण विकास हुआ, और बाद में संस्कृत से यही परम्परा हिन्दी में गृहीत हुई। मैथिल कोकिल के गीत उसका सर्वप्रथम रूप हैं। रीतिकाल (संवत् १७०० से संवत् १९०० तक) के अन्तर्गत ब्रजभाषा साहित्य में उसका सर्वांग विकास एवं पूर्णरूपेण प्रस्फुटन हुआ।

रीति साहित्य—"रीति" शब्द "रीङ्" धातु से बना है। [illegible]

शब्दार्थ है "ढग, प्रकार, परिपाटी, रस्म, रिवाज, प्रणाली इत्यादि। काव्य में रीति शब्द को मार्ग का पर्याय माना गया।ऽ

जिस प्रकार भाषा के परचात् व्याकरण का उदय होता है उसी प्रकार लक्ष्य ग्रन्थों के बाद लक्षण ग्रन्थों का जन्म होता है। वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, रघुवंश आदि लक्ष्य ग्रन्थों के परचात् साहित्य का काव्य-शास्त्र के लक्षण ग्रन्थों का आविर्भाव हुआ। ध्वनिकार का तो स्पष्ट मत है कि व्याकरण आदि शास्त्रों के ज्ञान से शब्दार्थ मात्र का ही बोध हो सकता है, न महाकवियों के रचना रहस्य का।×

जिनके अध्ययन से काव्य का स्वरूप एवं रहस्य तथा काव्य के रस, ध्वनि, अलंकार आदि भेदों का ज्ञान एवं बोध, गुण के विवेचन की शक्ति उत्पन्न हो, उन ग्रन्थों को रीति ग्रन्थ कहते हैं। साहित्य शास्त्र के विधिवत् ग्रन्थों के पूर्व उसके मूल तत्वों का उल्लेख बीजरूप से मनीषियों, कवियों और दार्शनिकों की वाणी में हुआ। भाषा का विवेचन, शिक्षा, निरुक्त शास्त्र, व्याकरण, छन्द आदि वेदांगों में तथा न्याय, मीमांसा आदि दर्शनों में होने लगा था।' इसी प्रकार के विवेचनों में क्रमशः साहित्यशास्त्र की नींव पड़ी।

भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र (ई० पू० पहिली सदी के आसपास) में हमें सबसे प्रथम काव्यों का वर्णन मिलता है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के परचात् इस विषय का दूसरा उल्लेखनीय ग्रन्थ है। भगवान वेदव्यास का 'अग्निपुराण'

ऽ वेदुर्भोधिकृतः पन्या काव्ये मार्ग इतिस्मृत',
रीङ्० गताविति धातो' सा व्युत्पत्त्य रीतिरुच्यते।

"सरस्वती कण्ठाभरण"

उक्त सूत्र की जो व्याख्या इस प्रकार की गई है।

"रिपन्ते परम्परया गच्छन्त्य 'नयेतिकरणता धर्मे' यं रीति शब्दो मार्ग पर्याय"

× "शब्दार्थ शासन ज्ञान मात्रेणैव न वेद्यते,
वेद्यते स हि काव्यार्थतत्त्व ज्ञै रेव केवलम्।" —

"ध्वन्यालोक १, ७"

इसमें सभी काव्यांगों का विवेचन है। यद्यपि अग्निपुराण का समय निश्चित नहीं है तथापि यह नाट्यशास्त्र के बाद का ग्रन्थ प्रतीत होता है।

संस्कृत के प्रारम्भिक काव्य तो सरल रहे किन्तु पीछे के लोगों का ध्यान पांडित्य की ओर अधिक गया। (जैसे भवभूत के नाटकों में) और परिश्रमपूर्ण श्रव्यकाव्य की ओर भी लोगों की रुचि अधिक बढ़ी। श्रव्यकाव्यों में नाटक की अपेक्षा व्यापकता अधिक रहती है। वे सभी जगह पढ़े जा सकते हैं। और उनमें मंचादिक बाहरी उपकरणों का झंझट नहीं रहता। ऐसे काव्यों में अलंकारों का प्राधान्य रहा। (भट्टिकाव्य जो ७ वीं सदी के आसपास रचा गया है इसी प्रवृत्ति का फल है।) कालिदास के पश्चात् जो महाकाव्य बने उनमें अलंकारों और चमत्कारों का प्राधान्य रहा। इन कवियों के सम्बन्ध में श्री चन्द्र शेखर शास्त्री 'संस्कृत साहित्य की रूप रेखा' में लिखते हैं।

"इन उत्तरकालीन कवियों ने काव्य का उद्देश्य बाह्य शोभा, अलंकार, श्लेष योजना एवं शब्द विन्यास चातुरी तक ही सीमित कर दिया। अलंकार कौशल का प्रदर्शन करना तथा व्याकरण आदि के नियमों के पालन में अपनी निपुणता सिद्ध करना उनका प्रधान ध्येय हो गया। काव्य का विषय गौण हो गया तथा भाषा और शैली को अलंकृत करने की कला प्रधान हो गई। (संस्कृत साहित्य की रूप रेखा पृष्ठ ६२)।

अलंकार सम्प्रदाय—काव्य की प्रवृत्तियों के साथ काव्यशास्त्र की भी प्रवृत्तियां चलती रहीं। अलंकारों की ओर झुकाव होने से काव्यशास्त्र में भी अलंकारों के विवेचन को विशेष महत्ता मिली। नाटकों की भांति अलंकारों में भी बाह्य आकर्षण का आधिक्य रहता है।

यद्यपि रूपकादि की चर्चा हमें वैदिक साहित्य में भी मिल जाती है, तथापि उनका विधिवत् निरूपण सर्व प्रथम भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में ही मिलता है। उन्होंने वाचिक अभिनय के सहारे चार अलंकारों (उपमा, रूपक, दीपक, और यमक) का वर्णन किया है।[१]

---

[१] उपमा रूपकं चैव दीपकं यमकं तथा अलंकारास्तु विज्ञेयाश्चत्वारो नाटकाश्रयाः

"नाट्यशास्त्र १७ ४२"

भरतमुनि ने अलंकारों का प्रयोग रस के आश्रित बताया है। भरतमुनि के पश्चात् अन्य आचार्यों का भी ध्यान अलंकारों की ओर गया। अग्निपुराणकार की प्रवृत्ति अलंकारों की ओर है। वात्स्यायन के कामसूत्र "१, ३, १६" में क्रियाकल्प को चौंसठ कलाओं में एक कला माना है। क्रिया का अर्थ है "क्रिया-कल्प" भी इस शास्त्र की एक प्राचीन संज्ञा ठहरती है, क्योंकि वात्स्यायन का समय ईसा की दूसरी सदी ठहरता है।२

अलंकारों की कल्पना बदलती गई और "अलंकार शास्त्र" ही इसका नाम प्रसिद्ध हुआ। अलंकार शास्त्र के अन्तर्गत काव्य सौन्दर्य को स्पष्ट करने वाले समस्त उपकरणों का प्रतिपादन हुआ। पूर्वाचार्य ने अलंकारों को इसी व्यापक अर्थ में ग्रहण किया था। वामन (८ वीं सदी) की दृष्टि में अलंकार केवल शब्द और अर्थ की शोभा करने वाले बाह्य उपकरण मात्र नहीं रहे, प्रत्युत वह काव्य को रोचक बनाने वाला आन्तर धर्म है। उसने अलंकार को सौन्दर्य का पर्यायवाची माना है।१

अलंकार को प्रधानता देकर विधिवत् साहित्यशास्त्र का रचना करने वालों में भामह पहिले आचार्य हैं। इनका समय ईसा की ५ वीं या ६ ठीं सदी ठहरता है। इनसे भी पहिले कुछ आचार्य रहे होंगे, क्योंकि स्वयं भामह ने रामशर्मा (काव्यालंकार २, १९ मेधावी २, ४०) आदि का सादर उल्लेख किया है, किन्तु उनका कोई ग्रन्थ प्राप्य न होने से अब उनके केवल नाममात्र ही शेष

२ वेदान्त सूत्र में उपमा और रूपक की चर्चा है। अतएव चोपमासूर्यकादिवत् ३, २, १८। तथा शरीररूपक विन्यस्तगृहीतेर्दर्शयति च, १, ४, १ कठोपनिषद् में आत्मा को रथी और शरीर को रथ बताकर पूरा सांगरूपक प्रस्तुत किया है। आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च। "कठोपनिषद् १, ३, ३" मु कठोपनिषद् में बताया गया है कि जिस प्रकार रथ के पहिये की नाभि से आरे सम्बन्धित रहते हैं, उसी प्रकार हृदय से नाड़ियाँ सम्बद्ध रहती हैं। "अरा इव रथनाभो संहता यत्र नाड्य मु ० २, ६" यह उपमा का बहुत ही सुन्दर उदाहरण है।

१ सौन्दर्य अलंकार 'काव्यालंकार'।

है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में अनुमानतः अलंकार परम्परा का विकास धीरे धीरे तभी से हो रहा था जब से पंडितों ने भाषा की सूक्ष्म परीक्षा आरम्भ कर दी थी। मेधाविन् इसी विकास पथ का कोई प्रमुख मार्ग चिन्ह था।१

राजशेखर ने (१० वीं सदी का प्रारम्भ काल) अपने 'काव्य मीमांसा' में इस शास्त्र की उत्पत्ति सम्बन्धी एक रोचक कथा लिखी है। उसके अनुसार भगवान् शंकर ने सर्व प्रथम इस शास्त्र की शिक्षा ब्रह्माजी को दी, जिन्होंने इसका उपदेश अनेक देवताओं व ऋषियों को किया आदि। इस प्रकार अलंकारशास्त्र की प्राचीनता असंदिग्ध है। स्वयं भामह ने अपने आपको अलंकार शास्त्र का प्रवर्तक न मान कर केवल परिपोषक और परिवर्द्धक मात्र कहा है।२

पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थ उपलब्ध न होने के कारण भामह को ही इस सम्प्रदाय का सर्वप्रथम प्रतिनिधि माना गया है।

अलंकारों को प्रधानता देते हुए भामह ने स्पष्ट कहा है। 'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्' 'काव्यालंकार १, १३' अर्थात् वनिता का सुन्दर मुख भी भूषण बिना शोभा नहीं देता है। इसी आधार पर आगे चल कर आचार्य केशवदास ने ईसा की १६ वीं सदी में कहा था कि—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु नहिं राजई कविता वनिता, मित्त।
"कवि प्रिया ५-१"

अग्निपुराण के

वाग्वेदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्। '३३७, ३३'

इस वाक्य में काव्य का जीवन सर्वस्व केवल रस को बताते हुए भी :—

अर्थालंकार रहिता विधवेव सरस्वती। '३४५, २'

तथा—

अपुष्पफलितैस्त्रीणां हारो भारायते परम्। '३४६, १'

कह कर काव्य में अलंकारों की स्थिति आवश्यक बताई है, अर्थात् जिस

१ रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ८१।

२ काव्यालंकार ५, ६४।

प्रकार रस को काव्य का जीवनाधार बताया है, उसी प्रकार अलंकार रहित काव्य को विधवा स्त्री के समान चमत्कार हीन और गुण हीन काव्य को कुरूपा स्त्री के समान चित्ताकर्षक नहीं माना है।

भामह ने रीति, गुण, दोष, वक्रोक्ति और रसवद् अलंकार १ काव्यालंकार २, ३ के आश्रय रस का विवेचन किया है। उन्होंने महाकाव्यों में भी अन्य बातों के साथ रस का होना आवश्यक माना है।२ परन्तु फिर भी उनकी दृष्टि काव्य के शरीर पर ही अधिक रही। यद्यपि भामह ने काव्य के लियेः पूर्ण निर्दोषता को आवश्यक गुण माना है, तथापि उनकी काव्य की परिभाषा में केवल शब्दार्थों को लिया गया है।४

भट्टिकाव्य '५ वीं सदी' के दशम सर्ग 'प्रसन्न कांड' में भी १८ ()ी अलंकार माने गये हैं और उन सब में वक्रोक्ति को प्रधानता दी है। वक्रोक्ति का रूप भी उसमें व्यापक बना दिया गया है ताकि सब अलंकार और काव्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य उसके सूत्र में बंध जाय। भट्टि ने कोई साहित्य शास्त्र नहीं लिखा है। हिन्दी में इस प्रकार के कवि बिहारी (१७ वीं सदी) हैं।

भामह के उपरान्त दण्डी ने अलंकारों के विवेचन को स्पष्ट और समृद्ध किया। इनका ग्रन्थ है 'काव्यादर्श' और इनका भी समय ईसा की ५ वीं ६ ठीं सदी ठहराता है। इनके ग्रन्थ का नाम ही बताता है कि भामह की अपेक्षा इनके विचार धारा कुछ अधिक उदार थी। इन्होंने अलंकारों को काव्य शोभा के उत्पादक मानते हुए भी ४ गुणों को विशेष महत्ता दी और रीति सिद्धान्त के लिए द्वार खोला।

---

१ काव्यालंकार ।

२ युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् काव्यालंकार १, २१।

३ विसरूपता हि काव्येन दुस्सुतेनेव निन्द्यते। 'काव्यालंकार २, ११' अर्थात् एक भी पद ऐसा नहीं होना चाहिए जो कहने के अयोग्य हो क्योंकि काव्य से ऐसे ही निन्दा होती है जैसे कुपुत्र से।

४ शब्दार्थौ सहितं काव्यम् 'काव्यालंकार १, १६'

५ काव्यशोभा करान् धर्मानलंकारान्प्रचक्षते 'काव्यादर्श २, १'।

भामह और दंडी में कौन पहले हुआ और कौन पीछे, यह विषय विवादास्पद है। परन्तु इतना अवश्य है कि इन दो आचार्यों के विचारों में बहुत कुछ समानताएँ पाई जाती हैं। गुणों को भामह ने भी माना है, हालांकि दंडी के समान उन पर विशेष बल नहीं दिया। रीति को मार्ग बताकर दंडी ने भी भामह के समान उदार दृष्टिकोण का परिचय दिया है। भामह की उदारता कुछ उपेक्षापूर्ण है क्योंकि उन्होंने वैदर्भी और गौडीय के विभाजन को गतानुगतिक न्याय 'मेधियापसाम' कहा है + किन्तु दंडी ने पहिले पहिल वैदर्भी और गौडीय रीतियों का सम्बन्ध दशगुणों से जोड़ा है।

संस्कृति के समीक्षा शास्त्र में अनेक अलंकारवादी हुए। रस तो प्रायः सभी ने माना किन्तु उसे स्वतन्त्र न मानकर रसवत् आदि अलंकारों के अन्तर्गत कर लिया। भामह और दंडी के पश्चात् उद्भट (८ वीं सदी) ने भी अपने 'काव्यालंकार' सार संग्रह में रस को रसवदालंकार के अन्तर्गत रखा और रसों की संख्या ६ मानकर ४१ अलंकारों का वर्णन किया है।

काव्यालंकार-सार-संग्रह के पश्चात् इस विषय के महत्वपूर्ण ग्रन्थ काव्यालंकार का नाम आता है। इसकी रचना रुद्रट ने ईसा की ६ वीं सदी में की थी। रुद्रट ने भी रसों को आवश्यक मानते हुए अलंकारों को प्रधानता दी है और अलंकारों के मूल तत्वों 'वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष' का विवेचन करके उनमें तारतम्य स्थापन और वर्गीकरण का नया प्रयास किया है। रुद्रट ने ६ रसों के अतिरिक्त प्रेयस 'वात्सल्य' नाम का एक और दसवां रस माना है।* रुद्रट अलंकार सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य हैं। रुद्रट ने एक ओर तो अलंकारों के सूक्ष्म भेद उपभेदों का स्पष्टीकरण कर उनकी संख्या ६० से ऊपर कर दी और दूसरे वास्तव औपम्य, अतिशय तथा श्लेष के आधार पर उनका वैज्ञानिक वर्गीकरण किया। यह वर्गीकरण सर्वमान्य न होते हुए भी अलंकार शास्त्र के लिए एक मौलिक देन थी'''' ---रस और भाव को अलंकार के अन्तर्गत मानने की जो त्रुटि भामह के समय से बराबर होती आ रही थी उसका सबसे पहिले

+ काव्यालंकार १, ३२।

* रीति साहित्य की भूमिका पृष्ठ ८२।

संशोधन रुद्रट ने ही किया। उसने रसवत् आदि को अलंकार मानने से साफ मना कर दिया और इस प्रकार एक बहुत बड़े भ्रम का निवारण कर दिया।

रुद्रट के उपरांत ध्वनि सम्प्रदाय का उदय हुआ। ध्वनिवादियों ने असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि के अन्तर्गत रस का वर्णन किया और ध्वनि को काव्य की आत्मा मानते हुए अलंकार को निम्नतर स्थान दे दिया। इस मत की पूर्ण प्रतिष्ठा करने का श्रेय काव्यप्रकाश के रचयिता आचार्य मम्मट (१२ वीं सदी) को है। मम्मट समन्वयवादी आचार्य थे। उन्होंने काव्य को सालंकार माना, परंतु फिर भी अलंकारवाद का बोझ हल्का करने के लिये 'अनलंकृती पुनः क्वापि' अर्थात् काव्य कभी-कभी बिना अलंकार के भी होता है। कह दिया।× उन्होंने गुण और अलंकार का भेद स्पष्ट किया। गुणों को काव्य का साक्षात् धर्म माना और अलंकारों को काव्य के अंगभूत शब्द और अर्थ के शोभाकारक धर्म माना +

उन्होंने भामह के शब्दार्थौ सहितौ काव्यं अग्निपुराण के '३३७, १' काव्यं स्फुटदलंकार गुणवद्दोष वर्जितम् को मिलाकर एक नई परिभाषा तैयार करली थी।

उक्त कथन का यह अभिप्राय न समझ लेना चाहिए कि रुद्रट के बाद अलंकारों का विवेचन अथवा उनका विकास क्रम सर्वथा अवरुद्ध होगया। अलंकार सम्प्रदाय का विकास रुद्रट के बाद भी होता रहा, किंतु आचार्यों का प्रयास प्रायः अलंकारों की संख्या बढ़ाने अथवा परिभाषाओं में हेर फेर करने तक ही सीमित रहा।

अलंकार सम्प्रदाय के अन्तर्गत रुय्यक (१२-वीं सदी) के अलंकार सर्वस्व हेमचन्द्र के "काव्यानुशासन" और वाग्भट के "वाग्भटालंकार" दोनों ही १२ वीं सदी के हैं तथा दोनों ही महानुभाव जैन हैं। "जयदेवपीयूषवर्ष" १३ सदी का "चंद्रालोक" तथा उसके पंचम मयूख पर अप्पय दीक्षित (१६ वीं, १७ वीं

× तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि 'काव्यप्रकाश' १, ४

+ उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्ग द्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः। 'काव्य प्रकाश'

सदी) की "कुवलयानन्द" नाम की टीका, ये ग्रंथ विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। अप्पय दीक्षित के समय तक अलंकारों की संख्या ११३० हो गई थी।

जयदेव पीयूषवर्ष ने तो अलंकारों को प्रधानता न देने वालों को खुले चुनौती दी थी कि जो काव्य को अलंकार रहित मानता है 'जो अलंकार को काव्य की आत्मा नहीं मानता' वह अग्नि को उष्णता रहित क्यों नहीं मानता।*

उनके मत में जिस प्रकार अग्नि को उष्णता-रहित मानना उपहास्यास्पद है, उसी प्रकार काव्य को अलंकार हीन मानना अस्वाभाविक है। हिन्दी वालों पर चन्द्रालोक का विशेष प्रभाव पड़ा।

ईसा की १७ वीं सदी में पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा "रसगंगाधर" लिखा गया। बस इसे ही अलंकार शास्त्र का अन्तिम प्रन्थ समझना चाहिये। इस समय तक विभिन्न आचार्यों द्वारा निरूपित अलंकारों की संख्या १११ तक पहुँच गई थी।

अलंकार सम्प्रदाय के विभिन्न आचार्यों के मतों को संक्षेप में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि—

(१) इन समस्त आचार्यों ने काव्य में प्रधानता अलंकारों को दी है। इनके मतों के निष्कर्ष रूप में रुय्यक ने कहा—

अलंकारा एव काव्ये प्रधानमितिप्राच्यानां मतः।

॥ अलंकार सर्वस्व ॥

(२) अलंकार की व्युत्पत्ति वैयाकरण दो प्रकार से करते हैं। (अ) "अलंकरोतीति अलंकारः" अर्थात् जो सुशोभित करता है, वह अलंकार है, तथा (ब) "अलंक्रियतेऽ नेनेत्यलंकारः" अर्थात् जिसके द्वारा किसी की शोभा होती है वह

● नाट्यशास्त्र ४, अग्निपुराण १६, भामह और भट्ट के समय में '६ ठी सदी' ३६, दंडी उद्भट और वामन के समय में '८ वीं सदी' ४१, रुद्रट, राजा भोज मम्मट, रुय्यक के समय तक '१२ वीं सदी' ११३, जयदेव से अप्पय दीक्षित के समय तक १६ वीं, १७ वीं सदी' कुल अलंकारों की संख्या ११३।

* अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थों अनलंकृती असौ न मन्यते कस्मात् अनुष्णमनलंकृती। "चंद्रालोक १, ८"

अलंकार है। दोनों व्युत्पत्तियों का आशय प्रायः एक ही है। प्रथम अलंकार को कर्त्ता या विधायक मानती है और द्वितीय केवल करण, अर्थात् साधन मात्र। अलंकार के सम्बन्ध में सर्वमान्य मत उसे साधन मात्र ही स्वीकार करता है। अतः अलंकार काव्य की शोभा का साधन मात्र है।

(३) संस्कृत साहित्य शास्त्र में अलङ्कार की दो प्रतिनिधि परिभाषायें हैं। (अ) "काव्य शोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते" (दण्डी) अर्थात् अलङ्कार काव्य की शोभा करने वाले धर्म हैं, तथा (ब) "शब्दार्थ योरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः" रसादीनुपकुर्वन्तो "अलंकारास्ते" ऽङ्गदादिवत्। (साहित्य दर्पण) अर्थात् शोभा को अतिशयित करने वाले, रस भाव आदि के उपकारक, जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं, वे अंगद (बाजूबन्द) आदि की तरह अलंकार कहाते हैं। प्रथम परिभाषा बहुत दिनों तक अलंकार सम्प्रदाय का सिद्धान्त वाक्य रही थी, परन्तु फिर बाद में ध्वनि और रस की स्थिर रूप से प्रतिष्ठा हो जाने पर परिभाषा बदलनी पड़ी थी। इस प्रकार अलङ्कार काव्य के अस्थिर धर्म हैं।

(४) लौकिक में जिस प्रकार रत्नादि से निर्मित आभूषण शरीर को अलंकृत करने के कारण अलङ्कार कहे जाते हैं उसी प्रकार काव्य को शब्दार्थ द्वारा अलंकृत करने वाला उपकरण को काव्य शास्त्र में अलंकार कहते हैं।

(५) काव्य शब्द और अर्थ उभयात्मक है, अतएव अलंकार भी शब्द और अर्थ में विभक्त हैं। शब्द रचना के वैचित्र्य द्वारा जो काव्य को अलंकृत करते हैं, वे अनुप्रासमिक शब्दालंकार हैं, अर्थ वैचित्र्य द्वारा जो काव्य को सुशोभित करते हैं वे उपमा आदि अर्थालंकार कहे जाते हैं।[१]

१ये व्युत्पत्यादिना शब्दमलंकर्तु मिहक्षमा,
शब्दालंकारसं संज्ञास्ते। (सरस्वती कंठाभरण २, २)
अलमर्थमलंकर्तुं य द्व्युत्पत्यादिवर्त्मना।
ज्ञे या जात्यादय प्राज्ञैस्तेर्थालंकार संज्ञया॥
॥ महाराज भोज, सरस्वती कंठाभरण ३, १॥
अर्थात्—लोकोत्तर शैली अथवा शब्द रचना तथा अर्थ की विचित्रता का नाम अलंकार है।

विभिन्न व्यक्तियों की उक्ति वैचित्र्य का विभिन्न होना सर्वथा स्वाभाविक है। इसी आधार पर अलंकारों का विभाजन किया गया है।

प्रत्येक अलंकार में उक्ति वैचित्र्य अर्थात् वर्णन करने की शैली भिन्न रहती है। ऐसा होने पर भी अलंकारों के कुछ मूल तत्व ऐसे हैं जिनके आधार पर सजातीय अनेक अलंकारों का एक एक समूह अपने मूल तत्व पर, अवलम्बित है। इन मूल तत्वों के आधार पर अलंकारों को भिन्न-भिन्न समूहों में विभक्त किया जा सकता है। इस विषय की ओर सबसे, पहिले रुद्रट (ईसा की ९ वीं सदी) ने ध्यान दिया था। अपने निरूपित अलंकारों को उसने वास्तव, औपम्य, अतिशय तथा श्लेष, इन चार मूल तत्वों के आधार पर चार श्रेणियों में विभक्त किया था। रुद्रट का वर्गीकरण मान्य नहीं है, क्योंकि उक्त वर्गीकरण में मूल तत्वों का यथार्थ विभाजन नहीं हो पाया है।

रुद्रट के पश्चात् रुय्यक ने अलंकार सर्वस्व में अलंकारों के ७ विभाग किए। वे स्पष्ट तथा उपयुक्त हैं। यह विभाजन इस प्रकार है—

(१) समानता—इसके अन्तर्गत उपमा रूपक आदि अर्थालंकार होते हैं। इसमें अनुप्रास आदि शब्दालंकार भी अन्तर्भूत हो जाते हैं, क्योंकि इन अलंकारों में वर्णों या पदों की आवृत्ति के कारण एक प्रकार का सादृश्य रहता है। इनमें स्पष्टता के साथ-साथ यथार्थ विषय का उत्कर्ष भी हो जाता है। कभी यथार्थ विषय उपमान के बराबर भी मान लिया जाता है, कभी उपमान और उपमेय का तादात्म्य हो जाता है, कभी उपमान उपमेय का अन्योन्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और कभी यह दिखाने के लिये कि उपमेय से बढ़ कर अथवा उसकी बराबरी करने वाला संसार में कोई नहीं है, उपमेय ही उपमान बन जाता है। कुल मिलाकर इनकी संख्या २८ ठहरती है। यथा—उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, स्मरण, रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रान्ति, उल्लेख, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, श्लेष, अप्रस्तुतप्रशंसा अर्थान्तरन्यास, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति और आक्षेप।

(२) विरोध—इसमें विभावना, विरोध, अधिक, व्याघात आदि विरोध से

सम्बन्ध रखने वाले अलङ्कार आते हैं। इनके द्वारा उपमेय की महत्ता और भी अधिक (उपर्युक्त श्रेणी संख्या १ की अपेक्षा कहीं अधिक) बढ़ जाती है। विभावना आदि अलङ्कारों में आश्चर्य द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। वर्ण्य विषय का क्रम साधारण क्रम से विलक्षण बताया जाता है। कार्य कारण का सम्बन्ध जैसा कठिन होता है, वैसा नहीं रहता। बिना कारण के अथवा अन्य कारण से कार्य की उत्पत्ति दिखाकर आश्चर्य उत्पन्न किया जाता है। इनकी संख्या १२ है। विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, सम, विषिय, अधिक, अन्योन्य, विशेष, व्याघात, अतिशयोक्ति, असंगति और विषम।

(३) तर्क—इस श्रेणी में काव्यलिंग और अनुमान ये दो अलंकार आते हैं। ये तर्क न्याय के आश्रित हैं।

(४) काव्य न्यायमूल—पर्याय, परिसंख्या अर्थापत्ति, यथासंख्य, परिवृत्ति, विकल्प समुच्चय और समाधि ये आठ इस श्रेणी के अलंकार हैं।

(५) लोकन्याय—प्रतीप, मीलित, सामान्य तद्गुण अतद्गुण, प्रत्यनीक उत्तर इस प्रकार के अलंकार हैं।

उक्त तीन प्रकार के अलङ्कारों (तर्क तथा काव्य और न्याय मूलक) में प्रस्तुत बात अथवा घटना को किसी नियम के अनुकूल बताया जाता है। इस कारण समझने में आसानी होती है।

(६) शृङ्खला बन्ध मूल—इनमें शृङ्खला (सांकल) की भाँति एक पद या वाक्य का दूसरे पद या वाक्य के साथ सम्बन्ध रहता है। ये कुल ४ हैं। कारणमाला एकावली, मालादीपक और सार।

(७) गूढार्थ प्रतीति—इनके अन्तर्गत व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, और सूक्ष्म ये तीन अलङ्कार आते हैं। इनमें गूढ़ता प्रदर्शित की जाती है। जो कुछ साधारण सा दिखाई पड़ता है उसके अर्थ में कुछ विशेषता दिखाई जाती है। यही चमत्कार होता है।

इनके अतिरिक्त नीचे लिखे अलङ्कारों का किसी वर्ग में विभक्त नहीं किया है।

(अ) मिश्रित—संकर और संसृष्टि।

(ब) स्वाभोक्ति, भाविक और उदात्त।

(ख) रस भाव सम्बन्धीय । रसवद्, प्रेम, ऊर्जस्वी, समाहित, भावोदय, भावसन्धि और भावशबलता।

रीतिसम्प्रदाय—रीति सम्प्रदाय के उद्भावक वामन (८ वीं सदी) ने रीति को विशिष्ट पद रचना कहा है "विशिष्टा पद रचना रीति" और पद रचना के इस वैशिष्ट्य को विभिन्न गुणों के सन्निवेश पर आश्रित माना है। विशेषो गुणात्मा गुण का अर्थ उन्होंने काव्य को शोभित करने वाले धर्म कहा है। गुण नित्य धर्म हैं। अलंकार अनित्य ..... "काव्य का समस्त सौन्दर्य रीति पर आश्रित है"δ

रीति के बीज दंडी के इस सूत्र में विद्यमान थे। "इतिवैदर्भमार्गस्य प्राणाः दशगुणाः स्मृताः+ अर्थात् दंडी ने रीति को गुणों से सम्बन्धित कर दशों गुणों को वैदर्भी के प्राण कहा है। दंडी के इसी सूत्र को प्रधानता देकर वामन ने (लगभग दो सौ वर्ष पीछे) "रीतिरात्मा काव्यस्य"× अर्थात् काव्य की आत्मा है" की घोषणा कर दी ! दंडी के बाद ७ वीं सदी में बाणभट्ट ने भी रीति की चर्चा की थी। अतएव यह स्पष्ट है कि रस और अलङ्कार की भाँति रीति की परम्परा रस और अलंकार की परम्पराओं के समानान्तर चली आ रही थी। वामन ने उसे एक निश्चित रूप बाँध दिया।

गौडीय और वैदर्भी रीतियों के अतिरिक्त वामन ने एक और रीति पंचाल मानी। वामन की गौडीय रीति दंडी की गौडीय रीति की भाँति कोई हीन रीति नहीं है। वह एक स्वतन्त्र रीति है, और उसमें ओज गुण प्रधान रहता है।卐 और रौद्र, वीर आदि उन रसों के आश्रित अनुकूल होती है। दंडी की भाँति वामन ने वैदर्भी को सर्वगुणसम्पन्न माना।ऽ और माधुर्य तथा सौकुमार्य

δ"काव्यालंकार सूत्र १, २ ७, ८"

+"काव्यादर्श १, ४२"

×"काव्यालंकार १, २, ६"

卐"ओजकान्तिमयी गौडीया" काव्यालंकार सूत्र १ २, ११

ऽ"समग्रगुणवैदर्भी" काव्यालंकार सूत्र १, २, ११

गुणों से सम्पन्न रीति को पांचाली कहा है।= दंडी ने दश गुणों के भीतर ही शब्द और अर्थ के गुण माने हैं, वामन ने शब्द और अर्थ पृथक्-पृथक् दश दश गुण माने हैं।

आन्तरिकता की ओर दृढ़ प्रयास वामन की मुख्य देन है। उन्होंने अलंकारों को गौण बताते हुए गुणों को प्रमुखता प्रदान की। वामन ने गुणों को काव्य की शोभा उत्पन्न करने वाले तथा अलंकारों को काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म कहा है।+

वामन ने रस को भी मुख्यता न दी। उसको कान्ति गुण के ही अन्तर्गत रखा था।%

वामन के बाद ध्वनिकार और आचार्य विश्वनाथ ने क्रमशः ध्वनि और रस को काव्य की आत्मा बताया है।+

वामन के उपरान्त रुद्रट (६ वीं सदी) ने एक चौथी रीति लाटी की उद्भावना की, परन्तु उनकी रीति समस्त पदों का प्रयोग विशेष ही रह गई। आनन्दवर्द्धन और अभिनवगुप्त ने ध्वनि के आधार पर ही काव्य का विवेचन किया, अतएव वे रीति को स्वतन्त्र स्थान और विशेष महत्व न दे सके।

कुन्तक ने रीति विभाजन का स्पष्ट विरोध किया। उन्होंने रीति के स्थान पर मार्ग शब्द का प्रयोग किया है और उसे कवि प्रस्थान हेतु अथवा कवि कर्म का ढंग माना है। कुन्तक के उपरान्त भोज ने मागधी और अवन्तिका दो नवीन रीतियों की उद्भावना की और रीतियों की संख्या छ कर दी। उनका वर्गीकरण भी बहुत कुछ समस्त पदों पर आश्रित है। अवन्तिका को वैदर्भी

= "माधुर्य सौकुमार्योपपन्ना पांचाली" काव्यालंकार सूत्र १, २, १३

+ "काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मागुणाः।
तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः।"
"काव्यालंकार सूत्र ३, १, १२"

% 'दीप्ति रसत्वकान्ति" काव्यालंकार सूत्र ३ २, १४।

+ "काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति" "ध्वन्यालोक १, १"
वाक्यं रसात्मकं काव्य —साहित्यदर्पण १, ३"

और पांचाला की मध्यवर्ती मान्य है, तथा मागधी को एक अपूर्ण और मर्यादित मानते हुए खण्ड-रीति की संज्ञा प्रदान की है। उनके मतानुसार उसमें संगति का अभाव रहता है। स्पष्ट है कि ये उद्भावनायें अधिक पुष्ट और व्यवस्थित नहीं हैं।

भोज के परवर्ती आचार्यों ने केवल व्याख्या मात्र की। इनमें मम्मट विश्वनाथ और जगन्नाथ ही सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। मम्मट का विवेचन आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त से अधिक प्रभावित है। उन्होंने वामन की रीतियों उद्भट की वृत्तियों से एक रूप कर दिया है। उनके मत में वैदर्भी और उपनागरिका एक हैं। परुषा और गौड़ी एक हैं, पांचाली और कोमला एक हैं। इनमें पहिली दोनों में माधुर्य-व्यंजक वर्णों के आश्रित हैं और दूसरी ओज व्यंजक वर्णों के। तीसरी में ऐसे वर्णों का प्रयोग होता है जो उक्त वर्णों से भिन्न हैं।

संस्कृत साहित्य के अन्तिम आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ के साथ यह परम्परा तिरोहित हो गई। हिन्दी के आचार्यों ने भी इसे कोई महत्त्व नहीं दिया।

वक्रोक्ति सम्प्रदाय—वक्रोक्ति के बीज भामह में काव्यालंकार में विद्यमान थे। भामह ने अलंकारों को विशेष महत्त्व देते हुए वक्रोक्ति को प्रधानता प्रदान की। वक्रोक्ति को उन्होंने अत्यन्त व्यापक रूप देकर काव्य के लिए आवश्यक बताया था।§ भामह ने वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है।* भामह ने वक्रोक्ति को काव्य का भूषण अथवा अलंकार बताते हुए काव्य का वक्रोक्ति गर्भित होना परमावश्यक भी बतलाया है।=

---

§"युक्तं स्वभावोक्त्येया सर्वमेतद्विष्यते" "काव्यालंकार १, ३०"

*एव चातिशयोक्तिरिति वक्रोक्तिरिति पर्याय इति बोध्यम्" "काव्य प्र० बालबोधिनी टीका पृष्ठ ६०६"

=वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृति

"काव्यालंकार १ ३६"

तथा वाचां वक्रार्थशब्दोक्ति रलंकाराय कल्पते

"काव्यालंकार ५ ६६"

आगे चलकर यही कारिका कुन्तक के वक्रोक्ति जीवित की आधारशिला बनी। दंडी ने वक्रोक्ति को स्वभावोक्ति के विरोध में खड़ा करके अलङ्कारों का वर्गीकरण प्रारम्भ किया। उसने अलङ्कारों के दो मुख्य भेद माने (अ) स्वभावोक्ति प्रधान और (ब) वक्रोक्ति प्रधान।

वक्रोक्ति शब्द अत्यन्त प्राचीन है। इसका प्रयोग विभिन्न साहित्याचार्यों और महाकवियों ने अलग अलग अर्थ में किया है। कादम्बरी में इसका प्रयोग परिहास जल्पित के अर्थ में हुआ है। महाकवि बाणभट्ट के

वक्रोक्तिनिपुणे नाख्यायिकाख्यानपरिचयचतुरेण।

॥ कादम्बरी पृष्ठ १०६ निर्णयसागर संस्करण ॥

इत्यादि वाक्यों में वक्रोक्ति का प्रयोग क्रीड़ालाप और चातुर्यगर्भित उक्ति के लिये किया गया है। इसी प्रकार अमरुक शतक में भी वक्रोक्ति का प्रयोग वक्र उक्ति अर्थात् कुछ व्यंग गर्भित उक्ति के अर्थ में किया गया है। यथा—

सा पत्युः प्रथमापराधसमये सख्योपदेशं विनानो
जानाति सविभ्रमं अंगवलनावक्रोक्तिसूचनम्।

भामह ने इसका अर्थ "वाचामलङ्कृति" अर्थात् अर्थ और शब्द का वैचित्र्य करते हुए उसे सभी अलङ्कारों का मूल माना है, क्योंकि कवि का मार्ग जन-साधारण की अपेक्षा कल्पना समन्वित होने से अधिक भिन्न रहता है। वह उषा को उषा न कहकर भगवान् के चरणों की लालिमा कहेगा, भामह के उपरान्त दंडी ने वक्रोक्ति की सम्पूर्ण अलङ्कारों में व्यापकता बताते हुए उसे श्लेष पोषित माना है,* सारांश यह है कि भामह और दंडी दोनों के अनुसार वक्रोक्ति कथन की उस विचित्र शैली का नाम है जो साधारण दृष्टिकोण शैली से भिन्न होती है।+

---

*श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम् —'काव्यादर्श २, ३६३'

+शब्दस्य हि वक्रता अभिधेयस्य च वक्रता लोकोत्तीर्णेन रूपेण अवस्थानम् 'अभिनव'।

वक्रा वैचित्र्याधायिका लोकोत्तिशायिनी उक्तिः कथनम्। +

"काव्य प्रकाश बालबोधिनी टीका पृष्ठ १०१'

आचार्य भामह-दण्डी आदि अलंकार वादियों ने तनिक फेर के साथ उक्ति वैचित्र्य या अतिशयोक्ति पर ही अलंकारत्व निर्भर माना है। ×

रुद्रट आदि परवर्ती आचार्यों ने वक्रोक्ति को शब्दालंकार माना है। अकेले वामन ऐसे हैं जिन्होंने इसे अर्थालंकार रूप में स्वीकार किया है।

कुन्तक '११ वीं सदी का प्रारम्भ' ने इन सभी का निषेध किया। उसने अत्यंत स्पष्ट और सबल शब्दों में वक्रोक्ति को काव्य का जीवन घोषित किया। वक्रोक्ति को काव्य का जीवित 'प्राण' मानकर उसने वक्रोक्ति सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की। उसने ध्वनि का विरोध तो नहीं किया, परंतु उसे वक्रोक्ति के ही अन्तर्गत माना।

वक्रोक्ति की व्याख्या—कुन्तक ने विचित्रैव वैदग्ध्यभंगी भणीति रुच्यते + अर्थात् कथन की विचित्रता जो कवि प्रतिभा पर निर्भर है, करके की इस कथन वैचित्र्य को उन्होंने विदग्ध (Cultured) लोगों के बात करने का ढंग बताया। वक्रोक्ति की इस प्रकार व्यापक परिभाषा करके कुन्तक ने शब्दालंकार, अर्थालंकार, प्रबन्ध कौशल आदि सभी को वक्रोक्ति के अन्तर्गत कर लिया।

वक्रोक्ति की उपर्युक्त परिभाषा की व्याख्या करते हुए उसने स्पष्ट कहा है कि वैदग्ध्यं विदग्धभावः कविकर्म कौशलं तस्यविच्छित्तिः तया भणिति विचित्रैव अभिधा वक्रोक्तिः ×

यह वक्रोक्ति वर्ण विन्यास से लेकर प्रबन्ध विन्यास तक में व्याप्त है। चातुर्य के शोभित विचित्र उक्ति के रूप में अत्यन्त व्यापक बनाने के लिये कुन्तक ने वक्रोक्ति अथवा कवि व्यापार-वक्रता के छः भेद माने हैं—

(१) वर्ण विन्यास वक्रता (२) पदपूर्वार्द्ध वक्रता, (३) परार्द्ध वक्रता (४) वाक्य वक्रता। वाक्य वक्रता के अन्तर्गत उसने अलंकारों को माना है और प्रेयस तथा ऊर्जस्विन् अलंकारों के अन्तर्गत रस को माना है किन्तु रस की प्रधानता

× अलंकारान्तराणामप्येकमाहुः परायणम्।
वागीशमहिता मुक्ति मिमामतिशयाह्वयाम्॥
—"काव्यादर्श २, २२०"

+ वक्रोक्ति जीवित १ १०।

× वही १ २१ २१

न देते हुए भी रस को सर्वथा गौण नहीं ठहराया है। रसवत् को अलंकार की अपेक्षा चमत्कार्य अधिक मान्य है। (५) प्रकरण वक्रता तथा, (६) प्रबन्ध वक्रता। कवि लोग जो अपनी कल्पना से इतिवृत्त में हेर फेर कर उसे सरसता प्रदान कर देते हैं वे कवि कर्म (५) और (६) के अन्तर्गत आते हैं।×

इस प्रकार अलंकार, गुण, रस, भाव और ध्वनि के सम्पूर्ण भेदोपभेद काव्य के सभी विषय कुन्तक ने वक्रोक्ति के अन्तर्गत करके वक्रोक्ति की निस्सीम की व्यापकता प्रतिपादित की है। सम्भवतः कुन्तक का विचार ध्वनि सिद्धांत का विरोध करना है कुन्तक ने स्वयं ध्वनि स्वीकार की है, परन्तु वह कहते हैं कि काव्य का जीवन व्यंग्यार्थ पर नहीं किंतु एक मात्र वक्रोक्ति पर ही अवलम्बित है, जो अभिधा का विचित्र वाच्यार्थ है।+

कुन्तक का यह प्रयत्न सफल न हो सका, कुन्तक का वक्रोक्ति सिद्धान्त ध्वनि सिद्धान्त को तनिक भी विचलित न कर सका। प्रायः सभी परवर्ती आचार्यों रुय्यक, ममट्ट समुद्रबन्ध, विश्वनाथ' ने इस मत का निरादर किया।

ध्वनि सम्प्रदाय—आनन्दवर्द्धन‡ '९ वीं सदी' इस सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक हुए, १—आनन्दवर्द्धन ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक नहीं हैं, अन्य सम्प्रदायों की भाँति ध्वनि सम्प्रदाय का जन्म भी उसके प्रतिष्ठापक के बहुत पहिले हो चुका था, आनन्दवर्द्धन ने इस तथ्य को प्रथम ग्रन्थ में ही स्वीकार किया है, काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व ० अर्थात् काव्य की आत्मा ध्वनि है ऐसा मेरे पूर्ववर्ती विद्वानों का भी मत है।

× कविव्यापार वक्रत्वप्रकारा' संभवन्ति षट।
प्रत्येक बहवो भेदास्तेषां विच्छित्तिशोभिन' ॥

"वक्रोक्ति जीवित १, १८"

+ वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा।

"वक्रोक्ति जीवित पृष्ठ २२"

‡ कुछ विद्वान ध्वन्यालोक कार के अतिरिक्त एक अन्य आनन्दवर्द्धन को भी हुए मानते हैं,

* ध्वन्यालोक १, १

अभिनवगुप्त ने इस सम्बन्ध में पूर्ववर्ती आचार्यों में उद्भट और वामन को साक्षी माना है, उद्भट का ग्रंथ भामह विवरण आज उपलब्ध नहीं है, अतएव हमें सबसे पहिले ध्वनि संकेत वामन के वक्रोक्ति विवेचन में ही मिलता है, "सादृश्यात्लक्षणा वक्रोक्तिः" "लक्षण में जहाँ सादृश्य गर्भित होता है, वहाँ वक्रोक्ति कहलाती है। सादृश्य की यह व्यंजना ध्वनि के अन्तर्गत आती है, इसलिए वामन को साक्षी माना गया है।"

आनन्दवर्द्धन के पूर्व भी ध्वनि के समर्थक और विरोधी रहे, कुछ ने इसके अभाव माना और कुछ न इसे लक्षण 'भक्ति' के अन्तर्गत बताया तथा कुछ ने इसे अनिर्वचनीय बताया, आनन्दवर्द्धन ने उक्त तीनों मतों + का खंडन करके ध्वनि की स्थापना की, आनन्दवर्द्धन के विरोधियों में प्रमुख हैं वक्रोक्ति जीवित कार कुन्तक, व्यक्ति विवेक के रचयिता महिम × भट्ट तथा दशरूपककार धनंजय, ध्वन्यालोक की "काव्यालोक लोचन" नाम की टीका लिखने वाले अभिनवगुप्त-पादाचार्य (११ वीं सदी के मध्य में) ध्वनिकार के सबसे बड़े समर्थक हैं। इन्होंने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र पर अभिनव भारती नाम की टीका लिखी है। इन्होंने भरत के रस सम्बन्धी सूत्र की व्याख्या करके रस संबंध की अनेक गुत्थियाँ सुलझाई थीं। ध्वन्यालोक की उक्त टीका में भी इसका प्रसंग भली भांति प्रतिपादित किया गया है। ध्वनिकार ने यद्यपि रस को ध्वनि के अंतर्गत बताया है तथापि रस ध्वनि को सर्व प्रमुख ठहराया है।

संक्षेप में ध्वनि सिद्धांत इस प्रकार है। काव्य की आत्मा ध्वनि है, अर्थात् काव्य में मुख्यतः वाच्यार्थ का नहीं अपितु व्यंग्यार्थ का सौन्दर्य रहता है। व्यंग्यार्थ की महत्ता के अनुपात से काव्य के तीन भेद ठहरते हैं। (१) उत्तम अथवा ध्वनिकाव्य, (२) मध्यम अथवा गुणी भूत व्यंग्य काव्य और (३) अधम

+काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व
तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।
केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्वमूचुस्तदीयं।
तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम्। —"ध्वन्यालोक १, १"

× ध्वनि को अनुमान के अन्तर्गत सिद्ध करने का प्रयास किया,

काव्य अथवा चित्र काव्य, ध्वनि तीन प्रकार की होती है। (१) वस्तु ध्वनि (२) अलंकार ध्वनि तथा (३) रस ध्वनि। इन तीनों में रस ध्वनि को सर्वश्रेष्ठ मानकर आचार्यों ने रस ध्वनि को ही सर्वश्रेष्ठ काव्य तत्व माना है। इस प्रकार ध्वनि सम्प्रदाय ने भी दबे हुए रस सम्प्रदाय को अलंकारवाद के भार से मुक्त कर रस सिद्धान्त के उद्धार में योग दिया।

जहाँ रस का सर्वथा अभाव रहता है (जैसे चित्र काव्य में) वहाँ केवल वाग् विकल्प की ही स्थिति मानी है। इसी कारण अनेक विद्वान ध्वनि सिद्धान्त को रस सिद्धान्त का ही विस्तार सूत्र मानते हैं यह बहुत अर्थों में ठीक ही है।

ध्वनि सिद्धान्त के अनुयायियों में अभिनवगुप्तपादाचार्य, आचार्य मम्मट हेमचन्द्र, विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें सबसे अधिक लोकप्रिय आचार्य मम्मट (११ वीं सदी) हैं।

मम्मट ने दोषों और गुणों की व्याख्या रस के उत्कर्ष और अपकर्ष हेतुओं के ही रूप में की। इन्होंने रस का विवेचन ध्वनि के अन्तर्गत किया। यह विवेचन विशद् सांगोपांग है। इसमें मौलिकता के साथ पूर्ववर्ती आचार्यों के विचारों का सार है।

अभिनवगुप्त ने रस और ध्वनि सिद्धान्तों का समन्वय प्रारम्भ कर दिया था। आगे चलकर पण्डित जगन्नाथ के समय (१७ वीं सदी) तक यह पूर्ण हो गया और इस सम्बन्ध में विशेष मतभेद नहीं करते थे। हिंदी रीति ग्रन्थों को जो परम्परा प्राप्त हुई, उसमें ध्वनि के रस में बहुत कुछ अंतर्भाव हो चुका था। यही कारण है कि हिन्दी आचार्यों ने रस का ही विवेचन किया है, ध्वनि की ओर साधारण संकेत भर कर दिया है। कुलपति, प्रतापसाह आदि कतिपय कवियों ने अवश्य ही ध्वनि को काव्य का जीव (प्राण) माना है, रस को नहीं।

रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि। इन पाँच सिद्धांतों के मूल में प्रायः दो आधार ठहरते हैं। एक आत्मा को सम्पूर्ण महत्व प्रदान करता है और दूसरा शरीर को। रस और ध्वनि आत्मवादी हैं, अतः रस के अन्तर्गत आ जाते हैं। अलंकार, रीति और वक्रोक्ति शरीरवादी हैं, अतः ये रीति अथवा

अलंकार के अन्तर्गत आ जाते हैं। इस प्रकार मूलतः दो सम्प्रदाय ठहरते हैं रस और रीति अथवा रस और अलङ्कार। अलङ्कार की अपेक्षा "रीति" का अधिक स्पष्ट और युक्ति संगत है।

आत्मा और शरीर की सापेक्षिक अनिवार्यता स्वतः सिद्ध है। यदि आत्मा के बिना शरीर निरर्थक है, तो शरीर के बिना आत्मा का मूर्त अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार रस और रीति एक दूसरे के पूरक एवं अन्योन्याश्रित हैं। इसीलिए प्रतिवाद करते हुए भी आचार्यों ने एक दूसरे का किसी न किसी रूप में महत्व स्वीकार किया है।

तत्वरूप में रस और रीति सम्प्रदाय एक दूसरे के पूरक होते हुए, उसका एक विशेष कारण था। उन्होंने अलंकार, शरीर और आत्मा में न केवल व्यवहार (बाह्य) रूप से ही वरन् तत्व (आन्तरिक) रूप से भी स्पष्ट भेद मान लिया था। कालांतर में इस भ्रान्ति का निवारण होता गया और उक्त भेद क्रम विगत समाप्त हो गया।

नायिका भेद—साहित्यशास्त्र के अन्य अंगों की भांति नायिका भेद का भी प्रथम निरूपण हमें भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र में मिलता है। नाट्यशास्त्र के बाईसवें अध्याय में नायिका भेद की लगभग समस्त सामग्री किसी न किसी रूप में मिल जाती है नायिका भेद को लेकर संस्कृत साहित्य शास्त्र में कोई नवीन सम्प्रदाय नहीं उठा। आरम्भ में इसे कोई विशेष महत्व नहीं दिया जाता था। नायक नायिकाओं के भेद प्रभेदों की चर्चा केवल इस कारण होती थी कि नाटककार अपने पात्रों के शील, मर्यादा आदि उचित रीति से निर्वाह कर सकें। बाद में जब रस की प्रतिष्ठा हो गई और शृङ्गार रस को रसराजत्व प्राप्त हो गया, तब शृङ्गार के आलम्बन नायक नायिकाओं को भी विशेष महत्व दिया जाने लगा और यह विषय साहित्य व्यसनियों की चर्चा का विषय बन गया। नायिका भेद की परिपाटी का प्रारम्भिक ग्रन्थ रुद्रभट्ट का 'शृङ्गार तिलक' ही माना जाता है। इस विषय का विशद विवेचन हम आगे चल कर करेंगे। यहाँ इतना बता देना पर्याप्त है कि इन आचार्यों का सम्बन्ध काव्य शास्त्र की अपेक्षा काम शास्त्र से ही अधिक था। रुद्रभट्ट के शब्दों में इनका मूल उद्देश्य "शरीपमान

कवियों को प्रकार के ग्रन्थ रचने की शिक्षा देना और उससे भी अधिक साधारण रसिकों का मनोरंजन एवं ज्ञानवर्द्धन करते हुए गोष्ठी की शोभा बढ़ाना था।"&&

पंडितराज जगन्नाथ—इनका समय १७ वीं सदी है और यह संस्कृत साहित्य शास्त्र परम्परा के अन्तिम आचार्य हैं। पंडितराज जगन्नाथ आचार्य और कवि दोनों ही थे। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थ 'रसगंगाधर' है। इन्होंने काव्य को 'रमणीयार्थ प्रतिपादक' शब्द × कहा है। आह्लाद के साथ-साथ इन्होंने चमत्कार को भी महत्व दिया है और लौकिक वर्णन + अथवा अभिधा में इन्होंने कोई चमत्कार नहीं माना है।

इनके मतानुसार जब कोई बात चमत्कार के साथ कही जाती है तब वह काव्य होती है।

मम्मट आदि आचार्यों ने काव्य के उत्तम, मध्यम और अधम करके तीन भेद स्थापित किये थे। पंडितराज ने काव्य को चार भागों में विभक्त किया है। उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम और अधम।+

चित्रकाव्य के भी इन्होंने दो भेद किये हैं। मध्यम और अधम। जिसमें बिना व्यंजना के अर्थ के चमत्कार की प्रधानता हो वह मध्यम चित्रकाव्य है और जिसमें शब्द का ही चमत्कार हो वह अधम है। इसके उत्तम होने का प्रश्न ही नहीं है।

पंडितराज ने स्वयं अपने ही बनाए हुए उदाहरण दिये हैं। हिन्दी के कवियों ने भी ऐसा ही किया है। और उन्होंने भी लक्षण ग्रन्थ लिखते समय स्वयं विरचित उदाहरण ही उपस्थित किये। अपने स्वयं के उदाहरण लिखने की प्रेरणा बहुत सम्भव है। इन्हें अपने पूर्ववर्ती आचार्यों चंद्रालोककार जयदेव, हिंदी

&&"कि गोष्ठी मंडन इस्स प्रकार तिलकं विना"

× काव्यमाला पृष्ठ ४

+ जैसे पेड़ पर पक्षी बैठा है अथवा तुम्हारे नेत्र बहुत सुन्दर हैं।

+ "तथोत्तमोत्तमो उत्तममध्यमाधम भेदाच्चतुर्धा।"

"रसगंगाधर पृष्ठ ४"

के केशवदास तथा चिन्तामणि त्रिपाठी से मिली है। वैसे यह स्वयं बड़े मस्तमौला स्वभाव के थे। इन्होंने बड़े गर्व के साथ कहा है।

> "निर्मायनूतन मुदाहरणानुरूपं,
> काव्य ममात्र निहितं न परस्य किंचित्।
> किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः,
> कस्तूरिका जननशक्तिभृता मृगेण।
> "रस गंगाधर पृष्ठ ३'

अर्थात्—'जिस मृग के पास कस्तूरी है वह फूलों की ओर मनसा से भी ध्यान नहीं देता।

हिन्दी का रीतिकाल—संस्कृत में रीति साहित्य की परम्परा का क्रम १७ वीं सदी के अन्त तक अथवा १८ वीं सदी के प्रथम पाद तक चलता रहा। हिंदी को यही परम्परा संस्कृत से उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त हुई। हिंदी का रीति काल १७ वीं सदी के मध्य से लेकर १८ वीं सदी के मध्य तक ठहरता है।

"हिंदी के रीति काल का अध्याय अथवा लक्षण ग्रन्थों की परम्परा न तो कोई आकस्मिक घटना ही थी, और न कोई नवीन उद्‌भावना ही। यह तो एक प्राचीन परम्परा का नियमित विकास थी, जिसके अंतर्गत प्राकृति, संस्कृत अपभ्रंश और हिंदी के भक्ति काल में क्रमिक विकास होते रहे हैं।"×

हिंदी के शृंगार साहित्य के पीछे तीन परम्पराएँ थीं। (१) गाथा सप्तशती, अमरुक शतक, तथा आर्या सप्तशती के शृंगार मुक्तक और शृंगार तिलक शृंगार शतक तथा चौरपंचाशिका आदि के ऐहिक मुक्तक। (२) दुर्गा सप्तशती चंडी शतक आदि स्तोत्र ग्रन्थ, शिव पार्वती, राधाकृष्ण की शृंगार लीलाओं के वर्णन और बगाल बिहार में प्रचलित राधा कृष्ण की भक्ति से सम्बन्धित छंद (१२ वीं सदी से १४ वीं सदी) तथा (३) कामशास्त्र की चिंता धारा। वात्स्यायन के कामसूत्र के पश्चात् रति रहस्य अनंग रंग, आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। ऐहिक शृंगार मुक्तकों, शिव और कृष्ण भक्ति के श्लोकों और नायका भेद के ग्रन्थों पर इनकी दृष्टि प्राय थी।

× हिंदी साहित्य का इतिहास—पं० रामचंद्र शुक्ल

हिंदी के रीति साहित्य के प्रेरक संस्कृत साहित्य शास्त्र के विभिन्न सम्प्रदाय रस सम्प्रदाय, अलंकार सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय तथा वक्रोक्ति सम्प्रदाय थे ही। इनके अतिरिक्त भरतमुनि द्वारा प्रणीत तथा धनंजय, रुद्र, विश्वनाथ आदि द्वारा व्यवस्थित नायिका भेद निरूपण की परम्परा चली हो आ रही है। हिंदी के रीति काव्य में इन विभिन्न परम्पराओं ने क्या रूप धारण किया तथा उनके निर्माण में कौन-कौन से तत्वों ने योग दिया, यह बातें आगे कर बताया जायगा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार हिंदी के प्रथम रीति कवि पुष्य (संवत् ७००) ने कोई अलंकार ग्रन्थ लिखा था, किंतु अब इसका कोई पता नहीं है। हिंदी का सर्व प्रथम रीति ग्रन्थ कृपाराम कृत हिततरंगिणी है। इसके निर्माण काल का निर्णय निम्नलिखित दोहे के आधार पर किया जाता है।

> सिधि निधि शिवमुख चन्द्र लखि माघ शुद्ध तृतीयासु।
> हित तरंगिणी हौं रचो, कवि हित परम प्रकासु॥

(डा० भागीरथ प्रसाद मिश्र रचित हिंदी काव्य शास्त्र से उद्धृत पृष्ठ २१।

"अंकानां वामतो गतिः" के अनुसार अंक दाईं ओर से बाईं ओर पढ़े जाते हैं। इस प्रकार इसका निर्माण काल संवत् १२१८ ठहरता है। इसी समय में चरखारी के मोहनलाल मिश्र ने 'श्रृंगार सागर' नामक श्रृंगार रस सम्बन्धी एक ग्रन्थ लिखा था।

सूरदास की साहित्य लहरी रचनाकाल १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में किसी समय, परन्तु इसकी प्रमाणिकता संदिग्ध है, रीतिकालीन प्रवृत्तियों के बीज मिल जाते हैं। उनके कूटों में अलंकारों के उदाहरण मिल जाते हैं।

> प्राननाथ तुम बिन ब्रजबाला ह्वै गइ सबै अनाथ।
> कुञ्ज पुञ्ज लखि नयन हमारे, मदन चाहत प्रान।
> "सूरदास' प्रभु परिकर अंकुर दीजै जीवन दान।

'सूरपंचरत्न 'भ्रमरगीत' पृष्ठ ७४"

उक्त कूट में 'नयन अर्थात् भीति और न्याय का अभाव विशेष सार्थक होने होने से' परिकरांकुर अलंकार है।

अष्टछाप के दूसरे प्रसिद्ध कवि नन्ददास ने अपने किसी मित्र के हितार्थ नायिका-भेद लिखा था + नन्ददास में नायिका भेद होते हुए भी उसकी प्रस्तावना भक्तिपूर्ण है। भक्त होने के नाते नन्ददास को नायिका भेद लिखते हुए निश्चय ही संकोच हो रहा था। +

इसमें हाव भाव आदि का वर्णन तो है ही, किन्तु उसका मुख्य उद्देश्य प्रेम तत्व का प्रकाशन है। तुलसीदास की बरवै रामायण में यद्यपि लक्षण नहीं हैं, तथापि उसमें भी अलंकारों के उदाहरण उपस्थित करने की ओर झुकाव है।

नरहरि कवि के साथ अकबर के दरबार में आने जाने वाले कवि करनेस ने "कर्णाभरण" "श्रुति भूषण" और "भूप भूषण" नामक अलंकार सम्बन्धी तीन ग्रन्थ लिखे थे। इतना सब कुछ होने पर भी किसी ने संस्कृत साहित्य शास्त्र में निरूपित काव्यांगों का पूरा परिचय नहीं कराया था। यह काम केशवदास ने 'समय सन् १५५५ से सन् १६१७ तक' किया।

रस और अलंकारों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण सबसे पहले केशवदास ने किया। यह चमत्कारवादी कवि थे। + उन्होंने हिंदी पाठकों को काव्यांगनिरूपण की उस पूर्व दशा का परिचय कराया जो भामह और उद्भट के समय में थी, उस उत्तर दशा का नहीं जो आनन्दवर्धनाचार्य मम्मट और विश्वनाथ द्वारा विकसित हुई। भामह और उद्भट के समय में अलंकार और अलंकार्य का स्पष्ट भेद नहीं हुआ था। रस, रीति, अलंकार आदि सबके लिए अलंकार शब्द

+ "एक मीत हम सों अस गुन्यौ, मैं नायका भेद नहिं सुन्यौ" उमाशंकर शुक्ल द्वारा सम्पादित नन्ददास रसमंजरी पृष्ठ ३६।

+ रूप प्रेम आनन्द रस, जो कछु जग में आहि।
जो सब गिरधर देव को, निधरक बरनों ताहि।
'रसमंजरी पृष्ठ ३६"

+ जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजइ कविता बनिता मित्त।
"कविप्रिय पंचम प्रकास १"

का व्यवहार होता था। यही बात हम केशव की "कविप्रिया" में भी पाते हैं। उसमें अलंकार के "सामान्य" और "विशेष" दो भेद करके सामान्य के अन्तर्गत वर्ण्य विषय और विशेष के अंतर्गत वास्तविक अलंकार रखे गये हैं। ×

हालांकि हिंदी में काव्यांगों का शास्त्रीय ढंग पर निरूपण सर्व प्रथम केशवदास ने किया था, किंतु आचार्य शुक्ल ने इन्हें फिर भी रीति काल का प्रवर्त्तक नहीं माना है। इसमें संदेह नहीं कि काव्यरीति का सम्यक् समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने ही किया। पर हिंदी में रीति ग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की "कवि प्रिया" के पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।

× × ×

यह परम्परा केशव के दिखाये हुए पुराने आचार्यों 'भामह, उद्भट आदि के मार्ग पर न चलकर परवर्ती आचार्यों के' (गोवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ आदि) परिष्कृत मार्ग पर चली जिसमें अलंकार का भेद 'स्पष्ट' हो गया था। हिंदी के अलंकार ग्रन्थ अधिकतर "चन्द्रालोक" और "कुवलयानन्द" के अनुसार निर्मित हुए। कुछ ग्रन्थों में "काव्य प्रकाश" और साहित्य दर्पण का भी आधार पाया जाता है। काव्य के स्वरूप और अंगों के सम्बन्ध में हिंदी के रीतिकार कवियों ने संस्कृत के इन परवर्ती ग्रन्थों का मत ग्रहण किया। इस प्रकार दैवयोग से संस्कृत साहित्य शास्त्र के इतिहास की एक संक्षिप्त उद्धरणी हिंदी में होगई।

हिंदी रीति ग्रन्थों की अखंड परम्परा चिंतामणि त्रिपाठी 'समय सन् १६४३ के आसपास' से चली, अतः रीति काल का आरम्भ उन्हीं से मानना चाहिए। उन्होंने संवत् १७०० के कुछ आगे पीछे काव्य विवेक, कवि कुल कल्पतरु और काव्य प्रकाश ये तीन ग्रन्थ लिख कर काव्य के सब अंगों का पूरा निरूपण किया और पिंगल या छन्द शास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी। +

× रामचन्द्र शुक्ल का हिंदी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २८१

+ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २८०, २८२।

बाबू गुलाबराय न शुक्ल जी के उक्त मत का विरोध किया है। + आचार्य ग्रायस भी लिखते हैं कि केशव न संस्कृत काव्य शास्त्र के विकास क्रम को आगे नहीं बढ़ाया वरन् पहिले के आचार्यों 'भामह, दण्डी, उद्भट आदि' का अनुकरण किया। ऐसी पुनरावृत्ति तो संस्कृत साहित्य में भी होती रही है ध्वनिकार आनन्दवर्द्धन और उसके टीकाकार अभिनव गुप्त तथा रसवादी धनञ्जय के पश्चात् अलंकारवादी जयदेव पीयूष वर्ग और उनके टीकाकार अप्पय दीक्षित १६ वीं शताब्दी में हुए। वे लोग भी पीछे लौटे। 'आर्य समाजी तो मोक्ष से भी पुनरावृत्ति मानते हैं' यदि केशव ने भी इतिहास की पुनरावृत्ति की तो काम से आश्चर्य की बात है, (History repeats itself) हम स्वयं उक्त मत से सहमत हैं और आचार्य केशवदास को ही रीति काव्य का प्रवर्तक मानते हैं। रीति की परम्परा तो बराबर चली ही आ रही थी। केशवदास ने उसे परिमार्जित कर एक पृथक् रूप देने का प्रयास किया, परन्तु वह स्वरूप परवर्ती आचार्य कवियों द्वारा गृहीत न हो सका और धारा की गति कुछ मन्द पड़ गई। बाद में इसकी दिशा में तनिक सा परिवर्तन होकर वह फिर पूर्ण गति के साथ बहने लगी थी। इस तनिक से हेर फेर के कारण केशवदास के हिन्दी रीति साहित्य के प्रवर्तक होने पर हमारे विचार से व्याघात नहीं पहुँचना चाहिए। अस्तु—

केशवदास ने अलंकार सम्बन्धी दो ग्रन्थ लिखे। (१) 'रसिक प्रिया' सन् १५८१ और (२) 'कवि प्रिया' सन् १६०१ केशवदास निश्चितरूप से अलंकार वादी थे। इन्होंने अलङ्कारों के लिए सारी सामग्री संस्कृत ग्रन्थों से ली है। अलंकारों के लक्षण इन्होंने दण्डी के काव्यादर्श से लिए हैं तथा अन्य अनेक बातें अमर रचित काव्य कल्पलता वृत्ति और केशवमिश्र कृति 'अलंकार शेखर' से ली हैं। ×

"भूषन बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त" कह कर इन्होंने कविता के लिए दोषों से रहित होना भी अत्यन्त आवश्यक माना है। =

+ सिद्धान्त और अध्ययन की भूमिका पृष्ठ १० ।

× हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २२२ ।

= रजत रंच दोषयुत, कविता बनिता मित्र ।
बूँदक हाला होत ज्यों, गंगा घट अपवित्र ॥
"कवि प्रिया," तृतीय प्र० ४'

"रसिक प्रिया" में रसों का वर्णन है, किन्तु उसमें शृङ्गार की ही महत्ता दी गई है।

चिन्तामणि त्रिपाठी विरचित दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं (१) कवि कुल कल्पतरु तथा (२) शृङ्गार मंजरी, चिन्तामणि त्रिपाठी आचार्य मम्मट और विश्वनाथ से प्रभावित हैं। दोनों आचार्यों से प्रभावित उनकी काव्य की परिभाषा देख लीजिये।+

(अ) मम्मट का प्रभाव।

(१) सगुन अलंकारन सहित, दोष रहित जो होइ।
शब्द अर्थ वारो कवित्त, विबुध कहत सब कोइ॥

मम्मट की परिभाषा इस प्रकार है।

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।"
'काव्य प्रकाश १ ४'

(ब) विश्वनाथ का प्रभाव।

बतकहाउ रसमै जु है कवित्त कहावै सोइ।

विश्वनाथ की परिभाषा यह है।

"वाक्यं रसात्मकं काव्य—"साहित्यदर्पण १, ४"

चिन्तामणि त्रिपाठी के उपरांत तो लक्षण ग्रन्थों की भरमार सी होगई। कवियों में कविता करने की यह प्रणाली ही बन गई कि पहिले दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिखना फिर उसके उदाहरण के रूप में कवित्त या सवैया लिखना। ये कवित्त और सवैया पंडितराज जगन्नाथ के अनुकरण पर स्वयं अपने ही लिखे हुए होते थे।

संस्कृत की शास्त्रीय धाराएँ, पुराने कवियों की शृङ्गार रस परक मुक्तक कविताएँ तथा कामसूत्र, अनंग रंग आदि ग्रन्थों में वर्णित काम सम्बन्धी विवेचनों के अतिरिक्त हिन्दी के रीति शास्त्र को प्रभावित करने वाला एक अन्य तत्व और था। वह था तत्कालीन वातावरण। काम सम्बन्धी विवेचन तात्कालीन सामंतशाही मनोवृत्ति के अधिक अनुकूल पड़ते थे। इसी कारण हिंदी के रीति

+ सिद्धान्त और अध्ययन की भूमिका पृष्ठ १८ से उद्धृत।

ग्रन्थों में नायिका भेद सिर्यों के प्रति पशुवृत्ति वर्गीकरण आदि को अधिक अपनाया गया। संस्कृति के आचार्यों द्वारा प्रणीत यह परम्परा इस काल में विशेष विस्तार के साथ पल्लवित हुई।

वैष्णव और राम काव्य की परम्परा के कारण नायक नायिकाओं के उदाहरणों के लिये राम और सीता तथा कृष्ण और राधिका ही गृहीत हुए। विषय एक ही था, परन्तु दोनों के चरित्र के मूल में थोड़ी भिन्नता होने का परिणाम यह हुआ कि राम पीछे पड़ गये और कृष्ण को ही प्रायः सर्वत्र ग्रहण किया गया। इस कविता में भी यत्रतत्र भक्ति-भावना आती रहती थी, परन्तु भक्त हृदय का उत्साह निःशेष हो चुका था। कविता प्रस्तुत कृत हुक्मी (To Order) होने लगी थी। कवियों का मुख्य उद्देश्य 'आश्रयदाताओं' के मानसिक धरातल को स्पर्श करना हो गया था।

(ग)

हिन्दी के रीति काव्य पर वैष्णव एवं गौडीय साहित्य का प्रभाव

बौद्ध धर्म का अन्त एवं वैदिक धर्म का उत्थान—हर्षवर्द्धन के समय (६, ७ वीं सदी) से ही बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा था। ह्रास का मुख्य कारण था बुद्ध 'समय ई० पूर्व ६ वीं सदी' उपदेशों का लोक धर्म के रूप में प्रतिष्ठित न हो सकना। बुद्ध के उपदेश केवल व्यैक्तिक साधना एवं एकान्तिक साधना के ही उपयुक्त थे। अतएव समाज उन्हें ग्रहण न कर सका। बौद्ध धर्म के उच्चादर्श जनता न अपना सकी और तत्कालीन संघों में अनाचार बढ़ने लगा और स्थविर भी विलासी एवं लोलुप हो गये। अत्यधिक अनुशासन की प्रतिक्रिया अनुशासन हीनता के रूप में सामने आई। धर्म विकृत होकर वज्रयान सम्प्रदाय के रूप में देश के पूर्वी भागों में फैल गया। इन बौद्ध तान्त्रिकों के बीच वामाचार अपनी चरम सीमा को पहुँच गया। ये बिहार से लेकर आसाम तक फैले थे और सिद्ध कहलाते थे। इन तान्त्रिक योगियों को लोग अलौकिक शक्ति सम्पन्न समझते थे। राजशेखर के "कर्पूरमंजरी" में भैरवानन्द के नाम से एक ऐसे ही सिद्ध योगी का समावेश किया है। इस प्रकार जनता पर इन सिद्ध योगियों का प्रभाव विक्रम की १० वीं सदी से ही पाया जाता है। जो मुसलमानों के आने पर पठानों के समय तक कुछ न कुछ बना रहा। बिहार के नालन्दा और विक्रम शिला नामक प्रसिद्ध विद्यापीठ इनके अड्डे थे। बख्तियार खिलजी ने जब इन दोनों स्थानों को उजाड़ा तब ये तितर बितर हो गये। सिद्धों में सब से पुराने "सरह" हैं जिनका काल डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य ने विक्रम सम्वत् ६९० निश्चित किया है।×

भगवान शंकराचार्य का यही आविर्भाव काल था। उन्होंने हिन्दू धर्म को

× रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास ६८ ६

नवीन जीवन प्रदान किया। उनके नाम मार्त्तण्ड के सम्मुख बौद्ध धर्म-मत सर्वथा लुप्त ही हो गई, बिहार के विहारों में ही उसके दर्शन शेष रह गये थे। विलासिता बढ़ जाने के कारण बौद्ध धर्म वाम मार्ग के बहुत कुछ निकट आगया था। बौद्ध धर्म का बढ़प्पन जादू टौना, गंडे, तावीज़ आदि की ओर देखने लग था। शङ्कराचार्य जन्म ईसवी सन् ७८८ तथा निधन सन् ८२० ई०) के लिये यह अत्यन्त उपयोगी भूमि थी। उन्होंने वाम मार्ग के साथ कुछ मत का भी विरोध आरम्भ किया और सब को उखाड़ फेंका। शंकराचार्य की सब से बड़ी महानता यह है कि उन्होंने बौद्ध मत को दार्शनिक धरातल पर ही परास्त किया। बौद्ध धर्म में ब्रह्म के लिये स्थान न था। मायावाद के सहारे यह बौद्ध धर्म के निकट आए और ब्रह्म की स्थापना कर के शंकराचार्य ने बौद्ध मत के शून्यवाद को थोथा बता कर उसकी जड़े हिलादीं।

"वैदिक हिन्दू धर्म की पुनः प्रतिष्ठा होने के साथ वैष्णव धर्म चार सम्प्रदायों के रूप में सामने आया। वैष्णव सम्प्रदाय, माध्व सम्प्रदाय, रुद्र सम्प्रदाय, तथा सनक सम्प्रदाय। चारों का आधार श्रुति है और दर्शन वेदान्त है।" +

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि तत्कालीन राजपूतों की मनोवृत्ति के कारण शैव और शाक्त सम्प्रदायों को बराबर सहारा मिलता रहा। साथ ही शंकर के अद्वैतवाद ने जहाँ एक ओर वैदिक धर्म को नवीन जीवन प्रदान किया वहाँ दूसरी ओर उनके मायावाद ने जनता में नैराश्य और भाग्यवादिता के भाव भर दिये।

भक्ति भावना का विकास—शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप केवल पंडितों की वस्तु थी। लोक उसमें न रमा। उसे आवश्यकता थी सगुण ब्रह्म की। प्रतिक्रिया स्वरूप भक्ति भावना को दार्शनिक रूप देने वाले उठ खड़े हुए। इनमें सब से पहिले रामानुजाचार्य का नाम आता है।

हिंदू धर्म में राम और कृष्ण दोनों को भगवान् का अवतार माना गया है। राम कथा का सर्व प्राचीन आधार है वाल्मीकीय रमायण और कृष्ण कथा के आधार हैं महाभारत और श्रीमद्भागवत, इन ग्रन्थों में इन महात्माओं के सब

+ हिन्दुत्व पृष्ठ १२० ।

तार होने का स्पष्ट निर्देश नहीं है। इनमें उनके नारायणत्व की अपेक्षा मनुष्यत्व की ही अधिक भावना है।

प्राचीन काल में राम के चरित्र से सम्बन्धित अनेक नाटक और काव्य लिखे गये। कितने ही महाकाव्य, खण्ड काव्य, नाटक, चम्पू तथा गद्य ग्रन्थों में राम कथा का उल्लेख है, किन्तु उनमें राम का उल्लेख एक महापुरुष के रूप में ही हुआ है। वह एक महानायक ही रहे हैं। परवर्ती काल में ग्रहण किया जाने वाला उनका पारब्रह्म स्वरूप उनमें दृष्टिगोचर नहीं होता है। कृष्ण कथा का उल्लेख महाभारत और भाष्यकृत नाटक के अतिरिक्त केवल पौराणिक साहित्य में ही मिलता है।

महाभारत में विष्णु के महत्व की पूर्ण घोषणा है। उसमें विष्णु के साथ शिव तथा ब्रह्मा का भी निर्देश है, किंतु विष्णु का महत्व दोनों से अधिक है, क्योंकि विष्णु की भावना में अवतारवाद है। महाभारत में कृष्ण को विष्णु का ही अवतार माना गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण विष्णु के पूर्ण अवतार हैं। वे पूर्ण परमब्रह्म हैं।

इस प्रकार महाभारत के विष्णुरूप श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में एकान्त ब्रह्म के पद पर प्रतिष्ठित हो गये। विष्णु या कृष्ण का ब्रह्म से एकत्व प्राप्त करना इस बात की घोषणा करता है कि कृष्ण ब्रह्म के साकार रूप हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार उपासना के तीन मार्ग हैं, ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग, और भक्तिमार्ग, भक्ति मार्ग ने कृष्ण के रूप को और भी विकसित कर दिया।

अवतारों के प्रति जो व्यापक भक्ति भावना पाई जाती है, उसके आधार रूप में हैं श्रीमद्भागवत, शांडिल्य, एवं नारद के भक्तिसूत्र, अध्यात्म रामायण राम तापनी, और गोपालतापनी उपनिषद् जैसे परवर्ती ग्रन्थ। अवतारों के प्रति विशेष आस्था उत्पन्न करने का श्रेय दक्षिण देशीय आचार्यों को है। जिनमें रामानन्द (समय विक्रम की १४ वीं सदी के चतुर्थ और १५ वीं सदी के तृतीय चरण के भीतर) तथा वल्लभाचार्य (समय विक्रमी सम्वत् १५३५ से विक्रमी सम्वत् १५८७) प्रमुख हैं।

भक्ति-भावना का विशेष रूप से इन्होंने ही प्रचार किया। उत्तर भारत की जनता इससे प्रभावित हुई। रामोपासना के प्रवर्त्तक हुए श्री रामानन्द जी। यह

प्रवर्त्तक रामानुजाचार्य जी (समय विक्रम की १२ वीं सदी) के मतावलम्बी थे, परन्तु अपनी उपासना पद्धति को इन्होंने विशेष रूप दे दिया। इन्होंने बैकुण्ठ निवासी विष्णु का स्वरूप न लेकर लोक में लीला विस्तार करने वाले राम का आश्रय लिया। इनके इष्टदेव हुए राम और मूल मंत्र हुआ रामनाम। इनके पहिले भी राम महिमा का प्रचार था। परन्तु विष्णु के अन्य रूपों में "रामरूप" को विशेष महत्व देकर एक सबल सम्प्रदाय का सगठन रामानन्द जी ने ही किया। गोस्वामी तुलसीदास जी इन्हीं की शिष्य परम्परा में आते हैं। ये ही राम कथा एवं राम-भक्ति के मुख्य प्रचारक एवं गायक हुए।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का रूपण ही कुछ इस प्रकार से हुआ कि उसमें शृङ्गार प्रतिपादन के लिए अधिक स्थान रहा ही नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो रामचरित्र के सहारे एक मर्यादा मार्ग ही प्रशस्त कर दिया है। आगे चलकर रामभक्ति में शृङ्गार भावना आ गई। कृष्ण काव्य की भाँति राम काव्य में भी शृङ्गार के दर्शन होने लगे। इसका मुख्य कारण कृष्ण काव्य में अत्यधिक शृङ्गार भक्ति का समावेश था। गोस्वामी जी ने भी यथा स्थान राम के शृङ्गार का वर्णन किया है। "रामगीतावली के उत्तरकाण्ड में सरयू तट पर राम-सीता के विहार हिंडोले आदि का वर्णन है। कृष्ण काव्य की शृङ्गारी शैली पर उनकी कृष्ण गीता वली तो एक प्रसिद्ध रचना है ही। देखिये तुलसी द्वारा वर्णित राम का शृङ्गार वर्णन।

(१) कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि, कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही, मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा,
सिय मुख ससि भए-नयन चकोरा।
भए बिलोचन चारु अचंचल,
मानहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥
देखि सीय सोभा सुख पावा,
हृदय सराहत बचन न आवा।
—"बालकाण्ड रामचरितमानस"

(२) छाँडो मेरे ललित ललन लरिकाई।
पैहैं सुत देखुवार कालि तेरी बुनि,
बवे ब्याह की बात चलाई।
डरिहै सासु ससुर चोरी सुनि,
हँसिहै नई दुलहिया सुहाई॥
उबटो न्हाहु-गुहौं चोटिया,
बलि देखि भलो बर करिहि बड़ाई।
—"कृष्ण गीतावली ३"

(३) पिछुरत श्री ब्रजराज आजु इन नयनन की परतीति गई।
उड़ि न लगे हरि संग सहज तजि, ह्वै न गये सखि स्याम मई॥
रूप रसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौ न भई।
साँचेहुकूर कुटिल, सित मेचक, वृथा मीन छबि छीन लई॥
अब काहे सोचत मोचत जल समय गये नित सूल नई।
"तुलसिदास" तब अपहु ते भये जड़, अब पलकनि हठ दगा दई॥
"कृष्ण गीतावली २४"

(४) अहिरिनि हाथ दहेडि सगुन लेइ आवत हो।
उबरन जोवन देखि नृपति मन भावइ हो॥
—"रामलला नहछू"

(५) काहे रामजिउ साँवर, लछिमन गोर हो।
कीधहुँ रानि कौसलहि परिगा भोर हो॥
राम अहैं दसरथ के लछिमन आन कहो।
भरत सत्रुहन भार तौ श्री रघुनाथ कहो॥
—"रामलला नहछू १२"

(६) दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुआ जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकी, कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥
—"कवितावली, बालकाँड १७"

(७) का घूंघट मुख मूंदहु नवला नारि ।
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥

(८) डहकु न, है उजियारिया, निसि नहिं घाम ।
जगत जरत अस लागु मोहिं बिनु राम ॥

(९) सिय वियोग दुख केहि विधि कहउँ बखानि ।
फूलबान तें मनसिज बेधत आनि ॥

—"बरवै रामायण १६,३७, तथा ४०"

(१०) खेलत फागु अवधिपति, अनुज सखा सब संग ।
बरषि सुमन सुर निरखहिं, सोभा अमित अनंग ॥

—"गीतावली उत्तरकाँड पद २१ छन्द १६'

कृष्ण कथा का उल्लेख महाभारत और भासकृत नाटक के अतिरिक्त हरिवंश श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण वायु पुराण आदि पौराणिक साहित्य में प्रचुरता के साथ हुआ है । भागवत पुराण कृष्ण भक्ति का सर्वोत्तम ग्रंथ है ।

सांख्य दर्शन में पुरुष प्रकृति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है । श्री मद्भागवत में इसी भावना का पूर्ण विकास किया गया है । उसमें श्रीकृष्ण के रूप में परमात्मा और गोपियों के रूप में अनेक जीवात्माओं की व्यंजना की गई है । भागवत में श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है और गोपियों के साथ उनकी अनेक लीलाओं का श्रृंगार पूर्ण वर्णन किया गया है । ब्रज-वल्लभ श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं में श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है । यही कारण है कि कृष्ण शाखा वाले कवियों की कृतियों में विशेष रूप से श्रृंगार का पुट लगा और उसका पूर्ण विकास हुआ । इस प्रकार की रचनाओं में कृष्ण और राधा का एक छत्र साम्राज्य है । काव्य शास्त्र के आचार्यों ने श्रीकृष्ण को श्रृंगार रस का देवता माना है । काव्य और नाटकों में राम कथा का निरूपण ही अधिक प्रचार रहा, परन्तु उपासना के क्षेत्र में कृष्ण भक्ति का ही प्राधान्य है । यहाँ तक कि रीति युग में कृष्ण और राधिका साधारण नायक नायिका ही बन गये हैं ।

ऐन्द्रिय प्रेम में आकंठ मग्न होकर भी ये कविगण हरि राधिका की तन द्युति में अनुराग बनाये हुए थे।*

जो भी समय के फेर से काली मर्दन एवं कंस निकंदन कृष्ण कालान्तर में बशी के बजैया तथा गैया गैया के नचैया कन्हैया ही रह गये, और रावण को युद्धस्थल में छकछकाने वाले हिंडोलों में झूलने वाले विलासी अयोध्यानरेश के रूप में दिखाई देने लगे। भक्ति साहित्य विकृत होकर शृ गार साहित्य रह गया।

वैष्णव आचार्य—पौराणिक काल में तीन देवों की उपासना होने लगी थी। (१) विष्णु जो वेद के समस्त देव थे, (२) नारायण जो दार्शनिक तत्वचिंतन के प्रतीक थे तथा (३) वासुदेव, ऐतिहासिक देवता। इन तीनों धाराओं का *सम्मिश्रण एवं सुखद संयोग द्वारा वैष्णव धर्म का आविर्भाव हुआ।*

वैष्णव आचार्यों की दो श्रेणियाँ उभरती हैं। (१) अलवार, दाक्षिणात्य वैष्णव तथा (२) वैष्णव आचार्य। प्रथम ने विष्णु या नारायण के प्रगाढ़ प्रेम में अपने आपको पूर्णतया समर्पित कर दिया तथा भक्ति सबधी गीत बनाये। वैष्णव आचार्यों (द्वितीय श्रेणी के वैष्णव) ने वाद विवाद द्वारा अपनी धारणाओं और मान्यताओं की श्रेष्ठता प्रतिपादित करके अपने अपने सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की। ये आचार्यगण इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि इन्हीं के सिद्धांत के आधार पर सर्वोत्त आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। साथ ही इनका उद्देश्य अपनी प्रतिष्ठा सम्पन्न रखना भी था। रामानुजाचार्य आदि आचार्यगण इसी श्रेणी के आचार्य थे।

अलवारों का समय ५, ६ शताब्दी ठहरता है। इनकी कुल संख्या १० है।—कालक्रम से उन्हें तीन भागों में विभक्त किया जाता है। इनके तामिल तथा संस्कृत नाम इस प्रकार हैं।※

---

* तजि तीरथ हरि राधिका, तन द्युति कर अनुराग।
जेहि ब्रज केलि निकुंज मग, पग पग होतु प्रयाग॥

—"बिहारी"

※"The Alvars (Earliest can be placed before about

अथवा	तामिल नाम	संस्कृत नाम
प्राचीन	१ पोयगाय अलवार	सोरोयोगिन,
	२ भुतत्तर अलवार	भूतयोगिन.
	३ पे अलवार	महद्योगिन.
	४ तिरुमलीसाय अलवार	भक्तिसार
मध्यवर्ती	५ नाम अलवार	सथकोपमध्यकवि,
	६ पेरे अलवार,	कुलशेखर विष्णुचित्त
	७ अंदाल	गोदा
अन्तिम	८ टोंडरडिप्पोडी	भक्तम्पुरम्
	९ तिरुप्पन अलवार,	योगी वाहन
	१० तिरुमंगयि अलवार	परकाल

मध्यकाल (१४ वीं से १७ वीं सदी तक) की भक्ति के मूल में दो कारण ठहरते हैं। देश की राजनीति परिस्थितियों तथा भक्ति भावना की प्राचीन परम्परा मुसलमानों के शासन से भारत वासियों में विपुल नैराश्य भर दिया। आक्रमण-कारी यवन सैकड़ों देव मन्दिर गिराते, तथा मूर्तियों को भ्रष्ट करते और उन्हें फेंक देते वाले भगवान न मालूम कहां चले गए थे! अगणित स्त्रियों के सतीत्व लूट लिए जाते थे, द्रोपदी की लाज बचाने वाले मुरारि न मालूम कहां सो गए थे। अनेक विदेशी ग्राह भारत रूपी गज को जीवित ही निगल जाने का सक्रिय प्रयास कर रहे थे, गज की टेर सुन कर आने वाले मुरारि न मालूम क्यों नहीं आते थे। इन्हीं सब बातों के कारण हिंदू जनता उदासीन हो गई थी। न

---

the 5th or the 6th century) are generally reckoned ten in number and are divided into three classes by S Krishnaswami Iyangar in accordance with the received Chronology Their names, Tamil and Sanskrit are as follows" (Vaishnavism Shaivism and Minor Religious Systems by Sir Ram Krishna Gopal Bhandarkar)

उनके अधरों पर हास था, न भृकुटि में विलास, न नयनों में लास था और न हृदय में उल्लास। वे निस्तेज एवं चकित होकर अपनी प्राचीन गौरव गाथाओं की चर्चा करते हुए भी जमीन में गड़े जाते थे। इस प्रकार उस समय सिवाय भगवान के सम्मुख जाकर आर्त्त स्वर से पुकारने के उनके पास और कुछ चारा ही न था। पौरुष से हताश हिंदू जाति में नव जीवन का संचार करना भक्ति के इस उत्थान का सबसे बड़ा उद्देश्य था।

उन दिनों चारों ओर थोथी और झूठी धर्म भावना का ही बोलबाला था। देश के पूरबी भागों में वज्रयानी, सिद्ध, कापालिक आदि नाग तथा पश्चिमी भागों में नाथपन्थी जोगी रमते चले आ रहे थे। सामान्य जनता इनके, रहस्य गुह्य, सिद्धि आदि के भार से दबी जा रही थी, उसका हृदय सच्ची धर्म भावना से कोसों दूर पड़ गया था। इन सिद्धों और नाथपन्थी जोगियों ने अर्थ शून्य बाहिरी विधि विधान तीर्थाटन, पर्व स्नान आदि निस्सारता का संस्कार फैलाकर धर्म को प्रायः निर्जीव कर दिया था। हिंदुओं का धर्म, लूला लंगड़ा, अंधा, हृदय विहीन, निष्प्राण सभी कुछ बन चुका था। इनकी गुह्य रहस्यात्मक बानियों का साधारण जनता पर जो प्रभाव पड़ा था, उसका संकेत तुलसीदास जी ने इस प्रकार किया है "गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग"

सारांश यह है कि जिस समय यहाँ मुसलमान आए, उन दिनों सच्ची धर्म भावना बहुत कुछ लुप्त हो चुकी थी उसे ऊपर उठाने के लिए प्रबल सहारे की आवश्यकता थी। कान्त दर्शी भक्त कवियों ने इस कमी को पूरा किया था। उन्होंने जनता का हृदय सँभालने के लिए उस दबी हुई भक्ति को जगाया, जिसका सूत्रपात महाभारत काल में और विस्तृत प्रवर्त्तन पुराण काल में हुआ था।

जैसा हम अन्यत्र बता चुके हैं कि भगवान शंकराचार्य के अद्वैतवाद के द्वारा वैदिक धर्म प्रतिष्ठित तो हो गया था, परन्तु उससे जनता की तुष्टि न हो सकी। पंडित वर्ग ने तो उसे अपना लिया, परन्तु साधारण जनता उसे ग्रहण करने में संकोच करती थी। उसे तो चाहिए था अपने जैसा शरीरधारी प्रभु जो उनकी टेर सुनकर उनके पास आकर उनकी सुन सके और दुष्टों एवं आततायियों का

दिखला कर आत्म कल्याण और लोक कल्याण विधायक मार्ग की ओर उन्हें अपने साथ ले आए। अपने उद्धारकर्ता की दर्शनेच्छा धार्मिक क्षेत्र में सगुण भक्ति का बीज कारण है। भगवान् बहुत पहिले आश्वासन दे चुके थे कि जब-जब और जहाँ-जहाँ भक्तों पर भीर पड़ेगी, मैं आकर उनकी रक्षा करूंगा। जब दुष्टों का जोर बढ़ेगा, तब-तब मैं उनका नाश करूँगा।*

भक्ति भावना में प्रेम और श्रद्धा का सम्मिश्रण होने के कारण इष्टदेव में अनन्त सौन्दर्य अनन्त शक्ति और अनन्त शील की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाए, यह सर्वथा स्वाभाविक ही था। साथ ही भक्ति भावना के इस स्वरूप को प्राचीन ग्रन्थों का भी संबल प्राप्त था।+

इसके पूर्व महाभारत प्रसंग में ही भक्त अर्जुन एक शंख, चक्र, गदा, पद्म धारी भगवान् के दर्शन कर के कृतकृत्य हो चुका था। इतना ही नहीं, वह उन्हें अपना पिता, पालक, रक्षक, गुरु सब कुछ मान भी चुका था।×

---

* यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधुना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
—"गीता अ० ४, श्लोक ७, ८"

+ महात्म्य ज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ सर्वे तो अधिक
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यया।
—"श्रीमद्भागवत् स्कन्ध २ अ० ८"

× सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥
—"गीता ११, ४१"

× × × ×

भगवान् शंकराचार्य के पीछे वैष्णव धर्म के चार प्रधान सम्प्रदाय दिखाई पड़ते हैं। श्री वैष्णव सम्प्रदाय, माध्व सम्प्रदाय, रुद्र सम्प्रदाय, और सनक सम्प्रदाय। इन चारों सम्प्रदायों का आधार श्रुति है और दर्शन वेदान्त है। साहित्य वही पुराना है। केवल व्याख्या और आचार में परस्पर अन्तर होने से सम्प्रदाय भेद उत्पन्न हो गया है। शंकराचार्य के पीछे भागवत और पांचरात्र दोनों वैष्णव सम्प्रदायों में सम्भवतः आचार्यों के समय-समय पर सिद्धान्तों की भिन्न रीति से व्याख्या करने से इनकी शाखायें बन गई जो कालान्तर में सम्प्रदाय के रूप में प्रकट हुई।

विक्रम की १२ वीं सदी में दक्षिण में श्री रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने भक्ति मार्ग को एक मौलिक रूप देकर उसे सर्वजनोपयोगी बना दिया। इस प्रकार वैष्णव धर्म में श्री रामानुज भक्ति मार्ग के प्रवर्तक थे। उन्होंने श्रीमन्नारायण की सुगुणोपासना का प्रचार किया। श्रीरामानुजार्य द्वारा प्रवर्तित मत का नाम विशिष्टाद्वैत है। इस सम्बन्ध में श्री रामदास गौड़ लिखते हैं कि "ब्रह्म सूत्र में आचार्य आश्मरथ्य का नाम मिलता है जो विशिष्टाद्वैत वादी थे। विक्रम की ४ वीं शताब्दी में आचार्य श्री कण्ठ ने ब्रह्म सूत्र की शिवपरक व्याख्या करके विशिष्टाद्वैतवाद का विशेषरूप से प्रचार किया था। आचार्य भास्कर ने भी अपने भेदाभेदवाद के द्वारा एक तरह से विशिष्टाद्वैत को ही पुष्ट किया था पांचरात्र मत भी एक तरह से विशिष्टाद्वैत मत ही था। परन्तु ब्रह्मसूत्र की विष्णुपरक व्याख्या भले ढंग से विक्रम की

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते॥ —"गीता ११, ४६"

× × × ×

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।
—"गीता ११ ५१"

निश्चय कर आत्म-कल्याण और लोक कल्याण विधायक मार्ग की ओर उन्हें अपने साथ ले जाएं। अपने उद्धारकर्त्ता की दर्शनेच्छा धार्मिक क्षेत्र में सगुण भक्ति का बीज कारण है। भगवान् बहुत पहिले आश्वासन दे चुके थे कि जब-जब और जहाँ-जहाँ भक्तों पर भीर पड़ेगी, मैं आकर उनकी रक्षा करूंगा। जब दुष्टों का ज़ोर बढ़ेगा, तब-तब मैं उनका नाश करूँगा।*

भक्ति भावना में प्रेम और श्रद्धा का सम्मिश्रण होने के कारण इष्टदेव में अनन्त सौन्दर्य अनन्त शक्ति और अनन्त शील की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाय, यह सर्वथा स्वाभाविक ही था। साथ ही भक्ति भावना के इस रहस्य को प्राचीन ग्रंथों का भी संबल प्राप्त था।+

इसके पूर्व महाभारत काल में ही भक्त चतुर्भुज एवं शंख, चक्र, गदा, पद्म-धारी भगवान् के दर्शन कर के कृत्यकृत्य हो चुका था। इतना ही नहीं, वह उन्हें अपना पिता, पालक, रक्षक, गुरु सब कुछ मान भी चुका था।×

---

* यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
—"गीता अ० ४, श्लोक ७, ८"

+ महात्म्य ज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ सर्वे तो अधिक
स्नेही भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा ।
—"श्रीमद्भागवत स्कन्ध २ अ० ८"

× सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥
—"गीता ११, ४१"

× × × ×

भगवान् शंकराचार्य के पीछे वैष्णव धर्म के चार प्रधान सम्प्रदाय दिखाई पड़ते हैं। श्री वैष्णव सम्प्रदाय, माध्व सम्प्रदाय, रुद्र सम्प्रदाय, और सनक सम्प्रदाय। इन चारों सम्प्रदायों का आधार श्रुति है और दर्शन वेदान्त है। साहित्य वही पुराना है। केवल व्याख्या और आचार में परस्पर अन्तर होने से सम्प्रदाय भेद उत्पन्न हो गया है। शंकराचार्य के पीछे भागवत और पांचरात्र दोनों वैष्णव सम्प्रदायों में सम्भवतः आचार्यों के समय-समय पर सिद्धान्तों की भिन्न रीति से व्याख्या करने से इनकी शाखायें बन गई जो कालान्तर में सम्प्रदाय के रूप में प्रकट हुई।

विक्रम की १२ वीं सदी में दक्षिण में श्री रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने भक्ति मार्ग को एक मौलिक रूप देकर उसे सर्वजनोपयोगी बना दिया। इस प्रकार वैष्णव धर्म में श्री रामानुज भक्ति मार्ग के प्रवर्त्तक थे। उन्होंने श्रीमन्नारायण की सुगुणोपासना का प्रचार किया। श्रीरामानुजार्य द्वारा प्रवर्तित मत का नाम विशिष्टाद्वैत है। इस सम्बन्ध में श्री रामदास गौड़ लिखते हैं कि "ब्रह्म सूत्र में आचार्य आश्मरथ्य का नाम मिलता है, जो विशिष्टाद्वैत वादी थे। विक्रम की ६ वीं शताब्दी में आचार्य श्री कण्ठ ने ब्रह्म सूत्र की शिवपरक व्याख्या करके विशिष्टाद्वैतवाद का विशेषरूप से प्रचार किया था। आचार्य भास्कर ने भी अपने भेदाभेदवाद के द्वारा एक तरह से विशिष्टाद्वैत को ही पुष्ट किया था पांचरात्र मत भी एक तरह से विशिष्टाद्वैत मत ही था। परन्तु ब्रह्मसूत्र की विष्णुपरक व्याख्या नये ढंग से विक्रम की

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते॥ —"गीता ११, ४६"

× × × ×

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।
—"गीता ११ ५१"

दसवीं शताब्दी से ही शुरू हुई। "यामुनाचार्य" ने अपने अलौकिक-पांडित्य के बल पर विशिष्टाद्वैत को नया आलोक प्रदान किया और उसके बाद १२ वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने तो विशिष्टाद्वैत मत का मानो सारे देश में समुद्र ही बहा दिया। रामानुजाचार्य के इस प्रचंड कार्य का ही यह प्रमाण है कि उस समय से विशिष्टाद्वैत मत का दूसरा नाम रामानुज मत पड़ गया है।*

विशिष्टाद्वैत शब्द दो शब्दों के मिलने से बना है। विशिष्ट और अद्वैत। विशिष्ट का अर्थ है चेतन और अचेतन विशिष्ट ब्रह्म और अद्वैत का मतलब है, अभेद या एकत्व। अतएव चेतनाचेतन विभागविशिष्ट ब्रह्म के अभेद या एकत्व का निरूपण करने वाले सिद्धान्त का नाम विशिष्टाद्वैतवाद है। जैसा ऊपर बता आये हैं, यह एक बहुत पुराना सिद्धान्त है। विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्यों की परम्परा का क्रम इस प्रकार माना जाता है। भगवान श्रीनारायण ने जगज्जननी श्री महालक्ष्मी जी को उपदेश दिया, दयामयी माता से वैकुंठपार्षद श्री विश्वक्सेन को उपदेश मिला, उनसे श्री शठकोप स्वामी को इनसे श्रीनाथ-मुनि को, नाथमुनि से पुण्डरीकाक्ष स्वामी को, इनसे श्री राममिश्र स्वामी को और श्री राममिश्र जी से श्री यामुनाचार्य जी को प्राप्त हुआ। यही श्रीयामुनाचार्य जी श्री रामानुजाचार्य के परम गुरु थे।×

आचार्य रामानुज ने वैष्णव मत का प्रचार करने के लिए अपने चौहत्तर शिष्यों को नियुक्त किया है। उनको सिंहासनाधिपति कहते हैं। आगे चल कर १४ वीं शताब्दी में इन्हीं की शिष्य परम्परा में रामानन्द जी हुए। उन्होंने रामानुजार्य की शिष्य परम्परा के राघवानन्द से (सन् १४११ में दीक्षा) ली थी। इन्हीं की शिष्य परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास जी हुए। अयोध्या एवं अन्य स्थानों के वैरागी कहलाने वाले साधु एवं उनके अनुयायी रामोपासक इसी सम्प्रदाय के हैं।

इसी समय रामानुजाचार्य के कुछ ही दिनों बाद निम्बार्काचार्य का उदय हुआ। यह भी दक्षिण में ही हुए। इन्होंने कृष्ण और राधिका की सम्मिलित

---

*"हिन्दुत्व" के प्रमाण पृष्ठ ६४२, ६४६, देखिये।

× पृष्ठ ६४२ —

भक्ति का प्रचार किया। चौदहवीं सदी में दक्षिण में ही श्री माध्वाचार्य ने द्वैतवाद की स्थापना की और उसके अंतर्गत नवधा भक्ति का प्रचार किया। इन्होंने राम और कृष्ण दोनों को विष्णु के अवतार रूप में स्वीकार किया, परन्तु बल कृष्ण पर अधिक दिया।

श्री रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में विक्रम की १४ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में श्री रामानन्द जी हुए। जिन्होंने राम की भक्ति का प्रचार किया। इसी समय के लगभग श्री चैतन्य महाप्रभु और श्री वल्लभाचार्य जी ने माधुर्य और वात्सल्य भाव से कृष्ण भक्ति का प्रचार कर समस्त उत्तरी भारत को कृष्ण भक्ति के प्रेम में रंग दिया। श्री रामानन्द जी की परम्परा में श्री गोस्वामी तुलसीदास जी हुए, जिन्होंने राम भक्ति सम्बन्धी अपूर्व साहित्य सृजन किया। वल्लभाचार्य जी की शिष्य परम्परा में सूरदास एवं अष्टछाप के कवि आदि गायक भक्त हुए, जिन्होंने कृष्ण के प्रेम की दिव्य धाराएँ बहाई। इस प्रकार श्री रामानंद तथा श्री वल्लभाचार्य के उपदेशों की प्रेरणा से हिंदी में राम और कृष्ण भक्ति विषयक साहित्य प्रस्तुत हुआ।

हिंदी का शृङ्गार साहित्य प्रायः कृष्ण काव्य से ही प्रभावित है। कृष्ण के शृङ्गार साहित्य पर निम्बार्काचार्य की भक्ति भावना, तथा श्री वल्लभाचार्य के "पुष्टिमार्ग" का विशेष प्रभाव पड़ा है। अतः हमें दोनों के सम्बन्ध में पूरा परिचय प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है।

देवताओं के साथ उनकी शक्तिरूपा पत्नियों की कल्पना भारतीय उपासना पद्धति की प्राचीन परम्परा है। इनमें त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु महेश मुख्य थे। त्रिदेवों में विष्णु और शिव को विशेष महत्व प्रदान दिया गया।*

विक्रम की ८ वीं सदी में शिव और पार्वती में मानवीय इच्छाओं की कल्पना की गई। धर्म के साथ शृङ्गार का सम्मिश्रण हुआ। साहित्य में शिव और पार्वती नायक नायिका के रूप में ग्रहण कर लिये गये। कालिदास ने शिव और पार्वती को नायक नायिका मानकर 'कुमार सम्भव' में उनका शृङ्गार वर्णन निस्संकोच भाव से खुल कर किया है। इसके बाद धर्म और साहित्य

*हिन्दुत्व पृष्ठ १२८

दोनों क्षेत्रों में शिव और पार्वती का स्थानक प्रमुख होगया। कालान्तर में राज लोग भी इसी ओर झुके और शिव सम्बंधी साहित्य इर्धपितामों की राजाश्रय प्राप्त होने लगा।

विक्रम की ११ वीं सदी के आसपास दक्षिण में विष्णु भक्ति का पुनरुत्थान हुआ। यह धारा उत्तर की ओर भी आई। इस बार राम और कृष्ण के अवतार स्वरूप विष्णु उपस्थित किये गये।

विष्णु भक्ति के इस पुनरुत्थान में कृष्णोपासना को विशेष प्रधानता दी गई। चूँकि देवता 'शिव' के साथ शक्ति की परम्परा चल निकली थी, अतएव कृष्ण की शक्ति की भी आवश्यकता हुई। प्रथम तो यह स्थान रुक्मिणी सत्यभामा को दिया गया, परन्तु सरसता लाने के विचार से कृष्ण के साथ राधा सम्मिलित कर दी गई।

यहाँ पर हम यह आवश्यक समझते हैं कि कृष्ण और राधा की उपासना की परम्परा को देख लें। कृष्ण महत्ता और लोक प्रियता कृष्णोपासना की प्राचीनता और व्यापकता के कारण हैं।

राम और कृष्ण विष्णु के अवतार हैं। विष्णु के अवतारों में सबसे अधिक प्रसिद्धी इन्हीं दो अवतारों को प्राप्त हुई। राम सब में रमने वाले हुए और कृष्ण अपने वासुदेव नाम के कारण विष्णु के पर्याय ही बन गये। वासुदेव और विष्णु का तादात्म्य अत्यन्त प्राचीन है।*

विष्णु की महत्ता वैदिक काल में ही प्रतिष्ठित हो चुकी थी। प्रारम्भ से उनका सूर्य के साथ तादात्म्य रहा है। गीता में तो यह बात स्पष्ट है। "आदित्यानामहं विष्णुः" 'गीता, १०, २१' ऋग्वेद में मिलने वाले वामनावतार के बीजरूप

---

* वसनात् सर्वभूतानां वसुत्वाद् देवयोनितः।
वासुदेवस्ततो वेद्यो बृहत्वाद् विष्णुरुच्यते॥

अर्थात्—सब भूतों में बसने के कारण अपनी दीप्ति के कारण देवताओं की उत्पत्ति के स्थान होने के कारण वह वासुदेव कहलाते हैं और विराट रूप होने के कारण विष्णु कहलाते हैं।

सकेत में भी विष्णु की व्यापकता घोषित होती है। "विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा च निदधे पदं समूढमस्य पांसुरे 'ऋग्वेद १, २, ७२'

ऋग्वेद में भी ऐसे स्थल आते हैं जिनके द्वारा विष्णु का गौओं के साथ सम्बन्ध स्थापित होता है। गोपाल कृष्ण सम्बन्धी मनमोहक कथाओं के लिये यह एक आधार शिला मिल जाती है। छान्दोग्य उपनिषद् '३, १७, ६' में देवकी पुत्र कृष्ण घोर आंगिरस के शिष्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। पाणिनी के समय वासुदेव शब्द वासुदेव सम्प्रदाय की व्यापकता का साक्षी है। अतः वैदिक काल में कृष्ण नाम की प्रसिद्धि स्पष्ट है।

कृष्ण जीवन का सगोपांग चित्रण सर्व प्रथम महाभारत में मिलता है। महाभारत में कृष्ण का जीवन महत्त्वपूर्ण है, पर उनके गोप जीवन की छाया और उनके अलौकिक कृत्यों की कथा वहां नहीं है। गोप जीवन के अभाव में गोपियों एवं राधा का भी उल्लेख नहीं है।

महाभारत के पश्चात् हरिवंश, विष्णु पुराण, ब्रह्मपुराण आदि पुराणों की रचना हुई, किन्तु उनमें भी राधा का उल्लेख नहीं है। पौराणिक साहित्य के अंतर्गत श्रीकृष्ण की लीलाओं का सबसे अधिक वर्णन भागवत पुराण में हुआ है। इसका रचना काल ईसा की दसवीं सदी है। उसके आधार पर "नारद भक्ति सूत्र" और "शांडिल्य भक्ति सूत्र" का निर्माण हुआ। इनमें भक्ति का पूर्ण विकास हुआ, किन्तु भक्ति का पूर्ण विकास होते हुए भी भक्ति की मूर्ति स्वरूपा राधा का निर्देश नहीं है। भागवत् में कृष्ण के बाल जीवन का ही वर्णन है और वह भी पूर्ण विस्तार के साथ, उत्तर जीवन का केवल संकेत मात्र है। भागवत् में श्रीकृष्ण के साथ गोपियां अवश्य दिखलाई देती हैं, किन्तु राधा यहाँ भी नहीं है। 'राधा' शब्द का भागवत् में कदाचित् ही कहीं प्रयोग हुआ हो। श्रीकृष्ण के साथ रास विलास करने वाली अनेक गोपियों में राधा का भी होना सम्भव है, किन्तु उनकी सहचरी और एक मात्र प्रेमिका के रूप में राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। यह बात अवश्य है कि श्रीकृष्ण के साथ एकान्त में विचरण करने वाली एक गोपी का वर्णन अवश्य है, परन्तु उसका नाम नहीं दिया गया है। अन्य गोपियाँ उस गोपी की प्रशंसा करती हैं कि पूर्व जन्म में उसने श्रीकृष्ण

की अवश्य आराधना की है, तभी तो वह उन्हें इतनी प्रिय हैं। इसी आराधना शब्द से राधा की उत्पत्ति प्राप्त होती है। राधा शब्द संस्कृत धातु 'राध्' से बना है जिसका अर्थ 'सेवा करना' या 'प्रसन्न करना' है। सम्भवतः श्रीकृष्ण की आराधना करने वाली अथवा उनको विशेषरूप से प्रसन्न करके प्रिय होने वाली इस विशिष्ट गोपी को ही आगे चलकर राधा मान लिया गया हो।

राधा का नाम न होते हुये भी श्रीकृष्ण की बाल्य और यौवन लीलाओं का माधुर्य पक्ष श्रीमद्भागवत तथा पद्मपुराण में विकसित हो चुका था। इतना ही क्यों, कवि कुल गुरु कालिदास, जो धार्मिक विश्वास से शैव थे, कृष्णलीला और भगवान कृष्ण की रंग स्थली ब्रजभूमि की महिमा से प्रभावित थे। वृन्दावन और गोकुल का स्मृति उन्हें सरस कर देती थी। उन्होंने इन्द्र धनुष से सुशोभित मेघ की उपमा मोर मुकुट मंडित गोपवेश धर विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण से दी है। यथा—

> येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते,
> बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः।
>
> "मेघदूत, पृष्ठ १५"

अर्थात् इन्द्रचाप नवघन, जासु मिलि तो तन कारो।
पावत है छवि अधिक, लगत नैनन कों प्यारो॥
मोर चन्द्रिका सुरंग संग, जैसे मन मोहत।
गोपवेष गोविन्द सुभग, स्यामल तन सोहत॥

नीचे एक उद्धरण रघुवंश से उद्धृत किया जाता है। इसमें महाकवि ने कृष्ण की सुन्दरता को उपमान बनाया है तथा वृन्दावन और गोकुल के प्राकृतिक सौंदर्य का अत्यन्त प्रशंसात्मक शब्दों में उल्लेख हुआ है। इन्दुमती के स्वयंवर के अवसर पर उसकी सखी सुनन्दा मथुरा के राजा सुषेण की ओर संकेत करके कहती है।

> "प्रसेन तावत्यारिफर्स कालियेन मणिं विसृष्टं
> यमुनौकसा यः।

वक्षःस्थलव्यापि रुचंदधानं सकौस्तुभं
ह्रेपयतीव कृष्णाम् ।
सम्भाव्य भर्तारममु युवानं मृदुप्रवालोत्तर
पुष्पशय्ये ।
वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुन्दरि
यौवन श्री ।
अध्यास्य चाम्भः पृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि
शिलातलानि ।
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु
गोवर्धनकन्दरासु ।

"रघुवंश, सर्ग ६, ४८, ४९, ५०"

राधा के उल्लेख के सम्बन्ध में भी एक बात बता देना आवश्यक है। आज कल जो रूप हमने राधा का मान रखा है, उस रूप में तो हमें प्राचीन ग्रन्थों में राधा की चर्चा नहीं मिलती है। परन्तु राधा के नाम का नितान्त अभाव न था। अमर कोष में विशाखा नक्षत्र का दूसरा नाम "राधा" दिया गया है। हाल सप्तशती में भी एक श्लोक में राधा की चर्चा मिलती है। उस श्लोक का संस्कृत रूपान्तर इस प्रकार है। ×

मुखमारुतेन त्वं कृष्णगोरजो राधिकाया अपनयन ।
एतासां बल्लवीना मन्यासामपि गौरवं हरसि ॥

ध्वन्यालोक में भी एक जगह राधा का उल्लेख है।

तेषां गोपवधू विलाससुहृदां राधारहःसाक्षिणां
क्षेम भद्रकलिन्द शैलतनया तीरेलतावेश्मनाम् ।

धार्मिक ग्रन्थों में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में सर्व प्रथम राधा की चर्चा मिलती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण का रचना काल १० वीं सदी ठहरता है। इसके पश्चात् गोपाल तापनी उपनिषद् में राधा का वर्णन स्पष्टतया कृष्ण की प्रेयसी के रूप में मिलता है। यह ग्रन्थ राधा सम्प्रदाय वालों को बहुत मान्य है। गोपालतापनी उपनिषद्

× ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद? इतिहास गुलाबराय।

की रचना मध्व के भाष्य और अणुव्याख्यान के बाद हुई होगी, क्योंकि मध्वाचार्य ने राधा का उल्लेख नहीं किया है।

वैष्णव आचार्यों में सबसे पहिले निम्बार्काचार्य ने राधा की उपासना को महत्व दिया। इससे प्रभावित होकर बंगाल के जयदेव ने राधा कृष्ण के विहार से सम्बन्धित 'गीतगोविन्द' की रचना की। इससे विद्यापति प्रभावित हुए। बाद में वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु आदि आचार्यों ने राधा को और भी अधिक व्यापक बना दिया। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि धार्मिक क्षेत्र में निम्बार्काचार्य को और काव्य जगत में जयदेव को राधा की प्रतिष्ठा का श्रेय प्राप्त है।

राधा की उपासना के सम्बन्ध में डा० रामकुमार वर्मा ने (हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ २८०) फर्कुहार का मत उद्धृत किया है। फर्कुहार का कहना है कि राधा की उपासना भागवत पुराण के आधार पर वृन्दावन में ईसवी सन् ११०० के आसपास प्रारम्भ हो गई होगी और वहाँ से बंगाल तथा अन्यान्य स्थानों में पहुँची होगी। यह मत बहुत कुछ समीचीन जान पड़ता है। राधा के पीछे एक विशेष परम्परा थी, उपयुक्त परिस्थितियों में उसकी पूजा के लिए सम्यक व्यवस्था कर दी गई।

विद्यापति से राधा-कृष्ण विषयक साहित्य की परम्परा गृहीत हुई और उसका पूर्ण विकास हुआ। इसी परम्परा के आधार पर हिंदी के मध्यकाल भक्तिकाल में स्वर्ण साहित्य का सृजन हुआ। रीतिकाल में पहुँच कर उसमें लौकिक शृंगार का प्राधान्य होगया और उसका स्वरूप तनिक विकृत हो गया।

राधाकृष्ण की उपासना का विकास—राधा कृष्ण की भक्ति के प्रसार एवं प्रचार करने वालों में सबसे पहले माध्वाचार्य का नाम आता है। इनके बाद निम्बार्काचार्य और विष्णु स्वामी के सिद्धान्तों ने इस ओर विशेष महत्वपूर्ण योग प्रदान किया।

माध्वाचार्य का समय ईसवी सन् की १३ वीं सदी का उत्तरार्द्ध ठहरता है। इन्होंने द्वैतवाद का प्रतिपादन किया। इनके सिद्धान्त संक्षेप में इस प्रकार हैं।

"द्वैतवाद या स्वतन्त्रास्वतन्त्र प्रवाद के प्रमुख आचार्य श्री माध्व हैं और इसी से इसका दूसरा नाम माध्वमत भी है। इस सम्प्रदाय का कहना है कि इस मत

के आदि गुरु ब्रह्मा हैं। ब्रह्मसूत्र में विशिष्टाद्वैतवाद, भेदाभेदवाद और अद्वैतवाद का उल्लेख मिलता है, परन्तु द्वैतवाद का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। अवश्य ही विशिष्टाद्वैतवाद और भेदाभेदवाद भी द्वैतवाद के ही अन्तर्गत हैं, सांख्यमत भी द्वैतवाद ही है। परन्तु श्री माध्वाचार्य का स्वतन्त्रास्वतन्त्रवाद इनसे बिलकुल भिन्न है। सांख्य के द्वैतवाद में दो पदार्थ हैं, पुरुष और प्रकृति। ये दोनों नित्य और सत्य हैं। माध्वमत से जीव और ब्रह्म नित्य पृथक हैं। अर्थात् दोनों दो पृथक पदार्थ हैं। श्री रामानुज जीव और ब्रह्म का स्वगत-भेद स्वीकार करते हैं, परन्तु सजातीय और विजातीय भेद नहीं मानते। ब्रह्म स्वतन्त्र है, जीव इस्वतन्त्र है। ब्रह्म और जीव में सेव्य सेवक भाव है। सेवक कभी सेव्य वस्तु से अभिन्न नहीं हो सकता। भेदाभेदवाद भी विशिष्टाद्वैतवाद के ही समान है। अतएव माध्वमत से ये सब भिन्न हैं। श्री माध्वाचार्य से पहिले इस मत का कोई उल्लेख नहीं मिलता। अवश्य ही उन्होंने पुराणादि का अनुसरण करके ही इस मत को स्थापित किया है।

मालूम होता है श्री माध्वाचार्य का स्वतन्त्रास्वतन्त्रवाद वैष्णवों के भक्तिवाद का फल है। इस मत में शंकर मत का बहुत तीव्र भाषा में खण्डन किया गया है। इस मत में श्री मध्व को वायु का पुत्र माना गया है। यह मत भी वैष्णवों के चार प्रधान मतों में से एक है।

श्री मध्वाचार्य के मत से ब्रह्म सगुण और सविशेष है। जीव अणुपरिमाण है। जीव भगवान का दास है। वेद नित्य और अपौरुषेय है। पाँचरात्र शास्त्र का प्रमाण जीव को लेना चाहिए। प्रपञ्च सत्य है। यहाँ तक श्री रामानुज के मत से मेल बैठता है किन्तु पदार्थ निर्णय या तत्वनिर्णय में दोनों आचार्यों में भेद है। श्री मध्व के मतानुसार पदार्थ या तत्व दो प्रकार का है। स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र। अशेष सद्गुणयुक्त भगवान विष्णु स्वतन्त्र तत्व है। जीव और जड़ जगत् अस्वतन्त्र हैं। श्री मध्व पूर्ण रूप से द्वैतवादी हैं *

"श्री मध्व के मत में जीवन्मुक्ति और निर्वाण मुक्ति केवल बात ही बात है। इनका कोई अर्थ नहीं। उनके मत से वैकुण्ठ प्राप्ति ही मुक्ति है उनके मत में

* हिन्दुत्व पृष्ठ संख्या ६६२

स्थूल, सूक्ष्म सब वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान होने से मुक्ति होती है। ईश्वर से जीव पूर्ण रूप से पृथक है। इस ज्ञान की पूर्णता प्राप्त होने पर ईश्वर के गुणों की उपलब्धि होने पर उनकी अनन्त, असीम शक्ति और गुण का बोध होने पर समस्त जागतिक पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का बोध होने पर मुक्ति होती है। विष्णु के लोक और रूप की प्राप्ति ही मुक्ति है। मुक्त जीव भी ईश्वर का सेवक है।" $

इनकी शिष्य परम्परा में अनेक आचार्य, श्री पद्मनाभाचार्य, श्री जयतीर्थाचार्य व्यास रामाचार्य, राघवेन्द्रस्वामी, आचार्य श्री निवासतीर्थ आदि' होगये हैं।

विष्णु स्वामी का आविर्भाव काल ईसवी सन् की १३ वीं सदी का मध्य भाग है। यह भी दक्षिण में हुए थे। यह मध्वाचार्य के मतावलम्बी थे। परन्तु इन्होंने उसमें थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया था। इन्होंने अद्वैतवाद को माया से रहित रूप में स्वीकृत करके शुद्धाद्वैत की प्रतिष्ठा की थी। जिसकी पूर्ण स्थापना आगे चल कर '१६ वीं सदी में' श्री वल्लभाचार्य ने की। विष्णुस्वामी ने कृष्ण को अपना आराध्य देव माना है। और साथ ही राधा को भी भक्ति में प्रधान स्थान प्रदान किया है।

इस सम्बन्ध में रामदास गौड़ ने () लिखा है। श्री रुद्रदेव ने बाल खिल्य ऋषियों को उपदेश दिया था, वही उपदेश शिष्य परम्परा से चलता हुआ विष्णु स्वामी को प्राप्त हुआ। अतएव इधर सब प्रथम वेदान्तभाष्यकार श्री विष्णु स्वामी ने ही शुद्धाद्वैतवाद का प्रचार किया। कहते हैं उनके शिष्य का नाम ज्ञानदेव था। ज्ञानदेव के शिष्य नामदेव और त्रिलोचन थे। उन्हीं की परम्परा में श्री वल्लभाचार्य का आविर्भाव हुआ। कहते हैं कि दक्षिण के विष्णुस्वामी पाँड्य विजय राज्य के श्री राजगुरु देवेश्वर के पुत्र रूप से प्रकट हुए थे। इनके पूर्वाश्रय का नाम देवतनु था। इन्होंने वेदान्तसूत्रों पर 'सर्वज्ञसूत्र' नामक एक भाष्य लिखा था। कहते हैं कि इनके बाद दो विष्णुस्वामी और हुए, इसी से इन्हें आदि विष्णुस्वामी कहते हैं।

$ हिन्दुत्व पृष्ठ संख्या ६६०

() हिन्दुत्व पृष्ठ संख्या ६०२।

दूसरे विष्णुस्वामी आठवीं शताब्दी में दक्षिण में हुए। कहते हैं कि श्री काँची में भगवान श्री वरदराज और श्री रामगोपाल देव की प्रतिष्ठा इन्होंने ही की थी। श्री द्वारिकापुरी के रणछोर जी भी इन्हीं के स्थापित कहे जाते हैं। प्रसिद्ध श्री कृष्णकर्णामृतकार लीलाशुक जी, बिल्वमंगल जी भी इन्हीं के शिष्यों में माने जाते हैं।

तीसरे विष्णु स्वामी १४ वीं शताब्दी में आन्ध्र देश में हुए। इन्हीं की शिष्य परम्परा में श्री लक्ष्मण भट्ट जी विशेष प्रसिद्ध हुए। श्री वल्लभाचार्य जी इन्हीं के पुत्र थे। × × × जो भी हो इतना निश्चित है कि आचार्य श्री वल्लभा शुद्धाद्वैतवाद के सर्व प्रथम प्रवर्त्तक नहीं थे। उनकी प्रतिष्ठा श्री वल्लभाचार्य से कम से कम तीन सौ वर्ष पहिले हो चुकी थी।

वैष्णवों के कुछ उपसम्प्रदाय—वैष्णवों के अनेक उपसम्प्रदाय, पन्थ और शाखाएं हैं। उनमें मुख्य इस प्रकार हैं।

(१) श्री राधावल्लभी सम्प्रदाय—इसकी स्थापना हित हरिवंश जी ने सम्वत् १६४२ के आसपास वृन्दावन में की थी। यह मध्व और निम्बार्क दोनों सम्प्रदायों को मानते थे। राधावल्लभ की उपासना इसकी विशेषता है। राधा रानी महाशक्ति हैं और स्वामिनी हैं। भगवान् कृष्ण उनके आज्ञानुवर्ती हैं, उनकी आज्ञा से विश्व की सृष्टि, भरण और हरण करते हैं।

(२) श्री हरिदासी सम्प्रदाय—इसकी स्थापना महात्मा स्वामी हरि दास ने विक्रम की सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में की थी। इनका मत चैतन्य महाप्रभु के सदृश था।

(३) श्री स्वामी नारायणी सम्प्रदाय—इसकी स्थापना सम्वत १८६१ में अहमदाबाद में हुई थी। यह राधाकृष्ण उपासक हैं तथा वल्लभ सम्प्रदाय के अत्याचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप स्थापित हुआ था। इनका दार्शनिक मत विशिष्टाद्वैत है और उपासना वल्लभ कुल की सी है। इनका मन्त्र वल्लभ कुल का है।

(४) श्री सातानी सम्प्रदाय—इसके अनुयायी शूद्र या शूद्रवत समझे जाते हैं। सातानी लोग तमिल वेद के अधिकारी माने जाते हैं और अधिकांश मैसूर और आन्ध्रदेश तथा तामिलनाड में पाए जाते हैं।

(५) परिणामी सम्प्रदाय—इनका मत राधावल्लभी सा था। इस

मत के प्रवर्तक महात्मा प्राणनाथ जी राजा छत्रसाल के गुरु थे। वे अपने को मुसलमानों का मेहदी, ईसाइयों का मसीहा और हिन्दुओं का कल्कि अवतार मानते थे। उनके अनुयायी वैष्णव हैं, और गुजरात, राजस्थान तथा बुंदेलखंड में अधिक पाए जाते हैं।

निम्बार्काचार्य तैलंग ब्राह्मण थे। उनका जन्म तैलंग प्रदेश में हुआ था। इनका जन्मकाल अनिश्चित है। इतना अवश्य है कि इनका आविर्भाव काल ११ वीं सदी के अन्त से १२ वीं सदी के मध्य तक था। बाद को यह वृन्दावन में आकर बस गये थे। कुछ विद्वान उन्हें दाक्षिणात्य मानने में आपत्ति करते हैं। उनके मत में निम्बार्काचार्य का जन्म ब्रजमण्डल (निंबग्राम) में ही हुआ था। जो भी हो, इतना तो निर्विवाद एवं सुनिश्चित है कि उन्होंने श्री कृष्ण लीला स्थली पुरातन पुन्य भूमि ब्रज मण्डल को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया और मथुरा तथा वृन्दावन में ही अपने सम्प्रदाय के प्रधान प्रचार केन्द्र स्थापित किये। इस सम्प्रदाय के कुछ लोग बंगाल में भी हैं। कृष्ण के साथ राधा की उपासना सर्व प्रथम इनके सिद्धान्तों द्वारा ही आई। ब्रजमंडल में धार्मिक प्रचार केन्द्र स्थापित करने वाले सम्भवतः यह प्रथम आचार्य थे।

निम्बार्काचार्य का सिद्धान्त—कृष्ण के साथ राधा की उपासना का समावेश इस सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता है। कृष्ण परमब्रह्म हैं। उन्हीं से राधा और गोपियों की उत्पत्ति हुई है। सब लोकों से परे गो लोक में कृष्ण के साथ राधा का निवास स्थान है। इस सम्प्रदाय में इस प्रकार राधा और कृष्ण की उपासना ही सर्वप्रधान है।

निम्बार्क ने अपने दशश्लोकी नामक स्तोत्र में राधा को कृष्ण की मूल प्रकृति कहा है।+

ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी जीव उसमें अपना अस्तित्व खो देता है। और

\+ अंगे तु वामे वृषभानुजा मुदा
विराजमानामनुरूप सौभगाम्
सखी सहस्रैः परिसेवितां सदा।
स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम्॥

उत्पश्चात् उसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रह जाती। इसी अवस्था की प्राप्ति जीव की चरम साधना का परम फल है। इस परम मिलन की साधना जीव को राधा कृष्ण की भक्ति द्वारा करनी चाहिये।

राधा-कृष्ण के अतिरिक्त निम्बार्काचार्य अन्य किसी देवी देवता को नहीं मानते। राधा-कृष्ण की उपासना का प्रवर्तन करने वाले निम्बार्काचार्य ने वैष्णव धर्म के अन्तर्गत इस प्रकार द्वैताद्वैत नाम की शाखा विशेष की स्थापना की। निम्बार्काचार्य के लिखे हुए तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। वेदान्त सूत्र पर टीका, "भाष्य वेदा त", पारिजात सौरभ और दशश्लोकी। ये ग्रन्थ संस्कृत में हैं।

निम्बार्क सम्प्रदाय या द्वैताद्वैत मत + एक तरह से भेदाभेदवाद ही है। इस मत के अनुसार द्वैत भी सत्य है और अद्वैत भी। इस मत के प्रधान आचार्य निम्बार्क हो गये हैं। परन्तु यह भी बहुत प्राचीन है। ब्रह्मसूत्र में द्वैता द्वैतवाद तथा उसके आचार्य का भी नाम मिलता है। दसवीं शताब्दी में आचार्य भास्कर ने भेदाभेदवाद के अनुसार वेदान्त सूत्र की व्याख्या की। परन्तु यह व्याख्या ब्रह्म पर है। शिव या विष्णु पर नहीं है। ग्यारहवीं शताब्दी में श्री निम्बार्क ने ब्रह्मसूत्र की विष्णुपरक व्याख्या कर के द्वैताद्वैत मत की स्थापना की। वैष्णवों के प्रमुख चार सम्प्रदायों में एक निम्बार्क सम्प्रदाय भी है। इसे सनकादि सम्प्रदाय भी कहते हैं। ब्रह्मा के जो चार मानस पुत्र, सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार थे, वे चारों ऋषि इस मत के आचार्य कहे जाते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में सनत्कुमार नारद आख्यायिका प्रसिद्ध है। उसमें कहा गया है कि नारद ने सनत्कुमार से ब्रह्म विद्या सीखी थी। इन्हीं नारद जी ने ही निम्बार्क को उपदेश दिया। जो हो, यह बात बिल्कुल ठीक है कि यह मत नया नहीं, 'पुराना' है, श्री निम्बार्क ने साम्प्रदायिक ढङ्ग से जिस मत की शिक्षा पाई थी, उसे अपनी प्रतिभा के बल से और भी उज्ज्वल बना दिया।

आचार्य निम्बार्क के मतानुसार ब्रह्म-जीव और जड़ अर्थात् चेतन और अचेतन से अत्यन्त पृथक् और अपृथक् हैं। इस पृथक्त्व और अपृथक्त्व के ऊपर ही उनका दर्शन निर्भर करता है। जीव और जगत दोनों ब्रह्म के परिणाम हैं। जीव

+ हिन्दुत्व पृष्ठ ६७०।

ब्रह्म से अत्यन्त भिन्न और अभिन्न है। जगत भी उसी प्रकार भिन्न और अभिन्न है।

निम्बार्क के मतानुसार कर्म मीमांसा के बाद भक्ति का उदय होने पर ब्रह्म मीमांसा का अधिकार प्राप्त होता है। शास्त्र द्वारा ही ब्रह्मज्ञान होता है। ब्रह्म ही जिज्ञासा का विषय है। आचार्य कहते हैं—

सर्वभिन्नाभिन्नो भगवान् वासुदेवो विश्वात्मैव जिज्ञासाविषय।

इनके मतानुसार ब्रह्म का सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में विचार किया जा सकता है।

निम्बार्काचार्य के प्रारम्भिक शिष्यों ने भी अपने ग्रन्थ संस्कृत में ही लिखे थे। परन्तु बाद को जब भी वल्लभाचार्य के शिष्यों 'सूरदास, नन्ददास आदि' द्वारा ब्रजभाषा अपनाई गई और कृष्ण भक्ति परक विपुल साहित्य के सृजन का क्रम चल पड़ा, तब निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्त कवियों ने भी ब्रज भाषा को अपनाया और ब्रजभाषा में ही रचनाएँ की। इन कवियों में मुख्य ये हैं। हितहरिवंश 'राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक', स्वामी हरिदास 'निम्बार्क मतांतर्गत टट्टी सम्प्रदाय के संस्थापक', श्री भट्ट, व्यास जी, तथा ध्रुवदास।

धार्मिक ग्रन्थों में "ब्रह्मवैवर्त पुराण" ही ऐसा ग्रन्थ है जिसमें सर्व प्रथम राधा की चर्चा साधारण रूप से हुई है। ब्रह्मवैवर्त पुराण का रचना काल १० वीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। इसके पश्चात् गोपालतापनी उपनिषद् में राधा का वर्णन कृष्ण की प्रेयसी के रूप मे मिलता है। यह ग्रन्थ "राधा सम्प्रदाय" के अनुयायियों को बहुत मान्य है। गोपालतापनी उपनिषद् की रचना मध्व के भाष्य और अनुव्याख्यान के बाद ही हुई होगी। क्योंकि मध्व ने राधा का उल्लेख नहीं किया था।

मध्व सम्प्रदाय के अतिरिक्त कृष्ण का माहात्म्य स्वीकार करने वाले विष्णुस्वामी और निम्बार्क सम्प्रदाय हुए। इन दोनों सम्प्रदायों में राधा का उल्लेख है। निम्बार्क सम्प्रदाय में आगे चलकर जयदेव हुए। 'इनका जन्म बंगाल में हुआ'। इन्होंने राधा-कृष्ण के विहार में 'गीतगोविन्द' की रचना की। जिससे विद्यापति

प्रभावित हुए, इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में श्री निम्बार्काचार्य और काव्य जगत में जयदेव को राधा की प्रतिष्ठा का श्रेय प्राप्त है।

राधा की उपासना के सम्बन्ध में फ़र्कुहार का यह मत है कि "राधा की उपासना भागवत पुराण के आधार पर वृन्दावन में ईसा सन् ११०० के लगभग प्रारम्भ हुई होगी और यहीं से यह बंगाल तथा अन्य स्थानों में पहुँची होगी।⊛

श्री वल्लभाचार्य और उनका पुष्टिमार्ग—ब्रजभाषा (हिंदी) में कृष्ण सृजन का समस्त श्रेय श्री वल्लभाचार्य जी को प्राप्त होना चाहिए, क्योंकि उन्हीं के द्वारा प्रवर्तित एवं प्रचारित पुष्टि मार्ग दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के भक्त कवियों ने कृष्ण काव्य की रचना की।

वल्लभाचार्य जी तैलंग ब्राह्मण थे। इनका जन्म रायपुर, मध्यभारत में सम्वत् १५३५ में तथा गोलोकवास संवत् १५८७ में हुआ था। विक्रम की १५ वीं और १६ वीं शताब्दी में वैष्णव धर्म का जो आन्दोलन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैला वल्लभाचार्य जी उसके प्रधान प्रवर्त्तकों में से थे। वल्लभ सम्प्रदाय रुद्र सम्प्रदाय के अन्तर्गत आता है।

रामानुजाचार्य से लेकर वल्लभाचार्य तक जितने भक्त दार्शनिक या आचार्य हुए, सब का लक्ष्य शंकर के मायावाद तथा विवर्त्तवाद से पीछा छुड़ाना था। जिसके अनुसार भक्ति अविद्या या भ्रान्ति ठहरती है। शंकर ने केवल निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकार की थी।

दार्शनिक दृष्टि से इनका सिद्धांत "शुद्धाद्वैत" ब्रह्मवाद है। शंकर का अद्वैत जैसे शुद्ध बना दिया गया हो। शंकर की माया के लिए इनके यहाँ कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार माया से रहित अद्वैत ही शुद्धाद्वैत है। इस शुद्धाद्वैत में जहाँ माया का बहिष्कार किया गया, वहाँ भक्ति के लिए विशेष विधान किया गया। यह भक्ति ज्ञान से श्रेष्ठ है। ज्ञान से ब्रह्म को केवल जाना जा सकता है, भक्ति से ब्रह्म की अनुभूति होती है। इस प्रकार भक्ति का स्थान सर्वोच्च

⊛"डा० रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास"

है। दार्शनिक सिद्धांत के लिए वल्लभाचार्य श्री विष्णुस्वामी के ऋणी हैं, किन्तु अपने साधन मार्ग की व्यवस्था उनकी अपनी वस्तु है।

वल्लभ ने ब्रह्म में सब धर्म माने। सारी सृष्टि को उन्होंने लीला के लिए ब्रह्म की आत्म कृति कहा। अपने को अंश के रूप जीवों में बिखेरना ही ब्रह्म की लीला मात्र है। प्रकृति और जीव उससे उसी भाँति प्रकट हुए हैं जिस प्रकार अग्नि से चिनगारी। यह रचनात्मक कार्य ब्रह्म केवल अपनी शक्ति एवं गुणों से करता है, वह माया का उपयोग नहीं करता है। वल्लभाचार्य ने अपने आपको अग्नि का अवतार कहा है। जिस प्रकार अग्नि से छोटी बड़ी चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म से हीन तेजस्वी जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। जिस प्रकार अग्नि और चिनगारियाँ स्वरूप से एक हैं, उसी प्रकार ब्रह्म और जीव का भी स्वरूपगत अभदत्व है, अर्थात् जीव भी उतना ही सत्य है, जितना स्वयं ब्रह्म, किंतु फिर भी जीव ब्रह्म नहीं है केवल उसका अंश और सेवक है। जीव और ब्रह्म "आत्मा और परमात्मा" में केवल अंतर यह है कि जीव की शक्तियाँ अपनी सत्ता के कारण सीमित हैं और परमात्मा की अपरिमित। रामानुज एवं निंबार्क ने जीव को अणु माना है। श्री वल्लभ ने भी जीव का अणुत्व का समर्थन किया है। वल्लभ ने रामानुज एवं निम्बार्क के मत के विरुद्ध ब्रह्म के अद्वैत पक्ष का समर्थन किया है, किन्तु माया के सम्बन्ध से रहित अर्थात् शुद्ध ब्रह्म का प्रतिपादन करने के कारण उनका सिद्धांत शुद्धाद्वैतब्रह्मवाद कहलाता है।

अक्षर ब्रह्म अपनी आविर्भाव तिरोभाव की अचिन्त्य शक्ति से जगत के रूप में परिणत भी होता है और उसके परे रहता है। वह अपने सत् चित् और आनन्द तीनों स्वरूपों का आविर्भाव और तिरोभाव करता रहता है। जीव में सत् और चित् का आविर्भाव रहता है, पर आनन्द का तिरोभाव। जड़ में केवल सत् का आविर्भाव रहता है, चित् और आनन्द दोनों का तिरोभाव। माया कोई वस्तु नहीं है। वल्लभाचार्य जी के सिद्धान्त में आविर्भाव और तिरोभाव का विशेष महत्व है।

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार परमब्रह्म प्रकृतिजन्य धर्मों के अभाव में जिस

प्रकार निर्गुण है, उसी प्रकार आनन्दात्मक दिव्य धर्मों के कारण वह सगुण भी है। इसी परमब्रह्म को शुद्धाद्वैत सिद्धांत में श्री कृष्ण कहा गया है। ये श्री कृष्ण सर्व धर्मों के आश्रय रूप हैं, अतः ये धर्मी कहलाते हैं। इनमें परस्पर विरुद्ध धर्मों का समावेश है, यही इनकी सबसे बड़ी विशेषता एवं विचित्रता है है। परब्रह्म का यही स्वरूप मानकर वेदों की निर्गुण सगुण स्वरूप प्रतिपादक श्रुतियों का मतैक्य हो सकता है। इस प्रकार श्री वल्लभचार्य जी ने समस्त वेदों और शास्त्रों के मतों की एक वाक्यता प्रमाणित की है।

वल्लभाचार्य के मत में श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, जो समस्त दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर "पुरुषोत्तम" कहलाते हैं। आनन्द का पूर्ण आविर्भाव इसी पुरुषोत्तम रूप में रहता है। पुरुषोत्तम कृष्ण की समस्त लीलाएँ नित्य हैं। वे अपने भक्तों के लिए व्यापी वैकुंठ में "जो विष्णु के वैकुंठ के ऊपर है" अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते रहते हैं।

इस व्यापी वैकुंठ के एक अंश का नाम गौलोक है। इसी गोलोक में नित्य रूप में यमुना, वृन्दावन, निकुंज इत्यादि सब कुछ हैं। भगवान की इस "नित्य लीला सृष्टि"में प्रवेश करना ही जीव की सबसे उत्तम गति है। भगवान स्वेच्छा से स्वयं अवतरित होकर लीला किया करते हैं। आनन्दप्राप्ति और आनन्द दान ही उस लीला का ध्येय है। इस लीला का कोई अन्य प्रयोजन नहीं है।

शंकराचार्य ने निर्गुण को ही ब्रह्म का पारमार्थिक किंवा वास्तविक स्वरूप कहा था और सगुण स्वरूप को केवल व्यावहारिक अथवा मायिक। वल्लभाचार्य ने बात एक दम उलट दी। इन्होंने सगुण रूप को तो ब्रह्म का पारमार्थिक एवं वास्तविक स्वरूप बताया तथा निर्गुण को उसका अंशतः तिरोहित रूप बताया। परब्रह्म के आध्यात्मिक स्वरूप का नाम अक्षर ब्रह्म है और इसके भौतिक स्वरूप का नाम जगत है। शुद्धाद्वैत के सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मरूप होने से जगत भी ब्रह्म के समान सत्य है। वल्लभाचार्य ने शंकराचार्य के समान जगत् को असत् अथवा मिथ्या नहीं माना है। उनके मतानुसार जगत की भी स्थिति है। जगत ब्रह्म रूप होने के कारण सत्य है। किंतु संसार जीव की अविद्या से माना हुआ "मैं और मेरेपन की कल्पना मात्र है, इसलिए यह असत्य है,

है। दार्शनिक सिद्धांत के लिए वल्लभाचार्य जी विष्णुस्वामी के ऋणी हैं, किन्तु अपने साधन मार्ग की व्यवस्था उनकी अपनी वस्तु है।

वल्लभ ने ब्रह्म में सब धर्म माने। सारी सृष्टि को उन्होंने लीला के लिए ब्रह्म की आत्म कृति कहा। अपने को ब्रह्म के रूप जीवों में विभेरता ही ब्रह्म की लीला मात्र है। प्रकृति और जीव उससे उसी भाँति प्रकट हुए हैं जिस प्रकार अग्नि से चिनगारी। यह रचनात्मक कार्य ब्रह्म केवल अपनी शक्ति एवं गुणों से करता है, वह माया का उपयोग नहीं करता है। वल्लभाचार्य ने अपने आपको अग्नि का अवतार कहा है। जिस प्रकार अग्नि से छोटी बड़ी चिनगारियाँ निकलती हैं उसी प्रकार ब्रह्म से हीन तेजस्वी जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। जिस प्रकार अग्नि और चिनगारियाँ स्वरूप से एक हैं, उसी प्रकार ब्रह्म और जीव का भी स्वरूपगत अभेदत्व है, अर्थात् जीव भी उतना ही सत्य है, जितना स्वयं ब्रह्म, किन्तु फिर भी जीव ब्रह्म नहीं है केवल उसका अंश और सेवक है। जीव और ब्रह्म "आत्मा और परमात्मा" में केवल अंतर यह है कि जीव की शक्तियाँ अपनी सत्ता के कारण सीमित हैं और परब्रह्म की अपरिमित। रामानुज एवं निंबार्क ने जीव को अणु माना है। श्री वल्लभ ने भी जीव का अणुत्व का समर्थन किया है। वल्लभ ने रामानुज एवं निम्बार्क के मत के विरुद्ध ब्रह्म के अद्वैत पक्ष का समर्थन किया है, किन्तु माया के सम्बन्ध से रहित अर्थात् शुद्ध ब्रह्म का प्रतिपादन करने के कारण उनका सिद्धांत शुद्धाद्वैतवाद कहलाता है।

अक्षर ब्रह्म अपनी आविर्भाव तिरोभाव की अचिन्त्य शक्ति से जगत के रूप में परिणत भी होता है और उसके परे रहता है। वह अपने सत् चित् और आनन्द तीनों स्वरूपों का आविर्भाव और तिरोभाव करता रहता है। जीव में सत् और चित् का आविर्भाव रहता है, पर आनन्द का तिरोभाव। जड़ में केवल सत् का आविर्भाव रहता है, चित् और आनन्द दोनों का तिरोभाव। माया कोई वस्तु नहीं है। वल्लभाचार्य जी के सिद्धान्त में आविर्भाव और तिरोभाव का विशेष महत्व है।

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार परब्रह्म प्रकृतिजन्य धर्मों के अभाव में जिस

प्रकार निर्गुण है, उसी प्रकार आनन्दात्मक दिव्य धर्मों के कारण वह सगुण भी है। इसी परब्रह्म को शुद्धाद्वैत सिद्धांत में श्री कृष्ण कहा गया है। ये श्री कृष्ण सर्व धर्मों के आश्रय रूप हैं, अतः ये धर्मी कहलाते हैं। इसमें परस्पर विरुद्ध धर्मों का समावेश है, यही इनकी सबसे बड़ी विशेषता एवं विचित्रता है है। परब्रह्म का यही स्वरूप मानकर वेदों की निर्गुण सगुण स्वरूप प्रतिपादक श्रुतियों का मतैक्य हो सकता है। इस प्रकार श्री वल्लभाचार्य जी ने समस्त वेदों और शास्त्रों के मतों की एक वाक्यता प्रमाणित की है।

वल्लभाचार्य के मत में श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, जो समस्त दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर "पुरुषोत्तम" कहलाते हैं। आनन्द का पूर्ण आविर्भाव इसी पुरुषोत्तम रूप में रहता है। पुरुषोत्तम कृष्ण की समस्त लीलायें नित्य हैं। वे अपने भक्तों के लिए व्यापी वैकुंठ में "जो विष्णु के वैकुंठ के ऊपर है" अनेक प्रकार की लीलाएँ करते रहते हैं।

इस व्यापी वैकुंठ के एक भाग का नाम गोलोक है। इसी गोलोक में नित्य रूप में यमुना, वृन्दावन, निकुंज इत्यादि सब कुछ हैं। भगवान की इस "नित्य लीला सृष्टि" में प्रवेश करना ही जीव की सबसे उत्तम गति है। भगवान स्वेच्छा से स्वयं अवतरित होकर लीला किया करते हैं। आनन्दप्राप्ति और आनंद दान ही उस लीला का ध्येय है। इस लीला का कोई अन्य प्रयोजन नहीं है।

शंकराचार्य ने निर्गुण को ही ब्रह्म का पारमार्थिक किंवा वास्तविक स्वरूप कहा था और सगुण स्वरूप को केवल व्यावहारिक अथवा मायिक। वल्लभाचार्य ने बात एक दम उलट दी। इन्होंने सगुण रूप को तो ब्रह्म का पारमार्थिक एवं वास्तविक स्वरूप बताया तथा निर्गुण को उसका अंशतः तिरोहित रूप बताया। परब्रह्म के आध्यात्मिक स्वरूप का नाम अक्षर ब्रह्म है और इसके भौतिक स्वरूप का नाम जगत है। शुद्धाद्वैत के सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मरूप होने से जगत भी ब्रह्म के समान सत्य है। वल्लभाचार्य ने शंकराचार्य के समान जगत् को असत् अथवा मिथ्या नहीं माना है। उनके मतानुसार जगत की भी स्थिति है। जगत ब्रह्म रूप होने के कारण सत्य है। किंतु संसार जीव की अविद्या से माना हुआ 'मैं' और मेरेपन की कल्पना मात्र है, इसलिए वह असत्य है,

शंकराचार्य के मतानुसार "ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या है, परन्तु वल्लभाचार्य के मतानुसार "ब्रह्मसत्य, जगत् सत्यम्, मिथ्या संसार केवलम्" है। ज्ञान द्वारा जीव की मुक्ति होने पर संसार की निवृत्ति होती है, किन्तु जगत ज्यों का त्यों बना रहता है। प्रलय काल में भी जगत का तिरोभाव होता है, नाश नहीं।

भक्ति की साधना के लिए वल्लभ ने केवल प्रेम लिया। इस प्रकार भक्ति में से श्रद्धा का अवयव निकल गया और महत्व की भावना में मग्न होने का प्रश्न ही न रहा। इस प्रकार इन्होंने प्रेम लक्षणा भक्ति ही ग्रहण की। चौरासी वैष्णव की वार्त्ता में सूरदास की एक वार्त्ता में यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है।

"श्री आचार्य जी महाप्रभुन के मार्ग को कहा स्वरूप है। माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ स्नेह की सो परम काष्ठा है। (स्नेह आगे भगवान को रहत नाहीं तासे भगवान और वेद माहात्म्य जनावत हैं) ... — इन मत्र भक्तन को स्नेह परम काष्ठ-पद है। ताही समय तो माहात्म्य रहे, पीछे विस्मृत हो जाय।" इनकी भक्ति साधना के अन्तर्गत प्रेम को ही मुख्य और श्रद्धा या पूज्य बुद्धि को सहायक मात्र माना गया है। "पाठक स्मरण रखें कि प्रेम और श्रद्धा के योग का ही नाम भक्ति है। जिस प्रकार ज्ञान की चरम सीमा ज्ञाता और ज्ञेय की एकता है, उसी प्रकार प्रेम भाव की चरम सीमा आश्रय और आलम्बन की एकता है। अतः भगवद्भक्ति की साधना के लिए इसी प्रेम तत्व को ही वल्लभाचार्य ने सामने रखा और उनके अनुयायी कृष्ण भक्त कवि इसी को लेकर चले।

प्रेम साधना में वल्लभाचार्य ने लोक मर्यादा और वेद मर्यादा दोनों को त्याग ने में कोई हानि नहीं समझी और इनका त्याग विधेय ठहराया। इस प्रेम लक्षणा भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति तभी होती है, जब भगवान् का अनुग्रह होता है, जिसे पोषण या पुष्टि कहते हैं। इसी कारण वल्लभाचार्य जी ने अपने मार्ग का नाम "पुष्टि मार्ग" (Path of divine grace) रखा। परवर्ती समस्त वैष्णव भक्त कवियों पर वल्लभ के पुष्टिमार्ग की छाप पड़ी। यथा—

"यह गुन साधन तें नहिं होई, तुम्हारी कृपा पाउ कोई-कोई।
सोइ जानइ जेहि देउ जनाई, जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होय जाई॥"
"रामायण, तुलसी"

तथा—

मैं हारयो करि जतन बहुत विधि अतिसै प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होय तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै॥
"विनयपत्रिका"

अष्टछाप के कवि तो इनके मत में दीक्षित ही हुए थे।

जापर दीनानाथ ढरै।
सोई कुलीन बड़ो सुन्दर सोई जापर कृपा करै॥
राजा कौन बड़ो रावन तें गर्वहिं गर्व गरै।
रंकव कौन सुदामाहु तें आपु समान करै॥
रूपव कौन अधिक सीता तें जन्म वियोग भरै।
अधिक कुरूप कौन कुबजा तें हरिपति पाइ बरै॥
योगी कौन बड़ो शंकर तें ताको काम छरै।
कौन बिरक्त अधिक नारद तें सो निशि दिन भ्रमत फिरै॥
अधम सु कौन अजामिल हु तें यम तह जात डरै।
सूरदास भगवत भजन बिनु फिरि-फिरि जठर जरै॥
'सूरसागर ११, २०"

कृष्ण "जो मम हैं" की अनुभूति स्वयं कृष्ण के अनुग्रह स्वरूप है। इनके पुष्टिमार्ग का अर्थ है भगवान श्री कृष्ण की भक्ति द्वारा उनकी कृपा और अनुग्रह की प्राप्ति हो। श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने निरोध लक्षण में लिखा है।

अहं निरुद्धो रोधेन निरोध पदवीं गतः।
निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते॥
× × ×
हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भव सागरे।
ये निरुद्धास्तएवात्र मोदमायात्यहर्निशं॥

अर्थात्—मैंने निरोध की पदवी प्राप्त करली है क्योंकि मैं रोध से भिन्न । किन्तु निरोध मार्गियों की निरोध सिद्धि के लिए मैं निरोध का वर्णन सा हूँ । भगवान् के द्वारा जो छोड़ दिये गये हैं, वे संसार सागर में डूब गये और जो निरुद्ध किये गये हैं वे दिन रात आनन्द में लीन हैं ।

उक्त कथन के अनुसार "निरोध मार्गी" और 'पुष्टि मार्गी" पर्याय हैं । ट मार्गी हरि के अनुग्रह पात्र हैं । इनका विशेष वर्णन वल्लभाचार्य के पुष्टि ाह -मर्यादा भेदः ग्रन्थ में दिया गया है । ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा गया है ।

"कश्चिदेव हि भक्तो हि योमद्भक्त इतीरयात् सर्वत्रोत्कर्ष कथनात्पुष्टिरस्तीति ्चयः ।"

इसी प्रकार उन्होंने अपने "अनुभाष्य" में कहा है ।

कृति साध्यं साधन ज्ञान भक्तिरूपं शास्त्रेण बोध्यते ताभ्यां विहिताभ्यां के मर्यादा । तद्रि हिताानामपि स्व स्वरूप बलेन स्वप्रापणं पुष्टिरित्युच्यते ।

अर्थात्—शास्त्र कहते हैं कि ज्ञान से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है और ंद्रहित साधन से मक्ति मिलती है । इन साधनों द्वारा प्राप्त मुक्ति का नाम र्यादा ' है । ये साधन सर्व साध्य नहीं । अतः अपनी ही शक्ति से 'स्वस्वरूप ल' मद्य जो भक्तों को मुक्ति प्रदान करता है, वह पुष्टि कहलाती है ।" अतः ट का सम्बन्ध शरीर से नहीं । उसका सम्बन्ध हरि के अनुग्रह से है । यह पुष्टि र प्रकार की होती है ।

(१) प्रवाह पुष्टि—संसार में रहते हुए भी श्रीकृष्ण की भक्ति प्रवाह ' से हृदय में होती रहे ।

(२) मर्यादा पुष्टि—ससार के सुखों से अपना हृदय खींच कर श्रीकृष्ण गुण गान करे इस प्रकार मर्यादा भक्ति का विकास हो ।

(३) पुष्टि पुष्टि—श्रीकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त होने पर भी भक्ति की ग्ना अधिकाधिक होती रहे ।

(४) शुद्धि पुष्टि—केवल प्रेम और अनुराग के आधार पर श्रीकृष्ण का ुग्रह प्राप्त कर हृदय में श्रीकृष्ण की अनुभूति हो । यह अनुभूति हृदय को

श्रीकृष्ण का स्थान बना दें। और गो, गोप, यमुना, गोपी, कदम्ब आदि के रूप से उसे कृष्णमय कर दे।

वल्लभाचार्य जी ने 'शुद्धपुष्टि' को अपने सम्प्रदाय का चरम उद्देश्य माना है। इसके अनुसार वे जीव को राधा कृष्ण के साथ गोलोक में निवास पा जाने पर ही सार्थक समझते हैं।

पुष्टि विभेद के आधार पर वल्लभाचार्य जी ने तीन प्रकार के जीव माने हैं।

(१) पुष्टि जीव—जो भगवान् से अनुग्रह का ही भरोसा रखते हैं और "नित्य लीला" में प्रवेश पाते हैं।

(२) मर्यादा जीव—जो वेद की विधियों का अनुसरण करते हैं और स्वर्ग आदि लोक प्राप्त करते हैं।

(३) प्रवाह जीव—जो संसार के प्रवाह में पड़े सांसारिक सुखों की प्राप्ति में लगे रहते हैं।

वल्लभाचार्य जी को अपने सम्प्रदाय के नामकरण की प्रेरणा श्रीमद्भागवत् से हुई है। भागवत् के द्वितीय स्कन्ध १० वें अध्याय के ४ थे श्लोक में पुष्टि अथवा पोषण की चर्चा आई है। वहाँ पर पोषण तदनुग्रहः के अनुसार भगवान के अनुग्रह को ही जीव का वास्तविक पोषण 'पुष्टि' बतलाया गया है। इसी श्लोक के आधार पर वल्लभ के पुष्टि मार्ग की स्थापना हुई है। उनके मतानुसार जीव के हृदय में भक्ति का संचार भगवान के अनुग्रह से ही हो सकता है और भगवान का अनुग्रह ही पुष्टि है।

श्री हरिराय जी पुष्टि मार्ग के सुप्रसिद्ध व्याख्याता हुए हैं। उन्होंने "श्री पुष्टिमार्ग लक्षणानि नामक" लेख में पुष्टि मार्ग का इस प्रकार परिचय दिया है।

जिस मार्ग में लौकिक तथा अलौकिक सकाम तथा निष्काम सब साधनों का अभाव ही श्रीकृष्ण के स्वरूप प्राप्ति में साधन है, अथवा जहाँ जो फल है, वही वह साधन है उसे पुष्टिमार्ग कहते हैं। और जिस मार्ग में सर्व सिद्धियों का हेतु भगवान का अनुग्रह ही है, वहाँ देह के सम्बन्धक सबन्ध ही साधन रूप बन कर भगवान की इच्छा के बल पर फल रूप सम्बन्ध बनते हैं। जिस मार्ग में

भगवद् विरह अवस्था में भगवान् की लीला के अनुभव मात्र से संयोगावस्था का सुख अनुभूत होता है और जिस मार्ग में सब भावों में लौकिक विषय का त्याग है और उन भावों के सहित देहादि का भगवान् को समर्पण है, वह पुष्टिमार्ग कहलाता है। ८

पुष्टिमार्ग वस्तुतः उस लीलामय के अनुग्रह की भावना से संयुक्त है। स्व० वल्लभाचार्य जी से अनुमान्य भागवत के द्वितीय स्कन्ध में उसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है।

"पोषणं तदनुग्रहः" अर्थात् भगवान अपनी लीला से भक्त पर अनुग्रह करता हुआ जो मुक्ति प्रदान करता है, यह पुष्टि कहलाती है। भगवान का अनुग्रह ही तो उसका पोषण है।

प्रमेय रत्नार्णव में समादीत श्री हरिराम जी की कारकाओं में भी इसका सम्यक् विवेचना की गई है। वह कहते हैं:—

> समस्त विषय त्यागः सर्व भावेन यत्र हि
> समर्पणं च देहादेः पुष्टिमार्गः स कथ्यते।

अर्थात्—विषयों का परित्याग कर सर्वभाव से भक्त का भगवान के प्रति समर्पण ही पुष्टिमार्ग का लक्षण है।

इस मतानुसार पुष्टिमार्ग में दो वस्तुएँ आवश्यक हुईं।

१—सर्व विषयों का परित्याग अर्थात् निग्रह।

२—भक्त का सर्वभाव से आत्म समर्पण अथवा ईश्वरानुग्रह।

कदाचित् इसी निग्रह को वल्लभाचार्य ने 'निरोध' की संज्ञा दी है। आचार्य के इस कथन से यथा दुःखार्य यशोदायाः। यह स्पष्ट है कि भक्त के सुख दुख उस लीलाधारी की लीला से अनुप्राण हो जाते हैं। इसी दिव्य सुख दुखानुभूति को निरोध भाव कहा गया है। इसी के द्वारा भगवान भक्त को लौकिक आसक्ति से बचाता है। इस निरोध प्राप्त भक्त को भगवान की लीला गाना ही शेष रह जाता है। सूर के अलौकिक मानस लोचनों ने इस निरोध तत्व को परखा था, तथा इसी आधार पर सूरसागर की रचना हुई थी। भ्रमरगीत में भगवान् के

---

८ "अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय"

रति-भाव के जिस निर्हेतुक समर्पण की व्याख्या है उसके पीछे इसी गोपी भावना का ही बल है। यथा :—

> प्रभु हौं सब पतितन को टीको।
> प्रभु हौं सब पतितन को नायक।
> जसुमति को सुख शिव विरंचि नहीं पायौ।

श्री वल्लभाचार्य जी ने गोपीजनों को ही पुष्टिमार्ग का गुरु माना है। वे ही कृष्ण से प्रेम करना जानती हैं। और उन्होंने ही कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त किया था। अतः पुष्टिमार्गी भक्त को गोप गोपियों के कृत्यों का ही अनुकरण करना चाहिए, उन्हीं के सुख दुख को ग्रहण करने की शक्ति होना चाहिए, वल्लभाचार्य निरोध लक्षणम् में इसी भाव को यों लिखते हैं।

> "यच्च दुःखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले।
> गोपिकानां च यद् दुःखं तद् दुःखं स्यान्मम क्वचित्॥१॥
> गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम्।
> यत्सुखं, समभूत्तन्मे भगवान् किं विधास्यति॥२॥
> उद्धवागमने जात उत्सव सुमहान् यथा।
> वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित्॥

अर्थात्—"दुःख यशोदा नन्दादिकों एवं गोपीजनों को गोकुल में हुआ था, वह दुःख मुझे कब होगा। गोकुल में गोपीजनों एवं सभी व्रजवासियों को जो भली भाँति सुख हुआ, वह सुख भगवान् मुझे कब देंगे। उद्धव के आने पर वृन्दावन और गोकुल में जैसे महान उत्सव हुआ था, क्या वैसा मेरे मन में कभी होगा।" *

यही कारण है कि पुष्टिमार्गी सभी भक्त कवि श्रीकृष्ण के चरित्र में वैसा

---

*"ऊँ त्रिसत्यस्य भक्ति देव गरीयसी भक्ति देव गरीयसी। सूत्र सं० ८०। तथा सैं गुण माहात्म्यासक्ति रूपासक्ति पूजासक्ति स्मरणासक्ति दास्यासक्ति सख्यासक्ति कान्तासक्ति वात्सल्यासक्ति आत्मनिवेदनासक्ति तन्मयतासक्ति परमविरहासक्ति रूपा एकधाप्येकादशधा भवति। सूत्र संख्या ८१"

ही आनन्द लेना चाहते हैं, जैसा स्वयं गोपी और गोपजन लेते थे। फलतः वे सभी कृष्ण चरित्र का सची अनुभूति से वर्णन करते हैं।

"नारद भक्ति सूत्र" में भक्ति की विस्तृत व्याख्या की गई है। उसमें कहा गया है कि" तीनों कालों में सत्य 'ईश्वर' की भक्ति ही बड़ी है, यह भक्ति एक रूप ही होकर गुणमहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति और परम विरहासक्ति, रूप में ग्यारह प्रकार की है।

यही ११ प्रकार की आसक्ति वल्लभाचार्य जी ने कृष्ण के प्रति स्थापित की है। कृष्ण के प्रति यशोदा नन्द, गोप गोपियों की जो आसक्ति है, वह इन्हीं रूपों में रक्खी गई है।

निम्बार्काचार्य और मध्वाचार्य ने धार्मिक क्षेत्र में कृष्णभक्ति का प्रचार अपने अपने साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के अनुसार किया था और जयदेव के काव्य ने काव्य क्षेत्र में उनके सरस शृङ्गार का वर्णन किया था। इस प्रकार श्री वल्लभाचार्य के समय तक कृष्ण भक्ति एवं मधुर रस की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी। श्री वल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग की स्थापना द्वारा भक्तिपूर्ण शृङ्गार की शास्त्रोक्त व्यवस्था देकर यह मार्ग और भी प्रशस्त कर दिया। फलस्वरूप समस्त उत्तरी भारत में शृङ्गार-रस-पूर्ण कृष्ण भक्ति की एक लहर दौड़ गई।

वल्लभाचार्य के द्वारा प्रशस्त पुष्टि मार्ग के अन्तर्गत तीन तत्व विशेष उल्लेखनीय हैं। गोप गोपीजनों के जीवन का भक्तों द्वारा अनुकरण, गोपियों का कृष्ण प्रेम का वास्तविक अधिकारिणी होना तथा प्रवाह पुष्टि अर्थात् सांसारिक सुख भोगते हुए श्रीकृष्ण की भक्ति का भक्त के हृदय में प्रवाह रूप वहन। इसका परिणाम यह हुआ कि सखी सम्प्रदाय आदि की स्थापना होकर भक्त जन परकीया भाव से कृष्ण की उपासना करने लगे, तथा बड़े-बड़े धनाढ्य व्यक्ति पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए, तथा प्रवाह पुष्टि के नाम पर बड़े बड़े देवालयों का निर्माण हुआ और उनके अन्तर्गत भंडारे चल निकले। मन्दिरों की प्रशंसा "केसर की क्यारियाँ चलें हैं" कह कर होने लगी। इस प्रकार प्रवाह पुष्टि में भोग विलास एवं राग की प्रचुर सामग्री का प्राधान्य हो चला। इस भोग

विलास के आकर्षण का प्रभाव सेवक सेविकाओं पर कहाँ तक अच्छा पड़ सकता था। पुजारियों के ठाट बाट के आगे नवाबों के ठाट बाट फीके पड़ गये। देवालय मुरलियों के चरणों की छुम-छुम से गूँजने लगे। भक्तों के विलास के लिये इतने साधन एकत्रित किये गये थे। 'कि अवध के नवाब तक को उनसे ईर्ष्या हो सकती थी, या कुतुबशाह भी अपने अन्तः पुर में उनका अनुकरण करना गर्व की बात समझते।' राधा को महत्ता के कारण यह शृङ्गार भावना और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त होने लगी थी।

श्री वल्लभाचार्य के मत में व्रत उपवास, तपस्या आदि कष्ट साध्य साधनों का विशेष महत्व नहीं है। उसमें तो ईश्वराधना की एक सीधी सच्ची विधि बताई गई है। वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए कृष्ण की प्रेम लक्षणा भक्ति द्वारा उपासना। श्री वल्लभाचार्य की भक्ति बाल भाव की थी। किन्तु उनके पीछे सूरदास आदि कवियों के काव्य में तथा विट्ठलनाथ जी के धार्मिक सिद्धान्तों में राधा का समावेश हो जाने के कारण मधुरा भक्ति का भी प्रचार होने लगा और कृष्ण काव्य के अन्तर्गत कृष्ण के लोकरक्षक एवं धर्म संस्थापक स्वरूप को किनारे रख दिया गया और कृष्ण भक्त कवि उनके शृङ्गारी स्वरूप की ही ओर आकर्षित होकर केवल फुटकल शृङ्गारी पदों की रचना करने में लग गये। सबने राधा कृष्ण की प्रेम लीलाएँ ही गाईं। कृष्ण भक्ति शाखा के अनुकरण पर राम भक्ति में भी माधुर्य भाव आगया और आगे चल कर राम की भी तिरछी चितवन और बाँकी अदा के गीत गाए जाने लगे।

ब्रजभाषा शृङ्गार साहित्य के सर्वप्रथम महाकवि सूरदास हैं। यह श्री वल्लभाचार्य जी के प्रमुख एवं इस कवि परम्परा में उनके प्रथम शिष्य थे। श्री वल्लभाचार्य की ही प्रेरणा से उन्होंने सूरसागर की रचना की थी। उन्होंने विनय और वात्सल्य के अतिरिक्त भक्तिपूर्ण शृङ्गार की सर्वोत्कृष्ट रचना की है। उनके कवित्व की प्रौढ़ता एवं साहित्य के महत्व का दिग्दर्शन कराना यहाँ अभीष्ट नहीं, परन्तु इतना बता देना अनिवार्य है कि हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों के वे सिरमौर हैं।

शृङ्गार के क्षेत्र का सूरदास ने अद्भुत एवं अद्वितीय उद्घाटन किया है।

रतिभाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियों तथा दशाओं का अनुभव तथा प्रत्यक्षीकरण हो सकता था, सूर ने सम्यक् उल्लेख किया है। इस क्षेत्र में ऐसी गहरी पैठ किसी अन्य कवि के लिये सम्भव नहीं हो सकी है। महाकवि सूरदास श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे जिन्होंने भक्ति मार्ग में प्रेम मय स्वरूप प्रतिष्ठित करके उसके आविर्भाव द्वारा 'सायुज्य मुक्ति' का मार्ग दिखाया था। भक्ति साधना के इस चरम अवसर या फल 'सायुज्य' की ओर सूर ने संकेत भी किया है।

सीत उष्ण सुख दुख नहिं माने हानि भए कछु सोच न राँचे।
जाय समाय सूर वा विधि में, बहुरि न उलटि जगत में नाचे॥

रति भाव के तीन प्रबल और प्रधान रूप, भगवद्विषयक रति, वात्सल्य रति और दाम्पत्य रति सूर ने लिये हैं। और जी खोल कर उन्हें गाया है। सूरदास की तात्विक सफलता इसी में है कि उन्होंने प्रेम मार्ग के त्याग और पवित्रता को ज्ञान मार्ग के त्याग और पवित्रता के समकक्ष रखने में वे खूब सफल हुए हैं, साथ ही उन्होंने उस त्याग को रागात्मिका वृत्ति द्वारा प्रतिष्ठित दिखाकर भक्ति मार्ग या प्रेम मार्ग की सुगमता का प्रतिपादन भी किया है।

सूरदास जी के शृङ्गार वर्णन के कथानक का आधार श्रीमद्भागवत है तथा धार्मिक सिद्धान्तों का आधार श्री वल्लभाचार्य जी का "पुष्टिमार्ग" है। इन दो में एक में भी राधा की व्यवस्था नहीं है। राधा के सम्बन्ध में उन्होंने अपना मार्ग स्वयं निर्धारित किया है। इस सम्बन्ध में इन्हें जयदेव तथा विद्यापति से प्रेरणा मिली होगी। इन कवियों ने राधा कृष्ण का वर्णन नायिका और नायक के रूप में किया है। उपास्य देव के रूप में नहीं। विद्यापति की राधा कृष्ण की प्रेयसी हैं और चण्डीदास की राधा में परकीया भाव प्रधान्य है। सूरदास की राधा न कृष्ण की प्रेयसी है और न परकीया, बल्कि कृष्ण की पत्नी है, इसलिये स्वकीया है। राधा ही क्यों सूर की समस्त गोपियाँ स्वकीया हैं। अतः उनका शृङ्गार पर्याप्त शिष्ट एवं मर्यादित है। वह परकीयत्व से सर्वथा मुक्त है।

भागवत के मतानुसार कृष्ण ब्रज में केवल ११ वर्ष की अवस्था तक ही रहे थे। अतः ब्रज में कृष्ण की लीलायें बाल लीलायें ही कहलायेंगी। गोपियों के साथ उनकी बाल स्वभाव जनित क्रीड़ाओं, लीलाओं तथा रास-नृत्य में युवक युवतियों के सदृश कामसम्बन्धि दृष्टिकोण अनुचित एवं अनुपयुक्त है।

सूरदास के कथानक का आधार श्रीमद्भागवत है। अतः सूरदास के कृष्ण भी बाल कृष्ण हैं। उनका शृङ्गार वर्णन प्रायः निर्दोष ही हुआ है। कुछ स्थलों पर विभिन्न प्रभावों के कारण सूरदास का वर्णन भी वासनामय हो गया है। उन्होंने कृष्ण के साथ राधा का नाम जोड़ा तो इसीलिये था कि उनका वर्णन सरस एवं मार्मिक बन जाय, परन्तु समय के प्रभाव से वह शृङ्गार वर्णन बाल क्रीड़ा कौतुक की परिधि को लांघ गया। यथा—

> नीबी ललित गही हरि राई।
> जबहिं सरोज धरो श्रीफल पर तब जसुमति गइ आई।
> ततछन रुदन करत मनमोहन, मन में बुधि उपजाई।
> देखो ढीठ देति नहिं माता, राखो गेंद चुराई।
> काहे को झकझोरत नोखे, चलहु न देउ बताई।
> देखि विनोद बालसुत को, तब महरि चली मुसकाई।
> "सूरदास" के प्रभु की लीला को जानै इहि भाई।

यहाँ एक बात स्पष्टतया समझ लेनी चाहिए कि अश्लीलता के वर्णन के अभिप्राय से सूरदास काव्य प्रणयन में प्रवृत्त नहीं हुए थे। उनकी काव्य रचना का उद्देश्य भगवान् के लीला माधुर्य का आस्वादन करना और कराना था। उनकी व्याख्या में यदि कहीं अश्लीलता आगई है, तो हम इसे काल का ही प्रभाव मानते हैं। वह जिस काल में अवतीर्ण हुए थे और जिस वातावरण में रहते थे, उसमें और उसके पूर्ववर्ती काल में इस प्रकार का स्थूल वर्णन दोष नहीं माना जाता था। इस प्रकार के वर्णन करके उन्होंने एक प्राचीन रीति विशेष का अनुसरण ही किया है। उनके पहिले कालिदास, जयदेव, तथा विद्यापति आदि महाकवियों ने इस प्रकार के वर्णन जी खोलकर किये हैं। देखिए, कालिदास प्रणीत 'कुमार सम्भव' के षष्ठम सर्ग में हर पार्वती का सम्भोग वर्णन।

> सस्वन प्रियमुखोनिपीडनं प्रार्थितं मुखमनेन नाहरत्।
> मेखलाप्रणयलोलतां गतं हस्तमस्य शिथिलं रुरोध सा।

—कालिदास "श्लोक संख्या १४"

इन रसों को भी सूरदास ने अपने इष्टदेव के जीवन के क्रिया कलाप से ही सम्बन्धित माना है। इनका वर्णन भी उन्होंने भक्त रूप से ही किया है। राधा कृष्ण की रति उनके लिये भक्ति का ही एक अंग थी।

सूरदास ने शृङ्गार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है। गोकुल और वृन्दावन की समस्त लीलाएं संयोग शृङ्गार की हैं और श्रीकृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात् गोपियों की विरह दशा का वर्णन विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत आता है।

वल्लभ सम्प्रदाय के अतिरिक्त उस समय अन्य सम्प्रदायों के भक्त कवियों ने भी शृङ्गार सागर में मज्जन किया और अपने को पवित्र हुआ समझा। इनमें महात्मा श्री हितहरिवंश का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके द्वारा स्थापित राधावल्लभीय सम्प्रदाय में प्रेमेश्वरी राधिका जी का विशेष महत्व माना गया है। इस सम्प्रदाय के कवियों ने राधा कृष्ण के नित्य विहार, की अलौकिक शृङ्गारिक लीलाओं का वर्णन किया है। श्री हितहरिवंश स्वयं उच्चकोटि के कवि थे। उनके द्वारा विरचित 'श्री हित चौरासी' अपने अनुपम माधुर्य के लिए ब्रजभाषा के शृङ्गार साहित्य में अपना महत्वपूर्ण विशिष्ट स्थान रखती है। इस सम्प्रदाय के अन्य उत्कृष्ट कवियों में चतुर्भुज, कृष्णचन्द्र, राधावल्लभदास, सेवक, चाचा वृन्दावनदास एवं ध्रुवदास प्रमुख हैं। इस सम्प्रदाय में राधिका जी का महत्व श्रीकृष्ण से भी अधिक माना गया है। यदि श्रीकृष्ण अखिल विश्व की आत्मा हैं, तो राधिका जी उस आत्मा 'श्रीकृष्ण' की भी आत्मा हैं।

निम्बार्क सम्प्रदाय में शृङ्गार साहित्य का प्रारम्भ श्री भट्ट जी से हुआ। श्री भट्ट जी रचित 'युगलशत' और 'हरिव्यास' जी रचित 'महावाणी' निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रन्थ हैं और हमारे शृङ्गार साहित्य की महत्व कृतियाँ एवं सर्वमान्य धार्मिक ग्रन्थ हैं। इनमें राधा कृष्ण के नित्य विहार का वर्णन हुआ है। इस सम्प्रदाय में शृङ्गारपूर्ण रचना करने वाले अन्य प्रमुख भक्त कवि हैं सर्व श्री परशुराम, रूपरसिक, वृन्दावन, रसिकगोविन्द आदि।

भक्त शिरोमणि स्वामी हरिदास जी निम्बार्क सम्प्रदाय की पृथक् शाखा सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। यह गायनाचार्य एवं संगीत शास्त्र के प्रकांड पण्डित थे।

यह तानसेन को अपना गुरु मानते थे। इन्होंने संगीतशास्त्र के अनुकूल अत्यन्त ही भावपूर्ण श्रृंगार भक्तिपूर्ण पद रचना की है। इनकी शिष्य परम्परा में विट्ठल विपुलजी, सूरदास जी, नरहरिदास जी, रसिकबिहारी जी, ललितकिशोरी जी, ललितमोहिनी जी, सहचरिशरण जी, नागरीदास जी आदि अनेक सुकवि होगये हैं। इनकी भक्तिपूर्ण रचनाऐं हिंदी के श्रृंगार साहित्य की अनुपम निधियाँ हैं।

कृष्ण और राधिका की केलि क्रीड़ाओं में अमर्यादित रूप से कामुकता की गई थी। आगे चलकर उनका साधारण नायक नायिका के रूप में झुककर लेखना स्वाभाविक ही था। इस प्रकार वैष्णवों की कृष्ण भक्ति शाखा की प्रेम लक्षणा भक्ति ने कवियों में मानव जीवन की विलासिता सम्बन्धी सहज दुर्बलता का पोषण किया।

देवदासी प्रथा—श्रीमद्भागवत् में श्रीकृष्ण के मधुर रूप का विशेष वर्णन होने से भक्ति क्षेत्र में गोपियों के ढङ्ग के प्रेम का, माधुर्य भाव का रास्ता खुला। इसके प्रचार में दक्षिण के मन्दिरों की देवदासी प्रथा विशेष रूप से सहायक हुई। विक्रम की ८ वीं सदी से हमें इसकी एक निश्चित परम्परा मिलती है। माता पिता लड़कियों को मन्दिरों में चढ़ा आते थे। उनका विवाह भी वहीं ठाकुर जी के साथ हो जाता था। उनके लिये मन्दिर में प्रतिष्ठित भगवान की पतिरूप में उपासना विधेय थी। इन देवदासियों में कुछ भक्तिनें भी हो गई हैं। दक्षिण की इसी प्रकार की एक भक्तिन का नाम "अण्डाल" है। उसके पद द्रविड़ भाषा में "तिरुप्पावइ" नामक पुस्तक में मिलते हैं। एक स्थान पर अण्डाल कहती हैं "अब मैं पूर्ण यौवन को प्राप्त हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त और किसी को अपना पति नहीं बना सकती।" इस प्रकार के माधुर्य भाव में आगे चलकर रहस्य एवं गुह्य की प्रवृत्ति का आना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

देवदासी प्रथा का सीधा सम्बन्ध किस सम्प्रदाय से है, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। यह प्रथा अत्यधिक प्राचीन है। यह प्रथा ईसा के लगभग चार हजार वर्ष पहिले से चली आती है। सर्व प्रथम इसका उल्लेख मिस्र के खण्डहरों और शिलालेखों में मिलता है। उसके बाद ग्रीस तथा ईराक में इसके चिह्न पाये जाते हैं। वहीं से सम्भवतः यह प्रथा भारतवर्ष में आई होगी।

गौड़ीय काव्य का प्रभाव

बंगाल की भक्ति—वल्लभ सम्प्रदाय वात्सल्य भक्ति को लेकर चला, और उसमें मधुरा भक्ति का समावेश हो गया, इसका विशेष कारण है, गोवर्धन में वल्लभ सम्प्रदाय की स्थापना होने के पहिले ही वृन्दावन में श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों का स्थायी निवास बन चुका था। चैतन्य महाप्रभुकी भक्ति प्रेम और मोदमयी थी। उनकी मधुरा भक्ति का प्रभाव ब्रज के वैष्णव सम्प्रदायों और उनके कवियों पर भी पड़ना स्वाभाविक था।

गुजरात में स्वामी मध्वाचार्य (संवत् १२२४ से १३३३) ने अपना द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की। जिसकी ओर बहुत से लोग झुके। उन्हीं दिनों देश के पूर्व भाग में जयदेव के कृष्ण प्रेम संगीत की गूंज चली आ रही थी जिसके स्वर में मिथिला के कोकिल 'विद्यापति' ने अपना स्वर मिलाया। इन दोनों महाकवियों के गीति काव्य का महाप्रभु ने आनन्द विभोर होकर गायन किया और उनके द्वारा उन्होंने कृष्ण प्रेम का संदेश बंगाल के कोने-कोने में पहुँचाया। इन्हीं की गीत एवं नृत्य समन्वित मधुरा भक्ति की लहर ब्रजमण्डल तक चली आई और हमारा तत्कालीन हिन्दी श्रृंगार साहित्य पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा।

बंग भूमि में प्राचीन काल से ही तान्त्रिकमत और शक्ति सम्प्रदाय का प्रभाव रहा है। जब भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों में बौद्ध धर्म का तिरोभाव होगया था, तब भी महायान के विकृत रूप में उसका प्रभाव बङ्गाल में शेष था। प्रेम मूलक साधना और परकीया प्रेम के प्रचारक सहजिया पंथ और बंगाल के बाउल-बाउल प्रेममार्गीय सन्त थे। बाउल का अर्थ है "बावला", ये बाउल सन्त मस्त साधक थे। दक्षिण भारत में जब वैष्णव धर्म के पुनरुत्थान का आन्दोलन उठा तो उत्तर की ओर तो वह बे रोक टोक चलता चला गया, परन्तु पूर्व में उसे "तान्त्रिकवाद" से मोर्चा लेना पड़ा। फलतः प्रस्तुत वातावरण के कारण वैष्णव धर्म वहाँ शुद्ध रूप में स्वीकार न हो सका। इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ वैष्णव धर्म और तान्त्रिक मतों की सम्मिलित उपासना पद्धति का प्रचार हुआ। ब्रह्मवैवर्त पुराण में इसका स्पष्ट उल्लेख है।

यह हम पहिले ही बता आए हैं कि शिव शक्ति के अनुकरण पर कृष्ण के साथ राधा की उपासना का विधान हमें सर्व प्रथम इसी ग्रन्थ में दिखाई देता है। किन्हीं किन्हीं विद्वानों का मत है कि वैष्णव धर्म में तान्त्रिकमत का समावेश करने के लिए ही किसी बंगीय पण्डित ने इस पुराण की रचना की थी।

बंग देश की वैष्णव भक्ति का आधार यही ब्रह्मवैवर्त पुराण है, जिसके द्वारा तन्त्र मन्त्र के शक्तिवाद में भागवत् धर्म के ईश्वरवाद का मिश्रण कर के एक नवीन सम्प्रदाय की नींव डाली गई है, जिसके कारण मधुर भाव की भक्ति का प्रभाव बढ़ा। कालान्तर में यही मधुरा-भक्ति धर्म और साहित्य में ग्रहण करली गई। प्रियतम अथवा प्रियतमा के रूप में अपने इष्टदेव की उपासना को माधुर्य भाव और उसके प्रति प्रेमानुभूति को मधुर रस कहते हैं। यह हम देख ही चुके हैं कि प्राणीमात्र में दाम्पत्य सम्बन्ध सब से अधिक मधुर एवं निकट का सम्बन्ध है। दम्पति से प्रेम की जितनी अनन्यता होती है उससे भी अधिक अनन्य भाव से भक्त को भगवान की भक्ति करनी चाहिए। मधुर भाव की भक्ति का यही मूल आधार है।

जयदेव और उनका गीत-गोविन्द—संस्कृत में भक्ति और शृङ्गार को मिलाकर काव्य रचना करने वालों में जयदेव का स्थान विशेष महत्व रखता है। इनका जन्म बङ्गाल में हुआ था, तथा बङ्गाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबार में इन्होंने विशेष प्रसिद्धि पाई थी। इस प्रकार जयदेव का समय विक्रम की १२ वीं शताब्दी का प्रारम्भ मानना चाहिए। १२ वीं शताब्दी तक अर्थात् जयदेव के समय तक शिव पार्वती ही शृङ्गार के नायक नायिका थे। वैष्णव भक्ति के आन्दोलन के प्रभाव से दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ और जयदेव ने कृष्ण और राधा के रूप में काव्य जगत को नवीन नायक नायिका प्रदान किये। और भगवान की भक्ति के लिए काव्य की रचना की विलासपूर्ण शैली का प्रचार किया। इन्होंने स्वयं कहा है—

"यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम् मधुर कोमल कांत पदावली शृणु सदा जयदेव सरस्वतीम्।"

अर्थात्—"यदि विलास कला द्वारा हरि स्मरण करना है, तो जयदेव की कोमलकांत पदावली को सुनिये ।

महाकवि जयदेव की शृङ्गारमयी अमर रचना "गीतगोविन्द" है। उसकी मधुर कोमल कान्त पदावली आज भी रसिकों एवं भक्तों के हृदय का हार है। गीत गोविन्द संस्कृत साहित्य के गीति-काव्य की श्रेष्ठतम रचना है। समस्त ग्रन्थ में श्री कृष्ण और राधिका की प्रमलीलाओं का बड़ा रसपूर्ण वर्णन किया गया है। गीत गोविन्द में राधा और कृष्ण का मिलन कृष्ण की मधुर लीलाएँ और प्रेम मादक अनुभूति का निरूपण अत्यन्त सरस और मधुर शब्दावली में किया गया है। गीत गोविन्द के द्वारा राधा का व्यक्तिगत पहिली बार मधुर और प्रेम पूर्ण बना कर साहित्य में प्रस्तुत किया गया है। गीतगोविन्द की मधुर पदावली में कामदेव के बाणों की मीठी पीड़ा है। * इसके अनुपम वाग्विलास से विद्यापति और सूरदास जैसे महाकवि भी प्रभावित हुए बिना न रह सके।

जयदेव की यमक और अनुप्रास द्वारा भाव व्यंजकता एवं सुगमता अन्यत्र दुर्लभ है।@

जयदेव ने कुछ पद हिन्दी में भी बनाए थे। ये पद गुरुग्रन्थ साहब में पाए जाते हैं। ये पद गुरुग्रन्थ साहब की की राग गूजरी और राग मारू में ही मिलते हैं। ये पद साधारण कोटि के हैं।

जयदेव की संस्कृति और हिन्दी दोनों ही प्रकार की रचनाओं ने हिन्दी के कवियों को काव्य के इस क्षेत्र में राधा कृष्ण के शृङ्गार सम्बन्धी सृजन के लिए प्रेरणा प्रदान की। विद्यापति पर उनका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है।

जयदेव के बाद प्रान्तीय भाषाओं के उत्थान का समय आता है। जिस समय प्रान्तीय भाषाओं का उत्थान हुआ वही समय देश में बड़-बड़े धर्माचारियों द्वारा वैष्णव भक्ति के प्रचार का था। ये सभी धर्माचार्य संस्कृतिज्ञ थे। यही

---

*हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास 'डा० रामकुमार वर्मा'

@ A. Classical Sanskrit Litrature Horitage of India series—Page 321)

कारण है कि कि प्रान्तीय भाषाओं को अपने क्रमिक उत्थान में संस्कृत साहित्य से विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई है। विकास की दृष्टि से प्रान्तीय भाषाएँ प्राकृत अपभ्रंश की श्रृंखला में आती है।

इन प्रान्तीय भाषाओं में बंग, मैथली तथा ब्रजभाषा भक्तिपूर्ण श्रृंगार साहित्य पर जयदेव का प्रभाव स्पष्ट ही परिलक्षित होता है।

चंडीदास—यह बंगला भाषा के पहिले कवि हैं, जिन्होंने राधा कृष्ण की श्रृंगार लीलाओं से सम्बन्धित काव्य रचना की है। उनका समय विक्रम १२ वीं सदी का अन्तिम भाग माना गया है। चंडीदास बंगला के आदि कवियों में हैं। और अपनी काव्य माधुरी के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने राधा का अत्यन्त उज्ज्वल एवं सजीव चित्रण किया है। बंगला साहित्य के इस क्षेत्र में चंडीदास अद्वितीय हैं।

विद्यापति—जयदेव के गीतगोविन्द का सबसे अधिक प्रभाव विद्यापति पर ही दिखाई देता है। यह अभिनव जयदेव कहे जाते हैं। विद्यापति हिन्दी भक्ति काव्य के सर्व प्रथम कवि हैं। कुछेक विद्वान इन्हें बंगला की ओर खींचते हैं। परन्तु उनकी रचनायें मैथली में हैं और वे हिन्दी के ही कवि हैं। यह बात अवश्य है कि उस समय विद्यापति की कविता का उत्तर भारत में उतना प्रचार नहीं हुआ जितना बंगाल में हुआ। उनकी कविता द्वारा बंगाल के वैष्णव भक्ति आन्दोलन को निश्चय ही बहुत कुछ सहायता पहुँची थी। इसका एक कारण है। विद्यापति का समय मिथिला विश्वविद्यालय के गौरव का समय था और, उन दिनों मिथिला और बंगाल में भाव-विनिमय की अधिकता थी। अतएव मिथिला के राधाकृष्ण के गीत बंगाल पहुँचे और बहुतों का पाठ बिल्कुल बंगाली हो गया। कुछ पद तो केवल बंगला में ही पाए जाते हैं।

विद्यापति का जन्म दरभंगा जिले के बिपसी गाँव में हुआ था। इनकी जन्म मृत्यु तिथि के सम्बन्ध में मतभेद है। परन्तु इतना अवश्य है कि इन्होंने शिवसिंह लखिमादेवी, नरसिंह देवी आदि राजाओं की संरक्षता पाई थी। यह बात उनके अनेक पदों में "राजा शिवसिंह रूपनरायण लखिमादेई पति भान"

अर्थात्—"यदि विलास कला द्वारा हरि स्मरण करना है, तो जयदेव की कोमलकांत पदावली को सुनिये।

महाकवि जयदेव की शृंगारमयी अमर रचना "गीतगोविन्द" है। उनकी मधुर कोमल कान्त पदावली आज भी रसिकों एवं भक्तों के हृदय का हार है। गीत गोविन्द संस्कृत साहित्य के गीति-काव्य की श्रेष्ठतम रचना है। समस्त ग्रन्थ में श्री कृष्ण और राधिका की प्रमलीलाओं का बड़ा रसपूर्ण वर्णन किया गया है। गीत गोविन्द में राधा और कृष्ण का मिलन कृष्ण की मधुर लीलाएँ और प्रेम मादक अनुभूति का निरूपण अत्यन्त सरस और मधुर शब्दावली में किया गया है। गीत गोविन्द के द्वारा राधा का व्यक्तित्व पहिली बार मधुर और प्रेम पूर्ण बना कर साहित्य में प्रस्तुत किया गया है। गीतगोविन्द की मधुर पदावली में कामदेव के बाणों की मीठी पीड़ा है। * इनके अनुपम वाग्विलास से विद्यापति और सूरदास जैसे महाकवि भी प्रभावित हुए बिना न रह सके।

जयदेव की यमक और अनुप्रास द्वारा भाव व्यंजकता एवं सुगमता अन्यत्र दुर्लभ है।@

जयदेव ने कुछ पद हिन्दी में भी बनाए थे। वे पद गुरुग्रन्थ साहब में पाए जाते हैं। ये पद गुरुग्रन्थ साहब जी की राग गूजरी और राग मारू में ही मिलते हैं। वे पद साधारण कोटि के हैं।

जयदेव की संस्कृति और हिन्दी दोनों ही प्रकार की रचनाओं ने हिन्दी के कवियों को काव्य के इस क्षेत्र में राधा कृष्ण के शृंगार सम्बन्धी सृजन के लिए प्रेरणा प्रदान की। विद्यापति पर उनका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है।

जयदेव के बाद प्रान्तीय भाषाओं के उत्थान का समय आता है। जिस समय प्रान्तीय भाषाओं का उत्थान हुआ वही समय देश में बड़-बड़े धर्माचार्यों द्वारा वैष्णव भक्ति के प्रचार का था। ये सभी धर्माचार्य संस्कृतज्ञ थे। यही

---

*हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास 'डा० रामकुमार वर्मा'

@ A Classical Sanskrit Litrature Heritage of India serias—Page 221)

कारण है कि कि प्रान्तीय भाषाओं को अपने क्रमिक उत्थान में संस्कृत साहित्य से विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई है। विकास की दृष्टि से प्रान्तीय भाषाएँ प्राकृत अपभ्रंश की श्रृंखला में आती हैं।

इन प्रान्तीय भाषाओं में बंग, मैथली तथा ब्रजभाषा भक्तिपूर्ण शृंगार साहित्य पर जयदेव का प्रभाव स्पष्ट ही परिलक्षित होता है।

चंडीदास—यह बंगला भाषा के पहिले कवि हैं, जिन्होंने राधा कृष्ण की शृंगार लीलाओं से सम्बन्धित काव्य रचना की है। उनका समय विक्रम १५ वीं सदी का अन्तिम भाग माना गया है। चंडीदास बंगला के आदि कवियों में हैं। और अपनी काव्य माधुरी के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने राधा का अत्यन्त उज्ज्वल एवं सजीव चित्रण किया है। बंगला साहित्य के इस क्षेत्र में चंडीदास अद्वितीय हैं।

विद्यापति—जयदेव के गीतगोविन्द का सबसे अधिक प्रभाव विद्यापति पर ही दिखाई देता है। यह अभिनव जयदेव कहे जाते हैं। विद्यापति हिन्दी भक्ति काव्य के सर्व प्रथम कवि हैं। कुछेक विद्वान इन्हें बंगला की ओर खींचते हैं। परन्तु उनकी रचनायें मैथली में हैं और वे हिन्दी के ही कवि हैं। यह बात अवश्य है कि उस समय विद्यापति की कविता का उत्तर भारत में उतना प्रचार नहीं हुआ जितना बंगाल में हुआ। उनकी कविता द्वारा बंगाल के वैष्णव भक्ति आन्दोलन को निश्चय ही बहुत कुछ सहायता पहुँचा थी। इसका एक कारण है। विद्यापति का समय मिथिला विश्वविद्यालय के गौरव का समय था और उन दिनों मिथिला और बंगाल में भाव विनिमय की अधिकता थी। अतएव मिथिला के राधाकृष्ण के गीत बंगाल पहुँचे और बहुतों का पाठ बिलकुल बंगाली हो गया। कुछ पद तो केवल बंगला में ही पाए जाते हैं।

विद्यापति का जन्म दरभगा जिले के बिपसी गाँव में हुआ था। इनकी जन्म मृत्यु तिथि के सम्बन्ध में मतभेद है। परन्तु इतना अवश्य है कि इन्होंने शिवसिंह, लखिमादेवी, नरसिंह देवी आदि राजाओं की संरक्षिता पाई थी। यह बात उनके अनेक पदों में "राजा शिवसिंह रूपनरायण लखिमादेई पति भाते"

-समझकर कई जगह स्पष्ट है। अतः यह सम्वत् १४१० के आसपास निश्चयतः से विद्यमान थे।

विद्यापति धार्मिक विचारों के शैव थे, परन्तु उनके ऊपर मध्वाचार्य निम्बार्काचार्य तथा विष्णुस्वामी तीनों वैष्णवों आचार्यों का यथेष्ट प्रभाव पड़ा और उन्होंने राधा कृष्ण की श्रृंगार लीलाओं का बड़ी तन्मयता पूर्वक गायन किया।

विद्यापति ने संस्कृत अपभ्रंश तथा मैथिली तीनों भाषाओं में रचना की। इन्होंने अवहट्ठ भाषा की स्वयं सराहना की है।

' देसिल बैना सब जन मिट्ठा,
तें तइसन जम्पौं अवहट्टा।"

देशी बोली सब लोगों को अच्छी लगती है अतः मैं अवहट्ठ भाषा में रचना करता हूँ।

भाषा की दृष्टि से विद्यापति के ग्रन्थ तीन वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं।

संस्कृत—शैव सरस्वहार, भूपरिक्रमा, पुरुष परीक्षा, विभागसार, दुर्गभक्तितरंगिणी आदि कुल ११ ग्रन्थ हैं।

अवहट्ठ—कीर्तिलता, कीर्ति पताका।

मैथिली—पदावली।

विद्यापति का महत्व संस्कृत और अवहट्ठ की रचनाओं के कारण नहीं है। उनके महत्व के कारण हैं हिन्दी भाषा के प्रान्तीय रूप मैथली में रचे गये पद। पदावली में उनके द्वारा बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक विभिन्न अवसरों पर रचे गये पदों का संग्रह है। ये पद तीन भागों में विभक्त किये जा सकते हैं।

१ श्रृंगार सम्बन्धी ......इस वर्ग में राधा कृष्ण के मिलन के प्रेमपूर्ण पद हैं।

२ भक्ति सम्बन्धी इस वर्ग में शिव प्रार्थना आदि हैं।

३ *काव्य सम्बन्धी ... ..इस वर्ग में तत्कालीन परिस्थितियों के चित्र हैं।*

विद्यापति शैव थे और उनके शिव सम्बन्धी पद भक्ति से ओतप्रोत हैं, परन्तु श्री कृष्ण और राधा सम्बन्धी पदों में निहारित भक्ति कहीं-कहीं वासनामय

हो जाने से कुछ मलीन सी प्रतीत होने लगती है। उनकी कविता में लौकिक प्रेम की छाया है। उन्होंने राधा कृष्ण के मिलन प्रसंग को लेकर वयः सन्धि, दूती, मान, मानभंग, अभिसार, मिलन, विरह, नखसिख आदि नायिका भेद और शृङ्गार की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है। उनके काव्य में ब्रजभाषा के नायिका भेद का प्रारम्भिक रूप दिखाई पड़ता है।

जयदेव की शृङ्गार भावना से प्रभावित होकर हिन्दी में गीतिकाव्य शैली तथा पद साहित्य में भक्तिपूर्ण शृङ्गारिक रचना प्रारम्भ करने का श्रेय विद्यापति को है। विद्यापति परजय देव का प्रभाव स्पष्ट है।

दोर्म्यां संयमितः पयोधर भरेणापीडितः पाणिजै
रविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः
हस्तेनानमितः कचेऽधरसुधापानेन सम्मोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः

"गीतगोविन्द १२, ११"

थरथरि काँपल लहु लहु भासै
लाजे न वचन करमे परकास।
आज धनि पेसल बड़ विपरीत, छन अनुमति छन मानइ भीत।
सुरतक नामे मुदइ दुहुँ आँखी, या ओल मदन महोदधि साखी।
चुम्बन बेरि करइ मुख बका, मिललइ चाँद सरोरुह अंका।
निविबंध परस चमकि उठि गोरी, जानल मदन भांडारक चोरी।
कुचयुग वसन हिय भुज याहु साँठि, बाहिर रतन आँचर देइ गाँठि।

"विद्यापति पदावली"

विद्यापति की पदावली संगीत के स्वरों से गुञ्जायमान है और वह राधा कृष्ण के चरणों में समर्पित की गई। एक हृदय संगीत मात्रा है। इन्होंने प्रेम के साम्राज्य में अपने हृदय के सभी विचारों को निस्संकोच रख दिया है। इनके बाद राधाकृष्ण के जीवन में प्रेम तत्व के सिवा कुछ रह ही न गया।

विद्यापति के सामने विरह के शृङ्गार में राधा और कृष्ण की ही मूर्तियाँ

है। पदावली में आदि से अन्त तक स्थायी भाव रति है। आलम्बन विभाव में नायक कृष्ण और नायिका राधा का मनोहर चित्र खींचा है।

कि आरे नव यौवन अभिरामा,
जत देखल पत कहए न पारिअ छओ अनुपम इकठामा।

इसी प्रकार उद्दीपन विभाव, अनुभाव और सचारी भावों का सुन्दर वर्णन है। अनुभाव वर्णन भी देख लीजिये।

सुन्दरि चललिहु पहु घरना, चहु दिसि सखि सबकर धरना।
जाइतहु हारि दूटिए गेल ना, भूखन वसन मलिन भेल ना॥
रोए रोए काजर बहाए देल ना, अदकहि सिंदुर मिटाए देलना।
जाइतहि लाग परम डरना, जइसे ससि काँप राहु डरना॥

राधा को सखी की शिक्षा भी सुन लीजिये।

सुनु सुनु ए सखि बचन बिसेस,
आजु हम देब तोहे उपदेस,
पहिलहि बैठक सयनक सीम,
हेरइत पिया मुख मोड़वि गीम।
परसइत दुहु कर बारबि पानि,
मौन रहबि पहु करइत बानि,
जब हम सौंपब करे कर आपि,
साधस धरबि उलटि मोहे काँपि। "इत्यादि"

इस प्रकार के वर्णनों में वासना का संयोग सर्वथा स्पष्ट है। इस सम्बन्ध में डाक्टर रामकुमार वर्मा ने काफी लिखा है। * यथा—

कतिपय विद्वानों ने विद्यापति के पदों में आध्यात्मिकता के दर्शन करने का प्रयास किया है, परन्तु हमारे विचार से शृङ्गारिक वर्णनों को आध्यात्मिक रूपक का स्वरूप देना शृङ्गार को हीन बना देना है। शृङ्गारिक वर्णन जीवन के वर्णन होने के कारण उपेक्षणीय नहीं हैं।

वास्तविकता यह है कि जयदेव के शृङ्गार साहित्य ने विद्यापति को इतना

---

* हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (पृष्ठ ५११ व पृष्ठ ५१२)

अधिक प्रभावित किया था कि उनकी कल्पनाओं में यथास्थान वासना की गन्ध आ गई और उसके आवरण में उनका भक्त हृदय छिप गया। विद्यापति ने ये रचनाएं चाहे जिस दृष्टिकोण को सामने रख कर की हों, परन्तु हिन्दी के परवर्ती कवियों (रीतिकाल में विशेष रूप से) तक पहुँचते-पहुँचते इस परिपाटी में बहुत कुछ मलिनता आ गई।

श्री चैतन्य महाप्रभु और गौड़ीय सम्प्रदाय—विद्यापति के सबसे बड़े प्रचारक और उन्हें लोकप्रिय बनाने वाले हुए श्री चैतन्य महाप्रभु। प्रोफेसर जनार्दन मिश्र लिखते हैं।

"विद्यापति के प्रचार का सबसे बड़ा कारण चैतन्य महाप्रभु हुए। बङ्गाल में वैष्णव सम्प्रदाय के ये सबसे बड़े नेता हुए। इन पर लोगों की इतनी श्रद्धा थी कि ये विष्णु के अवतार समझे जाते थे। विद्यापति के ललित और पवित्र भावनाओं से पूर्ण पदों को गाकर वे इस प्रकार भाव में निमग्न हो जाते थे कि इन्हें मूर्छा सी आ जाती थी। " इसलिए बङ्गाल में विद्यापति का आश्चर्यजनक प्रचार हुआ।

श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म नदिया (बङ्गाल) में सम्वत् १५४२ (ई० सन् १४८५) में हुआ था और ४८ वर्ष की ही अवस्था में 'सम्वत् १५९०' में वे परम धाम को प्राप्त हुए। यह श्री वल्लभाचार्य के समसामयिक थे और उनसे मिले भी थे। २२ वर्ष की अवस्था में ये मध्वाचार्य के 'ब्रह्मसम्प्रदाय' में दीक्षित होगये, किन्तु इन्हें द्वैतवाद विशेष पसन्द नहीं आया, अतएव ये रुद्र और सनकादि सम्प्रदाय 'दर्शन वेदान्त और आधार श्रुति' से भी प्रभावित हुए। दार्शनिक दृष्टिकोण से मध्व के द्वैतवाद की अपेक्षा निम्बार्क के द्वैताद्वैत को अधिक महत्व दिया। इन्होंने भक्ति का दृष्टिकोण प्रायः भागवत पुराण से लिया है।

श्री चैतन्य बङ्ग देश में वैष्णव भक्ति के सब से बड़े प्रचारक हुए। इन्होंने जयदेव, लीलाशुक, चंडीदास, और विद्यापति के पदों का प्रयोग किया। गान और नृत्य के साथ सङ्कीर्तन को भी स्थान दिया। इनके उपदेशों के कारण बङ्गाल में एक धार्मिक क्रान्ति सी उत्पन्न हो गई। सदियों से शैव, शाक्त और तान्त्रिक विचार धाराओं से जकड़ी हुई बङ्गभूमि महाप्रभु के सात्विक जीवन और भक्तिपूर्ण उपदेशों के कारण राधा-कृष्ण की रागानुगिका भक्ति के रंग में रंग गई।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वैष्णव धर्म के एक विशिष्ट सम्प्रदाय की नींव डाली। यह सम्प्रदाय चैतन्य सम्प्रदाय या गौड़ीय वैष्णव समाज कहलाता है। दर्शन के क्षेत्र में इस सम्प्रदाय का सिद्धान्त अचिन्त्यभेदाभेद कहलाता है और उपासना के क्षेत्र में इस सम्प्रदाय द्वारा राधा कृष्ण की रागानुगा भक्ति का प्रचार किया जाता है। इस प्रकार "गौड़ीय सम्प्रदाय" दर्शन के क्षेत्र में मध्वाचार्य से और उपासना के क्षेत्र में निम्बार्काचार्य से प्रभावित है। चैतन्य सम्प्रदाय का मत अचिन्त्य भेदाभेदवाद है। इसके मतानुसार श्रीमद्भागवत ही वेदान्तसूत्र का भाष्य है। ऐसे भाष्य के रहते हुए भी चैतन्यदेव ने अन्य किसी भाष्य की आवश्यकता नहीं समझी। फिर भी यह श्री मध्वा भाष्य का श्रीमद्भागवत के अनुरूप आदर करते थे और उसे अपने सम्प्रदाय के भाष्य के रूप में स्वीकार करते थे।

श्री चैतन्य मत पर श्री मध्व, श्री निम्बार्क और श्री वल्लभ का प्रभाव पड़ा प्रतीत होता है। श्री वल्लभ का पुष्टिमार्ग साधन और गौड़ीय मत का मधुर भाव का साधन प्राय एक ही चीज है। भेदाभेदवाद श्री निम्बार्क के द्वैताद्वैतवाद के समान ही है। श्री निम्बार्क और श्री चैतन्य की अचिन्त्य शक्ति भी प्रायः एक ही वस्तु है। श्री मध्व के मत से ब्रह्म सगुण और सविशेष है। मध्व मतानुसार जीव अणु सेवक है और भगवान सेव्य हैं। भगवान के प्रसाद से ही जीव की मुक्ति होती है। इस विषय में श्री चैतन्य मत मध्व के मत से मेल खा जाता है। माध्व और गौड़ीय दोनों मत जगत को सत्य मानते हैं। दोनों मतों से जगत ब्रह्म का परिणाम है। ब्रह्म जगत का निमित्त और उपादान कारण है। मध्व मत से जीव और ब्रह्म चिरभिन्न हैं। गौड़ीय आचार्य श्री बलदेव * गुण और गुणीभाव से ब्रह्म और जीव को भिन्न और अभिन्न दोनों ही मानते हैं। साधन में इसका मध्व से पार्थक्य है। उपासना और भक्ति में दोनों मत एक हैं। मध्वमत में केवल सेव्य सेवक भाव की स्फूर्ति हुई है और इनके मत में दास्य के अतिरिक्त शान्त, सख्य, वात्सल्य और मधुर भाव को भी स्थान है। श्री शंकर, श्री रामानुज, श्री कंठ आदि आचार्यों के साथ भी बलदेव का कई स्थानों में विरोध है।

---

* गोविन्दभाष्य के रचयिता। गोविन्द भाष्य में श्री चैतन्य के उपदेश व विचार ग्रन्थ रूप में सम्पादित एवं एकत्र हैं।

श्री बल्देव के मत में पांच तत्व हैं। ईश्वर जीव, प्रकृति, काल और कर्म।०

इनके मतानुसार मुक्ति साध्य और भगवान् की कृपा से प्राप्त होने वाली है। मुक्तावस्था में भी जीव ब्रह्म से पृथक् रहता है। मुक्ति पुरुष को भगवत्सा निध्य प्राप्त होता है। जो जीव भगवान की उपासना तथा उनके तत्वज्ञान के द्वारा भगवद्धाम को प्राप्त होता है, उसका पुनरागमन नहीं होता। सर्वेश्वर हरि न तो स्वाधीन मुक्त जीव को अपने लोक में पतित करना चाहते हैं और न मुक्त पुरुष ही कभी भगवान को छोड़ना चाहते हैं।×

महाप्रभु ने राधा को प्रमुख स्थान दिया और मधुर भाव की रागानुगा भक्ति का प्रचार किया। इन्होंने राधा और कृष्ण को प्राधान्य देकर उन्हीं के चरित्रों में अपनी आत्मा को परिष्कृत करने का सिद्धान्त निर्धारित किया इनके अनुसार भक्ति पांच प्रकार की है।

१—शान्त ⋯ब्रह्म पर मनन।
२—दास्य ⋯सेवा।
३—सख्य ⋯मैत्री।
४—वात्सल्य ⋯स्नेह।
५—माधुर्य ⋯दाम्पत्य।

इस प्रकार बंगाल में इन्होंने वैष्णव धर्म का नया आकर्षक स्वरूप प्रस्तुत किया।

चैतन्य सम्प्रदाय की मधुरा भक्ति का प्रभाव ब्रज के वैष्णव सम्प्रदायों और उनके कवियों पर भी पड़ना स्वाभाविक था। इस सम्प्रदाय के आधुनिक ग्रन्थों में चैतन्य सम्प्रदाय के प्रभाव को स्वीकार किया गया है। 'सम्प्रदाय में इस प्रकार का भी वाद प्रचलित है कि प्रारम्भिक अवस्था में श्री 'विट्ठलनाथ जी' पर भी चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्त की कुछ छाप पड़ी, जिसके कारण सम्प्रदाय में श्री राधिका जी किंवा स्वामिनी जी की उपासना का भाव प्रचलित हो गया,

---

० हिन्दुत्व पृष्ठ ६८२।
× हिन्दुत्व पृष्ठ ६८३।

और इसी से एतद् विषयक स्तोत्रों का भी निर्माण हुआ। शृङ्गार रस मंडन नामक ग्रन्थ की शैली इसी प्रकार की है। तात्पर्य यह है कि इस सम्प्रदाय में जो कुछ भी स्वामिनी भाव की उपासना है, वह इस कारण है, (कांकरौली का इतिहास पृ० १७)

यहां यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि उपर्युक्त भक्ति दिग् वैष्णव आचार्यों द्वारा किये गये रसों के वर्गीकरण का प्रतिफल है। वैष्णव धर्म ने शान्त दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर (शृङ्गार) को मुख्य रस माना है और शेष 'हास्य, अद्‌भुत, वीर, भयानक, करुण, रौद्र, वीभत्स' को गौण। सब रसों का प्रेम या भक्ति का ही रूप कहा है, तथा भक्ति को उज्ज्वल रस कहा है।

वैष्णव भक्तों ने परकीया प्रेम को केवल एक मानसिक आध्यात्मिक अवस्था माना है। परन्तु गौडीय सम्प्रदाय वालों ने इसे विशेष महत्व दिया। इस सम्प्रदाय में परकीया भक्ति का समुन्नत रूप प्रतिष्ठित किया गया। ब्रज के कवियों ने राधा को स्वकीया माना है, किन्तु चैतन्य सम्प्रदाय में राधा को परकीया अथवा प्रेयसी स्वीकार किया गया है। परकीया में आत्म त्याग और लगन की मात्रा अधिक होती है, इसलिए उनके सिद्धान्तानुसार भगवान् की भक्ति परकीया भाव से ही करनी चाहिये।

गौडीय सम्प्रदाय में इसी प्रकार की भक्ति को "उज्ज्वल रस" कहा गया है। चैतन्य महाप्रभु के शिष्य और गौडीय सम्प्रदाय के विख्यात रस-शास्त्री रूप गोस्वामी ने इसी आदर्श पर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "उज्ज्वल नीलमणि" की रचना की है। उन्होंने रसराज श्रीकृष्ण के साथ रास विलास करने वाली भिन्न भिन्न प्रकृति का अनेक गोपियों का नायक भेद के अनुसार वर्गीकरण किया है। इस ग्रन्थ में १६१ प्रकार की गोपियों की नाना प्रकार की चेष्टाएं उनके भिन्न भिन्न स्वभाव रहन सहन और विविध वस्त्राभूषण का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं किसी सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना नहीं की।*

---

* हिन्दुत्व पृष्ठ ६७१।

उनके सहकारी भट्टाचार्य और नित्यानन्द का भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। किन्तु उनके शिष्य प्रशिष्यों ने संस्कृत और बंगला में प्रचुर मात्रा में धार्मिक साहित्य की रचना की।

इन विद्वान् शिष्यों में सनातन, रूप और उनके भतीजे जीव विशेष प्रसिद्ध हैं। सनातन स्वामी धुरन्धर पंडित थे। उन्होंने "वृहद् भागवतामृत" उन्होंने "वृहद् भागवतामृत" "वैष्णवतोषिणी" तथा हरिभक्ति विलास इन तीन उच्च कोटि के साम्प्रदायिक ग्रन्थों की रचना की। रूप स्वामी विद्वान्, कवि और वैष्णव रस शास्त्र के महान् व्याख्याता थे। उनकी मुख्य रचनाएँ हैं, "लघुभाग वतामृत" उज्ज्वल नीलमणि" तथा भक्तिरसामृतसिंधु। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक रचनाएँ हैं "उज्ज्वल नीलमणि" तथा "भक्तिरसामृत सिंधु" वैष्णव रस शास्त्र की सर्वमान्य कृतियां हैं।

जीव गोस्वामी भी उच्च कोटि के विद्वान थे। इन्होंने चैतन्य सम्प्रदाय के सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना की है। भागवत का भाष्य "षट् संदर्भ" जो चैतन्य सम्प्रदाय का प्रमुख सिद्धान्त ग्रन्थ है, इन्हीं जीव गोस्वामी की रचना है। उक्त रचनाएँ संस्कृत में हैं। बाद में बंगाली में भी इस सम्प्रदाय का अपार साहित्य निर्मित हुआ।

गौड़ीय सम्प्रदाय के मतावलम्बियों ने ब्रजमंडल में अपने केन्द्र स्थापित किये और ब्रज भाषा के प्रचुर साहित्य को अपनी विचारधारा द्वारा प्रभावित किया। रस सम्प्रदाय के कवियों के ब्रजभाषा में स्वयं प्रचुर काव्य रचना की है, इस सम्प्रदाय में जिन कवियों ने ब्रजभाषा के प्रचुर साहित्य की रचना की है, उनमें श्री गदाधर भट्ट, सूरदास मदनमोहन, माधुरीदास, ललित किशोरी और ललित माधुरी मुख्य हैं।

इस प्रकार वैष्णव एवं गौड़ीय भक्तिकाव्य ने राधाकृष्ण की रागानुगा भक्ति का प्रचार कर उनके मधुर स्वरूप को उपस्थित किया और काव्य में उनके प्रेम तत्व की पूर्ण प्रतिष्ठा की। जयदेव के गीतगोविन्द, चंडीदास के भजन तथा विद्यापति की पदावली के प्रचार के कारण माधुर्य भाव के दाम्पत्य प्रेम ने क्रमशः लौकिक प्रेम का स्वरूप धारण किया। वासना का समावेश

स्वाभाविक ही था। गौड़ीय काव्य ने कृष्ण काव्य को प्रभावित किया और कृष्ण काव्य ने राम काव्य पर अपना रंग चढ़ा दिया। फलस्वरूप गोस्वामी तुलसीदास जी जैसे मर्यादा के उपासक भक्त सन्त कवि को भी राम के विहार एवं रास रंग के वर्णन करने पड़े। गीतावली के "उत्तर कांड" में यह प्रभाव स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। यथा—

भोर जानकी जीवन जागे।

× × × ×

स्यामल सलोनेगात, आलसवस जंभात प्रिया प्रेमरस पागे।
घर्नीदे लोचन चारु, मुख सुखमा सिंगार हेरि हारे मार भूरि भागे।

× × × ×

तुलसीदास निसिबासर अनूपरुप रहत प्रेमाभानुरागे॥

आगे "हिंडोला वर्णन", "फाग वर्णन", आदि अनेक स्थलों पर इस प्रकार के वर्णन हैं। यहाँ राम केवल रसिक राम हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम राम नहीं। देखिये—

खेलत बसन्त राजाधिराज, देखत नभ कौतुक सुर समाज।

× × × ×

घत जुवति जूथ जानकी संग, पहिरे पटभूषन सरस रंग।

× × × ×

लोचन आंजहिं फगुआ मनाइ, छांड़हिं नचाइ हाहा कराई।
इत्यादि।

× × × ×

मीराबाई—मैथिल कोकिल विद्यापति के साथ ही राजस्थान में हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध भक्त और कवयित्री मीराबाई का उदय हुआ। यह मेड़तिया के राठौर रत्नसेन की पुत्री थीं। इनका जन्म संवत् १५०० के आसपास माना जाता है। इनका जन्म चौकड़ी नाम के एक गाँव में हुआ था और इनका विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराज जी के साथ हुआ था। यह आरम्भ से ही कृष्ण भक्ति में लीन रहा करती थीं। विवाह के थोड़े ही दिनों बाद इनके

पतिदेव का स्वर्गवास हो गया। इनकी भक्ति भावना दिन पर दिन बढ़ती गई। यह प्राय: मन्दिरों में जाकर भगवान की मूर्ति के सामने आनन्द मग्न होकर नाचती गाती थीं। इनके घर वालों ने इसे राजकुल विरुद्ध आचरण समझ कर इनसे ऐसा करने को पहिले तो मना किया और बाद में इन्हें भाँति भाँति से तंग किया। कहते हैं कि एक बार विष तक दिया गया, परन्तु भगवत्कृपा से इनके ऊपर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

घरवालों के दुर्व्यवहार से ऊब कर यह घर से निकल गईं और वृन्दावन और द्वारका के मन्दिरों में घूमघूम कर भजन सुनाने लगीं।

मीराबाई का नाम भारत के प्रधान भक्तों में है। इनके बनाए हुए पद राजस्थान मिश्रित भाषा में हैं। कुछ विशुद्ध ब्रजभाषा में भी हैं। इन सब में प्रेम की तल्लीनता पाई जाती है। इनके बनाए हुए चार ग्रन्थ कहे जाते हैं। नरसी जी की मायरा, गीत-गोविन्द टीका, राग गोविन्द तथा राग सोरठ के पद। ग्रन्थों की प्रामाणिकता संदिग्ध है।

मीराबाई की उपासना माधुर्य भाव की थी और इन पर सूफ़ी ढंग की उपासना का संस्कार पड़ा था। इन्होंने अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की भावना प्रियतम अथवा पतिरूप में की थी। इस भावना में रहस्य का समावेश अनिवार्य था। जब लोग इन्हें खुले मैदान मन्दिरों में पुरुषों के सामने आने से मना करते तब यह स्पष्ट कह देती थीं कि कृष्ण के अतिरिक्त और पुरुष है कौन? जिसके सामने मैं लज्जा करूं।

उनके काव्य की प्रधान प्रेरणा उनकी माधुर्य अनुभूति है। प्रेमावेश के विह्वल क्षणों में मीरा की जो चरम अनुभूतियाँ घुंघरू की झनकार के साथ संगीत की लय बन कर बिखर गई हैं वही उनकी कविता है। मीरा के काव्य में माधुर्य भाव की प्रधानता है। उनके कृष्ण सौन्दर्य की निधि तथा साकार माधुर्य हैं। कृष्ण के प्रति उनकी भावनाएँ नारी के प्रति पुरुष के प्रति दृष्टिकोण की प्रतीक हैं। मीरा का प्रेम नारी हृदय का प्रेम है जो कृष्ण के समान अपार्थिव आलम्बन के आश्रय में निखर कर नैसर्गिक हो गया है।

काव्यशास्त्र में जो तत्व शृङ्गार रस की सृष्टि के लिये आवश्यक हैं भक्ति-

शास्त्र में वही मधुर रस के लिये। अन्तर केवल इतना है कि श्रृंगार का आलम्बन मानव होता है और मधुर रस का आलम्बन भगवान होता है। माधुर्य भक्ति को दूसरे शब्दों में अपार्थिव श्रृंगार कहा जा सकता है परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से श्रृंगार तथा मधुर भाव में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। अपार्थिव श्रृंगार को उज्ज्वल रस कहा गया है।

माधुर्य मीरा के काव्य का प्राण है। उनके प्रेम का आरम्भ गिरधर के अनुपम सौन्दर्य के आकर्षण से होता है। इस रूप राग की अभिव्यक्ति अनेक पदों में मिलती है। उनके नेत्र कृष्ण ही कृष्ण के रूप से उलझ गये हैं। उनके मंद मुसकान मदभरी चितवन तथा वंशी की तान के प्रति उनका हृदय क्षुब्ध है।

या मोहन के मैं रूप लुभानी।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन बाँकी चितवन मंद मुस्कानी।
जमना के नीरे तीरे धेनु चरावै बंसी में गावै मीठी बानी।
तन मन धन गिरधर पर वारू चरण कवल मीरा लपटानी॥

मोहन के रूप का यह आकर्षण आसक्ति में परिणित हो जाता है। रूपनिधि कृष्ण के जिस सौन्दर्य ने उनको मुग्ध कर लिया है उसको एक बार देखने को उनके नेत्र व्याकुल रहते हैं उनके हृदय में कृष्ण की माधुरी मूर्ति बस गई है।

आली रे मेरे नेणा बाण पड़ी।
चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरति उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाढ़ी पंथ निहारू अपने भवन खड़ी।
कैसे प्राण पिया बिनु राखू जीवन मूल जड़ी।

अपार्थिव आलम्बन अप्राप्य अथवा मनोस्थित होता है। इसलिए उसके प्रति भावनाओं में अतृप्ति रहती है, जिसके अन्तर्गत साधक आत्म समर्पण द्वारा मिलन सुख की अनुभूति प्राप्त करके प्रेममयी अवस्था में आनन्द विभोर हो जाता है। मीरा की प्रेमासक्ति ऐसी ही थी और हमें उसके दो स्पष्ट स्वरूप मिलते हैं। विरहानुभूति और मिलन सुख। विरह उनकी साधना है और मिलन ध्येय।

दोनों उनके जीवन की प्रत्यक्षानुभूतियाँ । दोनों ही पदों में चित्रण बड़े ही सजीव तथा श्रेष्ठ हैं ।

मीरा की विरहानुभूतियाँ—मीरा के काव्य की सफलता उनकी तीव्र विरहात्मक स्वभावोक्तियों में निहित है ।

सखी मेरी नींद नसानी हो
पिया को पंथ निहारत सब रैन बिहानी हो ।

उनकी विरह उक्तियों में उनकी अतृप्त आकाँक्षायें व्यक्त हैं, पर इस पिपासा में मन की पीर बाहर निकल पड़ी है ।

पाना ज्यूं पीली पड़ी रे लोग कहें पिंड रोग
छाने लाँघन मैं किया रे राम मिलन के जोग ।
बाबुल वैद बुलाइया रे पकड़ दिखाई म्हारी बाँह
मूरख वैद मरम नहीं जाने करक करेजे माँह ॥

इन उक्तियों में वासना का लेशमात्र भी नहीं है, सब का एक ही समाधान है, प्रियतम से मिलन । मीरा की उक्तियों में नारी हृदय की सरल स्वाभाविक अभिव्यंजना है ।

राम मिलन के काज सखी मेरे आरती उर में लागी रे ।
तलफत तलफत कल न परत है बिरह बाण उर लागी रे ॥
बिरह पिया लागी उर अन्तर सो तुम आय बुझावो हो ।
अब छोड़त नहीं बने प्रभु जी हँसि कर तुरत बुलावो हो ॥
मीरा दासी जनम जनम की अंग से अंग लगावो हो ।

कृष्ण के प्रति मीरा का प्रेम स्वकीया प्रेम है । उनके आलम्बन प्रेम के अवतार मनभायक हैं । कृष्ण की अपार्थिव सत्ता के समक्ष उन्होंने अपने हृदय की सारी अनुभूतियाँ बिखेर दीं थीं । मीरा के प्रेम में पत्नी के विशुद्ध रूप का आभास मिलता है । उनकी भावनाओं में परकीया की सी तीव्रता तथा उत्कटता अवश्य है पर उसमें मद नहीं स्निग्धता है । एक प्रसिद्ध आलोचक के शब्दों में परकीया उप पति तक प्रेम में अपने व्यक्तित्व को औटा कर खोये के समान कर देती है, इस प्रकार उसके प्रेम में रस तो अवश्य अधिक हो जाता है परन्तु वह अवगुण

करता है। इसके विपरीत स्वकीया का प्रेम दूध की तरह सात्विक तथा आमप्रद होता है। मीरा का प्रेम भी ऐसा ही सात्विक और शोधक है। उसमें एक साध्य के विनय, संकोच एवं समर्पण पूर्ण स्नेह व्यक्त हैं।

मीरा के प्रभु हरि अविनासी मेरी भई बिन मोल।

अथवा

दासी मीरा लाल गिरधर चरण कमल पै सीर॥

विद्यापति और मीरा के पश्चात् भक्तिकाल (सम्वत् १३७२ से सम्वत् १७०० तक) में कृष्ण सम्बन्धी विपुल साहित्य का सृजन हुआ। कृष्ण काव्य की एक अखण्ड परम्परा ही चल पड़ी। रीतिकाल में लौकिक शृङ्गार का कर्दम मिल जाने से यह कुछ मलिन सा हो गया।

भक्तिकाल के अन्तर्गत कृष्ण काव्य के रचयिताओं में अष्टछाप के कवियों का विशेष महत्व है। इनके नाम इस प्रकार हैं। सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी तथा गोविन्दस्वामी। इनमें प्रथम चार श्री वल्लभाचार्य के सेवक थे और अन्तिम चार उनके पुत्र तथा उत्तराधिकारी गुसाईं विट्ठलनाथ के सेवक थे। इनके वर्णन क्रमशः ८४ वैष्णवन की वार्ता तथा २५२ वैष्णवन की वार्ता शीर्षक ग्रन्थों में मिलते हैं। कहा जाता है कि गुसाईं विट्ठलनाथ ने अपने तथा अपने पिता के इन चार-चार प्रमुख सेवकों को लेकर "अष्टछाप" नाम दिया था।

कृष्ण काव्य के महत्वपूर्ण कवि पुंगवों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

अष्टछाप

ये आठों कविगण वल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टि मार्ग में दीक्षित हुए थे।

(१) सूरदास—इनका जन्म काल संवत् १५४० तथा निधन समय संवत् १६२० के आसपास ठहरता है। पहिले यह गऊ घाट पर रहते थे। बाद में गोवर्द्धन आकर रहने लगे थे। संवत् १५८० के आसपास यह वल्लभाचार्य जी के शिष्य हुए थे।

सूरदास का प्रधान ग्रन्थ सूरसागर है। खोज करने पर उनके नाम से अन्य ग्रन्थ भी मिले हैं। यथा—

१—गोवर्द्धनलीला बड़ी, २—दशमस्कंध टीका, ३—नागलीला, ४—पद संग्रह, ५—प्राणप्यारी, ६—व्याहलो, ७—भागवत, ८—सूरपचीसी, ९—सूर सागर सार, १०—एकादशी माहात्म्य, ११—राम जन्म तथा १२—साहित्य लहरी।

इनके पदों में कृष्ण की लीलाओं का गुणगान और भक्त हृदय का निवेदन है। इन पर विद्यापति के शृंगार और कबीर की वाणियों का भी यथास्थान प्रभाव परिलक्षित होता है। विद्यापति के—

"अनुखन माधव माधव सुमिरइत सुन्दरि केलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल अपने गुन लुबधाई॥

आदि वाले पद का भाव सूर के निम्नलिखित पद में ज्यों का त्यों मिलता है।

सुनो स्याम यह बात और कोउ क्यों समुझाय कहै।
दुहुं दिसि कीरति बिरह बिरहनी कैसे के जो सहै॥
जब राधे तब ही मुख "माधो माधो" रटत रहै।
जब माधो ह्वै जाति, सकल तनु राधा बिरह दहै॥
उभय अम दव दारुकीट ज्यों सीतलताहि चहै।
सूरदास अति बिकल बिरहिनी कैसेहु सुख न लहै॥
—"सूरसागर पृष्ठ ५६४ वेंकटेश्वर"

(२) नन्ददास—यह सूरदास के समकालीन और गोस्वामी तुलसीदास के गुरु भाई थे। इनका जीवन वृत्त अज्ञात सा है। इनकी कविता के बारे में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है ' और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया।" "इनका बनाया हुआ मुख्य ग्रन्थ" रासपंचाध्यायी है। इसके अतिरिक्त इनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं।

भागवत दशमस्कंध, रुक्मिणी मंगल, सिद्धान्त पंचाध्यायी, रूप मञ्जरी, रस मञ्जरी, मान मञ्जरी, नाम चिन्तामणिमाला, अनेकार्थनाम माला, दान लीला, मान लीला, अनेकार्थ मंजरी, ज्ञान मञ्जरी, स्याम सगाई, भ्रमरगीत और सुदामाचरित।

(३) कृष्णदास—यह शूद्र थे और श्री वल्लभाचार्य के प्रिय शिष्यों में से थे। इन्होंने राधा कृष्ण के प्रेम को लेकर शृङ्गार रस के पद गाये थे। "जुगल मानचरित्र' नामक इनका एक छोटा सा ग्रन्थ मिलता है।

(४) परमानन्ददास—ये संवत् १६०६ के आसपास विद्यमान थे तथा

वल्लभाचार्य जी के शिष्यों में थे। इनके लगभग ८४० फुटकल पद मिलते हैं, जो परमानन्द सागर में संगृहीत हैं।

(५) कुम्भनदास—यह परमानन्द के समकालीन थे। इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, केवल कुछ फुटकल पद मिलते हैं। विषय वही कृष्ण की बाल लीला और प्रेम लीला वर्णन है।

तुम नीके दुहि जानत गैया।
चलिए कुँवर रसिक मनमोहन लगौं तिहारे पैयाँ।
तुमहिं जानि करि कनक दोहनी घर तें पठई मैया॥
निकटहिं है यह खरिक हमारौ, नागर लेहुँ बलैया।
देखियत परम सुदेस लरिकई चित चहुँट्यो सुधरैया॥
कुंभनदास मानि लई रति गिरि गोबरधन रैया॥

(६) चतुर्भुजदास—यह भी कुंभनदास के पुत्र तथा गोसाईं विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनके बनाये हुए तीन ग्रन्थ मिलते हैं। द्वादशयश, भक्ति प्रताप, और हितजू को मंगल।

(७) छीतस्वामी—इनका रचना काल सम्वत् १६१२ के आसपास था रहा है। इनके कुछ फुटकल पद इधर उधर लोगों के पास संगृहीत पाए जाते हैं। इनके पदों में शृङ्गार वर्णन के साथ व्रजभूमि के प्रति प्रेम व्यंजना पाई जाती है।

(८) गोविन्द स्वामी—इनका रचना काल संवत् १६०० और १६२५ के बीच माना जाता है। यह गोवर्द्धन पर्वत पर रहा करते थे और उसके पास ही इन्होंने कदंबों का एक अच्छा उपवन लगवाया था, जो अब तक "गोविन्दस्वामी की कदंब खण्डी" कहलाता है।

यहाँ पर यह कहा देना अप्रासंगिक न होगा कि गोस्वामी तुलसीदास पर जिस तरह कृष्ण काव्य के शृङ्गार का प्रभाव पड़ा, उसी प्रकार उनके ऊपर वल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टिमार्ग की भी छाया पड़ी थी। उनकी रामायण में दो तीन स्थलों पर पुष्टि मार्ग की स्पष्ट छाप है।

अन्य कवि--

(१) हित हरिवंश—इनका जन्म सम्वत् १५५९ में हुआ था, तथा इनका रचना काल सम्वत् १६०० से सम्वत् १६४० तक माना जा सकता है।

कहते हैं कि यह पहिले माध्वानुयायी गोपाल भट्ट के शिष्य थे। पीछे इन्हें स्वप्न में राधिका जी ने मन्त्र दिया और इन्होंने एक पृथक् राधावल्लभी सम्प्रदाय चलाया। इनके पदों का संग्रह "हित चौरासी" के नाम से प्रसिद्ध है।

(२) गदाधर भट्ट—यह दक्षिणी ब्राह्मण थे। इनके जीवन वृत्त के बारे में ठीक-ठीक पता नहीं है। यह महाप्रभु चैतन्य के शिष्य थे। इनके पद सुन्दर और सरस होने के अतिरिक्त संस्कृत गर्भित हैं।

(३) स्वामी हरिदास—इनका कविता काल सम्वत् १६०० से १६१७ तक ठहरता है। यह वृन्दावन में निम्बार्क मतांतगत टट्टी सम्प्रदाय के संस्थापक थे। इनके पद राग रागनियों में गाने योग्य हैं इनके पदों के संग्रह "हरिदासजी के ग्रन्थ" स्वामी हरिदास जी के पद, "हरिदास जी की बानी" आदि नामों से मिलते हैं।

(४) सूरदास मदनमोहन—इनका रचना काल संवत् १५९० और संवत् १६०० के बीच अनुमान किया जाता है। यह गौड़ीय सम्प्रदाय के वैष्णव थे।

(५) श्री भट्ट—इनका कविता काल सम्वत् १६२५ के आसपास अनुमान किया जा सकता है। यह निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान् केशव काश्मीरी के प्रधान शिष्य थे। इनके १०० पदों का "युगल शतक" नाम का एक संग्रह मिलता है, जिसका भक्तजन बहुत आदर करते हैं।

(६) व्यास जी—इनका समय सम्वत् १६२० के आसपास है। पहिले यह गौड़ सम्प्रदाय के वैष्णव थे, पीछे हितहरिवंश जी के शिष्य होकर राधावल्लभी हो गये थे। इनकी रचना परिमाण में बहुत विस्तृत है और विषय भेद के विचार से भी अधिकांश कृष्ण भक्तों की अपेक्षा व्यापक है।

(७) रसखान—यह दिल्ली के एक पठान सरदार थे तथा दो सौ बावन वैष्णव की वार्त्ता में इनका वृत्तान्त आया है। इनका रचना काल सम्वत् १६२०

के आसपास ठहरता है। इनके कृष्ण प्रेम सम्बन्धी कवित्त सवैये लोक प्रसिद्ध हैं।

(८) ध्रुवदास -इनका जीवन वृत्त अज्ञात है। केवल इतना ही विदित है कि यह राधावल्लभी सम्प्रदाय के थे और स्वप्न में श्री हितहरिवंश के शिष्य हुए थे। छोटे मोटे सब मिलाकर इनके ४० ग्रन्थ के लगभग मिलते हैं।

वैष्णव सम्प्रदायों में दीक्षित कृष्णोपासक भक्त कवियों की परम्परा यहीं समाप्त की जाती है। इनके अतिरिक्त भक्त कवियों नागरीदास, अलबेली अलि, चाचा हित वृन्दावनदास, भगवत् रसिक, देव, पद्माकर, बिहारी, घनानन्द, मतिराम आदि ने भी कृष्ण भक्ति विषयक काव्य की सुधाधार बहाई है। इनके प्रभाव से हमारे हिन्दी साहित्य में बराबर सरसता और मधुरता बनी रहेगी।

तृतीय अध्याय

हिन्दी के शृङ्गार साहित्य में स्वतन्त्र विकास

(अ) नायिका भेद कथन
(ब) शृङ्गार रस निरूपण

नायिका भेद कथन

शृङ्गार रस के आलम्बन नायक और नायिका होते हैं। अतः शृङ्गार रस के आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायिका भेद काव्यशास्त्र का एक उपांग ठहरता है।

हिन्दी के रीति ग्रन्थ-कर्त्ता भावुक, सहृदय और कुशल कलाकार थे। उन्होंने काव्यशास्त्र के इस उपांग मात्र के वर्णन में अपनी पूरी शक्ति और सम्पूर्ण प्रतिभा लगा दी। ब्रजभाषा के कवियों द्वारा वर्णित नायिका भेद अत्यन्त मार्मिक, विशद, और मनोवैज्ञानिक है।

नायिका भेद की परम्परा—हिन्दी के कवियों को नायिका भेद की परम्परा संस्कृत साहित्य से मिली थी। इस विषय की मूल सामग्री इन्होंने यहीं से प्राप्त की है।

नायिका भेद की परम्परा काव्यशास्त्र की परम्परा के साथ ही प्रारम्भ होती है। इस विषय का सर्व प्रथम वर्णन भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। नाट्यशास्त्र अभिनय सम्बन्धी ग्रन्थ है। और उसमें नायक नायिकाओं का वर्णन अभिनय के सम्बन्ध से ही हुआ है। ०

भरतमुनि आभ्यान्तर और बाह्यकामोपचारों का वर्णन करके स्वकीया और

---

० एवं कामयमानानां स्त्रीणां नृणामयपि वा।
सामान्यगुणयोगेन युञ्जीताभिनयं बुधः॥
"चतुर्थविंशोऽध्याय श्लोक स० १८४"

अर्थात् इस प्रकार से कामासक्त स्त्री या पुरुषों का उनके सामान्य गुणों के सम्बन्ध में अभिनय योजना करनी चाहिए।

परकीया स्त्रियों के भेद को स्पष्ट किया * तथा काम की मनोवैज्ञानिक स्थिति के अनुसार स्वाधीनपति का आदि अष्ट नायिकाओं का लक्षणों सहित वर्णन किया है।

> तत्र वासकसज्जा वा विरहोत्कण्ठितापि वा
> स्वाधीनपतिका वापि कलहान्तरितापि वा
> खण्डिता विप्रलब्धा वा तथा प्रोषितभर्तृका
> तथाभि सारिका चैव इत्यष्टो नायिका स्मृताः
>
> "अध्याय २४, श्लोक स० २०३, २०४ २०५"

अवस्था के अनुसार आठ प्रकार की नायकाएँ बताई गई हैं। वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता स्वाधीनपतिका, कलहान्तरिता, खंडिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका तथा अभिसारिका।

इस वर्णन के पश्चात् ग्रन्थकार ने लिखा है कि—

> आस्ववस्थासु विज्ञेया नायका नाटकाश्रया
> एतासां ये च यच वक्ष्यामि कामतन्त्र मनेकधा
>
> "अध्याय २४ श्लोक सं० २११"

अर्थात् इन अवस्थाओं में नायिका को नाटक से आश्रित समझना चाहिए। इनकी कामाधीनता अनेक प्रकार की होती है।

१—अभिनय के विचार से नायिकाओं के कुल श्री, वेश्या और प्रेष्या करके तीन भेद किए गए हैं। यथा—

> वेश्याया कुलजा यां वा प्रेष्यायां वा प्रयोक्तृभि
> एभिर्भाव विशेषैस्तु कर्तव्यमभि सारणम्।
>
> "अध्याय २४ श्लोक स० २१८"

> * परिपाट्या कलाये वा न च प्रमद एव च
> दुःख चैव प्रमादे च यहेते वासका स्मृता
> उचिते वासक स्त्रीणामृतुकालेऽपि वा नृप
> वेश्यानामपि कर्तव्यमिष्टानां योगसमर्पणम्
>
> "अध्याय २४ श्लोक सं० २०१"

अर्थात् अभिनय के प्रयोग करने वालों को वेश्या कुलजा और प्रेष्या को भाव विशेषों से अभिसरण कराना चाहिए।

आगे चलकर प्रेष्या के भेद किए हैं। ऽ यथा महादेवी, देवी, स्वामिनी, स्थायिनी, भोगिनी, शिल्पकारी, नाटकीया, नर्तकी, अनुचारिका, आयुक्ता, परिचारिका संचारिणी, प्रेषणकारिका, महत्तरा, प्रतिहारी, कुमारी, अनुरक्ता तथा विरक्ता।

१—प्रकृति के विचार से नायिकाओं के तीन भेद किए हैं। उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा। ॐ

विशेष—यदि इन प्रेष्या के १७ उपभेदों को जोड़ दें, तो नाट्य शास्त्रकार मतानुसार नायिकाओं के कुल ८ × ३ × ३ = ७२ भेद ठहरते हैं।

नाट्यशास्त्र के पश्चात् व्यासदेव कृत "अग्निपुराण" में इस विषय का उल्लेख मिलता है। "अग्निपुराण" में शृङ्गार रस के महत्व की चर्चा है। इसलिए उसमें नायिका भेद का भी थोड़ा सा वर्णन कर दिया गया है।

संस्कृत साहित्य में भरत और व्यास के अनन्तर दशवीं शताब्दी के उपरांत निर्मित ग्रन्थों में ही नायिका भेद का उल्लेख मिलता है। यह वह समय है जब

ऽ अध्याय २५, श्लोक संख्या ३ १० तथा १८

ॐ नानाकृतानेकवस्त्रा न राग मधरस्यतु
उत्तमा मध्यमा वापि प्रकुर्यात् प्रमदास्वाथित,
अधमानां भवत्येषं विधिः प्रकृति सम्भवः
तासामपि ह्यसम्यं यथाधारकार्ये प्रयोक्तृभिः
"अध्याय २४ श्लोक सं० २३३, २३४"

अर्थात् कहीं-कहीं पर प्रमदाओं के उत्तमा और मध्यमा भेद करना चाहिए। इसी तरह से अधमा भी। इस प्रकार की विधि प्रवृत्ति से उत्पन्न है। इसी बात को अगले अध्याय में फिर कहा है—

सर्वासामेव नारीणां त्रिविधा प्रकृतिर्मता
उत्तमा मध्यमा नीचा वेश्यानां तु निबोधत।
"अध्याय २५, श्लोक सं० ३६"

कि आचार्यों ने काव्य के समस्त अङ्गों पर विस्तृत रूप से विचार करना प्रारम्भ कर दिया था। रुद्रट, धनञ्जय, भोज, मम्मट, रूय्यक भानुदत्त, मम्मट द्वितीय, विश्वनाथ, केशवमिश्र आदि आचार्यों के ग्रन्थों में नायिका भेद की चर्चा मिलती है। इनमें धनंजय कृत "दश रूपक" भानुदत्त "रस मञ्जरी" और विश्वनाथ कृत "साहित्य दर्पण" इस विषय के मुख्य ग्रन्थ हैं। इनमें नायिका भेद पर विशेष रूप से लिखा गया है।

दशरूपक—धनञ्जय का समय विक्रम की ग्यारहवीं सदी है। भरतमुनि के शताब्दियों पश्चात् सर्व प्रथम इन्होंने ही इस विषय का विस्तार सहित वर्णन किया है

भरतमुनि ने नायिकाओं का वर्णन अभिनय के सम्बन्ध से किया है। यही आदर्श-धनञ्जय का भी है। इन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "दशरूपक" में भरतमुनि कृत स्वाधीनपतिका आदि अष्ट नायिकाओं के अतिरिक्त नायिका के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा तथा उनके उपभेदों का भी वर्णन किया है।

१—नायक के साथ सम्बन्ध के आधार पर नायिका के तीन भेद होते हैं, स्वकीया, अन्यकी "परकीया" और साधारण स्त्री "सामान्य"।

स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिकात्रिधा

—"द्वितीय प्रकाश श्लोक सं० १५"

स्वकीया के तीन भेद हैं। मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा।

मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादि युक् ॥

—' द्वितीय प्रकाश श्लोक स० १५"

अर्थात् शील आर्जवादि गुणों से युक्त स्वकीया के तीन भेद हैं मुग्धा और प्रगल्भा।*

आगे चलकर इन तीनों को निम्न प्रकार से उपभेद किए हैं।

(अ) मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदु क्रुधि

—"श्लोक सं० १६"

---

* शील सुवृत्तम्, पतिव्रता अकुटिला लज्जावती पुरुषोपचारनिपुणा स्वीया नायिका।

अर्थात् मुग्धा के चार भेद हैं, वयो मुग्धा, काम मुग्धा, रतिवामा तथा कोपमृदु।

(ब) यौवनवती और कामवती कर के मध्या के दो भेद किए हैं।

मध्योद्यद्यौवनानंगामोहान्तसुरतक्षमा —"श्लोक सं० १६"

फिर अपने क्रोध को वश में रखने की शक्ति के अनुसार मध्या के मध्याधीरा, मध्याधीरा धीरा तथा मध्याअधीरा, तीन भेद किये हैं।

धीरासोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्या साश्रुकृतागसम्
खेदयेद्दयितं कोपादधीरा परुषाक्षरम्।—"२ श्लोक सं० १७"

(स) प्रगल्भा स्त्री पूर्णतया अनुभवी होती है तथा उसमें न्यूनतम सकोच होता है। इसके तीन भेद होते हैं। गाढ़ यौवना, भाव प्रगल्भा तथा रतप्रगल्भा।

यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयितांग के
विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्य चेतना —"२, श्लोक सं०१८"

कोप पर वश रखने के अनुसार मध्या के समान प्रगल्भा के भी धीरा, धीरा धीरा और अधीरा कर के तीन भेद किये गए हैं।

सावहित्यादरोदास्ते रतौ, धीरेतरा क्रुधा
संतर्ज्य ताडयेत् मध्या मध्याधीरेवतं वदेत।—"२श्लोक सं० १६"

फिर पति के प्रति न्यूनाधिक प्रीति के आधार पर मध्या तथा प्रगल्भा के ज्येष्ठा और कनिष्ठ करके दो, दो भेद किए हैं।

द्वेधा ज्येष्ठा कनिष्ठा चेत्य मुग्धा द्वादशोदिता ।
—"२, श्लोक सं० २०"

मध्याप्रगल्भा भेदानां प्रत्येकं ज्येष्ठाकनिष्ठा
रूपभेदेन द्वादश् भेदा भवन्ति मुग्धा स्येक रूपवे।

अर्थात् मध्या और प्रगल्भा के भेदों में से १२ भेद हुए, मुग्धा का एक ही रूप होता है।

द—अन्य स्त्री अथवा परकीया नायिका के दो भेद माने हैं, कन्या (अनूढ़ा) जिसका विवाह न हुआ हो तथा ऊढ़ा जो अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से प्रीति करती हो। यथा—

अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढा ऽगिरसेक्वचित्
कन्यानुरागमिच्छात' कुर्यादगंगिसंश्रयम् ।
—"२ श्लोक सं० २०"

च—गणिका अथवा सामान्या का लक्षण इस प्रकार दिया है।

साधारणस्त्री गणिका कलाप्रगल्भ्यधौर्त्ययुक् ।
—"२ श्लोक सं० २१"

२—अवस्था अनुसार "धनंजय" ने स्वाधीनपतिका आदि आठ नायिकाएं लिखी हैं। यथा—

आसामष्टावऽवस्था' स्यु स्वाधीनपतिकादिका'
—"२. श्लोक सं० २३"

स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका, अभिसारिकेत्यष्टौ स्वकीयाप्रभृतीनाम् अवस्था।

उक्त नायिकाओं के लक्षण देकर "दशरूपककार" ने उपसंहार रूप कहा है "चिन्ता, निश्वास, श्रम, स्वेद, वैवर्ण्य, ग्लानि, भूषणाभाव से युक्त अन्तवाली छः रहती हैं। पहिली दो "स्वाधीनपतिका तथा वासकसज्जा" क्रीडा और औज्ज्वल्य से युक्त रहती है। यथा—

चिन्तानि श्वाससेदाश्रुवैवर्ण्यग्लान्य भूषणै
युक्ता' षडन्त्या द्वे चाद्ये क्रीडौज्ज्वल्य प्रहर्षिते'
—"२ श्लोक सं० २८"

विशेष—दशरूपककार के मतानुसार, स्वकीया के १४, परकीया के २ तथा सामान्या का १, इस प्रकार कुल १७ भेद होते हैं। अवस्थानुसार यदि प्रत्येक के ८ उपभेद माने जाएं तो नायिका भेदों की कुल संख्या १७×८=१३६ ठहरती है। फिर आगे चल कर दूती आदि का सविस्तार वर्णन किया गया है। ॐ

ॐ दूत्यो दासी सखी कारूर्धात्रेयी प्रतिवेशिका
लिंगिनी शिल्पिनी स्वं च नेतृमित्रगुणान्विता'
—"२ श्लोक सं० २९"

रसमंजरी—रसमंजरी के रचयिता भानुदत्त का समय १६ वीं सदी के अन्त और १७ वीं सदी के प्रारम्भ के बीच का है। भानुदत्त संस्कृत-साहित्य में नायिका भेद के सर्वप्रधान विवेचन कर्ता हैं।

स्वरूपज्ञान (यौवन, रति और लज्जा) के अनुसार नायिका के तीन भेद, स्वकीया, परकीया तथा सामान्या।

स्वरूपज्ञानायोद्दिशम् विभजते
सा च त्रिविधा स्वीया, परकीया, सामान्या चेति।
—"पृ० सं० ५"

विशेष—धनञ्जय के आधारों पर इन्होंने भी स्वकीया में शील, मार्जवादि आठ गुण माने हैं।

स्त्रीया ऊर्जवादियुक् इति धनञ्जयोक्तारतन्मन्दिर्योपति।
अस्यारचेष्टा भर्तुः शुश्रूषा शीलसंरक्षणमार्जवं क्षमा चेति॥
—"पृ० सं० ५"

१—लज्जा तथा रति की इच्छा के अनुसार :—

मुग्धाया लज्जाप्राधान्येनु मध्याया
लज्जा मदन साम्येन, प्रगल्भाया प्राकाश्य प्राधान्येन
—"पृ० सं० १४५"

स्वकीया के तीन भेद किए हैं, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा।

स्वीयां विभजते
स्वीया तु त्रिविधा, मुग्धा, मध्या प्रगल्भा चेमि
—"पृ० सं० ७"

अ—मुग्धा के भेद १—यौवन के विचार से दो भेद। अज्ञातयौवना तथा ज्ञात यौवना यथा—

मुग्धां विभजते
सा चाज्ञातयौवना, ज्ञातयौवना च।
—"पृ० सं० ७"

२—व्यापार क्रम के विचार से दो भेद नवोढा तथा विश्रब्ध नवोढा। यथा—

मुग्धाया व्यापार निबन्धनं भेदं दर्शयन्नुक्तयतिसैव क्रमशो
लज्जाभय पराधीन रतिनवोढा,
सैव क्रमशः सप्रश्रया विश्रब्धनवोढा ।

—"पृ० सं० ८"

ब—"समानलज्जामदना मध्या" (पृष्ठ सं० १८) कह कर मध्या का लक्षण दिया है ।

स—प्रगल्भा में रति के प्रति प्रीति प्रस्फुरित हो उठती है । प्रगल्भा के और दो भेद किए हैं ।

रतिप्रीता और आनन्द संमोहा । —"पृ० सं० २१"

द—मान के न्यूनाधिक्य के विचार से मध्या और प्रगल्भा, प्रत्येक के तीन-तीन भेद किए हैं । मध्या धीरा, मध्या अधीरा, मध्याधीरा धीरा । प्रगल्भा धीरा, प्रगल्भा अधीरा, प्रगल्भा धीरा धीरा यथा ।

मध्याप्रगल्भे प्रत्येकं मानावस्थायां त्रिविधा ।
धीरा, अधीरा, धीरा धीरा चेति ॥ —"पृ० सं ३७"

य—पति प्रेम के न्यूनाधिक × के विचार से धीरादिक छः भेदों में प्रत्येक के ज्येष्ठा और कनिष्ठा कर के दो-दो भेद और किए हैं । यथा—

एते च धीराऽऽदिषड् भेदा द्विविधा
धीरा ज्येष्ठा कनिष्ठा च, अधीरा ज्येष्ठा
कनिष्ठा च, धीराधीरा ज्येष्ठा कनिष्ठा च—"पृ० सं० ४२"

२—परकीया के दो भेद किए हैं । परोढा तथा कन्यका यथा ।

परकीया विभजते
सा द्विविधा परोढा कन्यका च । —"पृ० सं० ४२"

वास्तव में परोढा (जिसका किसी अन्य पुरुष के साथ विवाह हो चुका है) ही परकीया है । उसके निम्न प्रकार उपभेद किए हैं ।

× अधिकस्नेहासु न्यूनस्नेहासु सामान्य वनितासु
नातिव्याप्तिः परिणीतपदेन व्यावर्तनात् । —"पृ० सं० ४२"

१—मुग्धा, २—विदग्धा ३—लक्षिता, ४—कुलटा, ५—अनुशयाना, ६—मुदिता । —"पृ० स० ५२"

(१) गुप्ता के तीन भेद । भूत, भविष्यत्, वर्तमान । —"पृ० सं० ५३"

(२) विदग्धा के दो भेद । वाग्विदग्धा क्रियाविदग्धा । —"पृ० स० ५५"

(३) अनुशयाना के तीन भेद । वर्तमानस्थान विघट्टना, भावीस्थान अभाव शंका, संकेतस्थलभ्रष्टा ।

३—सामान्या के दो भेद किए हैं। रक्ता तथा विरक्ता (स्फुट सम्मतं च दर्यान सामान्याया रक्ता विरक्ता चेति द्वैविध्यम्) —"पृ० स० ७२"

४—दशानुसार तीन भेद—अन्यसंभोगदुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता और मानवती । यथा—

अथ तासां पुनः साधारणं भेदत्रयं निरूपयति

एता अन्यसंभोगदुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता मानवत्यश्चेति तिस्रो भवान्ति । —"पृ० सं० ७४"

इन तीन भेदों के भी उपभेद किए हैं । यथा—

(अ) वक्रोक्तिगर्विता के दो भेद —प्रेमगर्विता तथा सौन्दर्यगर्विता ।

—"पृ० स० ७१"

(ब) मानवती के तीन भेद—अनुमानवती, मध्यमानवती तथा गुरुमानवती ।

५—अवस्थानुसार—आठ नायिकाएँ, प्रोषितपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, खंडिता, कलहान्तरिता, अभिसारिका, विप्रलब्धा तथा स्वाधीनपतिका ।

विशेष—अभिसरण करने के समय के अनुसार परकीया अभिसारिका के तीन भेद किए गए हैं ।

ज्योत्सनाऽभिसारिकातामिस्राऽभिसारिका तथा दिवसाभिसारिका ।

—"पृ० स० १३५"

आगे चल कर सामान्यवनिताऽभिसारिका करके एक और भेद कर दिया है ।

—"पृ० सं० १३५"

रसमंजरीकार ने उपर्युक्त नायिकाओं में प्रत्येक के दशानुसार आठ भेद किए हैं । ऊपर के वर्णन के अनुसार स्वकीया के १३, परकीया के २ तथा सामान्या

का केवल एक, इस प्रकार १६ भेद ठहरते हैं। प्रत्येक भेद के अवस्थानुसार ८ भेद हो जाने से कुल १२८ भेद होते हैं। +

१—रति में अनुकूलता के विचार से प्रत्येक के उत्तम, मध्यम और अधम कर के तीन उपभेद किए हैं। इस प्रकार कुल ३८४ भेद हुए। यथा—

तासामप्युत्तममध्यमाधमभेद गणनना चतुरधिकाशी तियुतं शतत्रय भेदा भवन्ति। "पृ० सं० ८६"

इनमें फिर प्रत्येक के दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य तीन भेद किए हैं। इस प्रकार कुल ११५२ भेद हुए। यथा—

यत्तु एतासां दिव्यादिव्योभयभेदेन गणनया
द्विपञ्चाशदधिकशतयुत सहस्र भेदा भवन्ति। "—पृ० सं० ८८"

विशेष—उक्त विभाजन करते समय ग्रन्थकार ने भोजराज का उल्लेख किया है। —"पृष्ठ सं० ८९"

इसके बाद सखी, दूती, शिक्षा, परिहास आदि का निरूपण किया गया है।‡

साहित्य दर्पण—साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ का समय भी १४ वीं सदी का प्रारम्भिक भाग ही ठहरता है। भानुदत्त और विश्वनाथ में कौन पूर्ववर्ती है और कौन परवर्ती। इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। परन्तु इतना सुनिश्चित है कि दोनों ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से लिखे गए हैं, अर्थात् न "रसमंजरी" की छाया "साहित्य दर्पण" पर है और न "रसमंजरी" का निर्माण करते समय साहित्य दर्पण से सहायता ली गई है।

+ एताः षोडशाप्यष्टाभिरवस्थाभि प्रत्येकमष्टविधाः
प्रोषितभर्तृका, खंडिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, उत्का, वास कसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, चेतिगणनाद् एतामासामष्टा विंशत्यधिकशतं भेदा भवन्ति। —"पृ० सं० ८४"

‡ विशेष सूचना—उपर्युक्त संदर्भ पं० नरहरि शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा श्री० हरिकृष्ण निबन्ध भवन द्वारा प्रकाशित 'सन् १९२१ के संस्करण' रसमंजरी से लिये गये हैं।

नायक के सामान्य गुणों के आधार पर नायिका के तीन भेद किए हैं। स्वकीया, परकीया (अन्यस्त्री) और सामान्या। यथा—

> ननु नायिका त्रिभेदा स्वाऽन्या, साधारणास्त्रीति
> नायक सामान्य गुणैर्भवति यथा सम्भव वैयुक्ता।
> —"तृतीय परिच्छेद, श्लोक सं० ८१"

अ—स्वकीया को विनय, आर्जव से युक्त, गृह कार्य में रत और पतिव्रता बताकर × उसके तीन भेद किए हैं। मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। यथा—

> साऽपि कथिता त्रिभेदा मुग्धा, मध्या प्रगल्भेति
> —"तृतीय परिच्छेद, श्लोक सं० ८२"

ब—मुग्धा के २ उपभेद किए हैं। प्रथमावतीर्ण यौवना, प्रथमावतीर्ण मदन विकारा, रति वामा, मानमृदु और समधिक लज्जावती। यथा—

> प्रथमाऽवतीर्ण यौवनमदन विकारा रतौवामा
> कथितमृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा।
> —"तृतीय परिच्छेद श्लोक सं० ८३"

स—मध्या के पांच उपभेद किए हैं। विचित्र सुरता, प्ररूढस्मरा, प्ररूढ यौवना, ईषत् प्रगल्भ वचना और मध्यम व्रीडिता। यथा—

> मध्या विचित्र सुरता प्ररुढस्मर यौवना
> ईषत्प्रगल्भवचना मध्यम व्रीडिता मता।
> —"तृतीय परिच्छेद श्लोक सं० ८४"

द—प्रगल्भा के भी ६ उपभेद किए हैं। स्मरान्धा, गाढतारुण्य, समस्तरत कोविदा, भावोन्नता, दरव्रीडा और आक्रान्ता। यथा—

> स्मरान्धा गाढतारुण्याया समस्तरत कोविदा
> भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाऽक्रान्त नायका।
> —'तृतीय परिच्छेद श्लोक सं० ८५"

× विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्म्मपरा पतिव्रता स्वकीया। —"३ ८२"

घ—कोप प्रकट करने के आधार पर धीरा अधीरा, धीराधीरा करके मध्या और प्रगल्भा के तीन तीन उपभेद किए हैं। ऽ

ङ—पति प्रमानुसार धीरादि के ज्येष्ठा और कनिष्ठा करके दो-दो उपभेद और किए हैं। यथा—

प्रत्येकं ता अपि द्विधा
कनिष्ठ ज्येष्ठ रूपत्वान्नायक प्रणयं प्रति।
—"तृतीय परिच्छेद श्लोक सं० ८९"

विशेष—उपसंहार रूप साहित्यदर्पणकार ने स्वकीयामेवाप्रपोक्त कह कर स्वकीया के १३ भेद माने हैं। =

२—परकीया के दो भेद किए हैं। परोढ़ा और कन्यका और परोढ़ा में एक उपभेद कुलटा की ओर संकेत किया है। यथा—

परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढ़ा कन्यका तथा
यात्राऽऽदिनिरताऽन्योढा कुलटा गलितत्रपा।
—"तृतीय परिच्छेद श्लोक सं० ९१"+

३—सामान्या—के रक्त और विरक्त दो उपभेद किए हैं (जो रसमंजरी के समान है)। ॐ

वृत्तानुसार आठ भेद किए हैं। स्वाधीनपतिका, खंडिता अभिसारिका, कलहान्तरिता विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका, वासकसज्जा और विरहोत्कंठिता।ऽ

इसके बाद परम्परानुसार रस में अनुकूलता के विचार से उत्तमा, मध्यमा और कनिष्ठ (अधमा) तीन-तीन उपभेद किये हैं। और साथ ही नायिकाओं

ऽ स्वकीया के उक्त उपभेदों में से रसमंजरी और साहित्यदर्पण की विलगता स्पष्ट हो जाती है। श्लोक सं० ८९ तृतीय परिच्छेद।

= श्लोक सं० ९० तृतीय परिच्छेद।

+ रसमंजरी में परोढ़ा के उपभेदों का विस्तार है।

ॐ श्लोक सं० ९२ तथा ९६, तृतीय परिच्छेद।

ऽ श्लोक सं० ९७ तथा ९८, तृतीय परिच्छेद।

के समस्त उपभेदों की संख्या ३८४ होती है, कहकर इस विषय को समाप्त कर दिया है +

हिन्दी में नायिका भेद का विकास—नायिका भेद के आरम्भिक कवि रहीम, नन्ददास और केशवदास हैं।

रहीम (जन्म सन् १५५३, निधन सन् १६२६) कृति बरवा नायिका ग्रन्थ ब्रजभाषा में न होकर अवधी में है। रहीम ने अपनी नायकाओं के लक्षण न लिख कर उनके उदाहरण मात्र लिखे हैं। ये उदाहरण अत्यन्त सरल, सरस और स्पष्ट हैं। देखिये अवस्थानुसार नायिकाओं के उदाहरण—

> अजहूँ न आए सुधि कै सखि घनश्याम,
> राख लिए कहुँ बसिकै, काहू बाम्।
> (नायिका विरहोत्कठिता है।)

प्रोषितभर्तृका का उदाहरण इस प्रकार है।

> उमडि उमडि घन घुमडे दिसि विदिसान
> सावन दिन मनभावन, करत पयान

वास्तव में रहीम ने नायकाओं की विभिन्न प्रेम दशाओं का निरूपण किया है, नायिकाओं के भेद उपभेदों का वर्णन नहीं। इस सम्बन्ध में, इन्होंने कुल १०९ 'बरवे' लिखे हैं।

"नगरशोभा" के अन्तर्गत इन्होंने ब्राह्मणी, खतरानी, रंगरेजिन आदि विभिन्न जाति बिरादरियों की ६१ प्रकार की स्त्रियों का वर्णन किया है।

नन्ददास—कविता काल सन् १५२५ अथवा उससे आगे तक—कृति "रसमञ्जरी" हिन्दी "ब्रजभाषा" साहित्य में भेद की आरम्भिक रचना है। यह भानुदत्त कृत "रसमञ्जरी" के आधार पर लिखी गई है। कवि ने स्वयं कहा है।

+ इति साष्टाविंशतिशतमुत्तममध्यम कनिष्टरूपेण,
चतुराधिकाशीतियुत शतत्रयं नायिका भेदाः।
"तृतीय परिच्छेद श्लोक सं० ११९"

"रसमँजरि" अनुसार है, नन्द सुमति अनुसार,
यरनत बनिता भेद जहं, प्रेम सार विस्तार।

भानुदत्त ने विभिन्न नायिकाओं के लक्षण गद्य में दिये हैं और उनके उदाहरण श्लोकों में। भानुदत्त ने विषय पर शास्त्रीय ढंग से विचार किया है, परन्तु नन्ददास ने विस्तार को एक दम छोड़ दिया है।

रहीम ने लक्षण न लिख कर केवल उदाहरण लिखे हैं। इसके विपरीत नन्ददास ने "रसमंजरी" में उदाहरण न लिख कर केवल लक्षण ही लिखे हैं। कई स्थलों पर भानुदत्त की "रसमंजरी" में दिए गए लक्षणों को ज्यों का त्यों रूपान्तरित कर दिया है। ॐ

नन्ददास के नायिका भेद का क्रम थोड़ा भिन्न है। उन्होंने मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा को केवल स्वकीया के भेद मान कर स्वकीया, परकीया और सामान्या तीनों में भेद माने हैं।

मुग्धा के नवोढ़ा और विश्रब्ध ये दो भेद कर फिर अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना ये दो भेद और किए हैं। परम्परानुसार भेद लिखने वाले आचार्यों

ॐ भूतसुरति गोपना परकीया का उदाहरण—
स्वश्रूश्चक्रम्यतु विदिशमन्तु सुहृदो, निन्दन्तु वा यातर
तस्मिन् किन्तु न मन्दिरे सखि पुन: स्वापो विधेयो मया।
आखोराक्रमणार्थं कोणकुहरादुत्फालमात मती
मार्जारी नखरैः खरैः कृतवती, कां कां न मे दुर्दशाम्
'रसमंजरी पृ० ४३, प्रकाशक श्रीकृष्ण निबन्ध भवन, काशी १६२६'

× × × ×

कहै सखि सौं उहि गृह अन्तर, अबतें हौं सोऊं न सुतंतर,
सास लरौ, घेया किन लरौ, देया जो भावै सो करौ।
आखु धरन हित दुष्ट मजारी, मो पै अछुरि परी दइमारी।
दै गई तीछन नख दुखदाई, फासौं कहौं दरद सो माई।
इहि छल छतन छिपावै जोई, परकिय सुरतिगोपना सोई।
"रसमंजरी, पंक्ति ११०..... ११४"

ने नवोढा विश्रब्ध नवोढा तथा अज्ञात यौवना की चर्चा स्वकीया के अन्तर्गत ही की है क्योंकि परकीया और गणिका के अन्तर्गत ये भेद सर्वथा अस्वाभाविक लगते हैं। नन्ददास ने धीरादि भेदों को लिखा है किन्तु ज्येष्ठा कनिष्ठा को नहीं।

जग में जुवति तीन परकार, करि करता निज रस विस्तार।
प्रथम सुकीया पुनि परकीया, इक सामान्य वखानी तिया॥
ते पुनि तीनि तीनि परकार, मुग्धा मध्या, प्रौढ़ बिहार।
मुग्धा हू पुनि द्वैव विधि गनी, उत्तर उत्तर क्यों रस सनी॥
प्रथमहि मुग्ध नवोढ़ा होई, पुनि बिश्रब्ध नवोढ़ा सोई।

"रसमंजरी पंक्ति ३०—३४"

इसके बाद पंक्ति ४० से लेकर ६२ तक "अज्ञात यौवना" तथा "ज्ञात यौवना" के लक्षण दिये हैं।

ब—मध्या का कोई भेद नहीं किया है। केवल यह कह कर कि —[1]

लज्जा मदन समान सुहाई, दिन दिन प्रेम चोप अधिकाई।

× × × ×

इहि प्रकार जुवति जो लहिये, सो मध्या नाइका कहिये।

"रसमंजरी पंक्ति ६६—७०"

मध्या का लक्षण दिया है।

स—प्रौढ़ा के दो भेद किए हैं। कोविदा और प्रगल्भा, यथा—

पूरन जोवन गहगहि गोरी, अधिक अनंग लाज तिहि थोरी,
केलि कलाप कोविदा रहै, प्रेम भरी मद गज निमि बहै।

× × × ×

अति प्रगल्भा बैनी, रस ऐनी, सो प्रौढ़ा प्रीतम सुखदैनी।

"रसमंजरी पंक्ति ७३—७८"

द—इसके बाद धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा भेद किए हैं—

तहँ कोउ धीरा कोउ अधीरा, कोउ कोउ धीराधीरा रस बीरा।

"रसमंजरी पंक्ति ८०" ※

---

[1] ※ पूर्ण लक्षण पंक्ति १०१ तक दिए हैं।

२—परकीया के तीन भेद किए हैं। सुरतिगोपना, वाग्विदग्धा तथा लक्षिता।

"रसमञ्जरी पंक्ति ११०—११४" +

३—नायिका भेद—दशानुसार मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा और परकीया। प्रत्येक के निम्नलिखित ९ भेद किए हैं।

प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहान्तरिता, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, अभिसारिका, स्वाधीन पतिका, प्रोषमगमनी।

इन नायिकाओं के लक्षण लिखकर प्रत्येक के उदाहरण दिए हैं।

"रसमंजरी पंक्ति १२१, १३०"

केशवदास—(जन्म सन् १५५५, निधन सन् १६१७) कृति "रसिक प्रिया" (निर्माण काल सन् १५९१) नामक रस रीति का प्रौढ़ रचना में प्रसंगवश नायिका भेद का भी कथन हुआ है।

"रसिकप्रिया" में नायिका भेद का क्रम विविध संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर निश्चित किया गया है।

१—जाति अनुसार ४ की नायिकाएँ लिखी हैं। पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी। यथा—

प्रथम पद्मिनी चित्रिणी, युवती जाति प्रमान,
बहुरि शंखिनी हस्तिनी, केशवदास बखान।

"तृतीय प्रकाश छन्द सं० २"

२—नायक के सम्बन्ध के अनुसार तीन भेद किए हैं। स्वकीया, परकीया और सामान्या यथा—

सो नायक की नायिका, मंथनि तीनि बखान,
सुकिया, परकीया, अवर सामान्या सुप्रमान।

"तृतीय प्रकाश छन्द सं० १४"

३—स्वकीया के तीन भेद किए हैं। मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा।

+ पियहि सुनाइ पथिक सों कहै, परकीया सु विदग्धा रहै। इत्यादि।

मुग्धा, मध्या प्रौढ़ गनि, तिनके तीन विचार।

"तृतीय प्रकाश छन्द सं० १६"

उक्त भेदों में प्रत्येक के चार-चार उपभेद किए हैं। ०

ब—मुग्धा के उपभेद—नवलवधू, नवयौवना, नवलअनंगा तथा लज्जा प्रायरति यथा—

नवल वधू नवयौवना, नवल अनंगा नाम,
लज्जा लिए सु रति करै, लज्जा प्राइ सुधाम।

"तृतीय प्रकाश छन्द सं० १७"

स—मध्या के उपभेद—आरूढ़यौवना, प्रगल्भवचना, प्रादुर्भूतमनोभवा और सुरति विचित्रा यथा—

मध्या प्रारूढ़यौवना, प्रगल्भवचना जान,
प्रादुर्भूत मनोभवा, सुरति विचित्रा मान।

"तृतीय प्रकाश छन्द सं० ३२"

द—प्रौढ़ा के उपभेद—समस्त रसकोविदा, विचित्रविभ्रमा, आक्रमति, लुब्धामति। यथा—

सुनि समस्त रसकोविदा, चित्तविभ्रमया जानि
जानि अक्रामति नायका, लुब्धामति शुभ मानि।

"तृतीय प्रकाश छन्द सं० ४१"

विशेष—धीरादि भेद पृथक् न लिख कर मध्या और प्रौढ़ा के साथ ही लिखे हैं।

य—परकीया के दो भेद किए हैं। ऊढ़ा और अनूढ़ा यथा—

परकीया द्वै भाँति पुनि, ऊढ़ा एक अनूढ़,
जिन्हें विलि वश होत है, सन्त मूढ़ अमूढ़।

"तृतीय प्रकाश छन्द सं० ६८"

र—सामान्या की कोई चर्चा नहीं है।

---

० एक एक की जानिए, चार चार अनुहार।

"तृतीय प्रकाश छन्द सं० १६"

३—दशानुसार अष्ट नायिकाएँ, स्वाधीनपतिका, उत्कण्ठा, वासकशय्या, अभिसन्धिता, खण्डिता, प्रोषितप्रेयसी, विप्रलब्धा और अभिसारिका। यथा—

ये सब जितनी नायिका, बरणी मति अनुसार,
केशवराय बखानिए, ते सब आठ प्रकार।
स्वाधीनपतिका उत्कण्ठा, वासक शय्या नाम,
अभिसंधिता बखानिए, और खण्डिता वाम।
केशव प्रोषित प्रेयसी, लब्धविप्र सुजान,
अष्ट नायिका ये सबै, अभिसारिका बखान।
'सप्तम प्रकाश, छन्द सं० १—८"

अ—इन आठों प्रकार की नायकाओं के प्रच्छन्न और प्रकाश नामक दो-दो भेद किए हैं।

ब—अभिसारिका के ५ भेद किए हैं :—

स्वकीया अभिसारिका, परकीया अभिसारिका, प्रेमाभिसारिका (प्रच्छन्न प्रकाश) गर्वाभिसारिका (प्रच्छन्न प्रकाश) तथा कामाभिसारिका (प्रच्छन्न प्रकाश) +

४—गुण (प्रकृति) के अनुसार तीन भेद किए हैं।

उत्तमा, मध्यमा और अधमा "७, ३८"

केशवदास द्वारा वर्णित नायकाओं की कुल संख्या ३६० है। ❀

केशवदास ने प्रत्येक का लक्षण पहिले दोहा में लिखा है और फिर उसके नीचे उदाहरण कवित्त अथवा सवैया में दिया है। हिन्दी में इस शैली पर लिखने वाले यह प्रथम कवि हैं। अतः आचार्य की दृष्टि से हिन्दी में नायिका भेद का कथन सर्वप्रथम केशवदास कृत "रसिकप्रिया में हुआ है।

नायिका भेद के अन्य कवि—यह समय मुगल सम्राटों के शासन का युग था, जो अपने महान् ऐश्वर्य और शृङ्गारपूर्ण जीवन के लिए प्रसिद्ध है। उन दिनों देश की राजनैतिक स्थिति ही कुछ ऐसी हो गई थी कि रहन-सहन, आचार-विचार समस्त क्षेत्रों में शृङ्गारिकता का साम्राज्य था। अतएव कविगण

+ सप्तम प्रकाश छन्द सं० २२, ३१।

❀ प्रकट तीन सौ साठ त्रिय, केशवदास बखानि। "७, ३८"

भेद जैसे सरस विषय का सर्वप्रिय होना स्वाभाविक ही था। हिन्दी का कदाचित ही ऐसा कोई आचार्य कवि हो, जिसने इस विषय पर अपनी लेखनी न उठाई हो। इस विषय पर लिखने वाले इस युग के कवि और आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं।

सुन्दर, चिन्तामणि त्रिपाठी मतिराम, सुरति मिश्र, श्रीपति, तोष, सोमनाथ, रसलीन, दास, देव, कवीन्द्र, पद्माकर, बेनी, प्रवीन, ग्वाल, प्रतापसिंह और द्विजदेव। यह क्रम आगे तक चलता रहा इनमें नवीन, सेवक, सरदार, लछिराम, नन्ददास द्विज और प्रताप नारायण सिंह प्रमुख हैं। इस विषय पर लिखने वाले आधुनिक कवियों में बिहारी लाल भट्ट कृत "साहित्यसागर" तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध कृत 'रस कलस' इन दो ग्रन्थों के नाम उल्लेखनीय हैं। "साहित्यसागर" पुरानी शैली पर लिखा गया ग्रन्थ है तथा "रसकलस" पर आधुनिकता की छाप है। पति प्रेमिका देश प्रेमिका आदि नवीन नायिकाओं की चर्चा करके हरिऔध ने नायिका भेद सम्बन्धी विचारधारा को एक मौलिक दृष्टिकोण प्रदान किया है।

नायिका भेद के सांगोपांग विवेचन की परिपाटी—नायिका भेद की निश्चित परिपाटी मतिराम ने चलाई। उनका बनाया हुआ "रसराज" इस विषय का सर्वमान्य ग्रन्थ है। "रसराज" भानुदत्त कृत "रसमंजरी" की परिपाटी पर बनाया गया है। और इस विषय का आदर्श ग्रन्थ है। परवर्ती कवियों ने मतिराम की शैली को ही अपनाया है।

केशवदास की "रसिकप्रिया" का क्रम दूसरा है। उसमें विविध संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर रस रीति का विवेचन करके नायिका भेद को केवल शृङ्गार रस के उपांग के रूप में ग्रहण किया गया है। परवर्ती कवियों में केवल देव ने ही उनका कुछ अंशों में अनुकरण किया है।

यहाँ दो बातों की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। इस विषय पर केशवदास से पहिले भी अनेक कवि लिख चुके हैं। कृपाराम कृत 'हिततरंगिणी' विषय की सन् १५४१ में लिखी गई रचना है। उसमें नायिका भेद की अच्छी चर्चा है। साथ ही उसके एक दोहा के आधार पर यह निश्चित रूप

से कहा जा सकता है कि इस विषय पर उनके पूर्ववर्ती अनेक कवि लिख चुके थे। ऽ

कृपाराम कृत नायिकाओं के भेद इस प्रकार हैं।

१—अ नारियों के तीन भेद—स्वकीया, परकीया और बारवधू।

२—ब प्रकृति के अनुसार उनके तीन भेद—उत्तमा, मध्यमा, तथा अधमा। यथा—

तीन भेद नारीन के लोकलीक में जानि,
स्वकीया परकीया सुपुनि, बारवधू पहिचानि,
उत्तम मध्यम अधम तिय, प्रकृति भेद तें जानि।

"दोहा संख्या १६, १७"

स रोप के समय वचनक्रिया के प्राकट्य के आधार पर धीरादि भेद किए हैं।

३—दशानुसार तीन भेद किए हैं मानवती, अन्यसम्भोग दुखिता तथा वक्रोक्तिगर्विता। "दोहा सं० १७, २०, २१" ♁

४—अवस्था धर्म के अनुसार स्वकीया के तीन भेद किए हैं। मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा "दोहा सं० १२"

म. मुग्धा के चार भेद—अज्ञात यौवना, ज्ञात यौवना, नवोढ़ा और विश्रब्धनवोढ़ा। = "दोहा सं० १४"

प परकीया के दो भेद किए हैं। ऊढ़ा और अनूढ़ा। "दोहा सं०१८"

फ. ऊढ़ा के सात भेद—गर्विता, चतुरा, कुलटा, मुदिता, स्वयंदूति, अनुशयनिका तथा गुप्ता। * "दोहा सं० १०"

ऽ बरनत कवि सिंगार रस छन्द बढ़े विस्तारि,
मैं बरन्यों दोहानविच, यातें सुघरि विचारि।
"दोहा सं० ४"

+ रसमंजरी के अनुसार।

= रसमंजरी के अनुसार।

* रसमंजरी के अनुसार।

ब लक्षिता और चतुरा में प्रत्येक के दो उपभेद किए हैं। क्रिया चतुरा, तथा वचन चतुरा। "दोहा सं० ३१"

४—अवस्था के अनुसार दस भेद किए हैं।

स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, उत्कंठा, अभिसारिका, विप्रलब्धा, खंडिता, कलहांतरिता, प्रवत्स्यत्पतिका, प्रोषितपतिका और आगतपतिका।

"छन्द सं० ३६—३८"

उक्त विभाजन का आधार नाट्य शास्त्र है। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है:—

समय अवस्था तें परे स्वाधिनपतिका मानि,
कृपाराम यों कहत हैं भरत ग्रन्थ अनुमानि।

"दोहा सं० ३५"

५—सामान्या के दो भेद किए हैं। गुप्त तथा अगुप्त। "दोहा सं० ४०"

कृपाराम ने केवल भेद उपभेद किए हैं। लक्षण अथवा उदाहरण नहीं दिए हैं।

इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि केशवदास और मतिराम के बीच की विकासोन्मुखी स्थिति का दिग्दर्शन चिन्तामणि त्रिपाठी कृत "कविकुलकल्पतरु" (रचना काल सन् १६५०) में होता है।

कविकुलकल्पतरु के पांचवें अध्याय में नायिका भेद का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। उसके आधार पर इसका विवेचन निम्न प्रकार है।

१—सर्व प्रथम नायिका के तीन भेद किए हैं। दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य।

२—कर्मानुसार नायिकाओं के तीन भेद—स्वकीया, परकीया और सामान्या।

अ स्वकीया के तीन भेद लिखे हैं। मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा।

ब मुग्धा के ६ भेद, मध्या के चार भेद और प्रौढ़ा के चार भेदों का उल्लेख किया है। ❀

---

३ रसमंजरी के आधार पर।

❀ मुग्धा के ६ भेद—वय, सन्धि, अविदित यौवना, अविदितकामा, विदित यौवना, विदितमनोयौवना, नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा, हमारे विचार से

३—मध्या और प्रौढ़ा में धीरादि भेद लिख कर ज्येष्ठा और कनिष्ठा का उल्लेख किया है।

४—परकीया के ऊढ़ा और अनूढ़ा को भेद लिखकर, ऊढ़ा के ६ भेद किए हैं। सुरतिगोपना, चतुरा (वचन, क्रिया) कुलटा, लक्षिता अनुशयना और मुदिता।

५—दशानुसार जो नायिकाएँ लिखी हैं, वो परम्परानुसार हैं।

स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, विप्रलब्धा, खंडिता, कलहांतरिता, प्रोषितपतिका और अभिसारिका (ज्योत्स्नाभिसारिका तमोभिसारिका, दिव्याभिसारिका।)

४—अन्त में गुणानुसार परम्परागत तीन भेदों (उत्तमा, मध्यमा और अधमा) को लिख कर विषय को समाप्त कर दिया गया है।

इस प्रकार चिन्तामणि की तीन विशेषताएँ ठहरती हैं।

१—नायिका के दिव्यादिव्यादि भेद करने वाले हिन्दी में यह पहिले आचार्य थे।

२—मुग्धा के ६ भेद मध्या, प्रगल्भा के चार चार इस प्रकार के भेद इन्होंने ही किए हैं।

३—अपने पूर्ववर्ती केशवदास के विरुद्ध इन्होंने सामान्या को स्वीकार किया है।

मतिराम—(जन्म सन् १६०३, निधन सन् १६६३) कृति 'रसराज' 'रचनाकाल सन् १६६० के आसपास' नायका भेद का सर्व प्रधान ग्रन्थ है।

प्रथम चारों भेद अज्ञात यौवना और ज्ञात योवना इन दो भेदों के अन्तर्गत ही आ जाते हैं। केवल विस्तार प्रेम के कारण ये भेद किए गए प्रतीत होते हैं।

मध्या के ४ भेद—आरूढ़ यौवना, आरूढ़ मदना, विचित्रसुरता, प्रगल्भ वचना।

प्रौढ़ा के ४ भेद—प्रौढ़ यौवना, प्रगल्भा, मदसमत्त, रति प्रीतिमती, सुरति मोदपरवशा।

और मतिराम इस विषय के सर्वमान्य आचार्य हैं। परवर्ती कवियों में प्रायः सभी ने इनकी शैली को अपनाया है। विस्तार भ्रम के कारण कुछेक नवीन उद्‌भावनाएँ भले ही कर आयी हों, परन्तु परवर्ती कवियों में कोई भी मतिराम इस नायिका भेद के उच्च धरातल तक नहीं पहुँच सका है।

१—सर्वप्रथम क्रमानुसार 'नायक के सम्बन्धानुसार' नायिका के तीन भेद किए हैं।

स्वकीया, परकीया और गणिका।

कही नायिका तीन विधि, प्रथम स्वकीया मान।
परकीया पुनि दूसरी, गनिका तीजी आन।

"रसराज छन्द सं० ६"

अ—स्वकीया के तीन भेद मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा 'छन्द स० ११'

ब—मुग्धा के दो भेद। अज्ञात और ज्ञात यौवना। यथा—

मुग्धा के द्वै भेद वर, भाषत सुकवि सुजान।
एक अज्ञातहि जोवना, ज्ञातजोवना आन।

फिर रति इच्छा अथवा प्रीतम के साथ प्रतीति के आधार पर ज्ञातयौवना के अन्तर्गत नवोढ़ा और विश्रब्धनवोढ़ा का वर्णन किया है।

'रसराज छन्द स० २१, २०"

स—मान के आधार पर मध्या और प्रगल्भा के धीरादि भेद लिख कर ज्येष्ठा कनिष्ठा भेदों का वर्णन किया है। यथा—

मध्या प्रौढ़ा मानतें, तीन भाँति पुनि जानि।
धीरा बहुरि, अधीर तिय, धीराधीरा मानि।

"छन्द स० ३६'

बरनत जेष्ठ कनिष्ठिका, जहँ द्वै ब्याही नारि।
प्रथम प्यारी, दूसरी घटि, प्यारी निरधारि।

"छन्द सं० ४५"

ज्येष्ठा कनिष्ठा के अन्तर को कदाचित् ही किसी अन्य कवि ने इस सरलता के साथ इतना स्पष्ट किया हो।

८—परकीया के ऊढ़ा और अनूढ़ा, इन दो भेदों की चर्चा करके परकीया के छः भेद बताए हैं।

गुप्ता, विदग्धा, (क्रिया-वचन) लक्षिता, कुलटा, मुदिता और अनुशयना (पहिली, दूसरी, तीसरी) यथा—

> प्रेम करै पर पुरुष सौं, परकीया सो मान।
> दोय भेद ऊढ़ा कहत, बहुरि अनूढ़ा मान।
>
> "छं० सं० ५८"

> परकीया के भेद षट, गुप्ता प्रथम बखान।
> बहुरि विदग्धा लच्छिता, मुदिता कुलटा मान।
> और जु अनुसयना कही, तिनके विमल विवेक।
> बरनत कवि 'मतिराम' यह, रस सिंगार को सेक।
>
> "रसराज छन्द सं० ६५ ६६"

नायिका के तीन भेद—अन्य संभोग दुखिता, गर्विता (प्रेम, रूप) तथा मानवती।

"छन्द सं० १०"

इस विभाजन का आधार है नायिका के प्रति पति के हृदय में प्रीति।

९—दस प्रकार की नायिकाएँ।

प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कण्ठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका 'शुक्लाभिसारिका, कृष्णाभिसारिका, दिवाभिसारिका' प्रवत्स्यत्प्रेयसी और आगतपतिका।

"छन्द सं० ११०"

इन दस प्रकार की नायिकाओं में प्रत्येक को मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या, इन पाँच पाँच उपभेदों में विभाजित किया है।

प्रकृति के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद किए हैं। उत्तम मध्यमा तथा अधमा।

"छन्द सं० २२८, २३१ तथा २३६"

मतिराम ने इस स्थल पर भी मौलिकता प्रदर्शित की है। उत्तमादि के विभाजन आधार को स्पष्ट कर दिया है। उनके विचार से उत्तमा नायिका वह है जो अनहित करने वाले प्रीतम के साथ हित पूर्वक व्यवहार करे, किसी प्रकार मन में भेद न लावे। पतित पति में परमेश्वर का प्रतिरूप देखे।

पिय हित कैं अनहित करै, आप करै हित नारि।
ताहि उत्तमा नायिका, कविजन कहत विचार।
"छन्द सं० २२८"

इसी प्रकार जो नायिका जैसे को तैसा व्यवहार करे, वह मध्यमा है, और जो अकारण ही नायक के साथ मचरे, मान अथवा क्लेश करती रहे अधमा नायिका है *

उक्त विभाजन सर्वथा सरल, स्पष्ट स्वाभाविक तथा क्रमबद्ध है। यही कारण है कि वह इतना लोकप्रिय है।

यदि प्रत्येक प्रकार की नायिका के उत्तमा, मध्यमा और अधमा तीन-तीन उपभेद मान जाएँ तो मतिराम द्वारा वर्णित नायिकाओं की कुल संख्या १०० ठहरती है। अन्यथा कुल संख्या ३३ है।

नायिका भेद का विस्तार प्रेम—महाकवि देव द्वारा नायिका भेद का विस्तार-मतिराम के पश्चात् महाकवि देव नायिका भेद के सर्वश्रेष्ठ कवि और आचार्य हैं। इनका जन्म सन् ११७३ तथा निधन सन् १७५० के आस पास हुआ था। नायिका भेद पर इनका कोई ग्रन्थ नहीं है। विभिन्न ग्रन्थों में भिन्न २ प्रकार में इन्होंने इस विषय की चर्चा की है। इनके ७२ ग्रन्थ कहे जाते हैं। जिनमें नायिका भेद का वर्णन हुआ है, उनके नाम इस प्रकार हैं। भाव विलास, रस विलास, भवानी विलास, तथा सुख सागर तरंग।

भाव विलास में वर्णित नायका भेद का क्रम केशवदास की रसिकप्रिया से मिलता है और नायिकाओं की कुल संख्या ३८४ है। ×

यथा— स्वीया तेरहै भेद करि द्वै जु भेद परनारि।
एक-जु वैश्या ये सबै सोरह करौं विचारि।
एक-एक प्रति-सोरहौं आठ अवस्था जान।
औरि सबै ये एकसो अटठाइस बखान।

---

* छन्द संख्या २३१ तथा २३४।

× केशवदास कृत नायिकाओं की संख्या ३६० है।

उत्तम मध्यम अधम करि ये, सब त्रिविध विचार।
चौरासी अरु तीन सौ, जोरें सब विस्तार।
'भाव विलास'

रसविलास में देव ने नायिकाओं के वर्गीकरण के प्रधान क्रम से आठ आधार माने हैं। जाति, कर्म, गुण, देश, काल, वयक्रम, प्रकृति और सत्त्व। यथा—

आठ भेद नायिका के बरनत हैं कवि सन्त।
भेद भेद प्रति होत हैं अन्तर भेद अनन्त।
जाति कर्म गुन देस अरु काल वयौ क्रम जानु।
प्रकृत सत्व नायिका के आठौ भेद बखानु।
"रसविलास, पंचम विलास छन्द स० ३"

१—जाति अनुसार ४ भेद। पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी।
"रसविलास, पंचम विलास छन्द स० ४"

२—कर्म के अनुसार तीन भेद। स्वकीया, परकीया और सामान्या।
"रसविलास, पंचम विलास छन्द स० ११"

३—गुणानुसार ३ भेद। उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

कहीं सत्त रज तम त्रिगुन, उत्तम मध्यम अन्त।
तीनि भांति गुन भेद करि, कहत नायिका सन्त।
"रसविलास, पंचम विलास छन्द स०२०"

४—देशानुसार २१ भेद। भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों अथवा भागों की वधुओं (स्त्रियों) का वर्णन है। यहाँ उदाहरण न देकर केवल उनके वर्णन किए गए हैं। वे विभिन्न वधूटियाँ इस प्रकार हैं।

मध्यदेश वधू, मगधवधू, कौशलवधू, पाटलवधू, उत्कलवधू, कलिंगवधू, कामरु, बंगवधू, सिंघलवधू, कुकणवधू, करनाटवधू, द्राविड़वधू, तिलंगवधू, काश्मीरवधू, सिन्धुवधू, गुजरातवधू, मारवाड़वधू, कुरुदेशवधू, सूरतीवधू, पर्वतवधू, गुहस्तवधू, काश्मीरवधू तथा सौवीरवधू।
"रसविलास, पंचम विलास छन्द सं० १७, २०"

५—अवस्थानुसार ८ भेद। स्वाधीनपतिका, कलहांतरिता, अभिसारिका विप्रलब्धा, खंडिता, उत्कंठिता वासकसज्जा और प्रोषितपतिका यथा।

आठ अवस्था भेद करि, होत आठ विधिकाल।
बरनो ता संयोग तें, आठ भाँति की बाल।
प्रथम कहौं स्वाधीनपति कलहान्तरिता होइ।
अभिसारिका बखानिए, विप्रलब्धिका सोइ।
खण्डितरु उत्कंठिता वासकसज्जा बाम।
प्रोषितपतिका नाइका आठौ विधि अभिराम।

'छठवाँ विलास छन्द सं० २, ४"

६—वयक्रमानुसार ३ भेद। मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा।

"छठवां विलास, छन्द सं० १५"

७—प्रकृति अनुसार ३ भेद। कफ प्रकृति, पित्त प्रकृति और वात प्रकृति।

"छठवां विलास छन्द स० ३८"

८—सत्व के अनुसार ६ भेद। देव, किन्नर, यक्ष, नर, पिशाच नाग, कपि, गन्धर्व और काक यथा।०

इनके अतिरिक्त 'देव' ने और भी अनेक प्रकार की स्त्रियों का वर्णन किया है यथा—

कामिनी के ६ भेद किए हैं। नागरी, पुरवासिन ग्रामीण, बनवासिन सेन्या और पथिक तिय।×

फिर इनमें प्रत्येक के उपभेद किए हैं।

१—नागरी के तीन भेद। देवज, रायज और राज नगर। '१, ७'

---

० सुर किन्नर अरु जच्छनर कहिपिसाच अरु नाग।
सत्व भेद सो नायिका बरनहु खर कपि नाग।
तिनके लच्छन भेद सब जानहु नीच समान।
है प्रसिद्धि ससार में जाति सुभाइ प्रमान।

"छठवां विलास, छन्द स० ४४, ४६"

× सो नारी कहुँ नागरी पुरबासिन ग्रामीन।
बनसयना अरु पथिक तिय वह विधि कहत प्रवीन।

'रसविलास १, ६"

देवध के तीन भेद । देवी, पूजनहारी और द्वारपालिका । '१, ८'

राजल के पांच भेद । राजकुमारी, धाय, सखी, दूती और दासी । '१, १२'

राजनगर के १३ भेद । जौहरिन, छीपिन, पटवनि, सुनारिन, गन्धिन, तेलिनि तमोलिनि, हलवाइनि, मोचिन, कुम्हारिन, दरजिनि, चूरी और गणिका ।

'२, ८, १०'

२—पुरवासिन के ६ भेद । ब्राह्मणी, राजपूतनी, खतरानी, बनैनी, कायथिनी, थीसा, माहमि, मालिनि और धोबिन । '२, ३'

३—ग्रामीणा के ५ भेद । अहीरिन, काछिन, कलारिन, कहारिन और मूसेरी । '२,१८'

४—वनवासिन के तीन भेद । मुनतिया, व्याधतिया तथा भीलनी । ३,११

५—सैन्या के ३ भेद । धूपली, वेश्या और मुसकिन । —'३, २८'

६—पथिकतिया के ४ भेद । बनजारिन आगिन, नटी और कजेरिनि । '३,३२'

अन्य ग्रन्थों में देव ने नायिकाओं के और भी अनेक उपभेद किये हैं ।*

१—स्वकीया के अवस्थानुसार ५ भेद किए हैं ।

दैवी ७ वर्ष, देवगान्धर्वी १४ वर्ष, गन्धर्वी २१ वर्ष, गन्धर्व मानुषी २८ वर्ष, मानुसी ३५ वर्ष ।

और फिर उसके ज्येष्ठा कनिष्ठा करके दो भेद और किए हैं ।

परकीया के दो भेद किए हैं । अनूढ़ा और ऊढ़ा । ऊढ़ा के छः उपभेद किए हैं । गुप्ता, विदग्धा (वचन, क्रिया) लक्षिता, कुलटा, मुदिता और अनुशयना ।

वयक्रमानुसार विभाजन के अन्तर्गत मुग्धा के ४, मध्या के ४ तथा प्रौढ़ा के ४ भेद किए हैं । यथा—

क—मुग्धा के ४ भेद । वय :सन्धि (१२ से १३ वर्ष) अज्ञात यौवना,

---

* रस विलास में भी इन भेदोपभेदों की ओर संकेत किया है ।

ठाम वय क्रम भेद करि, भेद भेद प्रति भेद ।
होत अनेक प्रकार सैं सुनत हरत भ्रम खेद । —'६ ३०'

नववधू।× (१३ वर्ष) नवयौवना' (१४ वर्ष) नवलअनंगा' (१५ वर्ष) नवोढ़ा' तथा सलज्जरति (१६ वर्ष) विश्रब्ध नवोढ़ा'

ब—मध्या के ४ भेद। रूढ़ यौवना (१७ वर्ष) 'प्रकट मनोज' (१८ वर्ष) प्रादुर्भूत मनोभवा 'प्रगल्भवचना' (१९ वर्ष) तथा 'विचित्र सुरता' (२० वर्ष)।

स—प्रौढ़ा के ४ भेद। लब्धापति '२१ वर्ष' रति कोविदा '२२ वर्ष' आक्रान्ता '२३ वर्ष' तथा सविभ्रमा '२४ वर्ष'।

कोप तथा मान के आधार पर मध्या और प्रगल्भा के धीरादि भेद भी लिखे हैं।

इस प्रकार देव कृत नायिका भेद वर्णन, पूर्ण रूपेण विशद एवं विस्तृत है। परन्तु विचारणीय बात यह है कि इसमें स्वाभाविकता का किस सीमा तक निर्वाह हुआ है। वयक्रमानुसार अज्ञात यौवना ज्ञात यौवना आदि भेदों के आयु के अनुसार अन्य उपभेद कर देना तो किसी हद तक ठीक भी है, क्योंकि इसके द्वारा केवल आयु की बात सोची गई है, मौलिक आधार पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु नायिका भेद के अन्तर्गत विभिन्न देश, प्रान्त, जाति, बिरादरी अथवा व्यवसाय की स्त्रियों की चर्चा हमारे विचार से अनुपयुक्त ही है। नायिका नायिका है, क्या ब्राह्मणी और क्या चमारिन, क्या शहर की, क्या गांव की, क्या पड़ोसी की पत्नी, क्या रास्ता चलते व्यक्ति की स्त्री? अगर इस प्रकार के विभिन्न आधार मान कर स्त्रियों के भेद उपभेदों का वर्णन किया जाए, तो हमारे विचार से इसका कहीं अन्त ही न हो। जहाँ हम विभिन्न व्यवसायों एवं जातियों को आधार मानेंगे, वहाँ हमें विभिन्न देश, पहनावे तथा फैशन आदि को भी आधार मानना पड़ेगा। आजकल संसार के समस्त देश घर आंगन बने हुए हैं। देव के समय में किए गए आभीर वधू, काश्मीरी वधू आदि भेदों की तरह हमें बर्मन वधू, फ्रांस वधू, इंग्लैण्ड वधू आदि विभाग भी करने पड़ेंगे। लेकिन, चमारिन आदि के साथ हमें मास्टरनी, डाक्टरनी, वकील, कंडक्टर आदि का काम करने वाली स्त्रियों को भी विभिन्न प्रकार की नायिकाएँ स्वीकार करना होगा। फिर आजकल बनाव शृंगार आदि के इतने अधिक फैशन

१३× ये ज्ञात यौवना हैं।

एवं वाद मचलित हैं कि हमें उनके भ यी विभाग करके यह विचार करना होगा कि अमुक देश, अमुक समाज अथवा अमुक व्यवसाय की अमुक अवस्था की स्त्रियों में अमुक प्रकार से भाव कल्याये जाते हैं या अमुक प्रकार से लाते पाई जाती है। इतना ही क्यों, आजकल अकेले भारतवर्ष में ही न मालूम कितने प्रकार के फैशन चलते हैं। पंजाबी, बंगाली, गुजराती, दक्षिणी आदि विभिन्न प्रादेशिक स्त्रियों की वेश भूषा, उठन बैठन विभिन्न प्रकार की होती हैं और चाहें तो उनके रंग ढंग के आधार पर मन चले लोग भाँति भाँति की प्रेरणा ग्रहण करके उनको विभिन्न प्रकार की नायिकाओं के रूप में देख सकते हैं।

बात सीधी सी है कि जिस रमणी को देखते ही चित्त में शृंगार रस का संचार हो, अथवा "प्रान भाव चित होय" उसे नायिका कहते हैं।*

यौवन के आगमन के समय कन्या का चित्त किस प्रकार चंचल हो जाता है, पति के सम्मुख पत्नी की धीरे धीरे किस प्रकार झिझक खुलती है, किस क्रम से उसकी लज्जा कम होती तथा रति में अनुकूलता बढ़ती जाती है आदि बातें देव ने स्वयं कहा है।

तातें कामिनि एक ही कहन सुनन को भेद।
रापें पागें प्रेमरस मेटें मन को खेद।
कौन गनै पूरब नगर, कामिनि एकै रीति।
देखत हरै बिबेक कों, चित्त हरै करि प्रीति।
—'रसबिलास चतुर्थ बिलास छंद सं० ३, ४'

तथा—

---

* रस सिंगार को भाव उर उपजत जाहि निहारि।
ताही सों कबि नाइका, बरनत बिबिध बिचारि।
"छन्द स० ११ जगद्विनोद, पद्माकर"

उपजत जाहि बिलोकि कैं, चित बीच रस भाव।
ताहि बखानत नाइका, जे प्रबीन कबिराव।
"छन्द सं० ५ रसराज, मतिराम"

जा कामिनि में देखिए, पूरन आठहु अंग ।
ताहीं बरनै नायिका, त्रिभुवन मोहन रंग ।

—"रस विलास ४ ६"

वास्तव में नायिका भेद की आधारशिला मनोवैज्ञानिक है । विभिन्न अवस्थाओं, दशाओं तथा स्थितियों में स्त्रियों के मन की दशा क्या हो जाती है अथवा होती है, का विवेचन नायिका भेद वर्णन में होता है और होना चाहिए । अतः रहीम की "नगर शोभा" और देव के "रस विलास" में विभिन्न प्रान्तों, जातियों, व्यवसायों आदि की स्त्रियों के परिगणन एवं वर्णन अनावश्यक एवं अनुपयुक्त ही ठहरते हैं ।

नायिका भेद को इतना विस्तृतरूप देकर देव ने एक कार्य अवश्य किया नायिकाओं की संख्या में वृद्धि का आग्रह करने वाले कवि एवं आचार्यों के लिए इन्होंने मार्ग प्रशस्त कर दिया । अनेक आचार्यों ने उसका अनुकरण किया । इनमें दास और रसलीन के नाम उल्लेखनीय हैं ।

भिखारी दास—नायिका भेद पर लिखी गई उनकी प्रशसनीय रचना "निर्णय" (रचना काल सन् १७५०) है ।

१—कर्मानुसार अथवा नायक के साथ सम्बन्ध के अनुसार इन्होंने आत्मधर्मानुसार भेद किए हैं ।

पहिले आतम धर्म तें, त्रिविधि नायिका जानि ।
साधारन बनिता अपर, सुकिया परकीयानि ।

—"शृङ्गार निर्णय छन्द सं० २७'

२—प्रायः सभी आचार्यों ने स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा ये तीन भेद किए हैं । परन्तु दास ने स्वकीया के भेद किए हैं । पतिव्रता, उत्कण्ठित और आपुर्बे ।

—"छन्द सं० १२"

३—दक्षिण शठ और धृष्ट नायक के भेदानुसार इन्होंने ज्येष्ठा कनिष्ठा, के ६ उपभेद किए हैं । यथा—

साधारण ज्येष्ठा, दक्षिण की ज्येष्ठा-कनिष्ठा, शठ की ज्येष्ठा, शठ की कनिष्ठा धृष्ट की ज्येष्ठा तथा धृष्ट की कनिष्ठा । —"छन्द सं० १० ७१"

४—सब ने परकीया के दो भेद किए हैं। अनूढ़ा और ऊढ़ा तथा अनूढ़ा को यों ही छोड़ कर ऊढ़ा के गुप्ता आदिक ६ भेद किये हैं। परन्तु दास ने परकीया के सर्वप्रथम मगवमा और धीरा, ये दो भेद किए हैं३। फिर अनूढ़ा और ऊढ़ा दो भेद किये हैं ✱ ऊढ़ा के प्रथम असाध्या, सुख साध्या और साध्या ये तीन भेद किये हैं () फिर विदग्धा, लक्षिता, मुदिता और अनुशयना ये चार भेद किये हैं। + "गुप्ता" को विदग्धा के अन्तर्गत रखा है। × और कुलटा को छोड़ दिया है। मुदिता और अनुशयना में भी विस्तार स्थापित किया है। स्वकीया में भी अनूढ़ा और ऊढ़ा का कथन किया है। सबसे अधिक महत्व-पूर्ण बात यह है कि इन्होंने अनूढ़ा के भी भेद कर दिये हैं। उद्बुद्धा और उद्बोधिता। उद्बुद्धा के दो उपभेद, अनुरागिनी तथा प्रेमासक्ता। +

२—अनुशयना के नवीन प्रकार ही ३ भेद हैं। केलिस्थान विनासिता, भावस्थान अभाव, संकेतनि: प्राप्यता।

केलिस्थानविनासिता, भावस्थान अभाव।
अरु संकेतनिप्राप्यता, अनुसयना त्रै भाव॥ "छन्द सं० १३१"

इसके आगे मुदिता, विदग्धा, अनुशयना विदग्धा तथा पूर्वा अनुराग विदग्धा, ये सर्वप्रथम नवीन विभेद कर दिये हैं। —"छन्द स० ११८, १२०"

६—परकीया में भी मुग्धा मानी है— 'छन्द सं० १२६"। इतना ही नहीं परकीया अज्ञातयौवना का भी वर्णन किया है। —"छन्द स० १२६।"

७—स्वकीया के समान इन्होंने परकीया के भी तीन भेद किए हैं। साधारण, मध्या तथा प्रौढ़ा। "छन्द सं० १३०, १४०"। यह विभाजन उपयुक्त प्रतीत होता है।

---

३ छन्द सं० १०।
✱ छन्द स० ७४।
() छन्द स ३३, ३४।
+ छन्द स० ३३।
× छन्द स० १०४, १०६, ११०।
+ छन्द सं० ८०, ८१।

८—अवस्थानुसार 'दास' ने अष्ट नायिकायें लिखी हैं। इन्हें संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार में विभाजित किया है।

हेतसंजोग वियोग की, अष्ट नायिका लेखि।
तिनके भेद अनेक हैं, मैं कछु कहौं विसेखि ॥
—"छन्द सं० १५०"

संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत तीन नायिकाएँ ली हैं। स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, तथा अभिसारिका। स्वाधीनपतिका के स्वकीया और परकीया दो भेद करके तीन उपभेद किये हैं। रूपगर्विता, प्रेमगर्विता तथा गुणगर्विता।
—"छन्द स० १२७, १२८"

वासकसज्जा के अन्तर्गत आगतपतिका को रख दिया है।
—"छन्द स० ११४, ११८"

अभिसारिका के स्वकीया और परकीया भेद करके शुक्लाभिसारिका और कृष्णाभिसारिका का कथन किया है। —"छन्द सं० ११४, ११८"

संयोग श्रृंगार की तीन नायिकाओं को स्वकीया और परकीया, दोनों रूपों में वर्णन करना सिवाय विस्तार प्रेम के और कुछ नहीं कहा जा सकता है।

वियोग श्रृंगार में उत्कंठिता खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा और प्रोषितभर्तृका। इन ५ भेदों को लिखा है।

विरह हेत उत्कंठिता, बहुरि खंडिता मानि।
कहि कलहांतरितानि पुनि, गने विप्रलब्धानि ॥
पाँचों प्रोषितभर्तृका सुनो, सकल कविराय।
तिनके लच्छन लच्छ अब आछौ कहौं बनाय ॥
—"छन्द सं० १६६, १७०"

खंडिता के अन्तर्गत धीरादि भेद और मानिनी का उल्लेख किया है। 'छन्द सं० १७७, १८२"। इसके बाद मानिनी के अन्तर्गत लघुमान, मध्यमान और गुरुमान का भी कथन कर डाला है। —"छन्द सं० १८३, १८५"

कलहांतरिता के अन्तर्गत भी मान भेद का निरूपण है। "छन्द सं० १८८, १९०" पीछे से साधारण मान का भी वर्णन कर दिया है। "छन्द सं० १९१"

"दास" ने कलहांतरिता का लक्षण इस प्रकार दिया है—

कलहान्तरिता मानि के चूक मानि पछिताय।
सहज मनावन की जतन मान सौंति ह्वै जाय ॥
—"छन्द सं० १८१"

ऐसी स्थिति में नायिका द्वारा मान किये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता है, कलहांतरिता 'मान" और उसके उपभेद का कथन केवल विस्तार प्रेम अथवा नायिकाओं की संख्या में वृद्धि करने का चाव ही कहा जा सकता है।

४—प्रोषितभर्तृका के अन्तर्गत इन्होंने प्रवत्स्य प्रेयसी, आगच्छपतिका और आगतपतिका का उल्लेख किया है। —"छन्द सं० १९७ २०१"

दास ने जहाँ नायिका भेद वर्णन में संख्या वृद्धि के प्रति रुचि दिखाई है, वहाँ मौलिकता का भी परिचय दिया है। उपर्युक्त विवेचन द्वारा इनकी तीन नई बातें सामने आती हैं।

१—अष्ट नायिकाओं को संयोग और वियोग शृङ्गार में विभाजित करके अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

२—आगच्छपतिका और आगतपतिका, इन दो विभागों को पृथक करके इन्होंने अपने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की सूक्ष्मता का परिचय दिया है।

३—सामान्या, और कुलटा का चर्चा न करके इन्होंने अपने नायिका भेद वर्णन में शुद्ध आदर्श स्थापन की रुचि को व्यक्त किया है।

रसलीन—(सैयद गुलाम नबी) ने ग्रन्थ "रस प्रबोध" (रचनाकाल सन् १७४१) में नायिका भेद का कथन किया है। इन्होंने निम्न प्रकार से विषय का विस्तार किया है।

१—मुग्धा के ५ भेद किए हैं। अंकुरित यौवना शैशव यौवना, नवयौवना, नवल अनंगा और नवल वधू। फिर इनमें अन्तिम तीन के उपभेद किये हैं।
—"छन्द सं० ६२, ८०"

(अ) नवयौवना के २ भेद—अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना।

(ब) नवलअनंगा के दो भेद—अविदित काम तथा विदित काम।

(स) नवल वधू के ३ भेद—नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा तथा लज्जाप्राय रति-कोविदा।

लज्जासक्त रति कोविदा नायिका तो हमारे विचार से मध्या के समकक्ष पहुँच जाती है।

२—मध्या के ४ भेद लिखे हैं। उन्नतयौवना, उन्नतक्रम, प्रगल्भवचना तथा सुरतिविचित्रा। इन्होंने मध्या का लक्षण समान लज्जामदना लिखा है—"छन्द सं० ११, १०२"। इसी के साथ मध्या को प्रगल्भवचना और सुरतिविचित्रा बता देना हमारे विचार से युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता है।

३—स्वकीया के अन्तर्गत ३ प्रकार की दुःखिताओं का वर्णन किया है। मूढ़पति दुःखिता, बालपति दुःखिता तथा वृद्धपति दुःखिता। ("छन्द सं० १४४, १४७) सम्भवतः रसलीन यह बताना चाहते थे कि कारणों वश ही परपुरुष में अनुरक्त हो जाती है।

४—(अ) अनूढ़ा और ऊढ़ा भेद लिखकर परकीया को असाध्या और सुख साध्या दो भेदों में विभाजित किया है।

पुनि परकीया सभे विधि, बरनत हैं कवि सोइ।
एक असाध्या दूसरी, सुख साध्या जिय जोइ॥
—"छन्द सं० २००"

यहां पर रसलीन ने यह कहा है कि कोई-कोई आचार्य असाध्या के तीन भेद करते हैं। असाध्या, दुःसाध्या तथा निरधार सुख साध्या। —"छन्द सं० २०१" पता नहीं इन्होंने किन पूर्ववर्ती आचार्यों की ओर संकेत किया है। यहाँ इतना ही कह कर छोड़ दिया है लक्षणादि नहीं दिये हैं।

इसके बाद असाध्या और सुख साध्या के क्रमशः ५ और १० भेद किये हैं। असाध्या के पांच भेद। समीता, गुरुजन समीता, दूतीवर्जिता, अतिकान्ता और खलयुत। —"छन्द सं० २०५, २०३"

सुख साध्या के १० भेद। वृद्धवधू, बालवधू, नपुंसक वधू, विधवा वधू, गुनीवधू, गुनरिम्सवती, सेवक वधू, निरंकुश, परतियासक्त पति की स्त्री तथा अति रोगी की स्त्री। — 'छन्द सं० २०५, २०६"

उक्त भेद मनोविज्ञान की अपेक्षा कामशास्त्र के अधिक अनुकूल हैं। सम्भवतः यह बताने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार की स्त्रियाँ प्रायः पर पुरुष

में अनुरक्त होती हैं अथवा किन श्रेणियों की स्त्रियों पर नागरिकजन सरलतापूर्वक डोरे डाल सकते हैं।

(च) अनूढ़ा और ऊढ़ा भेदों के अद्भूता तथा अद्भूविता दो-दो उपभेद और किए हैं।

> ऊढ़ अनूढ़ा दुहुन में, ये द्वै भेद विचारि,
> पहिले अद्भूता बहुरि, अद्भूविता निहारि।
>
> —"छन्द सं० २२१"

यहाँ पर स्वयं दूती नायिका की भी चर्चा कर दी है।

—"छन्द सं० ३३१

२—परकीया के उपभेद विदग्धा के अन्तर्गत पतिवंचिता तथा दूतीवंचिता दो भेद और किए हैं।

—"छन्द सं० ०२१, ३३१

३—खण्डिता के भी तीन भेद किए हैं। सुरतिखण्डिता, प्रकाश्यखण्डिता व प्रकाशखण्डिता द्वितीय।

—"छन्द सं० २५७, १६०

७—स्वकीया और परकीया, प्रत्येक के तीन नए उपभेद किए हैं। कामवती, अनुरागिनी और प्रेमासक्त। यथा—

> स्वकिया और परकिया दोऊ, बिना नेम परमान
> कामवती अनुरागिनी, प्रेम असक्ता जान।
>
> —"छन्द सं० १८३"

८. सामान्या के ४ उपभेद किए हैं। स्वतन्त्रा, जननी अधीना, नेमत तथा प्रेमदु:सिता।

—"छन्द सं० ३११, ३०१

यहाँ पर सम्भवतः यह बताने का प्रयास किया गया है कि सामान्या किन कारणों वश इस पेशे को अपना लेती है अर्थात् किन किन परिस्थितियों में स्त्री सामान्या अथवा वेश्या बन जाती है। वैसे सामान्या का एक ही धर्म होता है। "धन मनोरम" "धन मोह पै प्रेम हैं, काम चोट उपजाय" (छन्द सं० २६०) अतः सामान्या के उपभेद करना युक्तियुक्त नहीं है।

९—दशा भेद में वक्रोक्ति द्वारा गर्विता के तीन भेद नए किए हैं।

—"छन्द सं० ३२९, ३३२, ३३८"

आगतपतिका के अन्तर्गत संयोग गर्विता उपभेद का भी कथन किया है।

—"छन्द सं० ४६०"

१०—अष्ट नायिकाओं के कथन के अन्तर्गत गमस्यतपतिका, गच्छतपतिका तथा आगतमस्यतपतिका, इन तीन उपभेदों को भी लिखा है। इस प्रकार प्रवत्स्य प्रेयसी और आगतपतिका इन दो प्रकार की नायिकाओं की मनोवैज्ञानिक स्थिति का अधिक विस्तार से क्रमिक विवेचन कर दिया गया है।

११—जाति अनुसार ४ प्रकार की नायिकाओं का वर्णन किया है।

—"छन्द सं० ४३६, ४२४"

१२—लोक भेदानुसार नायिकाओं के ३ भेद किए हैं। दिव्य, अदिव्य तथा दिव्यादिव्य।

> इन्द्रानी दिव्या कहै, नर तिय कहै अदिव्य,
> सिय लौं जो तिय अवतरै, सो कहि दिव्यादिव्य।
>
> —"छन्द सं० ४५६"

१३—स्वकीया के आयु के अनुसार १३ भेद किए हैं। सात वर्ष की आयु वाली को देवी कह कर शुरू करते हैं और ४९ वर्ष की आयु तक चले जाते हैं। (छन्द सं० ४६३, ४०९) साथ ही यह बता देते हैं कि इनमें मुग्धा के ५, मध्या के ४ तथा प्रौढ़ा के ४ भेद होते हैं।

—"छन्द सं० ४००, ४०८"

१४—अन्त में आयु के अनुसार स्त्रियों की विभिन्न संज्ञाएँ निर्धारित की हैं, जैसे सात वर्ष तक कन्या, तेरह वर्ष की आयु तक गौरी अथवा बाला, तेईस वर्ष तक तरुणी और फिर चालीस वर्ष तक प्रौढ़ा।

—"छन्द सं० ४८१"

रसकाल्लोल में अपने द्वारा वर्णित नायिकाओं की संख्या ११५२ बताई है। उन्होंने स्वयं गणना की है।

> इक सुवकीया है परकीया, सामान्या मिलि चारि।
> अष्ट नायिका मिलि सोई, बत्तिस होत विचारि।

अष्टमा'द सो मिलि यहै, सुन छियानवे होत,
पुनि चौरासी तीन से, पद्मिनि आदि उद्योत।
तेरा से बावन बहुरि, दिव्यादिक के संग,
यों गनना में नायिका बरनी बुद्धि तरंग।
"छन्द सं० ६६६, ६८"

इस गणना में पैरा संख्या १२ और १३ में बताए गए उपभेद नहीं आते हैं। हमारे मत में इनका नायिका भेद के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि रसलीन ने परकीया और गणिका का विशेष रूप विस्तार किया है। अनेक नए भेदों की चर्चा करके इन्होंने अपनी विस्तारकारिणी प्रतिभा का परिचय दिया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्न निष्कर्ष ठहरते हैं।

१—नायिका भेद की परम्परा काव्यशास्त्र की परम्परा के साथ प्रारम्भ होती है। अतः भरतमुनि नायिका भेद के प्रवर्तक हैं।

२—भरतमुनि कृत नायिका भेद पर्याप्त व्यापक है। उसके अन्तर्गत वर्तमान नायिका भेद की प्रायः सभी नायिकायें किसी न किसी रूप में आ जाती हैं।

३—भरत मुनि और धनञ्जय ने नायिकाओं का वर्णन अभिनय के सम्बन्ध में किया है। अतएव अभिनय ही नायिका भेद की उत्पत्ति का मूल कारण है। काव्य में उसका प्रवेश बाद में हुआ। संस्कृत के अधिकांश आचार्यों रुद्र, भोज, मम्मट रुय्यक वाग्भट, (द्वितीय) केशव मिश्र आदि ने सम्भवतः इसी कारण उसे काव्य रूप में ही ग्रहण कर उसका संक्षेप वर्णन किया है।

४—हिन्दी के काव्याचार्यों ने नायिका भेद कथन की सामग्री 'नाट्य शास्त्र' और "दश रूपक" से सामान्य रूप में तथा "साहित्यदर्पण" और "रसमंजरी" से विशेष रूप से ग्रहण की है।

वास्तव में "रसमंजरी" के अनुसार ही अधिकांश आचार्यों ने नायिका भेद कथन की परिपाटी निश्चित की है, "साहित्यदर्पण" में किए गये मुग्धा, मध्या

और प्रगल्भा के उपभेद हिन्दी के आचार्यों को स्वीकृत नहीं हुए। "रसमंजरी" के उपभेद तथा अन्य नायिकाओं को उन्होंने उसी रूप में ग्रहण किया ऽ

इतना ही नहीं कतिपय कवियों ने भानुदत्त के अनुकरण पर हिन्दी में भी "रसमञ्जरी" की रचना कर डाली। अतः नायिका भेद की सम्पूर्ण सामग्री भानुदत्त कृत "रसमञ्जरी" से ली गई है और "रसमञ्जरी" को ही नायिका भेद का उद्‌गम स्थान मानना चाहिए। यहाँ एक बात स्मरण रखना चाहिए कि रसमंजरीकार ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थ से निस्संकोच सहायता ली है। उसमे यथा स्थान उनका उल्लेख भी किया है। यथा। धनञ्जय (पृष्ठ स० ५) रुद्र (पृष्ठ स० ७०) तथा भोज (पृष्ठ स० ८६)

ऽ १—स्वकीया में भेद। मुग्धा के उपभेद।

(१) साहित्य दर्पण के अनुसार प्रथमावतीर्ण, यौवनाप्रथमावतीर्णा मदन-विकारा, रतिवामा, मानमृदु और समधिक लज्जावती।

२—रसमञ्जरी के अनुसार अंकुरित यौवना (ज्ञात यौवना, अज्ञात यौवना) नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा। मध्या के उपभेद।

(१) साहित्य दर्पण में ५ उपभेद।

(२) रसमंजरी में कोई उपभेद नहीं किया गया है।

प्रगल्भा के उपभेद—(१) साहित्य दर्पण के अनुसार स्मरान्धा, गाढ तारुण्या, समस्तरतकोविदा, भावोन्नता, दरव्रीडा और आक्रान्ता।

(२) रसमञ्जरी के अनुसार। रतिप्रीता और आनन्दसम्मोहा।

ऽ साहित्यदर्पण में स्वकीया के ज्येष्ठ कनिष्ठ उपभेद नहीं किये गए हैं, रसमंजरीकार ने किये हैं।

परकीया के भेद—साहित्यदर्पण में परोढ़ा के अन्तर्गत केवल 'कुलटा की ओर सकेत किया है। रसमंजरी में गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयना और मुदिता वर्तमान प्रचलित सभी भेद किये हैं। विदग्धा और अनुशयना के भी उपभेद किये गये हैं। साहित्य दर्पण में मान भेद की चर्चा नहीं है। रसमञ्जरी में मान भेद तथा गर्विता दोनों का वर्णन किया गया है।

२—हिन्दी में नायिका भेद की आरम्भिक कृतियाँ नन्ददास कृत 'रसमंजरी' और रहीम कृत "बरवानायिका" हैं।

३—आचार्य की दृष्टि से नायिका भेद का सर्व प्रथम कथन "रसिकप्रिया" में हुआ है। अतः केशवदास हिन्दी साहित्य में नायिका भेद के प्रथम आचार्य हैं। हालांकि परवर्ती कवियों के समान "रसिकप्रिया" में नायिका भेद का विशद विवेचन नहीं हुआ है। परन्तु दोहा में लक्षण लिख कर, फिर उसी के साथ कवित्त अथवा सवैया में उदाहरण देने वाली परिपाटी का प्रवर्त्तन केशवदास ने (१६५०) ही किया था।

७—परवर्ती कवियों में केवल 'देव' ने थोड़ा सा अनुकरण किया है वरन् अधिकांश कवियों को मतिराम की शैली उपयुक्त प्रतीत हुई। मतिराम हिन्दी साहित्य के नायिका भेद के सर्व मान्य आचार्य हैं। उनके नायिका भेद का क्रम सीधा और सरल है।×

८—वर्ग के अनुसार नायिकाओं के दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य, ये तीन भेद संस्कृत आचार्यों ने, रससारीकार ने किए। हिन्दी के आचार्यों में केवल चिन्तामणि और देव ने इन्हें स्वीकार किया है। चिन्तामणि ने सर्वप्रथम नायिका के दिव्यादिव्य भेद किये हैं, परन्तु देव ने इनका पृथक् वर्ग नहीं बनाया। उन्हें स्वकीया के अन्तर्गत लिखा है।

६—प्रायः सभी कवियों ने सामान्या और कुलटा नायिकाओं को न तो प्रश्रय ही दिया है और न विस्तार पूर्वक वर्णन ही किया है। चूँकि ये भी समाज का एक अङ्ग हैं, अतएव मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनकी भी चर्चा करती है। मनो-वैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति के अतिरिक्त सामान्या के वर्णन में व्यावहारिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती है। दूसरों के धन को चतुरतापूर्वक हरण कर लेने की कला में वेश्याएँ अत्यन्त प्रवीण होती हैं। अतः प्राचीनकाल में लोग चतुरता सीखने के लिए वेश्याओं के घर जाया करते थे। नीति-शास्त्र में चतुरता

× मतिराम कृत नायिका भेद के अन्तर्गत यह बात स्पष्ट की जा चुकी है।

सीखने के बहुत साधन बताए गए हैं। उनमें वेश्या भी एक है। + इसके अतिरिक्त वेश्यागामी पुरुष को नायिका भेद के अन्तर्गत "वैसिक" नायक बताया गया है। आचार्यों ने वैसिक नायक द्वारा गणिका के प्रेम को बड़ा ही निकृष्ट और समाज में वैसिक नायकों की स्थिति को निम्न बताया है। इतना ही नहीं इन कवियों ने परकीया के प्रेम की भी निन्दा की है। उन्होंने परकीया के कण्टका कीर्ण मार्ग का उल्लेख करते हुए पाठकों को सचेत किया है कि वे इस मार्ग पर न जायें, यह बड़ा ही भयावह है, यह सर्वथा अहितकर है।

पर रस चाहे परकीया, तजे आपु गुन गोत।
आपु आँहि खोआ मिले, खात दूध फल होत॥ —"देव",

जहाँ परकीया के प्रेम को लोप में गर्म पानी मिला कर बनाए गए नकली दूध के समान बताया है, वहाँ स्वकीया के प्रेम को सोने में सुगन्ध का संयोग बताया है उनका निश्चित मत है कि परकीया का प्रेम सर्वथा मिथ्या और निस्सार होता है। अन्य स्त्री से प्रेम करने के फलस्वरूप कसक, तपन और

+ देशाटनं पंडितमित्रताच वारांगना राजसभाप्रवेशः
अनेक शास्त्राणि विलोकतानि चातुर्यमूलानि भवन्ति पंचः
तस्करा पन्डका मूर्खा सुख प्राप्तधनास्तथा।
लिंगिनश्छन्न कामाद्या आसां प्रायेणवल्लभः
"साहित्य दर्पण ३, ७०"

छोरत ही जु छरा के छनो छिन छाए तहाँई उमंग अदा के।
त्यों पद्माकरजे सिसकस के सोर घने सुख मोरि मजा के॥
दै धन धाम धनी अब ते मन ही मन मानि समान सुधा के।
बार बिलासिनि ती के जु पै अखरा अखरा नखरा अखरा के॥
"जगद्विनोद छन्द सं० २०१"

सोने में सुगंध नहिं गंध में सुन्यो न सोनो।
सोनों औ सुगन्ध तो में दोनों देखियतु हैं॥
"पद्माकर"

नैरात्य की ही प्राप्ति होती है। * अतएव स्पष्ट है कि आचार्य गन्ध शुद्ध कोप्पको स्थापित करने के पक्ष में थे।

१०—आरम्भ में भरतमुनि ने नायिकाओं के ७२ भेद लिखे, इनमें क्रमशः वृद्धि होती गई। और बढ़ते-बढ़ते इनकी संख्या डेढ़ हजार के लगभग पहुँच गई। नायिकाओं का संख्या में वृद्धि करने में रुचि रखने वालों में देव दास और रसलीन प्रमुख हैं। देव ने नायिकाओं का विस्तार देश, सत्व प्रकृति और जाति के अनुसार किया। दास और रसलीन ने मुख्य भेदों के अनेक अन्तर्भेद कर दिये। रसलीन ने परकीया और सामान्या के उपभेदों की विशेष रूप से वृद्धि की। किन्तु दास ने अन्य नायिकाओं का तो विस्तार किया, किन्तु सामान्या और कुलटाओं का कथन नहीं किया है।

११—प्रारम्भ में नायिका भेद का विवेचन अभिनय की वस्तु थी। इसी कारण भरतमुनि ने अभिनय की योजना को ध्यान में रखते हुए उनके स्वभाव, अवस्था, वय (यौवन) तथा नायक के साथ सम्बन्ध के अनुसार उनके स्वरूप की ओर संकेत किया है। बाद में नाटक भी काव्य का एक महत्वपूर्ण अङ्ग बन गया और नायिका भेद काव्यशास्त्र के उपांग रूप में गृहीत हुआ। वास्तव में नायिका भेद काव्य शास्त्र के एक उपांग के रूप में ही गृहीत होना चाहिए। मनोवैज्ञानिक विवेचन होने के कारण नाटक और काव्य में नायिका भेद का इतना ही उपयोग है कि नाटक और काव्य के पात्रों के स्वरूप चित्रण में कोई अनुचित अथवा अमर्यादित बात न आ जाए।

१२—नायिका को दो रूपों में ग्रहण किया गया। नाटक के नायक की पत्नी के रूप में अर्थात् एक पूर्व परम्परागत अर्थ में तथा व्यापक रूप में, जिसके अन्तर्गत स्त्री मात्र नायिका बन गई। फलतः विभिन्न आचार्यों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार वर्गीकरण के विभिन्न आधार मानकर नायिकाओं के भेद उपभेद किए। उन्होंने उनका कोई भी निश्चित एवं वैज्ञानिक क्रम निर्धारित नहीं किया। विभिन्न आचार्यों ने नायिकाओं के वर्गीकरण के निम्न आधार माने हैं।

---

* मूले हू न भोग, बढ़ी बिपत बियोग बिया।
भोग हू तें कठिन संयोग पर नारी को॥

भरतमुनि—इन्होंने नाटक के अभिनय की योजनानुसार नायिका भेद का कथन किया है, किन्हीं आधारों की चर्चा नहीं की है। भरतमुनि ने इस प्रकार नायिकाओं का कथन किया है।

(१) नायिका की ८ अवस्थाएँ।

(२) ३ प्रकार की स्त्रियां "नायक के साथ सम्बन्ध के आधार पर"

३—प्रकृति के विचार से तीन प्रकार की स्त्रियाँ।

४—स्त्रियों का ४ प्रकार का यौवन।

५—४ प्रकार की नायिकाएं तथा ४ रामाओं के १७ आंतरिक गण।

धनंजय—१ नायिका के ३ प्रकार, नायक के साथ सम्बन्ध के आधार पर २ अष्ट नायिकाएँ, अवस्था के अनुसार।

भानुदत्त१—स्वस्वधाम्य यौवन, रति और लज्जा के अनुसार नायिका के तीन प्रकार।

२—दशानुसार ३ प्रकार।

३—अष्ट नायिकाएँ।

४—रति में अनुकूलता के विचार से।

५—पुन तीन प्रकार की नायिकाएँ—दिव्यादिक।

विश्वनाथ १—नायक के समान्यगुणों के आधार पर।

२—गुणानुसार। तथा

३—अवस्थानुसार अष्ट नायिकाएँ।

केशवदास १—जाति अनुसार।

२—कर्मानुसार।

३—अष्टनायिकाएँ तथा।

४—गुणानुसार।

मतिराम—(१) कर्मानुसार (२) दशानुसार (३) दश नायिकाएँ तथा (४) गुणानुसार।

देव—(१) नागरी आदिक (२) जाति अनुसार (३) कर्मानुसार (४) गुणानुसार (५) देशानुसार (६) कालानुसार (७) वयक्रमानुसार (८) प्रकृति अनुसार तथा (९) सत्वानुसार।

व्यास—(१) आत्मधर्मानुसार (२) अवस्थानुसार (३) अष्ट नायिकाएं (४) उत्तमादि ।

रसलीन—(१) कर्मानुसार (२) वयानुसार (३) अष्ट नायिकाएँ तथा (४) गुणानुसार ।

पद्माकर—(१) कर्मानुसार (२) दशानुसार (३) दशाविधि नायिकाएँ तथा (४) गुणानुसार उपर्युक्त विवेचन के द्वारा हमारे दो निष्कर्ष ठहरते हैं ।

(क) मूलरूप के नायिकाओं के ८ या १० भेद ठहरते हैं । ये भेदनायिकाओं की मनोवैज्ञानिक अवस्था एवं नायक की स्थिति पर अवलम्बित हैं । आचार्यों ने अष्ट नायिकाएँ अथवा दशाविधि नायिकाएँ करके इनका कथन किया है ।

(ख) समस्त नायिकाएँ ४ वर्गों के अन्तर्गत आ जाती हैं ।

१—जाति अनुसार ४ भेद पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी । मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह भेद विशेष महत्त्व का नहीं है । इस भेद का आधार कामशास्त्र है ।

२—कर्मानुसार अथवा नायिका के साथ सम्बन्ध के आधार पर ३ भेद स्वकीया, परकीया और सामान्या (गणिका) । यह वर्ग सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं सम्पूर्ण नायिका भेद का आधार है ।

यौवन, रूप, गुण, शील, प्रेम, कुल भूषण और वैभव इन आठ गुणों से युक्त नायिका स्वकीया—कहलाती है । लज्जा और रति प्रीति के आधार पर उसके ३ भेद ठहरते हैं मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा ।

नव विवाहिता लज्जाशील स्त्री मुग्धा है । वयक्रम से इसके दो भेद ठहरते हैं । अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना ।

नवविवाहित दम्पति की काम क्रीड़ा के आधार पर "ज्ञातयौवना" के दो भेद हो जाते हैं । 'नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा ।'

मध्या—में काम वासना और लज्जा समान होती है, यह दशा सूक्ष्म तथा थोड़े ही समय तक रहने वाली होती है । अतः इसका कोई उपभेद नहीं होता ।

प्रौढ़ा—नायक को सब प्रकार से सन्तुष्ट करने की क्षमता रखती है । इसके दो भेद होते हैं । रतिप्रीता तथा आनन्द संमोहा ।

मानभेद—के आधार पर मध्या और प्रौढ़ा के तीन-तीन भेद होते हैं। धीरा, अधीरा और धीरा धीरा।

एक ही पुरुष की एक से अधिक पत्नियाँ होने की दशा में जिस पत्नी पर अधिक प्रेम हो उसे ज्येष्ठा और जिस पर न्यून हो उसे कनिष्ठा कहा जाता है।

परकीया नायिका—जो स्त्री गुप्त रूप से परपुरुष की अनुरागिनी होती है, उसे परकीया नायिका कहते हैं। यह पुरुष चाहे विवाहित हो अथवा अविवाहित। जो अपना नहीं है, वह 'पर' है। इसी कारण 'गुप्त' रीति से प्रीति करने वाली नायिका 'परकीया' है। वह स्वकीया नहीं हो सकती।

परकीया नायिका के मुख्य रूप से दो भेद किए गए हैं। अनूढ़ा और ऊढ़ा अर्थात् परोढ़ा। संस्कृत आचार्यों ने अनूढ़ा के लिए कन्या शब्द का प्रयोग किया है।

संस्कृत के तथा हिन्दी के आचार्यों के 'अनूढ़ा' अथवा 'कन्या' की चर्चा नहीं की है, केवल विषय को पूर्ण करने की दृष्टि से संकेत भर कर दिया है। दास और रसलीन ने अवश्य ही इसके विभेद कर दिये हैं।

इस प्रकार 'ऊढ़ा' ही परकीया नायिका ठहरती है। व्यवहार और कार्य कलाप को ध्यान में रख कर परकीया अथवा ऊढ़ा के ६ भेद किए गए हैं परकीयत्व की मनोभावना के अनुसार उसका क्रम इस प्रकार रखा जा सकता है। मुदिता, विदग्धा 'वचन और क्रिया' अनुशयना, गुप्ता, लक्षिता और कुलटा। जब तक पुरुष से संयोग न हो जाए तब तक वह परकीया नायिका ही नहीं है। संयोग समय वह मुदित होती ही है। इसी कारण हमने 'मुदिता' को सर्वप्रथम रखा है।

विशेष—(अ) अनुशयना के तीन भेद किये जाते हैं जो उसकी अवस्था के सूचक हैं।

१—प्रथम अनुशयना। इसे केलि स्थान विनाशिता अथवा स्थानविघटना आदि नामों से लिखा गया है।

२—द्वितीय अनुशयना। इसे भावीस्थान अभाव, भावीस्थान साधन आदि नाम दिये गये हैं। यथा—

३—तृतीय अनुशयना। इसके लिए निकेत विप्राप्य, संकेत स्पष्टनष्टा आदि नाम लिखे गये हैं।

(ब) गुप्ता के कथानुसार तीन भेद किए जाते हैं।

भूत, वर्तमान तथा भविष्यगुप्ता।

परकीया की सब चेष्टाएँ गुप्त रहती हैं। लक्षिता की दशा में उनकी सब बातें प्रकट हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में वह अपना परकीया पन छोड़ सकती है। सम्भवतः इसी कारण व्यास 'दास' ने परकीया के उपभेद 'कुलटा' की चर्चा नहीं की है।

दास और रसलीन ने उद्बुद्धा और उद्बोधिता करके अनूढ़ा परकीया नायिका के दो उपभेद किए हैं। हरिऔध' ने भी ऐसा ही किया है।*

यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या उस समय 'भरत के समय में' भी भारतवर्ष में क्वारी कन्याएँ गुप्त प्रीति किया करती थीं, तथा क्या उन्हें वास्तव में परकीया कहा जा सकता है, हमारे विचार से ग्रन्थकार के सम्मुख उन कुमारियों का स्वरूप होगा जो विवाह करने की इच्छा से किसी पुरुष से प्रीति करने लगती होंगी। हिन्दुओं के धार्मिक साहित्य में पार्वती, जानकी आदि जैसी अनेक देवियों के उदाहरण मिलते हैं। सम्भवतः आचार्यों ने इस प्रकार की अनूढ़ा परकीया में कोई दोष न देखा होगा और विषय की पूर्ण करने के विचार से 'अनूढ़ा' का कथन कर डाला। महत्वपूर्ण बात यह है कि 'अनूढ़ा के विस्तार का किसी ने भी प्रयास नहीं किया है।

बाद में समय ने पलटा खाया और विलासितामय जीवन हो जाने से अनूढ़ा के परकीया पन के साथ व्यभिचार की भावना जागई हो और रीति कालीन कुछेक कविगण उसकी विस्तृत चर्चा करने को बाध्य हुए। परन्तु अकबर के समय से लड़कियों की अल्पायु में शादी का नियम होने के कारण वे अनूढ़ा का विशेष कथन न कर सके हों। जो भी हो, इतना अवश्य है कि कवियों ने जहाँ तक एक ओर ऊढ़ा परकीया के साथ जी खोलकर खिलवाड़ किया, वहाँ अनूढ़ा परकीया के वर्णन में एक मर्यादा विशेष का कदाचित् ही पालनमय किया है।

---

*रस कलस पृष्ठ संख्या १३०, १३१।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि समाज की वर्तमान परिस्थितियों में अनूढ़ा परकीया की क्या स्थिति हो। आजकल काफी सयानी लड़कियाँ क्वारी रहती हैं, २५, ३० वर्ष की आयु में लड़कियों का विवाह होना एक साधारण सी बात है। बहुत सी लड़कियाँ तो आजन्म क्वारी ही रहती हैं। इस स्थिति के कारणों पर हमें विचार नहीं करना है, परन्तु इतना तो हम निःसंकोच कह सकते हैं कि इनमें अधिकांश लड़कियाँ विशुद्ध कन्या नहीं रह पाती हैं। किन्हीं-किन्हीं समाजों में तो प्रेमपरिणय-(Courtship) का नियम ही है। अर्थात् लड़की प्रीति के नाते को कभी जोड़कर और कभी तोड़कर स्वयं ही अपना पति चुनती है। कभी-कभी ऐसी स्थिति भी आ जाती है जब कि लड़की के सम्मुख यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि अपने अनेक प्रेमियों में वह किसको पति रूप में वरण करे।

इसका सारांश यह है कि आजकल जब ऊढ़ा के समान ही 'अनूढ़ा' भी आचरण करने लगजाती हैं, तो क्या आधुनिक आचार्यों को चाहिए कि वे ऊढ़ा के सदृश अनूढ़ा की भी क्रमानुसार छःओं स्थितियों अथवा भेदों का वर्णन करने लग जाएं। एक से अधिक पुरुषों में अनुराग रखने वाली 'कन्या' निश्चय ही कुलटा कन्या कही जा सकेगी। यदि 'परपुरुष' शब्द में 'पर' का अर्थ 'पराया' लगाया जाए, और परपुरुष का अर्थ किसी अन्य स्त्री का पति किया जाए, तो शायद अविवाहित पुरुष से प्रीति करने वाली कन्या को परकीया न कह सकें। और कहीं यदि अन्त में उस पुरुष के साथ उसकी शादी हो जाए तो फिर परकीया की जगह उसे स्वकीया कहना ही अधिक उपयुक्त हो।

इस सम्बन्ध में हमारा मत है कि मनोवैज्ञानिक विवेचन तथा स्थिति के विकासक्रम को देखते हुए तो आजकल 'अनूढ़ा' परकीया का भी विस्तृत कथन किया जाए तथा 'ऊढ़ा' के समान उसके भी मुदिता, विदग्धा आदि उपभेद किए जाने चाहिए परन्तु भारतवर्ष में प्रचलित कन्यादान आदि जैसी सामाजिक पवित्र परम्पराओं एवं मर्यादा को देखते हुए यदि अनूढ़ा की बिलकुल भी चर्चा न की जाए, तो केवल ऊढ़ा को ही परकीया माना जाए, तो अधिक श्रेष्ठ हो।

परकीया के सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से विचारणीय है। इस विषय

पर लिखने वाले सभी आचार्यों (संस्कृत, हिन्दी) ने परकीया का विवेचन करते समय उसके मानसिक पक्ष को छोड़ दिया है। केवल कायिक तथा वाचिक पक्षों पर विचार किया है। नायिका की वाह्यचेष्टाओं पर ही उसकी दृष्टि ठहर गई है, उसके आन्तरिक पक्ष नायिका के अन्तस में पैठने की कदाचित् उन्होंने चेष्टा नहीं की है।

सामान्या—केवल धन के लिए प्रेम का ढोंग करने वाली नायिका को "सामान्या" या गणिका कहते हैं, इसमें प्रवंचना की मात्रा अधिक होती है निर्लज्जता इसका आभूषण है। गणिका समाज का अभिशाप एवं स्त्री-जाति का कलंक है, परन्तु फिर भी इसकी अपनी विशिष्ट उपयोगिता है।

कविजनों ने सामान्या का वर्णन केवल समाज का एक अंग होने के नाते ही किया है, और वह भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के निर्वाह हेतु, वैसे किसी भी कवि ने सामान्या को विशेष प्रश्रय नहीं दिया है। केशव, चिन्तामणि तथा दास ने तो गणिका या सामान्या का उल्लेख तक नहीं किया है।

केवल रसलीन ही एक ऐसे आचार्य हैं, जिन्होंने सामान्या के उपभेद किए हैं उनके मतानुसार ४ प्रकार की सामान्या नायिकाएं होती हैं।

(१) स्वतन्त्रा, (२) जननी आधीना (३) नेमवता और (४) प्रेम दुःखिता।

हमारे विचार से "सामान्या सामान्या है। उसकी स्थिति एवं मनोदशा एक ही होती है, उसको सामान्या बनने के लिए विवश करने वाले कारण जो भी रहे हों। अतः सामान्या के भेद करना तर्कसम्मत प्रतीत नहीं होता है। साहित्य में भी इन भेदों का प्रचार नहीं हुआ।

६—दशानुसार इस वर्ग के अन्तर्गत नायिकाओं के तीन भेद माने गए हैं। गर्विता, अन्य सम्भोग दुःखिता और मानवती।

गर्विता के दो भेद होते हैं। रूप गर्विता और प्रेम गर्विता। दास ने गुण गर्विता और देव ने कुल-गर्विता का भी कथन किया है, किन्तु अधिकांश आचार्यों ने प्रेम-गर्विता और रूप-गर्विता ये दो ही भेद माने हैं।

रूप, गुण और कुल का गर्व करना किसी हद तक अनुचित हो भी सकता है, परन्तु अपने पति प्रेम का गर्व करना सर्वथा स्वाभाविक है। अतः हमारे

विचार में केवल प्रेम गर्विता का ही कथन होना चाहिए और गर्विता का विभेद न होकर "गर्विता" का स्व अर्थ ही प्रेम गर्विता होना चाहिए। आचार्यों ने रोष के परिमाणानुसार मान के भी लघु, मध्यम और गुरु तीन विभाग कर दिए हैं। इनके कारण उपस्थित करके इनकी सीमाएँ भी बाँध दी गई हैं।

संस्कृत के आचार्यों में भानुदत्त ने तथा हिन्दी के प्रधान आचार्यों में रहीम, मतिराम, रसलीन और पद्माकर ने इन विभेदों का कथन किया है और पृथक् वर्ग में ही रखा है। इसी कारण हमने भी इनका एक पृथक् वर्ग बना दिया है, अन्यथा शुद्ध रूप में ये नायिकाएँ स्वकीया के अन्तर्गत मध्या और प्रौढ़ा में बनती हैं। कुछ आचार्यों ने खींचतान करके मुग्धा में भी इन भेदों को माना है, जो हमारे मत में सर्वथा अमान्य हैं। "मुग्धा" तो पति की आँख से शायद ही कभी आँख मिलाती हो।

४—अवस्थानुसार १० नायिकाएं—इस वर्ग की नायिकाओं का वर्णन करते समय कवियों ने केवल अष्ट नायिकाएँ अथवा दशाविधि नायकाएँ करके ही वर्णन किया है, वर्गीकरण का आधार नहीं लिखा है।

संस्कृत के आचार्यों में केवल भरतमुनि ने नायिका की ८ अवस्था करके लिखा है। हिन्दी के प्रधान आचार्यों में रहीम और देव ने वर्गीकरण का आधार लिखा है और "कालानुसार" वर्ग के अन्तर्गत इनका कथन किया है।

भरतमुनि ने अष्ट नायिकाएँ लिखी हैं।

वासक सज्जा, विरहोत्कंठिता, स्वाधीन भर्तृका, कलहांतरिता, खंडिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका तथा अभिसारिका।

संस्कृत के आचार्यों (धनञ्जय, विश्वनाथ और भानुदत्त) तथा हिन्दी के प्रधान आचार्यों में केशव, चिन्तामणि और देव ने ये ही आठ नायकाएँ लिखी हैं। फिर उनके नाम और क्रम में अन्तर हैं, सन्दास ने "प्रीतमगमनी" और बढ़ा कर यह संख्या ९ कर दी। रहीम, मतिराम और पद्माकर ने प्रवत्स्यत्प्रेयसी और आगतपतिका लिखकर यह संख्या १० कर दी। दास ने आगच्छत्पतिका तथा रसलीन ने आगमप्यपतिका लिख कर इनकी संख्या ११ कर दी। इन दोनों आचार्यों ने मूल रूप में आठ नायिकाएँ ही मानी हैं। रसलीन ने अन्य उपभेदों

को पृथक् लिख दिया है तथा दास ने प्रोषित भर्तृका के अन्तर्गत उपभेदों के रूप में शामिल कर दिया है।

विभिन्न आचार्यों द्वारा किए गए इन नायिकाओं के वर्णन देख लेने के बाद दो बातें सामने आती हैं। (१) इन नायिकाओं का कथन करते समय किसी निश्चित क्रम पर चलने का प्रयास नहीं किया गया है। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार नायिकाओं को आगे पीछे रख दिया गया है। (२) संस्कृत साहित्य के और अनुकरण पर चलने वाले हिन्दी के कवियों ने ८ नायिकाओं का कथन किया है और हिन्दी के अन्य कवि एवं आचार्यों ने १० मानकाएं मानी हैं।

इस भेद को काल, दशा, अथवा किसी अवस्था के अनुसार मान लिया जाए, परन्तु इन नायिकाओं को किसी निश्चित क्रम में रखना अत्यन्त आवश्यक है, ताकि उनकी उत्तरोत्तर विकसित मनोदशा का परिचय प्राप्त हो सके।

नायक अपनी नायिका पर पूर्णतया अनुरक्त होने के कारण उसके अधीन हो जाता है। ऐसी नायिका को स्वाधीनपतिका कहते हैं। ऐसा नायक, नायिका के पास प्रतिदिन आता रहता है। नायिका भी उससे मिलने के लिए साज श्रृंगार सजाए बैठी रहती है। (इस अवस्था वाली नायिका को "वासक सज्जा" कहा गया है) मुग्धा नायिका में निम्नक होने से उसके वासकसज्जा होने में थोड़ी सी आपत्ति आती है, परन्तु विश्रब्ध नवोढ़ा वासकसज्जा हो सकती है। इसी कारण मुग्धा के अन्तर्गत वासकसज्जा का कथन होता है।

नायिका नायक से मिलने के लिए समस्त भोग सामग्री लिए तैयार बैठी है परन्तु नायक अभी नहीं आया है। ऐसी अवस्था में उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करने वाली नायिका को उत्कण्ठिता कहते हैं।

नायक की प्रतीक्षा करते समय नायिका ऊब जाती है। कामार्त्त हो कर स्वयं ही उसके पास चल देती है। इस प्रकार की नायिका अभिसारिका है। इनका आस्तित्व परकीया में ही है। इसी कारण अधिकांश आचार्यों परकीया के अन्तर्गत ही शुक्ला, कृष्णा तथा दिवाभिसारिकाओं का वर्णन है। मुग्धा के अन्तर्गत इनकी पूर्ण सिद्धि नहीं हो पाती है।

मिलने की आशा में नायिका नायक के स्थान पर गई, पर

मिला। नायिका व्याकुल हो गई। इस प्रकार की मनोदशा वाली नायिका विप्रलब्धा हुई।

नायक की इन्तिज़ारी में नायिका व्याकुल रही, परन्तु नायक किसी अन्य स्त्री के साथ केलि करता रहा। प्रातः काल जब नायक महाशय उसके पास आते हैं तो उनके शरीर पर स्त्री संसर्ग के चिन्ह देख कर नायिका को ईर्ष्या होती है। इस प्रकार की मनोदशा वाली नायिका को खंडिता + कहा गया है।

खंडिता की स्थिति में नायिका कभी-कभी नायक को रुष्ट कर देती है। बाद में अपने किए पर पश्चाताप करने वाली नायिका कलहांतरिता कही जाती है।

इसी प्रकार अथवा अन्य किसी कारणवश नायिका का नायक से वियोग होने वाला है। भविष्यत् वियोग की आशंका से दुःखी नायिका प्रवत्स्यत्प्रेयसी कही गई है।

नायक के पृथक् हो जाने पर विरह व्यथा से व्यथित विरहिणी नायिका प्रोषितपतिका कहलाती है।

अब इसका प्रीतम आने वाला है। इस प्रकार अपने नायक के आगमन पर प्रसन्न होने वाली नायिका को 'आगतपतिका" कहा गया है।

दास और रसलीन ने इस मनोदशा को दो भागों में बाँटा है। नायिका ने नायक के आगमन का समाचार मात्र सुना है, किन्तु नायक अभी आया नहीं है। इस स्थिति वाली नायिका को उन्होंने क्रमशः आगच्छपतिका तथा आगमप्यत्पतिका कहा है। जब कि नायक के वास्तविक रूप से आ जाने पर उसे आगतपतिका कहा है। हमारे विचार से इन दोनों अवस्थाओं का एक दूसरे से पृथक् करना, दोनों मनोदशाओं की सीमाएँ निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। यही कारण है कि प्राय सभी आचार्यों ने दोनों मनोदशाओं को बताने के लिए

+ पर स्त्री प्रेम का अनुमान होने पर ही नायिका की नायक के प्रति धीरादि भेदों के अन्तर्गत अनेक चेष्टाओं का वर्णन किया गया है।

केवल आगतपतिका का कथन किया है। अतः मनोदशा के अनुसार सब नायिकाओं का क्रम इस प्रकार होता है।

(१) स्वाधीनपतिका (२) वासकसज्जा (३) उत्कंठिता (४) अभिसारिका (५) विप्रलब्धा (६) खंडिता (७) कलहांतरिता (८) प्रवत्स्यत्प्रेयसी (९) प्रोषित पतिका तथा (१०) आगतपतिका।

प्रभुदयाल मीतल ने भी क्रम माना है। (पृष्ठ सं० १९८) ब्रजभाषा साहित्य में नायिका निरूपण, संस्करण सितम्बर १९५४।

यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। उपर्युक्त क्रम ठीक वैसा ही है जैसा कि रसलीन ने लिखा है। रसलीन ने अष्ट नायिकाओं को इसी क्रम से लिखा है। सम्भवतः इनके वैज्ञानिक क्रम पर सब से पहिले "रसलीन" ने ही विचार किया था।

५—गुणानुसार—यह नायिकाओं का पंचम वर्ग है। प्रायः सभी आचार्यों ने ग्रन्थ में इस वर्ग का कथन किया है। इस वर्ग में तीन नायिकाएँ हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा। *

भरतमुनि ने इन्हें प्रकृति के विचार से लिखा है तथा विश्वनाथ और भानुदत्त ने तीन प्रकार की नायिकाएँ करके इनका कथन किया है। धनञ्जय ने इनका उल्लेख ही नहीं किया है हिन्दी के आचार्यों में इनको "गुणानुसार" लिखा है।

नायिका भेद के विशद विवेचन को पढ़ने के उपरान्त हमें हिन्दी कवियों के बुद्धि वैभव और मनोवैज्ञानिक कथन पर आश्चर्यपूर्ण कौतूहल होता है। हालांकि नायिका भेद काव्य के अन्तर्गत काव्य कला को एक प्रकार से साध्य बना लिया गया था और आचार्य श्यामसुन्दरदास के शब्दों में "इससे कविता में बाह्य सौन्दर्य की पुष्टि हुई है, पर उसकी व्याप्ति संकुचित होती गई है" ऽ परन्तु फिर भी इनके द्वारा सुन्दर साहित्य का विपुल मात्रा में सृजन हुआ। यथा—

* १—देव ने सत्, रज और तम लिखा है।
२—दास ने उत्तमादि करके उक्त तीनों भेद लिखे हैं।

ऽ पृष्ठ १३६ हिन्दी भाषा और साहित्य। संस्करण मकर १९५७।

"उन परिस्थितियों में निर्मित ब्रजभाषा में कोमल कान्त पदावली की अतिशयता ही रही। रुद्र, तिक्त, कषाय आदि के उपयुक्त महाप्राणता न आ कर वह अधिकतर सुकुमार ही बनी रही। कमल, कदली, मयूर, चन्द्र, मदन आदि के लिए उसमें जितने काव्योपयुक्त शब्द हैं, वे सब कोमलता समन्वित हैं। ब्रजभाषा की माधुरी आज भी देश भर में प्रसिद्ध है।' ※

"फुटकर पदों में ही खंड-चित्रों को अंकित करके और प्रेम तथा सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की यथा शक्ति चेष्टा करके उन्होंने जीवन के पारिवारिक पक्ष पर अच्छा प्रकाश डाला है।"●

यह साहित्य काव्य-सौन्दर्य और काव्य-परिणाम दोनों ही दृष्टियों से संस्कृत साहित्य की अपेक्षा अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इन रीति-ग्रन्थों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे, उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों 'विशेषतः शृङ्गार रस' और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत-लक्षण-ग्रन्थों से चुन कर इकट्ठे करें तो भी उनकी उतनी अधिक संख्या न होगी। अलंकारों की अपेक्षा नायिका भेद की ओर अधिक झुकाव रहा इससे शृङ्गार रस के अन्तर्गत बहु सुन्दर मुक्तक रचना हिन्दी में हुई। इस रस का इतना अधिक विस्तार हिन्दी साहित्य में हुआ कि इसके एक-एक अंग को लेकर स्वतन्त्र ग्रन्थ रचे गये। इस रस का सारा वैभव कवियों ने नायिका भेद के भीतर दिखाया है। ×

※ पृष्ठ ११८ हिन्दी भाषा और साहित्य।

● पृष्ठ ११६ हिन्दी भाषा और साहित्य।

× पृष्ठ सं० २८१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, संस्करण सम्वत् १९९०

(घ)

शृङ्गार रस का निरूपण

हिन्दी कवियों के द्वारा किए गए शृङ्गार रस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये कविगण अपने अग्रज संस्कृत के कवियों को ही आदर्श मान कर चले हैं और इनके ❀ विवेचन 'साहित्य दर्पण' तथा 'काव्य प्रकाश' पर ही आधारित हैं, इन्होंने कोई नवीन उद्‌भावनाएँ नहीं की, केवल 'केशवदास' ने शृङ्गार रसान्तर्गत प्रकाश और प्रच्छन्न, ये दो उपभेद करके मौलिक उद्‌भावना की प्रवृत्ति दिखाई है। केशवदास ने 'रसिक प्रिया' में निम्न लिखित प्रकार से "प्रकाश और प्रच्छन्न" विभेद लिखे हैं।

प्रथम प्रकाश। सयोग और वियोग —"छन्द सं० २१, २२"

द्वितीय प्रकाश। अनुकूल आदि नायक —"छन्द सं० ४, १०"

तृतीय प्रकाश। साक्षात् आदि दर्शन —"छन्द २० ६ २१"

पंचम प्रकाश। चेष्टा एवं दूसरा दर्शन —"छन्द सं० ३, १८"

सप्तम प्रकाश। अष्ट नायिका वर्णन —"छन्द सं० ३, २१,

अष्टम प्रकाश। विप्रलम्भ शृङ्गार के पूर्वानुराग आदिक भेद वर्णन तथा अभिलाष आदिक दश दशाओं के वर्णन —"छन्द सं० ७, २३"

नवम् प्रकाश। मान वर्णन —"छन्द सं० ७, २०"

एकादश प्रकाश। करुणा विरह वर्णन —छन्द सं० ३, १२"

संस्कृत के आचार्यों ने रस सम्बन्धी अवयव और उदाहरण लिखने के अतिरिक्त दोषों का भी विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने बताया है कि अमुक रस परस्पर सहायक होते हैं। अमुक रस परस्पर विरोधी होते हैं, अमुक स्थान पर रसाभास होता है अमुक स्थान पर भावाभास होता है, अमुक विभावों का

❀ देखो पाठ संख्या २ और ३।

वर्णन वर्णनीय रस के प्रतिकूल पड़ता है, अमुक का अनुकूल पड़ता है, आदि। जैसे—

१ अविरोधी विरोधी वा रसे ङ्गिनि रसान्तरे।
परिपोषं न नेतव्यस्तया स्याद् विरोधिता।
—"ध्वन्यालोक ३, २४"

अर्थात् जिन रसों का परस्पर में विरोध नहीं है उनका भी प्रबन्धात्मक काव्य में प्रधान रस की अपेक्षा अत्यन्त विस्तृत समावेश किया जाना अनुचित है।

२—रस, स्थायी और व्यभिचारी भावों का शब्द द्वारा स्पष्ट कथन रस दोष माना है।

व्यभिचारिरसस्यापिभावनां शब्दवाच्यता
—"काव्य प्रकाश ७, ६०, ६२"

रसस्थायि व्यभिचारिणां स्वशब्देन वाच्यत्वं
—"हेमचन्द्र, काव्यानुशासन पृष्ठ सं० ११०"

रसस्योक्तिः स्वशब्देन स्थायिसंचारिणोरपि दोषा रसगतामता
—"साहित्य दर्पण ७, १२, १४"

निबंध मानो रसो रस शब्देन शृंगारादि
शब्दैर्वानाभिधानुसुचितः अनास्वादाय स्ते तादास्वादरूपं व्यंजनमात्र निष्पाद्य इत्युक्तत्वात्।
एवं स्थायि व्यभिचारिणामपि शब्द वाच्यत्वं दोष
—"रसगंगाधर पृष्ठ सं० ४०"

३—वर्णनीय रस के प्रतिकूल विभावादि के वर्णन को रस दोष माना है। "ध्वन्यालोक ३, १८। काव्य प्रकाश ७, ११। साहित्य दर्पण ७, १३। रस गंगाधर पृष्ठ ४०।"

इसी प्रकार रसास्वादन में व्याघात पहुँचाने वाले अनौचित्य तथा रसात्मक काव्य में अलंकार विषयक दोष आदि के विवेचन किए गए हैं।

हिन्दी के कवियों में केवल केशवदास ने कतिपय दोषों की चर्चा की है। रसिक प्रिया के सोलहवें प्रकाश में केशवदास ने अनरस वर्णनान्तर्गत प्रत्यनीकरस नीरस, विरस, दुःसंधान और पात्रा दुष्ट के लक्षण उदाहरण लिखे हैं × छन्द संख्या १२ में यह लिख कर कि।

केशव करुणा हास्य कहि अरु वीभत्स शृङ्गार।
वरणो वीर भयानक हि, सन्तत बैर विचार।

उन्होंने विषय को समाप्त कर दिया है।

इसका सारांश यह हुआ कि हिन्दी के कवियों का उद्देश्य लक्षण और उदाहरण लिख कर शृंगार रस का साम्राज्य निरूपण करना ही था, दोषादि पर विचार करना कदाचित् वे आवश्यक नहीं समझते थे।

संस्कृत ग्रन्थों के अनुसार हिन्दी की रचनाओं में "स्वशब्द वाच्यता" इत्यादि दोष यथा स्थान मिलते हैं।

१—निसि जागी लागी हिये, प्रीति उमंगत प्रात।
उठि न सकत आलस वलित, सहज सलोने गात॥
—"जगद्विनोद"

यह आलस का कथन है—

२—मठा तें, मथानी तें, मथन तें, मुमाखन तें।
मोहन की मेरे मन सुधि आय आय जात॥

इसे ग्वाल कवि ने "रस रंग" में "स्मृति" भाव के उदाहरण में दिया है, पर "सुधि" शब्द से "स्मृति" का स्पष्ट कथन हो गया है।

३—पैहै न फेरि गई जो निसा,
तन जोवन है धन की परछाहीं।
त्यों 'पद्माकर' क्यों न मिलै,
उठि यों निबहैगी न नेह सदा हीं।

× छन्द सं० १, ११।

कौन सयान जो कान्ह सुजान सों,
ठानि गुमान रही मनमांहीं ।
एक सो कंज कली न खिली तो,
कहो, कहुँ भौंर भौंर ठौर है नाहीं ।
—"जगद्विनोद"

वियोग शृङ्गार के वर्णन में "यौवन है मन की परछाईं" कहकर यौवन की अस्थिरता का वर्णन करना अनुचित है ।

४—यों अलबेली अकेली कहूँ सुकुमार
सिंगारन के चले के चलें,
त्यों पद्माकर एकन के उर में
रस बीजनि वे चले वे चले,
एकन सों बतराय कछू छिन एकन
को मन ले चले ले चले ।
एकन सों तकि घूंघट में मुख मोरि
कनैखनि दे चले दे चले ।

नायिका की अनेक पुरुषों में रति व्यक्त होने से यहाँ शृङ्गार रसाभास (बहुनायक निष्ठ रति शृङ्गार आभास) है ।

अन्य रसों के वर्णनों में भी इस प्रकार के दोष पाये जाते हैं ।

मींडि मार्यो कलह वियोग मार्यो बोरिके,
मरोरि मार्यो अभिमान मार्यो भय मान्यो है ।
सबको सुहाग अनुराग लूटि लीन्हों दीन्हों,
राधिका कुंवर कहै सब सुख सान्यो है ।
कपट कटकि डार्यो निपट औरन सों ।
मेटी पहिचानि मन में हू पहिचान्यो है ।
जीत्यो रति रन मथ्यो मनमथ हू को मन,
केसोराइ कौन हू पै रोष उर आन्यो है ।

"रसिक प्रिया" में इस छन्द को कृष्ण के रौद्र रस के उदाहरण स्वरूप

किया गया है। यहाँ रोप शब्द द्वारा स्पष्ट कथन हो जाने से स्वशब्द वाच्यता दोष आगया है।

चूंकि हिन्दी के आचार्य कवियों ने रस दोष पर विचार नहीं किया है, अतः हम नहीं कह सकते कि उनके द्वारा निर्धारित लक्षणों के आधार पर उनके द्वारा उपस्थित उदाहरणों में कौन-कौन दोष आगए हैं।

चतुर्थ अध्याय

१—ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि तथा तत्कालीन वातावरण

अध्याय ४

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि तथा तत्कालीन वातावरण

मुसलमानों का आगमन—भारतवर्ष के जीवन में सदैव से विभिन्न सभ्यताओं का संयोग रहा है। उत्तर पश्चिम में स्थित खैबर आदि दर्रों में होकर विदेशी आते रहे हैं। उनके कारण संहार और निर्माण दोनों ही प्रकार के कार्य हुए हैं। +

हर्षवर्धन के बाद (८ वीं सदी) से भारतवर्ष के इतिहास का एक नया अध्याय % प्रारम्भ होता है। इसके बाद भारतवर्ष छिन्न-भिन्न हो चला था। राजपूत राजे आपस में लड़ने लगे थे। धार्मिक मत-मतान्तरों के नाम पर विभिन्न सम्प्रदाय और समुदाय उठ खड़े हुए थे। इस प्रकार यवनों के आगमन के लिए सुन्दर मार्ग और अनुकूल वातावरण तैयार हो चले थे।

थल-मार्ग के अतिरिक्त जल-मार्ग से भी विदेशी बराबर आते रहे हैं। यद्यपि

+ The complexity of Indian life is ancient because from the dawn of history India has been the meeting place of conflicting civilizations Through its North Western gates migrating hordes and conquring armies have poured down in unending succession, bringing with them like the floods of the Nile, much destruction but olso valuable deposits which enriched the ancient soil, out of which grew even more fresh and luxuriant culture

(Introduction IX, influence of Islam on Indian culture, Dr Tara Chand)

% भारतवर्ष के इतिहास का मध्यकाल।

विजेता शासक के रूप तो मुसलमान १० वीं सदी के बाद ही आये हैं, तथापि जल-मार्ग द्वारा उनका आगमन बहुत पहले ही शुरू हो चुका था। मुसलमानों का पहिला पानी का जहाज यहाँ संन् ६३६ में आया था, तथा ८ वीं सदी में अरब यात्रियों ने भड़ौंच और काठियावाड़ के समुद्री तट पर हमला करके अपना आधिपत्य कर लिया था और वे अपने व्यौपार को बढ़ाने तथा उपनिवेशों के निर्माण में लग गये थे।

दसवीं सदी में वे लोग पूर्वोत्तर की ओर भी फैलने लगे थे। थोड़े ही समय में, यहाँ के समाज को इनकी उपस्थिति का अनुभव होने लगा था मुसलमानों ने राजनीति और समाज में अपने लिए स्थान कर लिया था। =

यह तो हुई जल तट बस जाने वाले अरब निवासियों की बात। परन्तु वैसे लगभग २०० वर्षों तक तुरमान के बाद महमूद ग़ज़नी के समय तक भारतवर्ष के ऊपर कोई विदेशी आक्रमण नहीं हुआ है तथा इतने दिनों तक भारतवर्ष एक तरह से दुनिया से अलग ही रहा। * केवल बादशाह के अधीन सिन्ध के रेगिस्तान में शासन करने लगे थे।

इतने दिनों तक चैन से रहने का परिणाम यह हुआ कि भारतवासी अपने आपको विस्मृत सा कर बैठे। कुशान् शक और हूणों के अत्याचारों एवं अनाचारों को वे भूल गए। इतना ही नहीं वे समझ बैठे कि अब विदेशी आक्रमण सदा सर्वदा के लिए गए-आए हुए। फलतः देश भक्ति और देश-प्रेम की भावनाएँ पीछे पड़ गईं। पाँच सौ वर्षों के इस दीर्घकाल (७ वीं से ११ वीं सदी) तक चैन से रहने का एक और यह दुष्परिणाम हुआ कि भारतवासी अपने आपको असाधारण, संसार के अन्य लोगों से श्रेष्ठतर समझने लगे थे। वे समझ बैठे कि उनका देश, धर्म, विज्ञान, शासन आदि प्रत्येक वस्तु संसार में सर्वश्रेष्ठ है। ३ प्रसिद्ध इतिहासकार अलबरूनी के मतानुसार भारतवासी किसी हद तक दम्भी एवं अशिष्ट हो गए थे। अलबरूनी ने यह भी

= 1 (Page 48 Influence of Islam on Indian culture)

* वही पृष्ठ संख्या १२४ तथा १२५

लिखा है कि उन दिनों हिन्दुओं के अन्दर छुआछूत, जाति-बहिष्कार आदि के भाव भी आ गए थे और वे लोग विघटन की ओर तेज़ी के साथ चल पड़े थे। ×

समस्त विश्व पृथक् भविष्य से विमुख एवं आत्म-विस्मृत भारतवासियों की विकासोन्मुखी प्रगति तो अवरुद्ध हो ही गई, उनकी विनाशोन्मुखी अवगति का भी गणेश हो गया।

यह पतन प्रत्येक दिशा में परिलक्षित था। समाज और राजनीति तो बहुत दूर पड़ ही चुके थे। ललित कलाओं के आदर्श भी विकृत हो गए थे। काव्य, मूर्ति-कला आदि में कामुकता आ गई थी। धार्मिक क्षेत्र में मठ और मन्दिर विलासिता के केन्द्र बन चले थे। उन्हीं दिनों बौद्धों के तान्त्रिक ग्रन्थ "गुह्य समाज" की रचना हुई थी। इस ग्रन्थ को बौद्ध आदर भाव से देखते थे। इसमें गौतम बुद्ध के व्यभिचारों का वर्णन है। क्षेमेन्द्र की "समय मातृका" की भी रचना इन्हीं दिनों हुई थी। "समय मातृका" को एक वेश्या की आत्म कथा कहा जा सकता है। कहने का सारांश यह है कि तत्कालीन हिन्दू समाज नैतिकता की ओर से उदासीन हो गया था।

दसवीं सदी के अन्त अथवा ११ वीं सदी के आरम्भ में जब कि भारतवर्ष पर मुसलमानों का सर्व प्रथम व्यवस्थित आक्रमण हुआ, देश का सामान्य स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार था :—

१—समाज रूढ़िग्रस्त हो चुका था। विजातीय तथा अन्य मतावलम्बी के लिए उसमें कोई स्थान नहीं रह गया था।

२—बौद्धमत के सम्मिश्रण के कारण हिन्दू-धर्म को एक नया बल मिल गया था। इसके द्वारा साधारण जन-समुदाय की धर्म-वृत्तियों की तुष्टि हुई और शिक्षित वर्ग को नवीन दार्शनिक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ।

ड Page 131 A Survey of Indian History
K. M. Panikkar

× वही पृष्ठ संख्या १२६, १३० तथा १३१।

१—पाँच सौ वर्षों की सुख-सम्पत्ति के कारण आर्थिक जीवन समृद्ध था। चारों ओर धन-धान्य का बाहुल्य था।

२—राजनीतिक ढाँचा जीर्ण-शीर्ण हो गया था। राष्ट्रीय भावना विलुप्त हो चुकी थी। विदेशी के विरुद्ध सामूहिक मोर्चा लेने की बात भी जाती रही थी।

३—चारों ओर छोटे-छोटे राज्य थे। इनकी व्यवस्था भ्रष्ट सरदारों के हाथों में थी। सम्पूर्ण उत्तरी भारत में दुर्व्यवस्था एवं अशान्ति का साम्राज्य था। स्वतन्त्रता-संग्राम के लिए भारतवासी बिलकुल तैयार नहीं थे।

उधर पश्चिमी किनारे पर मुसलमान पहिले से आ ही चुके थे, तथा हिन्दू राजाओं के कृपा-पात्र बन कर अपने धर्म का प्रचार करके दिनोंदिन प्रभावशाली बनते जा रहे थे। इस प्रकार मुसलमानों के आक्रमण के लिए यहाँ अनुकूल वातावरण का सृजन हो रहा था। यही कारण है कि जब महमूद ग़ज़नवी ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया तो उसे देश के समस्त द्वार उन्मुक्त मिले।

मुसलमानों का शासक रूप में बसना—सुबुक्तगीन तथा महमूद ग़ज़नवी आदि यहाँ आए। इन्होंने लूट-मार की, दो-चार शहर बर्बाद किए ४, ६ मन्दिर तोड़े और धन बटोर कर वापिस चले गए। राज्य-स्थापन के लिए उनकी दृष्टि पश्चिम में अपने वतन की ही ओर थी। भारतवर्ष तो केवल सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी का काम देता था।

इस प्रकार एक और शताब्दी बीत गई। मध्य एशिया में तुर्कों के विद्रोह और उपद्रव होने लगे। अफगानिस्तान के ग़ोरी शासकों का ध्यान स्थायी रूप से पूर्व की ओर गया और भारतवर्ष पर शासन करके उसे अपना स्थायी निवास स्थान बनाने का विचार उनके मस्तिष्क में आया। इन दिनों भारतवर्ष की दशा ठीक वैसी थी जैसी दशा मैसीडोनिया के उत्थान के समय यूनान की थी। तात्पर्य यह है कि शिकार तैयार था, और मुसलमानों को यहाँ जम जाने में किसी विशेष असुविधा अथवा किसी बड़े संघर्ष का सामना नहीं करना पड़ा।

इस प्रकार ८ वीं सदी से भारतवर्ष में मुसलमानों का प्रभाव जमना शुरू

हुआ। १३ वीं सदी के अन्त तक वे यहाँ अच्छी तरह जम गए और उन्हें शासक के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। वे यहाँ १८ वीं सदी के अन्त तक शासन करते रहे। अर्थात् मुसलमानों का काल लगभग एक हजार वर्ष का ठहरता है। इस ऐतिहासिक काल को हम पाँच-पाँच सौ वर्षों के दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। यथा—

(१) ८ वीं सदी से १३ वीं सदी तक। इस समय में मुसलमान शान्तिपूर्वक दक्षिण भारत में तथा युद्ध करके सिन्ध तथा उत्तर पश्चिमी भागों में बस चुके थे।

(२) १३ वीं सदी से १८ वीं सदी तक। इस बीच में वे भारत के शासक बन कर रहे और लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष ने उनके प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया था।

नवीन युग का प्रवर्त्तन—मुसलमान विजेता अपने साथ तलवार के अतिरिक्त इस्लाम धर्म और इस्लाम सभ्यता भी लेकर आए। उनका सर्वतोमुखी प्रभाव पड़ा। धर्म कला, विज्ञान, चिकित्सा आदि सब को इस्लाम सभ्यता ने प्रभावित किया और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों की संस्कृतियों का एक दूसरे के साथ सम्पर्क और संयोग होकर एक मिश्रित संस्कृति उत्पन्न हो गई क्योंकि दोनों को अब एक साथ ही पड़ोसी बनकर रहना था। फलतः वास्तु कला, मूर्ति-कला, तथा चित्रकारी आदि में दोनों संस्कृतियों के अवयव स्पष्ट परिलक्षित होने लगे। धर्म पर सूफियों के प्रेम की पीर का प्रभाव पड़ा। साहित्य पर फारसी का प्रभाव पड़ने का परिणाम यह हुआ कि संस्कृत की उपेक्षा होने लगी और नई बोलचाल की भाषाओं की उत्पत्ति हुई। इनमें उर्दू प्रमुख थी। विज्ञान चिकित्सा विज्ञान, ज्योतिष, गणित आदि भी इसके अपवाद न थे ये प्रभाव किसी न किसी रूप में आज तक चले आते हैं। हमारे सामाजिक रीति-रिवाजों पर तो मुसलमानी सभ्यता का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वे हमारी सभ्यता के अंग ही बन गए हैं। उनको अभारतीय कहना उपहास करना है। अचकन और चूड़ीदार पायजामा उसी प्रभाव के अन्तर्गत ग्रहीत हुए थे, जो भी हो, मुसलमानी शासन के साथ भारतवर्ष में एक नवीन युग का श्री गणेश हुआ।

सन् १५५६ में अकबर राज्य सिंहासन पर बैठा। उसके शासनकाल में कला की विशेष उन्नति हुई। वह स्वयं चित्रकारी का प्रेमी था तथा उसके दरबार में साहित्य का खूब आदर था, अब्दुर्रहीम खानखाना, अबुल फज़ल, फैज़ी, टोडरमल, पृथ्वीसिंह राठौर आदि साहित्यज्ञ उसी के दरबार की विभूतियाँ थीं। अकबर द्वारा प्रारम्भ किया हुआ कला-प्रेम का यह क्रम लगभग १५० वर्षों तक, औरङ्गज़ेब की मृत्यु तक चलता रहा। इस बीच में भारतवर्ष की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों में कई एक विशेषताएँ आईं। प्रत्येक में मुसलमान और हिन्दू विचार धाराओं का सुन्दर सम्मिश्रण है। फतहपुर सीकरी, आगरा व दिल्ली के क़िले, मोतीमसजिद, ताजमहल, एतमादुद्दौला आदि भव्य-भवन इसी बीच में बने थे। मुगल शासकों के प्रभाव के कारण प्रान्तों अथवा छोटे राज्य में राज्य करने वाले हिन्दू राजाओं ने भी कला में अपनी रुचि दिखलाई। उनके यहाँ भी चित्रकारी, वास्तुकला, साहित्य सबका आदर होता था। बीकानेर का किला, बीरसिंह बुन्देला का राज महल, उदयपुर, जोधपुर और अम्बर के महल आदि इमारतें उन्हीं दिनों में बनवाई गई थीं। केशव, बिहारी भूषण आदि कविगण इन्हीं राजाओं के दरबार को सुशोभित करते थे। चित्रकारी में स्थानीय विशेषताएँ विशेष रूप से देखने को मिलती हैं हालांकि उनमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है। इन पर दरबारी परम्पराओं की स्पष्ट छाप है। दोनों में आत्मा और शरीर का सम्बन्ध है। +

जो भी हो, राजाभोज तथा धार के परमार वंशज शासकों के बाद राजदरबारों में कलाकारों को मुगल शासन-काल में ही आश्रय और आदर मिले थे। हमें देखना यह है कि मुसलमानी शासन दरबार, तथा उनके कारण उत्पन्न देश के वातावरण ने हिन्दी साहित्य को किस प्रकार प्रभावित किया।

धार्मिक परिस्थितियाँ और सूफी मत—मुसलमानों ने एक ओर साम्राज्य स्थापित किया और दूसरी ओर इस्लाम धर्म का प्रचार तथा प्रसार प्रारम्भ किया। हिन्दुओं को मुसलमान बनाना आम एक नियमित कार्य

+ (Page 273 and 274 Influence of Islam on Indian culture)

था। अपने धर्म तथा अपनी जातीयता की सुरक्षा के लिए हिन्दू सतर्क हुए, और उन्होंने इस्लाम के साथ मोर्चा खड़ा किया। फलतः हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के लिए देश भर में आन्दोलन चल पड़े। जयदेव से लेकर मीराबाई आदि के भक्ति-गीत, रामानन्द, कबीर, सूर, तुलसी द्वारा वैष्णव धर्म का प्रचार, महाराष्ट्र में नामदेव तथा गुजरात में ज्ञानेश्वर द्वारा धर्म-प्रचार, कर्णाटक में लिंगायतों का उठ खड़ा होना आदि इन सबने आस्तिकवाद का प्रतिपादन करने के अतिरिक्त एकेश्वरवाद का प्रचार किया, और शिव, विष्णु तथा पार्वती, लक्ष्मी, सीता आदि के पारस्परिक भेद-भाव को दूर करके सम्पूर्ण हिन्दू समाज को एकता के सूत्र में बांधने का सफल प्रयत्न किया। यह सब कुछ इस्लाम मतावलम्बियों के कार्यों की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। इसके द्वारा निराश हिन्दू जनता में नव-जीवन का सचार हुआ और उसे एक नया सम्बल प्राप्त हुआ। मुसलमान यहाँ रहने लगे और हिन्दुओं ने अपने धर्म की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर लिया। फिर दोनों को एक साथ ही रहना था। उधर मुसलमानों की धार्मिक कट्टरता कुछ मन्द पड़ गई और इधर हिन्दुओं को भी तनिक विश्राम मिला। उनके संघर्ष समाप्त हुए, मुसलमानों को अपना शासक मानकर वे उनके दरबार आदि में जाने लगे तथा उनके द्वारा दी गई जागीर आदि पाकर सुख पूर्वक रहने लगे। इन सब बातों के कारण धर्म-भावना में परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक ही था।

प्रारम्भ में भक्ति-विषय कविता के आलम्बन थे, असुरों का संहार करके लोक का कल्याण करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और लीलाधारी श्रीकृष्ण तथा उनकी शक्ति रूपा परिनियाँ सीता और राधा। बाद में भक्ति-भावना में रागानुगा भक्ति एवं प्रेम लक्षणा भक्ति का समावेश हुआ। श्री वल्लभाचार्य तथा श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसका विशेष प्रचार किया। फलतः भक्ति-भावना लौकिक पक्ष की ओर झुक चली। भक्ति-भावना के साथ परकीया भाव को प्रोत्साहन मिला, यहाँ तक कि रूप गोस्वामी ने सम्पूर्ण नायिका भेद को कृष्ण-भक्ति का एक अंग ही बना दिया। यहाँ यह बात देना आवश्यक है कि भक्ति-भावना में कामुकता का समावेश कर देने का उत्तरदायित्व सूफी फकीरों के ऊपर है।

फारसी भाषा और सूफीमत के प्रभाव के कारण उर्दू की कविता में प्रारम्भ से ही शृङ्गारी भावनाओं का प्राधान्य रहा। विलासी बादशाहों के दरबार में आश्रय मिल जाने के कारण उसमें साकी और शराब, जाम और प्याला आदि का समावेश तो होना ही था। प्रेमी के दिल पर छुरियाँ चलना, कलेजे में खंजर घुसना निराश प्रेमी की आहें और तड़पन, माशूक की गली में होकर जनाज़ा निकलना आदि विषय उर्दू कविता के अंग बन गए। उर्दू भाषा का सार्वाधिक प्रचलित एवं लोक-प्रिय छन्द है ग़ज़ल। ग़ज़ल का शब्दार्थ होता है स्त्रियों से बातें करना अर्थात् कामुक बातें करना। अर्थात् कामुकता की चर्चा ग़ज़ल अथवा उर्दू की कविता का एक विशेष लक्षण एवं गुण है। यही कारण है कि सुरा और सुराही माशूक और उसके सितम, रकीबों की ज्यादतियों आदि की चर्चा उर्दू कविता की एक बहुत बड़ी विशेषता है +

विलासी बादशाहों ने ऐसी रचनाओं को संरक्षण प्रदान किया, समृद्ध जनता ने उनके द्वारा अपने मन का बोझ हल्का हुआ समझा। हिन्दुओं की भक्ति-भावना के अन्तर्गत राधाकृष्ण की प्रमलक्षणा भक्ति की प्रतिष्ठा हो ही चुकी थी। हिन्दी की कविता में नायक नायिकाओं की चर्चा चल पड़ी और वह तत्कालीन अतिरंजित वातावरण में रंग गई। केशवदास (सन् ११००) ने परकीया के प्रेम की महिमा बताते हुए कृष्ण को परम पुरुष और राधिका को जगनायक की नायिका लिखा था।

> सबतें पर परसिद्ध जो, ताकी प्रिया जो होइ।
> परकीया तासों कहैं परम पुराने लोइ।
> जगनायक की नायिका, बरणी केशवदास।
> तिनके दरसन रस कह्यो, सुनहु प्रधम प्रकाश।
> —" ३, ६७, ७५ रसिक प्रिया"

ये ही परमपुरुष कृष्ण और मायादेवी राधिका आगे चल कर उर्दू के प्रभाव के कारण साधारण कामुक नायकनायिका के रूप में प्रतीत होने लगे।

+ (Page 27, 28, A History of Urdu literature Ram Babu saksena)

तो पर वारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उरबसी, ह्वै उरबसी समान। —"बिहारी"

मोंहि लखि सोवत बियोरिगो सुबेनी बनी,
तोरिगो हिए को हार, छोरिगो सुगैया को।
कहै पद्माकर त्यों छोरिगो घनेरो दुख,
बोरिगो बिलासी आज लाज ही की नैया को।
अहित अनैसो ऐसो कौन उपहास + यातें
सोचन खरी मैं परी जोवति जुन्हैया को।
बूझिहैं चवैया तब कैहौं कहा, दैया
इत पारिगो को, मैया मेरी सेज पै कन्हैया को।

—"पद्माकर"

नंदलाल गयो तित ही चलि कै, जित खेलति बाल अलीगन मैं
तहाँ आपु ही मूँदे सलोनी के लोचन, चोरमिहीचनि खेलन मैं।
दुरिबे को गई सिगरी सखियाँ, मतिराम कहै इतने छिन मैं।
मुसकाय कैं राधिका कंठ लगाय, छिप्यो कहुँ जाय निकुंजन मैं।
—"रसराज छन्द सं० ७० मतिराम"

शाही दरबार में प्रभाव मिलने का एक और फल हुआ। उर्दू के शायर अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा के गीत लिखने लगे और उर्दू की कविता अपने आश्रयदाताओं की तारीफों के पुलों से पट गई ×

हिन्दी के कवियों पर भी इसका प्रभाव पड़ा और वे भी राज दरबारों में जाकर अमरदरावों के गुण गाने लगे। यथा—

सूबन कों मेटि दिल्ली देश दलिबे को चमू
सुभट समूह निसि वाकी उमहति है।
कहै मतिराम ताहि रोकिबे को संगर में,
काहू के न हिम्मति हिए में उलहति है।
सत्रुसाल नन्द के प्रताप की लपट सब,

× Page 288 and 29 A History of Urdu Literature.

गरब गनीम बरगीन को दहति है ।
पति पातसाह की, इजति उमरावन की,
राखी रैया राव भावसिंह की रहति है । —"मतिराम"
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते बादसाहन की छाती धरकति है । —"भूषण"

मीनागढ़ बम्बई सुमंद मंदराज बंग,
बन्दर को बन्द करि बन्दर बसावैगो ।
कहै पद्माकर कसकि कासमीर हू को,
पिंजर सों घेरि कै कलिंजर छुड़ावैगो ।
बाँका नृप दौलत अलीजा महाराज कबौ,
साजि दल पकरि फिरंगिन दबावैगो ।
दिल्ली दहपट्टि, पटना हू को झपट्टि करि
कबहूँक लत्ता कलकत्ता को उड़ावैगो । "पद्माकर"

हिन्दी कविता "स्वान्तः सुखाय" न होकर स्वामिनः सुखाय होने लगी। शाही दरबार में आश्रय मिलने के फलस्वरूप जिस तरह उर्दू की कविता में केवल गज़लें (आशुक कविता) और कसीदा (अपने सरपरस्त की प्रशंसा में लिखी गई कविता) लिखे गए और वह एक विशेष ढर्रे की हो गई, इसी प्रकार हिन्दी के कवि भी मौलिक सद्भावनाओं की ओर से उदासीन होकर केवल अपने आश्रयदाताओं को रिझाने में लगे रहने लगे। गोस्वामी तुलसीदास जैसे अनेक ऐसे भी भक्त कवि मौजूद थे, जो इन भोग-विलासों से निर्लिप्त रह कर सब से अलग केवल स्वान्तः सुखाय ही आत्म-चिन्तन करते रहते थे और किसी व्यक्ति के विषय में कविता करना प्राकृत जनों का गुणगान करना वाणी एवं वीणापाणि का अपमान समझते थे। +

अपने आश्रय दाताओं को प्रसन्न करने के लिए कविगण तरह-तरह से

\+ कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना,
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना ॥
—"रामचरित मानस"

अपनी योग्यता और परिश्रम का प्रदर्शन करें, यह स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि उर्दू के शायरों ने अपनी काव्य कुशलता और लग्न का परिचय देने के लिए कठिन छन्दों में रचनाएँ कीं। हिन्दी के कवियों ने भी इसका अनुकरण किया, और छन्दों की और काव्यशास्त्र की कारगुजारी दिखाने में कोई बात उठा न रखी। यथा—

राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन कौं,
बुध कवि के जो उपकंठ की बसति है।
जोए पद मन कौं हरप उपजावति है,
तजै को कनरसै जो छन्द सरसति है।
अच्छर हैं बिशद करति उपै आप सम,
जातैं जगत की जडताऊ बिनसति है।
मानौ छवि ताकी उदयत सविता की सेना,
पति कवि ताकी कविताई बिलसित है।
—"पहिली तरंग छन्द सं० ८ कवित्त रत्नाकर सेनापति"

'सेनापति" का श्लेष वर्णन इस मनोवृत्ति का सब से बड़ा प्रमाण है।

कवि "ठाकुर" ने तो भी राज-सम्मान को स्पष्ट ही कविता की कसौटी माना है +

+ मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै।
प्रेमु को पंथ कथा हरिनाम की बात अनूठी बनाय सुनावै।
ठाकुर सो कवि भावत मोंहि जु राजसभा में बड़प्पन पावै,
पंडित औरु प्रवीनन को जो चित्त हरै सो कवित्त कहावै।

तत्कालीन हिन्दी कविता के रीति बद्ध हो जाने का यह एक प्रमुख कारण है। %

मुगल शासन का वैभव—मुगलों के शासनकाल में धन-धान्य की समृद्धि रही, उद्योग और व्यौपार की अत्यधिक उन्नति हुई, ललितकलाओं का

% (Page 80 History of Urdu Literature)

विकास हुआ, मधुर साहित्य का विकास हुआ। अकबर के शासनकाल भारतवर्ष की ख्याति विश्व के कोने कोने में व्याप्त हो गई थी। ‡

मुगल शासकों ने कला के प्रत्येक पक्ष को प्रश्रय एवं प्रोत्साहन प्रद किए। उनके दरबार में कलाकारों को आश्रय मिलता था। कवियों का विशे सम्मान था। अकेले अकबर के दरबार में रहीम, फैजी, सूर्यमल आदि अतिरिक्त अन्य अनेक कवि थे। ‡ उनके अनुकरण पर हिंदू राजे भी कवियों समुचित आदर प्रदान करते तथा यथा समय पुरस्कृत करते रहते थे। कवि बिहारी को जयपुर के राजा प्रत्येक दोहों पर + अशर्फी पुरस्कार स्वरूप दे थे। यह बात ६१ दोहे प्रसिद्ध है ही। पद्माकर की निम्नलिखित पंक्तियों से स्प हो जायगा कि उस दिनों राजा लोग कितनी उदारतापूर्वक कवियों को आश्र प्रदान किया करते थे।

× × × ×

---

‡ Before the time of Akbar the connection of the Portugese was mainly with the powers on the west coast, Bijapur and Calicut and with the empire of Vijayanagar, but when Akbar invited the Jesuit priests to his court and encouraged merchants to visit Agra information about the great monarch began to spread in Europe During the hunared and fifty years of the great Moghuls India ' s name stood high in the world and he took rank them into the most civilised countries and with the most powerful nations,

(Page 221, A Survey of Indian History
K M Pannikkar)

‡ पाय प्रसिद्ध "पुरन्दर" "ब्रह्म" "सुधारस अमृत अमृतबानी,
'गोकुल' 'गोप' 'गुपाल' 'गुनस' गुनी गुनसागर 'गंग' सुहानी।
'जोध' 'जगभग' 'जग' 'जगदीश' 'जगा' 'मग' 'जैत' जगत है जानी,
कोरे अकबर सों न कभी, इतने मिलिकैं कबिताजु बखानी। ‡

मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौं जगत सिंह
तेरे जान तेरो वह बिप्र हौं सुदामा हौं।

× × × ×

पारथ से पृथु से परिच्छित पुरंदर से,
आदो से जजाति से जनक से जगतराज।

बन विर्लो कदाचित् ही ऐसा कोई कवि हो जिसे राज्याश्रय प्राप्त न हुआ हो। तुलसी, सूर आदि भक्तों की बात दूसरी है जो राजसी ठाठ बाट से दूर रह कर भगवान का गुण गान करके आनन्द अपने आराध्य देव की अर्चना में लगे रहे।

मुगल दरबार वैभव और विलास की जीती जागती मूर्ति थे। बर्नियर, ट्रैवार्नेयर, मैनूची आदि विदेशी यात्री उस वैभव और ऐश्वर्य एवं समृद्धि को देख कर दंग रह गए थे। उन शाहँशाहों का शरीर स्वर्ण-खचित एवं रत्न जटित वस्त्रों से सुसज्जित, मणि मुक्ताओं एवं बहुमूल्य आभूषणों से सुशोभित एवं दुष्प्राप्य इत्रादि की सुगन्धियों से सदैव सुरभित रहता था। उनकी दिनचर्या पर विपुल धनराशि पानी की भाँति बहाई जाती थी। गुलाब जल और इत्र के छिड़काव तो साधारण बातें थीं। बर्नियर द्वारा किए गए बयान में से उद्धृत निम्नलिखित पंक्तियों से हम उनके ऐश्वर्य का अनुमान लगा सकते हैं "मैंने मुगल हरम में प्रायः प्रत्येक प्रकार के जवाहिरात देखे हैं, जिनमें बहुत से तो असाधारण हैं" "वे इन मोती मालाओं को कन्धे पर ओढ़नी की तरह पहनती हैं। इनके साथ दोनों ओर मोतियों की कितनी ही मालाएँ होती हैं। सिर में वे मोतियों का गुच्छा पहिनती हैं, जो माथे तक पहुँचता है और जिसके साथ जवाहिरात का बना हुआ सूरज और चाँद की आकृति का एक बहुमूल्य आभूषण होता है" आदि ×

इन बादशाहों तथा बेगमों की पोशाकें दिन में न मालूम कितनी बार बदली जाया करती थीं। इनके अन्तःपुर इन्द्र भवन को लज्जित करते थे, तथा इनके दरबारों को देखकर ऐसा लगता था, मानों इन्द्र-सभा जुड़ रही हो। इन सभाओं

× रीति काव्य की भूमिका (नागेन्द्र) से उद्धृत।

में बैठने-उठने वाले कवियों की आँखों में प्रत्यक्ष पच्य मणि-दीप और संगमरमर के फर्श झूमा करते थे। इनमें बहुत से तो स्वयं ही भव्य भवनों में रहते तथा विलास के उपकरणों में आकंठ निमग्न रहते थे। तत्कालीन रचनाओं में उपर्युक्त अवयव स्पष्ट ही दिखाई देते हैं।

१—प्रतिबिम्बित जयसाह-दुति दीपति दरपन-धाम,
सब जगु जीतन कौं कर्‌यौ काम-व्यूह मनु काम।
—"बिहारी"

२—जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने, तल
ताख तहखाने के सुधारि झारियत हैं,
होति है मरम्मति बिबिध जल-जंत्रन की,
ऊँचे ऊँचे अटा, ते सुधा सुधारियत हैं।
सेनापति अतर, गुलाब, अरगजा साजि,
सार तार हार मोल ले ले धारियत हैं।
ग्रीषम के बासर बराइबे कौं सीरे सब,
राज भोग काज साज सो सम्हारियत हैं।
—"सेनापति

३—सोने की अगीठिन में अगिन अधूम होय,
होय धूमधारहू सो मृगमद आला की।
पौन को न गौन होय भरयौ सु भौन होय,
नैनन को सौन होय छबियाँ मसाला की।
"ग्वाल" कवि कहै हूर परी से सुरंग नारी,
नाचती उमंग सौं तरंग तान ताला की।
आला की बहार औ दुसाला की बहार भाई,
प्याला की बहार में बहार बड़ी प्याला की।
—"पद्माकर पंचामृत भूमिका पृ० ७१, ग्वा

इनके अन्तःपुर रानियों की रुन झुन से सदैव गुञ्जरित रहा करते थे।

चढ़त गुढी लखि लाल की अंगना अंगना मांह,
बौरी लौं दौरी फिरति छुअति छबीली छांह। —"बिहारी"

महलों के बाहर जन-साधारण के लिए भी भोग-विलास को सामग्री उपलब्ध थी। जनता भी सुख-चैन के साथ अपना समय व्यतीत कर रही थी। यथा—

फूलन के खंभा पाट पटरी सुफूलन की,
फूलन के फंदना फंदे हैं लाल डोरे में।
कहै 'पद्माकर' वितान तने फूलन के,
फूलनि की झालरि त्यों झूलति झकोरे में।
फूलि रही फूलन सुफूल फुलवारी तहाँ,
फूलई के फरस फबे हैं कुंज कोरे में।
फूलझरी, फूल भरी, फूल भरी फूलन में।
फूलई-सी फूलति सुफूल के हिंडोरे में।

तथा—

बैठी बनि बानिका सु मानिक महल-मध्य,
अंग अलबेली के अचानक थरक परैं।
कहै 'पद्माकर' तहाँई तन-तापन तैं,
बारन तें मुकुता हजारन दरक परैं।

—"पद्माकर पंचामृत पृष्ठ स २७४, २७० छन्द सं० २६ तथा १४",

नगर में चारों ओर उपवन, उद्यान तथा सरोवर सुशोभित थे। इनमें विहार करने के लिए आने जाने वाली स्त्रियों को देखकर संभवतः कवियों को परकीया आदि के वर्णन की प्रेरणा मिलती रही थी। =

= लाग लुगाई हिलमिल खेलत फाग,
पर्यो उड़ावन मोकों सब दिन काग।
पथिक आय, पनघटवा, कहत पियास,
पैयों पाँ नननदियां, फेरि कहास।
गली अँधेरी मिलि कै, रहि चुपचाप,
बरजोरी मनमोहन, करत मिलाप। —"रहीम"

अतिशय विलास और वैभव के उस युग में बादशाहों के महलों में हजारों स्त्रियाँ रहती थीं। राजाओं का भी यही हाल था। अपनी स्थिति के अनुसार वे लोग भी किसी प्रकार कम नहीं थे। इन स्त्रियों के अलग-अलग काम होते थे। कोई रानी थी, तो कोई दासी। इनमें कोई-कोई स्त्रियाँ शाहजादियों आदि को पढ़ाने का भी काम करती थीं।

हरम में रहने वाली कतिपय वृद्धाएँ कुट्टनियों का कार्य भी करती थीं। वे सुन्दर भोली लड़कियों को भाँति-भाँति के प्रलोभन देकर महलों में लाकर बादशाह सलामत की खिदमत में पेश करके बख्शीश पाने की ख्वाहिश करती होंगी। इन्हीं बुढ़ियों को देखकर यदि कविगणों ने दूती आदि के विवेचनात्मक वर्णन कर डाले हों तो आश्चर्य ही क्या है।

शासकों की विलासप्रियता का दिग्दर्शन कराने के लिए हम यहाँ प्रवीणराय पातुर की चर्चा करते हैं। प्रवीणराय वेश्या थी तथा ओरछा के राजा इन्द्रजीत सिंह की रक्षिता थी। कवि केशवदास उससे अत्यधिक प्रभावित थे। उन्होंने उसके सौन्दर्य तथा विद्वत्ता की बहुत प्रशंसा की है। "कविप्रिया" में एक तरह से प्रवीणराय केशवदास की काव्य प्रेरणा रही थी।×

कहते हैं कि अपने एक सभासद से बादशाह अकबर ने उसकी प्रशंसा सुनकर उसे इन्द्रजीत के पास से बुला भेजा। भावना के आवेश में इन्द्रजीत ने बादशाह की आज्ञा का उल्लंघन कर दिया। पराधीन इन्द्रजीत की इस धृष्टता को बादशाह सहन न कर सका। उसने इन्द्रजीत को भारी आर्थिक दंड दिया और प्रवीणराय को बलपूर्वक पकड़वा मंगाया। कथानक आगे तक चलता है कि किस प्रकार अपनी वाक्चातुरी तथा काव्य-कला के बल पर प्रवीणराय ने आत्मा सम्मान की रक्षा की और निम्नलिखित विनती करके बादशाह सलामत से विदा माँगी।

बिनती राय प्रवीन की, सुनिए साह सुजान।
जूठी पातर भखत हैं, बारी बायस स्वान॥

×नाचति गावति पढ़ति सब, सबै बजावत बीन।
तिनमें करत कबित्त इक, राय प्रवीन प्रवीन॥

अब हम मतीराम की कविता के एक-दो उदाहरण देते हैं। जिससे स्पष्ट हो जायगा कि तत्कालीन समाज में नारी-जीवन की क्या सार्थकता थी तथा वह किस प्रकार सुषम-लज्जा विहीना हो गई थी।

१—बैठि परयंक पै निसंक ह्वै के अंक भरि
  करोंगी अधरपान मैंने मत मिलायो
२—सैन कियो उर से उर लाय के पानि
  दुहूँ कुच सम्पुट कीने।

इस प्रकार की उक्तियों में नारीत्व की भावनाओं का अतिक्रमण और तिरस्कार है।

एक तरह से उन दिनों शासकों के महल मयखाने और रनिवास परीखाने का काम देते थे। उनके भीतर और बाहर सब जगह बुलबुलें चहकतीं और गुल गुलिचाएँ गुथती रहती थीं।+

जिस प्रकार अन्तःपुर में शतरञ्ज, चौसर और गंजफा भी बहलाने के साधन थे तथा कबूतर, तोता, मैना इत्यादि रनिवास को गुञ्जायमान किये रहते थे उसी प्रकार महलों के बाहर भी बाज, बटेर, तीतर, सिकरों आदि ने हाथी चीतों अथवा घोड़ों का स्थान ले लिया था। कविगण जहाँ आश्रयदाता के वैभव का वर्णन करने के लिए घोड़ों की प्रशंसा करते थे वहाँ विलास वर्णन के लिए उन्हें तीतर और बटेरों का भी वर्णन करना पड़ता था।=

+ ऊँचे चिते सराहियतु गिरह कबूतर लेत।
  झलकत दृग पुलकित वदनु, तनु पुलकित किहि हेतु।
  "बिहारी"

= बाँके समसेर-से सुमेर-से उतंग सम,
  स्यारन पै सेर हुनहाइन के हुक्का से।
  हुलक हुलक्का से सुबुक्का से तरारिन मैं,
  ललित ललाम जे लगाम लेत लक्का से।
  "पद्माकर शृङ्गार संग्रह पत्र २७४"

निपट निखोट करैं चोट पर चोट खोटि
जानत न जुद्ध करैं उद्धत अथाई के।
कहै 'पद्माकर' त्यों बलके बिलंद बली,
खलके खबीन पर लक्का ज्यों लुनाई के।
चंचल चुटीले चिक्क चाक चटकीले, सक्कि
संगरत जैन जोय जंगर लराई के।
बप्प के बधा हैं कै छवा हैं छबि ही के, रन
रोस के रवा हैं कै जवा हैं श्री सावई के।

यह तो हुआ लवा-वर्णन। अब तीतरों का वर्णन देखिए —।

पक्के पींजरान ही तें खोलत खुले परत,
बोलत सों बोल बिजै-दुन्दुभी-से वै रहैं।
कहै 'पद्माकर' चमोहैं करि चौंचन की,
चूकत न चोट चटकीले अग वे रहैं।
सेते सुभ्र तीतुर तयार नृप फ़रम के,
जैं-जै फर्रे-फर्रे कै फतूहन फबे रहैं।
बासा को गनैं न कछु जंग जुरैं जुरंन सों,
बाजी-बाजी बेर बाजी बाज हू सों लै रहैं।
—"पद्माकर पंचामृत पृष्ठ संख्या ९०७, ९०१"

इस प्रकार सम्राट और कवि, दोनों ही कृष्ण-किन्नरों का ध्यान किए किस युग-प्रवाह में बहते चले आ रहे थे, और राग-रस के सागर में आकण्ठ निमग्न रहने ही भवसागर के पार जाना समझते थे।×

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि 'रक्षार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुंचा दिया था। इसका कारण बहुत

× तन्त्री नाद कवित्त रस सरस राग रति रंग
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग। —"बिहारी"

की रुचि नहीं, आश्रयदाता महाराजाओं को रुचि थी जिनके लिए वीरता और कर्मण्यता का जीवन बहुत कम रह गया था।*

समाज की दशा—फारसी साहित्य, उर्दू की कविता तथा दरबारी विलासिता के कारण "शृंगार" नागरिक जीवन का एक प्रधान अंग बन गया था। नारी को इस शृंगारिकता का केन्द्र बनाया गया। राधा-कृष्ण की रागानुगा भक्ति ने इन वर्णनों को एक प्रकार से नैतिक अनुमति भी प्रदान कर दी। अतएव किसी प्रकार के वसन-गोपन, संकोच शील, झिझक आदि की भी आवश्यकता नहीं रह गई। यथा—

रंग भरी कंचुकी उरोजन पै तांगी कसी,
लगी भली भाईसी सुजान कखियन में।
कहै 'पद्माकर' जवाहिर से अंगअंग,
ईंगुर से रंग की तरंग नखियन में।
फाग की उमंग अनुराग की तरंग वैसी,
तैसी छवि प्यारी की विलोकी सखियन में।
केसरि कपोलन में मुख में तमोल भरि,
भाल में गुलाल नंदलाल अँखियन में।

× × × ×

ऊधम ऐसो मचो ब्रज में सबै रंग-तरंग उमंगनि सींचैं।
त्यों 'पद्माकर' छज्जनि छातनि छवै छिति छाजतीं केसरि कीचैं।
दै पिचकी भजी भीजी तहाँ परे पीछे गोपाल गुलाल उलीचैं।
एक ही संग इहयाँ रपटे सखी ये भए ऊपर वो भई नीचे।

—"पद्माकर पंचामृत पृष्ठ ८७३ तथा १०३"

इन दिनों जन-साधारण की मनोवृत्ति साधारणतया विलासोन्मुखी हो गई थी। धर्म-भावना में भी भोग और विलास को स्थान मिल गया था। क्योंकि सेवा अर्चना की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विधियों का आविष्कार हो जाने से मठों और गद्दियों में भोग विलास के समस्त उपकरण एकत्र कर दिए थे। इनमें शृंगार की

---

* हिन्दी साहित्य का इतिहास, रीतिकाल का सामान्य परिचय।

पक्तियाँ चलती थीं तथा इनकी विलास सामग्रियों से अवध के नवाब को भी ईर्ष्या हो सकती थी। कृष्ण की परकीया भाव से पूजा करने की उपासना पद्धति में तथा सखी सम्प्रदाय ने परकीया वर्णन, नायिका निरूपण आदि काव्यों को प्रोत्साहित किया और धर्म की छाप लगी होने के कारण जनता ने इन्हें निस्सङ्कोच शिरोधार्य किया। फलतः श्रृङ्गार भावना का हिन्दी के ऊपर चेतन और अचेतन दोनों ही रूपों में प्रभाव पड़ा और तत्कालीन कविता कविता 'अन्य सम्भोग दुःखिता, परकीया आदि के वर्णनों से भर गई। जन-जीवन का ऐहिक दृष्टिकोण तत्कालीन समाज की नैतिक दशा रीतिकालीन हिन्दी-कविता में भली प्रकार अभिव्यञ्जित है।

जड़का नैपे के मिसुन लंगर मो ढिग आइ।
गयो अचानक आंगुरी छाती छैल छुवाइ।

× × × ×

परतिय दोष पुरान सुनि हँसि मुलकी सुखदान।
कस फर राखी मिस्र हू मुँह आई मुसकान। —बिहारी

बैठी एक सेज पै सलोनो मृगनैनी सोऊ,
आय तहाँ पीतम सुधा-समूह बरसै।
कवि 'मतिराम' ढिग बैठे मनभावन सू,
दुहुँन के हीय अरबिंद मोद सरसै।
आरसी दै एक सौं कह्यौ यों निज मुख देखो,
जामें बिधु-बारिज-विलास दरसै।
दरप सों भरी यह दरपन देख्यो जौ लौं,
तौलौं प्रानप्यारी के उरोज हरि परसै।

× × ×

खंजन दै निकसे नित नैनन, मंजन के अति अंग संवारे।
रूप-गुमान भरी मग में, पग ही के अगूठा अनौट सुधारे।
जोबन के मद सौं 'मतिराम' भई मतवारिन लोग निहारे।
जाति चली यहि भाँति गली, बिथुरी अलकैं अंचरा न संभारे।
—"रसराज छन्द सं० ५३' ८०"

झूठे काज कौं बनाइ, मिस ही सौं घर आइ,
सेनापति स्याम बतियान उघरत हो।
आइके समीप करि साहस, सयान ही सौं,
हँसी हँसी बातन ही बाँह कौं धरत हो।
मैं तो सब रावरे की बात मन मैं की पाई,
जाको परपंच ऐतो हम सौं करत हो।
यहाँ पती वसुराई, यही आप जदुराई,
आँगुरी पकरि पहुँचा कौं पकरत हो।

—"कवित्त रत्नाकर २, ३०"

कुसल करै करतार तो, सफल संक सियराइ।
यार क्वारपन को जु पै, कहूँ ब्याहि लै जाइ —"पद्माकर"

यह लात चलावनी हाय वैया हर एक को नाहिं छुआवनी है।
सुनी तेरी तरीफ मिलावनी की हित तेरे सुभाल पुहावनी है।
कवि ग्वाल चराय लै आवनी ह्यां फिर बाँधनी पौरि सुहावनी है,
मन भावनी देहौं दुहावनी में यह गाय तुही पै दुहावनी है।
(पद्माकर पंचामृत आमुख पृष्ठ सं० ७८)

काम-वासना के ज्वार भाटे में समाज एक तरह से आत्म-विस्मृत हो गया था। वात्सल्य शृङ्गार और दाम्पत्य शृङ्गार के भेद को भी लोग भूल चुके थे।

बिहँसि बुलाइ बिलोकि उत, प्रौढ़ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूत को, पिय चूम्यो मुख चूमि। —"बिहारी"

पति के स्पर्श का आनन्द लेने के लिए पुत्र का चुम्बन करना अथवा पुत्र के चुम्बन में पति के संसर्ग का अनुभव करना, निश्चित रूप से वात्सल्य प्रेम-भावना का तिरस्कार है।

यह तो हुई शृङ्गारी कवियों की चर्चा। गोस्वामी तुलसीदास मर्यादावादी भक्त कवि भी युग के प्रभाव से अछूते न रह सके। शिव-पार्वती के विवाह के प्रसंग के अन्तर्गत—

बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाई । करि शृंगार सखी लै आई ।
देखत रूप सकल सुर मोहे, बरनै छवि अस जग कवि को है।

—"रामायण"

लिखने वाले गोसाईं जी ने भावान्तर में इस प्रकार छन्द रचे थे ।

अति चपल, छुटत कुटिल कच
छवि अधिक सुन्दरि पावहीं ।
पट, उड़त भूषण खसत,
हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं —'गीतावली'
उठी सखी हँसी मिस करि कहि मृदु बैन,
सिय रघुवर के भए उनीदे नैन । —'बरवै रामायण'
अहिरनि हाथ दहेड़ि सगुन लेइ आवत हो ।
उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो ।
काहे राम जिउ सांवर, लछमन गोरे हो ।
कीदहुँ रानि कौसिलहि परिगा भोर हो ।

—"रामलला नहछू"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष उतरते हैं ।

१—मुसलमानी शासन ने हिन्दू समाज को संघर्ष भावना से विमुख कर दिया ।

२—सूफी फकीरों के इश्क मजाजी ने यहाँ की जनता को काम-भावना की ओर प्रवृत्त किया ।

३—राधा-कृष्ण की रागानुगा भक्ति ने हिन्दुओं की धर्म की भावना की साधनात्मक पवित्रता में कमी की और श्रृंगार भावना को एक प्रकार से नैतिक समर्थन प्रदान किया ।

४—फारसी और उर्दू के साहित्य ने आशिक माशूक, सुरा, सुन्दरी, प्याला, साकी, आदि का प्रचार किया । उर्दू की गजलों ने श्रृंगार-भावना को प्रोत्साहन दिया तथा उर्दू के कसीदों ने दरबारदारी का पाठ पढ़ाया ।

५—मुसलमानी-शासन के वैभव और विलास ने कामुकता का प्रचार

किया। मुग्धा आदि के वर्णन करने के फलस्वरूप कविगण पुरस्कृत होते थे। फलतः समाज भी शृंगार की ओर झुक गया। इतना ही नहीं जवानी की गलतियों को वह किसी हद तक क्षमा भी करने लगा। %

४—शृंगारिकता का स्वरूप प्रायः गार्हस्थिक ही रहा। परकीया के विविध स्वरूपों के वर्णन होने पर भी कविगणों ने स्वकीया प्रेम को ही श्रेष्ठ बताया।

लाजवती निस दिन पगी निज पति के अनुराग।
कहत स्वकीया सीलमय, ताको पति बड़भाग।
—"मतिराम रसराज छन्द सं० १०"

× × ×

सोने में सुगन्ध न सुगन्ध में सुन्यो री सोनो,
सोनो औ सुगन्ध तो मैं दोनों देखियतु है।
—"स्वकीया का उदाहरण पद्माकर"

उन्होंने परकीया को कुचालिनी कह कर उसके प्रेम को कचा और अहित कर माना।

काची प्रीति कुचालि की बिना नेह रस-रीति।
मार रंग मारू-मही वारू की-सी भीति।
—"देव, प्रेम चन्द्रिका"

प्रवीणराय का "झूठी पातर भखति हैं बारी वायस स्वान" वाला दोहा भी इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। गणिका के निन्द्य पूर्ण वर्णनों का ही यह परिणाम था कि दरबारों में वेश्याओं का सम्मान होने पर भी समाज में बाजारी हुस्न परस्ती आदर न पा सकी। इन कविताओं में वेश्या-विलास की गन्ध कहीं भी नहीं मिलती है।

% इक भीजें चहलें परें बूड़ें बहें हजार।
किते न औगुन जग करै नय वय चढ़ती बार।
—"बिहारी"

७—रीति-कालीन हिन्दी कविता की शृङ्गारिकता का आधार "रसिकता" है और उसका उद्देश्य ऐन्द्रिक-सुख की प्राप्ति है।

८—इस लिए वासना को उसमें अपने प्राकृतिक रूप में ग्रहण करते हुए उसी की तुष्टि को निरछल रीति से प्रेम-रूप में स्वीकार किया गया है। उसको न आध्यात्मिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है न उदात्त एवं परिष्कृत करने का। *

यहाँ विचारणीय बात यह है कि लगभग समस्त रीतिकालीन कवियों ने भी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ लिखी हैं। यथा—

हरि, कीजति बिनती यहै तुमसौं बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डर्यौ रह्यौ, पर्यौ रहौं दरबार।
—"बिहारी सतसई २४१"

सेनापति चाहत है सकल जनम भरि,
वृन्दावन सीमा तें न बाहर निकसिबौ।
राधा-मन-रंजन की सोभा नैन-कंजन की
माल गरे गुंजन की कुंजन कौं बसिबौ।
—"कवित्त रत्नाकर"

होत रहै मन यों "मतिराम" कहूँ बन जाय बड़ो तप कीजै।
ह्वै बन माल हिए लगिए अरु ह्वै मुरली अधरा रस लीजै।
—"ललित ललाम"

आनद के कन्द जग ज्यावन जगत बन्द,
दसरथ-नन्द के निबाहेई निबाहिए।
कहै "पदमाकर" पवित्र मन पालिबे कौं,
चौरे चक्रपानि के चरित्रन को चाहिए।

---

* रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता, "डा० नगेन्द्र"

अवध बिहारी की विनोदन में बीथि-बीथि,
गीध गुह गीधे के गुनानुवाद गहिए।
रैन-दिन आठो जाम राम राम राम राम।
सीताराम सीताराम सीताराम कहिए।
—"प्रबोध पचासा ९"

श्री राधा जगदीसुरी यह विनती है मोर।
निज पद पद मन के विषै लीजै मो मन जोर।
—"ग्वाल"

इन कवियों ने अपनी भावनाओं को नारी के चारों ओर केन्द्रित किया और अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए शृङ्गारपरक रचनाएँ लिखीं, परन्तु अन्त में इन्हें निराश ही होना पड़ा। न नारी सौन्दर्य की विकृत प्रेम पिपासा ही इन्हें शान्त कर सकी और न आश्रयदाता राजे ही इन्हें सन्तुष्ट कर सके। फलत दोनों ही को इन्होंने मिथ्या समझा। अन्तिम दिनों में लिखी गई रचनाओं में इन कवियों की निर्वेद 'संसार मिथ्यात्व' की भावना स्पष्ट रूप से व्यक्त है।

या भव पारावार कौं उलंघि पार को जाइ।
तिय-छवि-छायाग्राहिनी ग्रहै बीचहीं आइ।
—"बिहारी सतसई ४३१"

यों मन लालची लालच में लगि लोभ तरंगन में अवगाह्यो।
त्यों 'पद्माकर' देह के गेह नेह के काजि न काहि सराह्यो।
पाप किये पै न पातकी पावन जानि के राम को प्रेम निबाह्यो।
चाह्यो भयो न कछू कबहूँ जमराज हू सों वृथा बैर बिसाह्यो।
—"जगद्विनोद छन्द सं० ५७२"

अतएव हम डा० नगेन्द्र के उपर्युक्त मत से सहमत नहीं हैं। हमारा मत है कि इन कवियों ने वासना को प्राकृतिक रूप में ग्रहण तो किया परन्तु उसके कारण उनकी तुष्टि नहीं हुई वे उसे प्रेम रूप में स्वीकार न कर सके। और अन्त

में उन्हें भगवद्भक्ति का आश्रय लेना पड़ा। प्रेम के शुद्ध रूप को जानकर उन्होंने अपनी प्रेम भावना को परिष्कृत करके अवश्य ही आध्यात्मिक रूप देने का प्रयत्न किया था।

डा० नगेन्द्र ने "रीतिकाल की भूमिका" के अन्तर्गत रीतिकालीन भक्ति को केवल मनोवैज्ञानिक आवश्यकता बताया है, इस प्रकार रीति कालीन भक्ति एक ओर सामाजिक कवच और मानसिक शरण्य भूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी। तभी तो ये किसी न किसी तरह उसका आँचल पकड़े हुए थे रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति-भावना से हीन नहीं है। हो भी नहीं सकता था, क्योंकि इनके लिए भक्ति एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए भी उनके विलास और जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में आस्था प्रकट करते। इसलिए रीतिकाल के सामाजिक जीवन और काव्य में भक्ति का आभास अनिवार्यतः विद्यमान है और नायक-नायिका के लिए बराबर 'हरि और राधिका' शब्दों का प्रयोग किया गया है।

इस कथन में दो भ्रान्तियाँ हैं—रागी और विरागी दोनों को एक साथ रख दिया गया है, तथा विशुद्ध भक्ति-भावना और रागानुगा भक्ति-साधना को पृथक-पृथक नहीं समझा गया है। उन दिनों जहाँ दरबारी कवि थे, वहाँ तुलसी और सूर जैसे राजसी ठाट बाट से दूर रहने वाले कविगण भी मौजूद थे। जहाँ कुछ लोग धर्म के नाम पर मठ और मन्दिरों में विलास करते, पापों की धुम धुम में मस्त रहते तथा राधा-कृष्ण के नाम पर धार्मिक वातावरण को दूषित बनाए हुए थे, वहाँ उस समय बहुत से ऐसे भी भगवद्भक्त थे जो जनता में धर्मशास्त्र की चर्चा करके रजोगुण और तमोगुण की निरर्थकता प्रतिपादित करते रहते थे अथवा वन-उपवनों आदि एकान्त स्थलों में रह कर जप-तप ध्यान-धारणा में रत रह कर सत्वगुण का विकास और भगवद्चरणों में प्रीति दृढ़ करने में संसार को भूल चुके थे। कृष्ण और राधिका को परब्रह्म रूप तथा शक्ति अथवा माया रूप में ग्रहण करने वाले तथा नायक-नायिका के रूप में ग्रहण

करने वाले दो पृथक् वर्ग थे। औसत धर्म भावना उतनी पवित्र नहीं रह गई थी, जितनी होनी चाहिए, परन्तु वास्तविक धर्म भावना सर्वथा लुप्त हो गई थी, ऐसा नहीं कहा जा सकता। बिहारी के निम्नलिखित दोहे में ढोंगी भक्तों का उपहास स्पष्ट है।

> जपमाला छापे तिलक सरै न एकौ कामु।
> मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राचै रामु।
>
> —"बिहारी सतसई १४१"

रीतिकालीन शृङ्गारी कवियों ने नायिका भेद आदि के वर्णनों में 'राधा कृष्ण' के नामों का प्रयोग भले ही मनोवैज्ञानिक आवश्यकतानुसार किया हो, परन्तु भक्ति-भावना की शरण उन्होंने वासनात्मक जीवन से निराश होकर ही की थी। जिन दिनों उनका जीवन विलासमय रहा था, उन दिनों भक्ति-भावना की चर्चा कौन करता ? फिर उसके निषेध की आवश्यकता भी क्यों होती ? भक्ति कोई ऐसी वस्तु नहीं जो चारों ओर यों ही मारी-मारी फिरती हो और उसे रास्ते का रोड़ा समझ कर उठाने की आवश्यकता पड़ती हो। भक्ति तो वह अमोघ शस्त्र है जिसकी सङ्कट और दुःख के निवारण के लिए खोज करनी पड़ती है। अस्वस्थ होने पर ही औषधि की आवश्यकता पड़ती है। अच्छे भले में उसकी चर्चा "भली या बुरी" कौन करता है ? यही कारण है कि भक्ति की विधेयात्मक चर्चा होती है, निषेधात्मक नहीं। रही इन शृङ्गारी कवियों की बात। इनके विषय में हम निवेदन कर चुके हैं कि जब संसार के लोभ, लालच, विषय भोग, धन, वैभव आदि सब पदार्थ केवल अशान्ति और निराशा के हेतु सिद्ध हुए, तभी उन्होंने भक्ति-भावना को अपनाया था और स्पष्ट घोषणा की थी कि—

> तौ लगु या मन-सदन में हरि आवैं किहि बाट।
> विकट जटे जौ लगु निपट खुटै न कपट-कपाट।
>
> —"बिहारी'

> ऐसो जो मैं जानती कि जै है तू बिषै के संग
> ऐरे मन मेरे हाथ पाँव तेरे तोरतो
>
> × × × ×

राधा-वर बिरह के वारिधि में बोरतो ।

—"पद्माकर"

इन कवियों के जीवन-वृत्तों से स्पष्ट है कि भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ प्रारम्भ कर देने के बाद किसी ने भी फिर वासनात्मक काव्य का सृजन नहीं किया था ।

पञ्चम अध्याय

प्रतिनिधि कवियों की समीक्षा

(अ)

सेनापति
बिहारी लाल
घनानन्द

(ब)

केशवदास
मतिराम
पद्माकर
ग्वाल

अध्याय–५

प्रतिनिधि कवियों की समीक्षा

रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—रीति से तात्पर्य काव्य-शास्त्र के विभिन्न अंगों, रस, ध्वनि, अलंकार, काव्य के गुण दोष-आदि के विवेचन से होता है। हिन्दी साहित्य में सन् १६०० से लेकर सन् १८५० तक के समय में ऐसे ही रीतिबद्ध और रीतियुक्त ग्रन्थों की रचना हुई थी। इसी कारण उसे रीतिकाल कहा गया है। इन ग्रन्थों में काव्य-लक्षण, रस निरूपण, भाव-भेद, नायक-नायिका भेद, ध्वनि, अलंकार, पिंगल, काव्य के गुण-दोष आदि समस्त काव्यांगों की विशद चर्चा है।

हिन्दी ने अपने साहित्य-सृजन के लिए संस्कृत से जीवन तत्त्व प्राप्त किया है।* हिन्दी की रीति-रचना के पीछे भी संस्कृत के रीति-साहित्य की प्रेरणा है। संस्कृत साहित्य में पहिले रचनाएँ लिखी गईं, उनके आधार पर कुछ लक्षण स्थिर किए गए और फिर उन लक्षणों को स्पष्ट एवं स्थापित करने के लिए तत्सम्बन्धित उत्तम, शुद्ध और सर्वाङ्गपूर्ण पद्य उदाहरणों के रूप में उपस्थित किए गए। लक्षणों की कसौटी पर जो रचना खरी न उतरती थी, उसकी उपेक्षा कर दी जाती। अधम श्रेणी का काव्य कह कर उसकी निन्दा भी कर दी जाती थी।

निर्धारित लक्षणों के अनुसार शुद्ध उदाहरण देने के लिए अन्य आचार्यों एवं कवियों द्वारा निर्मित पद्यों को निस्संकोच एवं स्वतन्त्रता पूर्वक ग्रहण कर लिया जाता था। इस प्रकार संस्कृत के रीति-साहित्य के अन्तर्गत कवि और आचार्य, दो पृथक् व्यक्ति थे, उनकी दो भिन्न श्रेणियाँ थीं। संस्कृत की रीति रचनाएँ पंडित वर्ग के लिए लिखी जाती थीं और उनके अन्तर्गत तर्क सम्मत तथा शुद्धतम विवेचन अभीष्ट था। यथा—

* देखें पीछे द्वितीय अध्याय।

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः,
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो,
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः।

महाकवि कालिदास प्रणीत "विक्रमोर्वशीय" नाटक के उक्त पद्य को काव्यप्रकाशकार (आचार्य मम्मट) ने 'सन्देह' अलंकार के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है और साहित्य दर्पणकार (विश्वनाथ) ने इसी को 'अतिशयोक्ति' के उदाहरण में रख कर प्रच्छन्न रूप में आचार्य मम्मट के मत का खण्डन किया है। यह बात दूसरी है कि 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' न्याय के विपरीत पड़ने के कारण परवर्ती आचार्यों ने विश्वनाथ को आलोचना का विषय बनाया।

२—इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जड़िता दृष्टिर्मृगीणामिव,
प्रम्लानारुणिमेव विद्रुमदलं श्यामेव हेमप्रभा।
कार्कश्यं कलयामि कोकिलवधूकंठेऽप्यिव प्रस्तुत,
सीतायाः पुरतश्च हन्त शिखिनां बर्हाः सगर्हा इव।

उक्त पद्य को रुय्यक ने 'अलंकार सर्वस्व' में कार्य निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा का उदाहरण दिया है। सरस्वती-कण्ठाभरण में महाराज भोज ने इसी को समासोक्ति अलंकार के उदाहरण स्वरूप लिखा है तथा भोज के परवर्ती सभी आचार्यों ने इसी पद्य को अप्रस्तुत प्रशंसा का उदाहरण माना है।

यहाँ एक बात विशेषरूप से ध्यान देना चाहिए। रुय्यक के अलंकार सर्वस्व के टीकाकार प्रसिद्ध विद्वान् जयरथ ने उक्त पद्य के सम्बन्ध में व्याख्या करते हुए निष्कर्ष रूप से यह कहा है कि इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन इत्यादि पद्य में अप्रस्तुत प्रशंसा और पर्यायोक्ति दोनों का होना सम्भव है।*

संस्कृत के रीति ग्रन्थकारों में पण्डितराज जगन्नाथ अन्तिम हैं। संस्कृत के वही एक ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने लक्षणों के अनुरूप उदाहरण देने के लिए स्वरचित रचनाएँ प्रस्तुत कीं। उन्होंने स्वयं ही लिखा है—

---

* पृष्ठ २३, साहित्य सर्मचा। सेठ कन्हैयालाल पोद्दार।

निर्माय नूतनं मुदाहरणानुरूपं
काव्यं मयाऽत्र निहितं न परस्य किंचित्
कस्तूरिका जननशक्ति भृता मृगेण
किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गन्धः

—प्रथमसर्ग रस गंगाधर।

अर्थात् मैंने इस ग्रन्थ में उदाहरणों के अनुकूल जिस उदाहरण में जैसा चाहिए वैसा काव्य बनाकर रखा है, दूसरे से कुछ भी नहीं लिया है क्योंकि कस्तूरी उत्पन्न करने की शक्ति रखते वाला मृग क्या पुष्पों की सुगन्ध की ओर मन भी लाता है। अपनी सुगंध से मस्त उसे क्या परवाह है कि वह पुष्पों की गंध को याद करे।

इस प्रकार पंडितराज ने एक नया मार्ग प्रशस्त किया। हिन्दी के रीति कवियों ने इसी मार्ग का अनुसरण किया और इसी प्रकार हिन्दी के रीति-साहित्य में आचार्य और कवि का भेद जाता रहा। प्रत्येक कवि आचार्य था तथा प्रत्येक आचार्य कवि। यह एक परिपाटी बन गई कि एक एक दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिख दिया और फिर उसके नीचे उदाहरण के लिए स्वय विरचित कवित्त या सवैया लिख दिया गया—

मतिराम ने असंभव अलंकार का लक्षण इस प्रकार दिया है—

जहाँ अर्थ के सिद्धि को संभव वचन न होय।
तहाँ असम्भव होत है, बरनत हैं सब कोय।

इसी के नीचे उसका उदाहरण दिया है।

यों दुख दै ब्रजबासिन कौं ब्रज कौं तजि के मथुरा सुख पैहैं,
वे रसकेलि बिलासिन कौं, बन कुंजनि की बतियाँ बिसरैहैं।
जाग सिखावन कौं हमकौं यदुरुनी तुम से उठि धावन ऐहैं,
ऊधो नहीं हम जानती हो मनमोहन कूबरी हाथ बिकैहैं।

—"ललित ललाम छन्द सं० २१२, २१३"

पद्माकर ने 'पूर्वानुराग' का लक्षण इस प्रकार लिखा है।

होत मिलन तें प्रथम ही व्याकुलता उर आनि।
सो पूरब अनुराग है बरनत कवि रसखानि॥

इसी के नीचे "पूर्वानुराग" का स्वयं रचित उदाहरण दे दिया है।

जैसी छवि स्याम की पगी है तेरी आँखिन में,
ऐसी छवि तेरी स्याम-आँखिन पगी रहै।
कहै 'पद्माकर' ज्यों तान में पगी है त्यों ही,
तेरी मुसकान कान्ह-प्रान में पगी रहै।
धीर धर धीर धर कीरति किशोरी, भई
लगन इतै उतै बराबर जगी रहै।
जैसी रटि तोहिं लागी माधव की राधे वैसी
राधे राधे राधे माधवै लगी रहै।

—"जगद्विनोद छन्द सं० ६७३, ६७४"

कहीं कहीं दोहा में ही उदाहरण लिख दिए गए हैं निम्न लिखित दोहा में द्वितीय असंगति का लक्षण है।

और ठौर करनीय जो, करत और ही ठौर,
बरनत सब कविराम हैं, यही असङ्गति और।

—'ललित ललाम छन्द सं० ३१४'

ऐसी स्थिति में काव्यांगों के विस्तृत विवेचन का विकास क्रम रुक जाना स्वाभाविक ही था, क्योंकि अपनी अपनी डफली के आगे दूसरे का राग कौन सुनता। तर्क द्वारा खण्डन मण्डन तथा नवीन सिद्धान्तों को प्रतिपादन वाली परिपाटी समाप्त हो गई।

भक्ति-काव्य के अन्त में हिन्दी का 'रीति-युग' आरम्भ हुआ था और केशवदास दोनों युगों के विष्कम्भक माने जाते हैं, जैसे केशवदास के पूर्व ही रहीम के बरवै नायिका भेद जैसे रीति ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी। इस प्रकार भक्ति-काल और रीतिकाल के बीच विभाजन रेखा खींचना असम्भव है। रीति-कालीन ग्रन्थों में हमें भक्ति-परक विपुल सामग्री मिलती है। अतः हिन्दी के रीति ग्रन्थकारों ने जहाँ संस्कृत साहित्य से जीवन तत्व प्राप्त किया, वहाँ उनके ऊपर उनके पूर्ववर्ती हिन्दी कवियों की भी छाप पड़ी।

हिन्दी काव्य के प्रभाव के कारण इस युग में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं :—

१—भक्ति-काव्य—राम और कृष्ण मुख्य रूप से कवियों के आराध्य रहे थे। इस युग में राम और कृष्ण दोनों से सम्बन्धित काव्य का प्रणयन हुआ। केशवदास, सेनापति, तथा पद्माकर ने रामायण के विशिष्ट प्रसंगों का कवित्तों में वर्णन किया है। मधुसूदन दास का 'रामाश्वमेध यज्ञ' एक सुन्दर प्रबन्ध काव्य है। श्री कृष्ण तो इन दिनों जन गन मन अधिनायक थे। अतः प्रायः सभी कवियों ने कृष्णभक्तिपरक रचनाएँ लिखी थीं। शृङ्गारपरक भक्ति रचनाएँ लिखने वालों में नागरीदास, चरनदास तथा उनकी दो शिष्याएँ सहजोबाई और दयाबाई मुख्य हैं।

२—प्रबन्ध-काव्य—इसकी प्रणाली मंझन, जायसी आदि प्रेममार्गी कवियों ने चलाई थी, तथा गोस्वामी तुलसीदास ने उसे पुष्ट किया था। इस युग में इस प्रणाली का भी प्रयोग हुआ कथात्मक और वर्णनात्मक दोनों ही रूपों में यथा—

(अ) वर्णनात्मक—नूर मुहम्मद की इन्द्रावती, चन्दन का सीत-बसन्त, मंचित का कृष्णायन, ब्रजवासीदास का ब्रज विलास आदि।

(ब) कथात्मक—लाल का छत्रप्रकाश सदन का सुजानचरित, चन्द्रशेखर का हम्मीरहठ, जोधराज का हम्मीर रासो, मधुसूदन का रामाश्वमेध यज्ञ आदि।

३—वीर काव्य—सूर के श्याम, तुलसी के राम और मीरा के गिरधर इस युग में भूषण के शिवा जी, लाल के छत्रसाल अथवा पद्माकर के जगतसिंह बन गए थे। वीर-यश-प्रशस्ति-गायन की यह परम्परा वीर-गाथा-काल (रासो के समय से) चली आती थी। केशव का वीरसिंह देव चरित्र, पद्माकर की हिम्मत बहादुर विरुदावली, जोधराज का हम्मीर रासो, लाल का छत्रप्रकाश आदि ग्रन्थ इस युग के वीर-काव्य हैं। कविजनों ने अपने आश्रयदाताओं को वीर रस परक-रचनाओं के द्वारा स्फूर्ति प्रदान की और "शिवाजी कौं बखानी कै बखानौं छत्रसाल कौं" आदि वाक्यों द्वारा उनकी जी खोलकर प्रशंसा की। इनके द्वारा युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर तथा दयावीर आदि के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत हुए।

विभिन्न आश्रयदाताओं के यहाँ रहने वाले कवियों की प्रशस्त रचनाओं में हमें पुनरावृत्ति मिलती है। यह स्वाभाविक ही था।

४—दोहा कवित्त, तथा सवैया की प्रधानता—इस युग में दोहा, सवैया और कवित्त छन्दों के प्रयोग की प्रधानता रही। वैसे, रोला त्रोटक, चौपाई, हरिगीतिका छप्पय पद और कुण्डलियाँ आदि की भी यत्र-तत्र बयस्या दृष्टा दिखाई देती है।

इनके अतिरिक्त तत्कालीन वातावरण एवं मुगल दरबारों के कारण भी काव्य रचना प्रभावित हुई। यथा अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग (इलाज, मसलूब, बलक गरीबनेवाज आदि) विदेशी शब्दों में देशी प्रत्यय जोड़ने की प्रवृत्ति, विरह का ऊहात्मक वर्णन +, चित्र-काव्य ×, तथा कवियों की स्वाभिमानिनी भावना का प्रस्फुरन। प्रत्येक कवि ने अपने छन्दों में अपना नाम चाहा है, सेनापति ने अपनी कविता को "भूषण को धाम" = बताया तथा चार चरणों की चोरी ० की चर्चा की। घनानन्द ने तो यहाँ तक कह डाला था कि:—

लोग हैं लागि कवित्त बनावत
मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत।

—"सुजानहित प्रबन्ध, छन्द सं० २२७"

विशेष—यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रृंगार-रस विषयक रचनाओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन थी। हिन्दी के आदि कवि चन्द तथा उनके बाद अमीर खुसरो आदि सब कवियों की रचनाओं में श्रृंगार-निरूपण मिलता है। रीतिकाल में श्रृंगार निरूपण खूब किया गया और यह प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में गृहीत हुआ।

रीति ग्रन्थों का निर्माण—इस दिशा में संस्कृत, ग्रन्थ ही आधार रहे।

+ बिहारी और रसलीन विशेष तौर पर।

× सेनापति।

= कवित्त रत्नाकर।

० सुनु महाजन चोरी होति चारि चरन की।

× × × ×

—"कवित्त रत्नाकर, १, २०"

संस्कृत में अलंकार, रस आदि निरूपण की प्रायः निम्नलिखित ३ शैलियाँ प्रचलित थीं। हिन्दी में तीनों ही शैलियाँ अपनाई गई। यथा—

१—काव्य प्रकाश की शैली—इसमें काव्य के सभी अंगों पर थोड़ा बहुत प्रकाश डाला गया है। इस श्रेणी के मुख्य ग्रन्थ हैं चिन्तामणि कृत "काव्य विवेक" और कविकुल कल्पतरु" सेनापति का "काव्य कल्पद्रुम" तथा देव कृत "काव्यरसायन"।

२—श्रृंगार तिलक, रस मंजरी आदि की शैली—इसे श्रृंगारमयी शैली कह सकते हैं जिसके अन्तर्गत केवल "श्रृंगाररस" के विभिन्न अंगों, विशेष कर नायिका भेद का निरूपण किया गया है, इस श्रेणी के मुख्य ग्रन्थ हैं केशव का रसिकप्रिया, मतिराम का रसराज, देव कृत भाव विलास, रस विलास, और भवानी विलास और सुजान विनोद पद्माकर का जगद्विनोद, बेनी प्रवीन का नवरस तरंग इत्यादि।

३—चन्द्रालोक की शैली—यह अलंकार निरूपण की संक्षिप्त शैली है, इसके अनुसार अलंकारों के संक्षिप्त रूप से लक्षण और उदाहरण दिए गए हैं। हैं। इस श्रेणी के मुख्य-मुख्य ग्रन्थ हैं। जसवंत का "भाषा भूषण" सुरति मिश्र की "अलंकार माला" मतिराम का "ललित ललाम" तथा पद्माकर कृत 'पद्माभरण"। अलंकार के निरूपण के लिए अधिकांश कवियों ने जयदेव के "चन्द्रालोक" तथा अप्पय दीक्षित के "कुवलयानन्द" का ही सहारा लिया है। केशवदास ने अवश्य ही दण्डीकृत "काव्यादर्श" को अपनाया था। हिन्दी का अलंकार निरूपण प्रायः पर्यायात्मक ही हुआ।

सारांश रूप मे हिन्दी के रीति-साहित्य में प्रचलित प्रवृत्तियों को हम इस प्रकार गिनते हैं—

१—हिन्दी के रीतिकाल में कवि और आचार्य का भेद लुप्त हो गया। बिना आचार्यत्व के कवि-कर्म अधूरा ही समझा जाता था।

२—इस युग में तीन प्रकार की रचनाएँ लिखी गई—श्रृंगार-सम्बन्धी, भक्ति-सम्बन्धी तथा रीति-सम्बन्धी।

३—रीतियुग में ध्वनि, रस और अलंकार इन तीनों वादों का अनुसरण

हुआ। इनमें रस-सम्प्रदाय की प्रधानता रही, और रस में भी शृङ्गार रस की। रूद्रभट्ट और भोज के अनुकरण पर "शृङ्गारवाद" की प्रतिष्ठा सी हो गई। समस्त कवियों ने शृङ्गार रस के अतिरिक्त अन्य रसों की चर्चा मात्र की। सभी ने एक स्वर से शृङ्गार रस को "रसराज" स्वीकार किया।

नव हू रस को भाव, बहु तिनके भिन्न विचार,
सबको केशवदास हरि, नायक है शृङ्गार।
—'रसिकप्रिया १, १६'

उन्मादिक सबरस तहँ, संचारी है भाव।
कृष्ण देवता स्याम रंग, सो सिंगार रसराव।
—जगद्विनोद छन्द सं० ६१३"

महाकवि ने तो यहां तक कह दिया है कि अन्य रस "शृङ्गार" से उत्पन्न होते तथा क्षीण हो जाते हैं :—

नवरस मुख्य शृङ्गार मह,
उपजत विनसत सकल रस।
ज्यों सूक्ष्म थूल कारन प्रगट,
होत महा कारन विवस।

४—शृङ्गार-रस प्रकरण की निम्नलिखित विशेषताएँ रहीं :—

(अ) शृङ्गार रस का सावयव (स्थायी भाव, संचारी भाव, उद्दीपन विभाव, अनुभाव तथा उनके विभेद) निरूपण।

(ब) उद्दीपन विभाव की प्रधानता रही क्योंकि नायिका-भेद-कथन, नख शिख-वर्णन, तथा ऋतु-वर्णन ही प्रमुख एवं प्रिय विषय रहे।

नायिका भेद—इसके सम्बन्ध में हम तृतीय अध्याय में विस्तृत चर्चा कर चुके हैं। विश्वनाथ का 'साहित्य दर्पण' और भानुदत्त की 'रसमंजरी' इसके मुख्य आधार ग्रन्थ रहे। इस युग के प्रायः प्रत्येक कवि ने इस विषय पर थोड़ा बहुत लिखा है। नायिका भेद का कथन पूरे दो सौ वर्षों तक हुआ और इस दिशा में हिन्दी के कवि संस्कृत-कवियों को पीछे छोड़ गए। नायिका-भेद-वर्णन में मुक्तक छन्दों द्वारा शृङ्गार रस के विभाव पक्ष का विशेष रूप से पोषण हुआ है।

नख-शिख-वर्णन—नख शिख-वर्णन की प्रणाली अत्यन्त प्राचीन है। संस्कृत के अनेक कवियों ने इस विषय पर लिखा है। महाकवि कालिदास ने श्री पार्वती के रूप लावण्य का इस प्रकार वर्णन किया है।

मध्येन सा वेदि विलग्नमध्या वलित्रयं चारुबमार बाला,
आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्।
अन्योन्य मुत्पीडयदुत्पलाक्ष्या स्तनद्वय पान्डु तथा प्रवृद्धम्,
मध्ये यथा श्याम मुखस्य तस्य मृनालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम्।
—"कुमार सम्भव, १, ३६४–०"

स्वयंवर के समय का सीता जी के सम्बन्ध में अध्यात्म रामायण में वर्णन है।

सीता स्वर्णमयीं माला गृहीत्वा दक्षिणे करे,
स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वाभरण भूषिता।
मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः क्वणच्चरण नूपुरा,
दुकूलपरिसंवीता वस्त्रांतर्व्यंजितस्तनी।

—"६, २६, ३०"

हिन्दी के प्राचीनतम ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो में भी "मनहु कला ससिमान-कला सोलह सों बन्निय" आदि वाक्यों में हमें इस विषय का पूर्व रूप मिलता है, आगे चलकर १६ वीं सदी के प्रारम्भ में जायसी कृत "पद्मावत" में हमें पद्मिनी के "नख शिख" की चर्चा मिलती है। रीतिकाल में पहुँच कर यह एक स्वतन्त्र विषय बन गया। भक्ति-भावना के अन्तर्गत उपास्य देव में अनन्त शक्ति और अनन्तशील के साथ अनन्त सौन्दर्य की भी प्रतिष्ठा हुई। भक्तकवियों ने भगवान के अनन्त सौन्दर्य समन्वित विश्वमोहक स्वरूप का भी खोलकर वर्णन किया। उन्होंने भगवान के अंग प्रत्यंग का, चोटी से लेकर पैर के नाखूनों तक एक-एक अंग का, भावपूर्ण मनोमुग्धकारी वर्णन किया है। भक्ति-भावना के अनुकरण पर शृङ्गार रस-निरूपण में भी स्वरूप-वर्णन की प्रणाली आगई जो कृष्ण राधा के नख शिख-वर्णन से प्रारम्भ होकर लौकिक नायक-नायिकाओं पर जाकर रुकी।

महाकवि देव ने रूप की व्याख्या इस प्रकार की।

> देखत ही जो मन रहै, सुख अंखियनु को देय,
> रूप बखाने ताहि जो, जग चेरो करि लेय।

अर्थात् सौन्दर्य की सार्थकता इसी में है कि (१) उसे देखते ही मन बसे। (२) वह आँखों को सुख दे तथा (३) जग को अपना दास बना ले। सौन्दर्य की इसी कसौटी के आधार पर स्त्रियों के सौन्दर्य-वर्णन का क्रम चला। ये वर्णन समष्टि और व्यष्टि दोनों ही रूपों में हुए हैं। नारी उनके शरीर का वर्णन भी तथा शरीर के अंग-प्रत्यंग का पृथक्-पृथक् वर्णन भी। "नखशिख" "शिख हजारा" आदि पुस्तकें इस बात का प्रमाण हैं कि एक-एक अङ्ग के वर्णन में पूरे पोथे ही रच डाले गए थे। इनके वर्ण्य विषय इस प्रकार रहे हैं। पग-तल, पग, पद, लालिमा, एड़ी, पदांगुलि, पद-नख, गुल्फ, पिंडुरी, जंघा, नितम्ब, कटि, नाभि, उदर, त्रिवली, रोम-राजि, कुच, कुचकी युत कुच, कर-तल, अंगुलि, कर-नख, पीठ, ग्रीवा, भुजा, चिबुक, चिबुक का तिल, अधर, मुसकान, ओठ, वाणी, मुख-राग, मुसकान, कपोल, कपोलों की ललाई, कपोल का तिल, कान, नाक तथा उनके आभूषण, लोचन, मृदु तिल, दृगकोर, चितवन, भृकुटि, भाल, मुख-मण्डल, केश, मस्तक पाटी, मांग, बेणी, अंग-वास, अंग-दीप्ति, गति सर्वांग सुकुमारता तथा सोलह शृंगार।

भक्ति-काल में शृंगार वर्णन मर्यादित बना रहा।

> जगत मातु पितु सम्भु भवानी,
> तेहि सिंगार न कहउँ बखानी। —"रामायण"

रीति-काल में यह मर्यादा टूट गई और राधा-कृष्ण के नाम पर कतिपय कवियों ने कुरुचिपूर्ण वर्णन तक कर डाले।

ऋतु वर्णन—इसके अन्तर्गत दो प्रश्न चले। षट् ऋतु-वर्णन तथा बारह मासे। वर्ष के ६ भाग किए गए हैं। वसन्त, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमन्त तथा शिशिर। रीतिकालीन कवियों ने इन छहों ऋतुओं के सुन्दर वर्णन किए हैं। षट्ऋतु के अन्तर्गत हाली, हिंडोला वन, पवन, उपवन, सरोवर चन्द्र, चन्द्रिका आदि समस्त उद्दीपन-उपकरणों के वर्णन किए गए हैं। ये वर्णन

श्रृंगार के दोनों पक्षों "संयोग तथा वियोग" के अन्तर्गत किये गए हैं। इन वर्णनों में नैसर्गिक सौन्दर्य की अपेक्षा उद्दीपक प्रभाव का ही अधिक कथन किया गया था।

'बारह मासा'—इसके अन्तर्गत भी एक तरह से षट्ऋतु वर्णन ही है। बारहमासे वियोग श्रृंगार के अन्तर्गत लिखे गए हैं। इनके द्वारा वियोगिनियों की विरह वेदना, उनके सन्देश तथा उपालम्भ आदि का वर्णन किया जाता है। जायसी विरचित "पद्मावत" में हमें हिन्दी का पहिला बारह मासा मिलता है। वह "नागमती" के विरह प्रसंग में लिखा गया है।

रीति काल में रस रीति पर लिखने वाले अनेक कवि हुए। हालांकि चिन्तामणि त्रिपाठी से रीति-काव्य की परम्परा मानी जाती है परन्तु केशवदास इस युग के सर्वप्रथम आचार्य कवि हैं। "पद्माकर" इस युग के अन्तिम कवि हैं।

बाद में मुगल दरबारों का वैभव कम हो जाने के कारण लोगों का झुकाव नीति और भक्ति सम्बन्धी रचनाओं की ओर फिर हो चला था और कतिपय लक्षण-ग्रन्थों के बजाय श्रृंगार-परक फुटकल रचनाएँ लिख कर ही सन्तुष्ट हो जाते थे। इनमें 'घनानन्द' का नाम अग्रगण्य है।

श्रृंगारी कवियों के दो विभाग—रीतिकाल में श्रृंगार रस विषयक रचनाएँ दो रूपों में लिखी गई। (अ) केवल साधारण काव्य के रूप में। (ब) लक्षण ग्रन्थों के रूप में। कुछ कविगण तो ऐसे थे जो केवल कवि ही थे और उनकी कविता में यथा स्थान श्रृंगार के विभिन्न अङ्गों की चर्चा आगई है। श्रृंगार रस के विविध अवयवों, अङ्ग उपांगों आदि के प्रतिपादन के उद्देश्य से उन्होंने कविता नहीं की। इनके अतिरिक्त कवियों का उद्देश्य कविता करने के अतिरिक्त श्रृंगार रस सम्बन्धी विभिन्न अवयवों का निरूपण करके आचार्यत्व का प्रतिपादन करना था, अर्थात् लक्षण ग्रन्थ उपस्थित करना था। इनकी कविता का ढंग यह था कि पहिले एक दोहे में लक्षण लिख दिया और फिर उसी के नीचे वहीं पर कवित्त या सवैया में तत्सम्बन्धी उदाहरण लिख दिया। इसमें जिन

कवि पुंगवों के शृंगार विषयक काव्य की समीक्षा करती है, उनमें सेनापति, बिहारी, ग्वाल तथा घनानन्द प्रथम कोटि के अन्तर्गत आते हैं।

इन्होंने यद्यपि रीति कालीन परिपाटी पर रचना नहीं की, तथापि उनकी रचनाओं पर रीतियुग की प्रवृत्तियों की छाप स्पष्ट है। केशव, मतिराम तथा पद्माकर द्वितीय भाग में आने वाले रीतिकालीन परिपाटी पर रचनाएँ लिखने वाले आचार्य कवि हैं।

(अ)

(सेनापति)

यह अनूपशहर के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्मकाल सन् १२८९ ई० के आस-पास माना जाता है। + इनका ग्रन्थ "कवित्तरत्नाकर" मिलता है। इसी के आधार पर इनके जीवन वृत्त का थोड़ा बहुत पता चलता है। ×

तत्कालीन वातावरण का प्रभाव—"कवित्तरत्नाकर" की पहिली तरंग की छन्द संख्या २१ में सेनापति ने सूर्यवंशी नामक किसी व्यक्ति की प्रशंसा की है। जो ब्रज प्रदेश का राजा जान पड़ता है। + इतना ही नहीं उन्हें राजा राम के समान भी बताया है। % "राम रसायन" के एक छन्द के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि समय की गति के अनुसार इनको भी किसी मुसलमानी दरबार का राज्याश्रय प्राप्त था। किसी कारणवश बाद में इन्हें दासता से विरक्ति हो गई थी।

केतो करो कोई, पैये करम लिख्योई, तातें,
दूसरी न होइ, उस सोई ठहराइये।
आधी तें सरस गई बीति कै बरस, अब,
दुज्जन दरस बीच न रस बढ़ाइये।

+ १—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं० २०० संस्करण सम्वत् १९९७।

× तरंग पहिली, छन्द सं० ९।

+ ३—तरंग पहिली, छन्द सं० २१।

% ४—तरंग पहिली छन्द सं० २०।

चिंता अनुचित तजि, धीरज उचित, सेना-
पति ह्वै सुचित राजा राम गुन गाइये।
चारि बरदानि तजि पाइ कमलेच्छन के,
पाइक मलेच्छन के काहे कौं कहाइये।
—"तरंग पाँच छन्द सं० ३२"

सेनापति की भाषा यद्यपि शुद्ध ब्रजभाषा है, तथापि फिर भी मुसलमानी शासन तथा उर्दू के प्रभाव के कारण उसमें अरबी और फारसी के अनेक शब्द आ गए हैं। जैसे—

कौल (१, ४२) समाधान (१, १३) फौज (१, २०) रोजनामे (१, ११) मिसल (२, ३२) मसाल (२, ४०) हाला (२, ४४) खसखाने (३, १०) गरद, मार (३, १७) महल (३, २८) आदि।

मुगल दरबार की शान शौकत का इनके ऊपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। राजमहलों के ठाट-बाट के दृश्य इनकी आँखों में झूमते रहते थे। विलासी जीवन जनता के लिए भी आदर्श की वस्तु थी, तथा अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए इन कवियों को उनके वैभव का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करना ही पड़ता था। सेनापति के 'ऋतु वर्णन' में ये सभी बातें मिलती हैं।

सरस सुधारी राज मंदिर में फूलवारी,
मोर करैं सोर, गान कोकिल विराव के।
सेनापति सुखद समीर है, सुगंध मंद,
हरस सुरतसम सीकर सुभाव के।
प्यारो अनुकूल, कोहू करत-करन-फूल,
कोहू सीसफूल पाँवड़ेऊ मृदु पाँव के।
चैत में प्रभात, साथ प्यारी अलसात, लाल
जात मुसकात, फूल बीनतें गुलाब के।
—"तीसरी तरंग, छन्द सं० ६"

× × × ×

तथा—

जेठ नजिकाने सुधरते खसखाने, तल
ताख तहखाने के सुधारि झारियत हैं ।
होति है मरम्मति विविध जल जंत्रन की,
ऊचे ऊंचे अटा, ते सुधा सुधारियत हैं ।
सेनापति अतर, गुलाब, अरगजा साजि,
सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं ।
ग्रीषम के बासर वराइबे कौं सीरे सब,
राज भोग काज साज यों सम्हारियत हैं ।
—'तीसरी तरंग, छन्द सं० १०"

यह तो हुआ ग्रीष्म के ताप से बचने के लिए शीतोपचार का वर्णन । अब अगहन मास में आवश्यक उपभोग सामग्री भी देख लीजिए ।

प्रात उठि आइबे कौं, तेलहिं लगाइबे कौं,
मलि मलि न्हाइबे कौं गरम हमाम हैं ।
ओढ़िबे कौं साल, जे विसाल हैं अनेक रंग,
बैठिबे को सभा, जहाँ सूरज की घाम है ।
धूप कौं अगर सेनापति सोंधो सौरभ कौं,
सुख करिबे कौं छिति अतर को धाम है ।
आए अगहन, हिम पवन चलन लागे,
ऐसे प्रभु लोगन कौं होत बिसराम है ।
—"तीसरी तरंग, छन्द सं० ४३" ×

अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करके पुरस्कार आदि प्राप्त करने के लिए कवियों को भाषा का चमत्कार, शब्दों की कलाबाजी अथवा कविता की कारीगरी दिखानी होती थी । सेनापति की कविता में यह मनोवृत्ति स्पष्ट ही परिलक्षित होती है । उनका "श्लेष वर्णन' तो केवल "शब्द श्लेष" का चमत्कार दिखाने के लिए ही लिखा गया जान पड़ता है । इसमें उपमेय तो प्रधानरूप से नायिका

× इनके अतिरिक्त देखें तीसरी तरंग के छन्द सं० १६, १४, १० तथा २९ ।

है और उपमान अत्यन्त विचित्र हैं। उदाहरणार्थ एक जगह नायिका को प
की वाटिका बताया गया है।

> लाह सौं लसित नग सोहत सिंगार हार,
> छाया सोन जरद जुही की अति प्यारी है।
> रमनीय रौस लाल है रसाल बनी,
> रूप माधुरी अनूप रंभाऊ निवारी है।
> जाति है सरस सेनापति बनमाली जाहि,
> सींचे घन रस फूल भरी मैं निहारी है।
> सोभा सब जोबन की निधि है मदुलता की,
> राजे नव नारी मानौ मदन की बारी है।
> —"पहिली तरंग, छन्द सं० ११"

इसी तरग श्लेष वर्णन, के अन्तर्गत नायिका को सुवर्ण की मुहर, काम की तलवार, मेंहदी, कामदेव की पगड़ी, राग माला, आसमान, फूलों की माला, पद्मिनी, अमरावती, चौपड़ ममप्रद की माला अर्जुन की सेना, कान में पहिनने की लौंग तथा ग्रीष्म ऋतु बता कर अन्त में पुरुष के ही समान बता डाला है।*

शब्द चमत्कार की यह प्रवृत्ति केवल श्लेष वर्णन तथा नायिका के सम्बन्ध में ही नहीं अपितु अन्यत्र भी दिखाई देती है। कहीं दाता और सूम को समान बताया है, ऽ कहीं लोभा आर सूम को समान बताया है = कहीं शंकर और विष्णु का अभेद × दिखाया है + आदि।

---

* देखें पहिली तरंग छन्द स० १७, १५, १६, १०, १८, १६, २०, २१, २२, २७, ३१, ३५, ३७, ६० तथा ६४।

ऽ पहिली तरग छन्द स० ४०, ४१।

= पहिली तरंग छन्द सं० ४२।

× पहिली तरंग छन्द सं० ३८।

+ देखें पहली तरग छन्द स० ११ १२, २५ ३८, ४७, ४९, ७०, ६६, ६३, ६४ ६५, ७४, ७०, ८८, ८६ तथा ६२।

तीसरी तरंग 'ऋतु वर्णन' के अन्तर्गत कहीं ज्येष्ठ -मास की दोपहरी को आधीरात के समान बताया है (३, ११) तो कहीं ग्रीष्मऋतु तथा शरद् ऋतु को एक भाँति ठहराया है (३, १०) छन्द संख्या ५२ में तो उन्होंने दिन में ही रात करदी है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि सभंग-पद-श्लेष सेनापति की अपनी विशेषता है और हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। यथा—

> अधर कौं रस गहैं कंठ लपटाइ रहैं,
> सेनापति रूप सुधाकर तैं सरस है।
> जे बहुत धन के हरन हारे मन के हैं,
> सीतल मैं राखे सुख सीतल परस है॥
> आवत जिनके अति गजराज गति पावै,
> मंगल है सोभा गुरु सुन्दर बरस है।
> और है न रस ऐसो सुनि सखी साँची कहौं,
> मोतिन के देखिवे कौं जैसो कछु रस है॥
>
> —"पहिली तरंग छन्द सं० ६२"

इस कवित्त में 'मोतिन के' को 'मोतिनके' कर देने से दूसरे पद की सूचना मिलती है। नायिका प्रत्यक्ष रूप से मोतियों की प्रशंसा करती है, किन्तु गुप्त-रूप से श्लिष्ट वचनों द्वारा वह नायक दर्शन द्वारा प्राप्त होने वाले आनन्द की चर्चा करती है। गुरुजनों के संकोच के कारण स्पष्ट चर्चा न करके संकेत द्वारा वह अपनी सखी पर हृदय की बात प्रकट कर देती है।

सेनापति पण्डित राज जगन्नाथ के समकालीन थे। उन्होंने भी पंडितराज की 'कस्तूरिका जनन्यशक्ति भृता सुगन्ध कि सेव्यते सुमनसो मनसापि गन्ध' गर्वोक्ति समान अनेक गर्वोक्तियाँ कही हैं। +

> राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन कौं
> बुध कवि के जो उपकंठ ही बसति है।

+ पहली तरंग छन्द सं० ६ १०।

मोए पद मन कौं हरष उपजावति है,
तजे को कनरसै जो छंद सरसति है ॥
अच्छर हैं विशद करति षषै आप सम,
जातैं जगत की जड़ताऊ बिनसति है ।
मानो छवि ताकी उद्वत सविता की सेना,
पति कवि ताकी कविताई बिलसति है ॥

—"पहिली तरंग छन्द सं० ८"

सेनापति राम-भक्त कवि थे। चौथी तरंग "रामायण-वर्णन" तथा पाँचवीं तरंग "राम रसायन-वर्णन" में उन्होंने स्पष्ट ही रघुनाथजी की अवतार बड़ाई की वन्दना की है। + तथा पूर्ण पुरुष बताया है। परन्तु श्रृंगार रस वर्णन के अन्तर्गत नायक और नायिका का वर्णन करते समय उन्हें कृष्ण और राधिका की याद आयी थी। उनकी रचनाओं में यथा स्थान कृष्ण के पर्याय-वाची शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। यथा पहिली तरंग में = घनश्याम, मनमोहन, माधव, घनस्याम, ❀ नन्द तथा त्रिभंगी स्याम।

दूसरी तरंग में × नन्द के कुमार, कन्हाई, घनस्याम, जदुबीर, स्याम, स्यामसुन्दर, कुँवर कन्हाई, बिहारी, मदन गुपाल, नंदलाल तथा गिरिधर।

तीसरी तरंग में ● स्याम, कन्हाई, घनस्याम, स्याम, जदुनाथ तथा लाल।

राधा का प्रयोग अपेक्षाकृत कम है।

पहिली तरंग। राधिका—"छन्द सं० ११"

पहिली तरंग। राधा—"छन्द सं० ४२"

तीसरी तरंग। नवल किसोरी—"छन्द सं० ११"। कुंजिका, ऊधौ, पहिले

+ १—चौथी तरंग छन्द सं० १।

+ २—पाँचवीं तरंग छन्द सं० १।

❀ ३—छन्द सं० १२, ३०, ३३, ३२, ३३, ७१, तथा ७७,

× छन्द सं० ११, १८, ३०, ३३, ४२, ४३, ४८, ५१, ५३, ६३, ६८ ७१ तथा ७४।

● छन्द सं० २२,१८,३०,४८,५३, तथा ६१।

तरग । ("छन्द सं० ११) कुसम, (२, ४२,) तथा प्रवचाल (२, ६८,) के उल्लेख द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि सेनापति राधा-कृष्ण विषयक शृङ्गार-भक्ति मिश्रित साहित्य से अवश्य ही प्रभावित हुए थे।

शृङ्गार रस का वर्णन—यद्यपि सेनापति ने रीतिकालीन परिपाटी का अनुसरण नहीं किया है, अर्थात् भाव, विभाव अनुभाव आदि के लक्षणों तथा उदाहरणों का क्रम से वर्णन नहीं किया है, परन्तु उनकी कविता में शृङ्गार-रस के समस्त अवयव पाए जाते हैं। शृङ्गार रस के आलम्बन विभाव नायक नायिका हैं। सेनापति ने इनके सौन्दर्य-वर्णन में मौलिकता से काम लिया है। यथा

> लाल मनरंजन के मिलिबे कौं मंजन के
> चौकी बठि बार सुखवति बर नारी है।
> अंजन, तमोर, मनि, कंचन, सिंगार बिन,
> सोहत अकेलो देह सोभा के सिंगारी है॥
> सेनापति सहज की तन की निकाइ ताकी,
> देखि कै दगन जिय उपमा बिचारी है।
> ताल गीत बिन, एक रूप कै हरति मन,
> परबीन गाइन की ज्यौं अलापचारी है॥

—"कवित्त रत्नाकर २, ५४"

नायिका केवल अपने शरीर के सौन्दर्य मात्र से ऐसी सुशोभित हो रही है। जैसे ताल गीत आदि से रहित किसी गायक की अलाप सुन्दर जान पड़ती है। दोनों की सुन्दरता कृत्रिम सौन्दर्य से रहित हान में है। उनका सौन्दर्य उन्हीं का है, वह किसी प्रकार बाह्य उपकरण पर अवलम्बित नहीं रहता है और भी देख लीजिए।

> कुन्द से दसन धन कुन्दन बरन तन,
> कुन्द सी उतारि धरी क्यौं बन बिछुरि कै।
> सोभा सुख कंद दरयौ चाहियै बदन चद,
> प्यारी जब मुसकाति नैंक मुरि कै॥

सेनापति कमल से फूलि रहैं अंचल नैं,
रहैं दृग चंचल दुराए हूँ न दुरि कै।
पलकैं न लागैं देखि ललकैं तरुन मन,
झलकैं कपोल, रहीं अलकैं बिथुरि कै॥

—"कवित्त रत्नाकर २, १०"

आलम्बन विभाव के निरूपण के लिए रीति-काव्य में प्रायः विविध नायिकाओं के लक्षण तथा उदाहरण देकर अनेक वर्णन करने की परिपाटी थी। सेनापति ने अपनी रुचि के अनुसार नायिकाओं के कुछ ही भेदों से सम्बन्धित कवित्त लिखे हैं।

लोचन जुगल थोरे थोरे से चपल सोई,
सोभा मंद पवन चलत जलजात की।
पीत हैं कपोल, तहाँ आई अरुनाई नई,
ताही छबि करि ससि आभा पात पात की॥
सेनापति काम भूप सोवत सो जागत है,
उज्जवल विमल दुति पैये गात गात की।
सैसव निसा अथौत जोवन दिन उदौत,
बीच बाल बधू झाई पाई परभात की॥

—'कवित्त रत्नाकर २, २९'

यहाँ 'मुग्धा' का सुन्दर वर्णन किया गया है। 'काम भूप सोवत सो जागत है' यह कह कर वय:सन्धि को अति उत्तमता के साथ व्यंजित किया गया है। प्रभात के रूपक ने सोने में सुहागे का काम किया है।

संयोग-शृङ्गार वर्णन—सेनापति ने 'स्वकीया एवं एक नारीव्रत' की महत्ता को स्वीकार करते हुए संयोग शृङ्गार के सुन्दर वर्णन किये हैं।

फूलन सों बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बैंदी मृगमद की असित है।
अंग अंग भूषन बनाइ ब्रज भूषन जू,
बीरी निज कर के खवाई अति हित है॥

है के रस बस जब दीबे को महाउर के,
सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सौं,
कही प्रानपति यह अति अनुचित है॥

—"कवित्त रत्नाकर २, ३६"

परस्पर दर्शन, स्पर्श एवं सखादि में नायक नायिका अनुरक्त हैं, वे पूर्णतया एक दूसरे के प्रेम में पगे हुए हैं। अतः यहाँ दाम्पत्य रति स्पष्ट है। वैसे "है के रस बस की कह कर भी रति स्थायी" व्यक्त कर दी गई है। नायिका का श्रृङ्गार वर्णन "उद्दीपन विभाव" है। नायिका "प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका" है। स्वकीया की सुकुमार भावनाओं का सुन्दर चित्रण है। "चीनो गुहना" पाम छिपाना आदि कायिक अनुभाव हैं। पति द्वारा श्रृङ्गार किये जाने पर पत्नी के चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। "स्वेद" तथा "रोमाञ्च" सात्विक अनुभाव व्यंजित हैं। "महावर" लगाने का प्रयास करते ही पत्नी पति के हाथ को थाम कर आँखों से लगा लेती है। यह नायिका के अयत्नज अलंकार 'औदार्य' को बताता है। 'विभ्राम' व्यंजित है। नायक नायिका के लिये ब्रज भूषन जू तथा स्याम जू का प्रयोग स्पष्ट ही रीति कालीन परम्परा का द्योतक है।

रामायण वर्णन में विशेष रूप से प्रसंगानुसार एक नारी व्रत की महिमा पर बल देकर इन्होंने बड़े उत्साह के साथ "दाम्पत्यरति" का वर्णन किया है। यथा—

१—देखि चरनारविंद चंदन कर्‌यो बनाइ,
उर कौं बिलोकि विधि कीनी आलिंगन की।
चैन के पुञ्ज-पेन राखे करि नैन नैक,
निरखि निकाई इंदु सुन्दर बदन की॥
मानो एक पतिनी के व्रत को पतिव्रत की,
सेनापति सीमा तन मन अरपन की।

सिय रघुराई जू कौं माला पहिराई लौन,
राइ करि धारी मुन्दराई त्रिभुवन की ॥

—"कवित्त रत्नाकर ४, १८"

२—आनन्द मंगन चंद मह्या मनि मंदिर में,
रमैं सियराम सुख सीमा हैं सिंगार की।
पूरन सरद ससि सोभा सौं परस पाइ,
बाढ़ी है सहस गुनी दीपति अगार की ॥
भौन के गरम छवि छीर की छिटकी रही,
विविध रतन जोति अंबर अपार की।
दोऊ बिहसत बिलसत सुख सेनापति,
सुरति करत छीर सागर विहार की ॥

—"कवित्त रत्नाकर ४, २१"

राम तथा सीता आलम्बन विभाव हैं। मणि मन्दिर, रत्न ज्योति तथा पू
चन्द्र एव शीतल चाँदनी तथा स्वच्छ आकाश "उद्दीपन" है। विहसन तथ
विलसन कायिक अनुभाव हैं। 'रोमाञ्च तथा "स्वेद" सात्विक अनुभाव हैं
"हर्ष" तथा "स्मृति" संचारी भाव हैं स्मितमुख पूर्वक विलसत में "उग्रमर्श'
की व्यंजना है। अतः रति स्थायी पुष्ट होकर "संभोग शृङ्गार हुआ।

३—सीता अरु राम, जुवा खेलत जनक धाम,
सेनापति देखि नैन नैंकहू न मटके।
रूप पेखि देखि रानी, वारि फेरि पियैं पानी,
प्रीति सौं बलाइ लेत वयौ कर पटके।
पहुँची के हीरन में दंपति की झांईं परी,
चंद बिंबि मानौं मध्य मुकुर निकट के।
भूलि गयौ खेल दोऊ दुसत[illegible]सपर,
दुहून के दृग प्रतिबिंबन सौं अटके ॥

—"कवित्त रत्नाकर ४, १०"

राम और सीता "आलम्बन विभाव" हैं। रानियों की बलैयाँ लेना तथ

राई गोल उसारना "उद्दीपन" विभाव है प्रोति और दम्पति द्वारा "रति स्थायी" की व्यंजना है।

पहुँची के हीरों में पड़ती हुई एक दूसरे की परछाईं को देखना "कायिक अनुभाव" है। "भूल गयौ सेख" द्वारा स्पष्ट है कि उनकी शारीरिक चेष्टाएं रुक गई हैं। अतः "स्तम्भ" सात्विक अनुभाव है। "रोमांच" सात्विक की व्यंजना है।

इष्ट की प्राप्ति तथा होने वाले उत्सव के कारण दोनों का चित्त प्रसन्न है और दोनों साधारण सज्ञानहीनता अवस्था को प्राप्त हैं। अतएव "हर्ष" और "मोह" सचारी भाव हुए।

"दुहुन के रत प्रतिबिम्बन सौं भटके" से यह स्पष्ट है कि नायक-नायिका परस्पर दर्शन द्वारा एक दूसरे में पूर्ण अनुरक्त हैं। अत संभोग शृंगार पूर्ण रूपेण परिपुष्ट है।

४—सरस सुधारी राज मंदिर में फुलवारी,
मोर करैं सोर, गान कोकिल बिराव के।
सेनापति सुखद समीर है, सुगंध मंद,
हरत सुरत स्रम-सीकर सुभाव के॥
प्यारो अनुकूल कौहू करत करनफूल,
कौहू सीसफूल पांयडेऊ मृदु पांव के।
चैत में प्रभात साथ प्यारी अलसात, लाल
जात मुसकात फूल बीनत गुलाब के॥
—"कवित्त रत्नाकर ३, ४"

इनके शृंगार वर्णन में कहीं-कहीं अश्लीलत्व दोष भी आ गया है।

१—सरद बदन पान खाए रे रदन, मानौ
हरद सरद-चन्द दुति दिखावति है।
चीकने चिकुर छूटि रहे हैं बिलास भाल,
बाँधी कसि पट्टी सेनापति रिझावति है॥

कीने नत नैन देखें मुख-चन्द नंदन कौं,
अंक लै मयंक मुखी ताकि मन्छावति है।
बाएँ कर छौरिल कौं सीस राखि दाहिने सौं,
गहे कुच प्यारी पयपान करावति है ॥

— 'कवित्त रत्नाकर ३, ६१'

२—सूरे तजि भाजी, बात कातिक मौं जब सुनी,
हिम की हिमाचल तैं चमू उतरति है।
आयं अगहन, कीने गहन दहन हूँ कौं,
तित हू तैं चली, कहूँ धीर न धरति है ॥
हिय मैं परी है हूल दौरि गहि तजी तूल,
अब निज भूल सेनापति सुमिरति है।
पूस में त्रिय के ऊँचे कुच-कनकाचल मैं,
गढ़वै गरम भई, सीत सौं लरति है ॥

— 'कवित्त रत्नाकर ३, ४४'

इस सम्बन्ध में यह बता देना आवश्यक है कि "शृंगार वर्णन" (दूसरी तरंग) के अन्तर्गत अश्लीलत्व दोष की झलक मात्र आई है। अश्लीलत्व दोष वास्तव में पहिली तरंग के कतिपय छन्दों में आगया है। यहाँ "श्लेष-वर्णन" के मोह के कारण सेनापति को रसाभासपूर्ण एवं अश्लील बातों के कहने में भी संकोच नहीं हुआ है। यथा—

१—मदन अधर सोहैं सकल बदन चंद
मंगल दरस शुभ बुद्धि के विसाल हैं।
सेनापति आसों जुव जन सब जीवन हैं,
कवि अति मंद गति चलति रसाल हैं ॥
तम है चिकुर केतु काम की विजय निधि
जगत जगमगत जाके जोति जाल हैं।
अंबर लसति गुनवति सुख रासिन कौं
मेरे जान बाल नवग्रहन की माल है ॥

—"कवित्त रत्नाकर १, ३१"

८—छतियाँ सकुच वाकी को कहै समान तातें,
न रन ते मुरे सदा बीर करन मैं।
सबै भाँति पन करि बलमहि पाग राखै,
तेज को सुने तें आप माने मान खन मैं॥
अबला लै अंक मरे रति जो निदान करै,
ससि सन सोभावंत मानिये जो धन मैं।
जुगति बिचारि सेनापति है बरनि कहै,
बर नर नारि दोऊ इक ही बचन मैं॥
—"कवित्त रत्नाकर १, ६४"

वियोग-शृंगार-वर्णन—सेनापति का ध्यान संयोग शृङ्गार की अपेक्षा वियोग शृङ्गार की ओर अधिक है। विरह जनित स्मृतिग्लता का एक चित्र देखिये।

जौतें प्रानप्यारे परदेस कौं पधारे तौतें,
बिरह तें भई ऐसी ता तिय की गति है।
करि कर ऊपर कपोलहि कमल-नैनी,
सेनापति अनमनी बैठिये रहति है॥
कागहि उड़ावै, कौहू कौहू करै सगुनौती,
कौहू बैठि अवधि के बासर गनति है।
पढ़ि पढ़ि पाती, कौहू फेरि कै पढ़ति, कौहू,
प्रीतम कौं चित्र मैं सरूप निरखति है॥
—"कवित्त रत्नाकर २, ६१"

इनका विरह-वर्णन प्रधानतया प्रवास-हेतुक तथा विरह हेतुक है और विरह-व्यथा को उद्दीप्त करने के लिए ऋतु वर्णन की सहायता ली गई है। यथा—

दूरि जदुराई, सेनापति सुखदाई,
ऋतु पावस की आई, न पाई प्रेम पतियाँ।
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी,
है दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियाँ।
आई सुधि बर की हिए मैं आन खरकी,
"तू मेरी प्रान प्यारी" ए प्रीतम की बतियाँ।

बीती औध आवन की लाल मन भावन की,
डग भई बावन की सावन की रतियाँ ॥
—"१, २८"

यहाँ "प्रवास हेतुक विप्रलम्भ शृङ्गार" का वर्णन है। विरहिणी नायिका आलम्बन है। पावस की ऋतु सावन का महीना और अँधेरी रात में वर्षा की झड़ी, किसे अपने प्रीतम की याद न दिलायेंगी। ये सब "उद्दीपन विभाव" हैं। प्यारे की सुधि तक न मिलना और उसके आने की अवधि का बीत जाना तरह-तरह के वितर्क (संचारी भाव) उत्पन्न करते हैं। वितर्क तथा बाध "संचारी भाव" हैं। छाती में धड़कन होना मानसिक अनुभाव है। प्रियतम की बातों की (प्राण प्यारी कह कर बुलाना इत्यादि) याद आना "स्मृति" एवं "गर्व संचारी" की व्यंजना है। "डग भई बावन की सावन की रतियाँ" यह बताता है कि वह उत्सुकता पूर्वक बाट जोह रही है और उसे नींद नहीं आती है। यहाँ उत्सुकता विषाद एवं "उद्वेग संचारी" है। उत्कट अनुराग होने पर भी प्रिय संयोग का अभाव है। अतः विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत रति स्थायी पूर्णतया परिपुष्ट है।

२—लाल के वियोग तें, गुपाल हू तें लाल सोई,
अरुन बसन छोड़ि जोग अभिलाख्यो है।
सैन सुख तज्यो सज्यो सैन दिन जागरन,
भूल हू न काहू और रूप रस चाख्यो है॥
प्यारी के नयन अंसुवान बरसत तासौं,
मीनत उरोज देखि भानु मन भाख्यो है।
सेनापति मानौं प्रानपति के दरस रस,
शिव कौं जुगल जलसाई करि राख्यो है॥
—"कवित्त रत्नाकर २, २१"

नायिका स्वकीया है। पति के परदेश चले जाने के कारण विरह व्यथित है। उसने केश प्रसाधनादि शृङ्गार छोड़ दिये हैं। अतः प्रोषित पतिका है। "भूलि हू न काहू और रूप रस चाख्यो है" इस बात का प्रमाण है कि वह पूर्णतया

पतिव्रता है। उत्तम रति है। जोगियों जैसे वस्त्र धारण कर लेना, सेज पर सोना छोड़ना, "निर्वेद संचारी" के व्यंजक हैं। "अश्रु प्रवाह" अनुभाव है। शंका, चिन्ता, स्मृति, प्रलाप, औत्सुक्य तथा विषाद संचारी भावों की व्यंजना है।

१—लोन हैं कलोल पारावार के अपार तऊ,
जमुना लहरि मेरे हिय क्यों हरति हैं।
सेनापति नीकी पटवास हू तें मल रज
पारिजात हू तें वन लता सरसति हैं॥
अंग सुकुमारी संग सोरह-सहस रानी,
तऊ छिन एक पै न राधा बिसरति हैं।
कंचन अटा पर अगरऊ परजंक तऊ,
कुंजन की सजैं वे करेजे खरकति हैं॥

तरह-तरह की विलास की सामग्रियाँ, रनवास की सुकुमारियाँ, स्वर्ण खचित पलंग आदि "उद्दीपन विभाव" हैं। "गुण कथन" अनुभाव है। जमुना की लहरें, वन-लता तथा ब्रज की कुंजों की याद आना "स्मृति एवं मोह" संचारी भाव है। निर्वेद संचारी की व्यंजना है।

२—सुनि के पुरान राखे पूरन के दोऊ कान,
विमल निदान मति ज्ञान को धरति हैं।
सदा अपमान सनमान, सब सेनापति,
मानस समान, अभिमान तैं चिरति हैं॥
सेई हैं परन साला, सह्यो घाम घन पाला,
पंचागिनी ज्वाला जोग साधय मुगति हैं।
कीनी सीक माला परे अंगुरीन जप छाला,
ओढ़ी मृगछाला पै न बाला बिसरति हैं॥

—"कवित्त रत्नाकर २, २७"

तप किया, परन्तु उनका ध्यान नहीं टूटा। कहीं-कहीं ईर्ष्या हेतुक वियोग भी वर्णन पाया जाता है।

१—कुबिजा उर लगाई हमहूँ उर लगाई
पी रहे दुहू के तन मन वारि दीने हैं।

वे तो एक रति जोग हम एक रति जोग,
सूल करि उनके हमारे सूल कीने हैं ॥
कूबरी यौं कल पैहै हम इहाँ कल पैहैं,
सेनापति स्यामैं समझे यौं परबीने हैं
हम वे समान ऊधौ कहौ कौन कारन तैं,
उन सुख माने हम दुख मानि लीने हैं ॥
—"कवित्त रत्नाकर १, ६१"

२—मौन सुधराए सुख साधन धराए जाऱ्यौ,
नाम यौं बराए सखी आग रति राति है।
आयौ बदि चंद पै न आयौ बसुदेव नंद,
छाती न सिराति आधी राति निबराति है ॥
सेनापति प्रीतम की प्रीति की प्रतीत मोहिं,
पूछति हौं तोहि मोसी और को सुहाति है।
किन बिरमाए, केलि कला के रमाए लाल,
अजहूँ न आए धीर कैसे धरि जाति है ॥
—"कवित्त रत्नाकर २, ४१"

इन्होंने विरही की विकलता का अत्युक्तिपूर्ण विवरण थोड़ा ही किया है।
आत्मक वर्णन केवल एक दो स्थलों पर ही किया है।

ज्यौं ज्यौं सखी सीतल करति उपचार सब,
त्यौं त्यौं तन बिरह की बिथा सरसाति है।
ध्यान कौं धरत सगुनौतियौ करत तेरे,
गुन सुमिरत हो बिहाति दिन राति है ॥
सेनापति जदुबीर मिलें ही मिटैगी पीर,
जानत हौ प्यास कैसे ओसनि बुझाति है।
मिलिबे के समैं आप पाती पठवत, कछू,
छाती की तपति पति पाती तैं सिराति है ॥
—"कवित्त रत्नाकर ९, ३६"

उन दिनों विरहिणियों की विकलता का अतिरंजित वर्णन करने की

एक परम्परा सी बन गई थी। और उसी के अन्तर्गत विरहिणियों के शरीर पर कपूर, चन्दन आदि शीतल पदार्थों के लेप आदि द्वारा विरह ताप को कम करने के उपचारों का वर्णन करना भी आवश्यक हो गया था। सेनापति ने भी एक स्थल पर इन विरहोपचारों का वर्णन किया है।

चले उत पति के वियोग उतपति भई,
छाती है तपति ध्यान प्रान के अधार कौं।
सेनापति स्याम जू के बिरह बिहाल बाल,
सखी सब करति विचार उपचार कौं॥
प्रीतम अरग जातैं ताही तैं अरगजातैं,
सीरक न होति उर जारत है मार कौं।
सीतल गुलाब हू सौं घिसि उर पर कीनो,
लेप घनसार कौं सो मानौं घन सार कौं॥

—"कवित्त रत्नाकर ९, ४३"

संचारी भावों का वर्णन—लक्षण एवं उदाहरणों वाली शैली पर रचना न करने के कारण सेनापति ने "संचारी भावों" का वर्णन नहीं किया है। परन्तु यथा स्थान उनकी व्यंजना बड़ी ही मार्मिक एवं सजीव हो गई है, क्योंकि उनका समावेश अत्यन्त सरल एवं स्वाभाविक रूप में हुआ है।

कौने बिरमाए, कित छाए, अजहूँ न आए,
कैसे सुधि पाऊँ प्यारे मदन गुपाल की।
लोचन जुगल मेरे ता दिन सफल ह्वै हैं,
जा दिन बदन छवि देखौं नंद लाल की॥
सेनापति जीवन अधार गिरिधर बिन,
और कौन हरै बलि बिथा मो बिहाल की।
इतनी कहत, आंसू बहत, फरकि उठी,
लहर लहर दृग बाईं ब्रज बाल की॥

उपर्युक्त कवित्त में वितर्क से पुष्ट "विषाद" की शान्ति कराकर "हर्ष" संचारी भाव की सफल व्यंजना है।

उद्दीपन विभाव-वर्णन—इसके अन्तर्गत इनका "ऋतु वर्णन" (चौथी तरंग) तथा शृंगार वर्णन (दूसरी तरंग) के अन्तर्गत नायिका के अंग प्रत्यंगों के वर्णन आते हैं। नायिका के अंगों का वर्णन नख शिख निरूपण शैली पर हुआ है।

सेनापति का षट् ऋतु वर्णन "उद्दीपन" की दृष्टि से ही हुआ है। ऐसा जान पड़ता है, इसमें स्वतन्त्र रूप से प्रकृति वर्णन अथवा प्रकृति की सरिलष्ट योजना का अभाव ही समझना चाहिए। यथा—

—"कवित्त रत्नाकर ३, ६८"

पाउस निकास तातैं पायौ अवकास भयौ,
जोन्ह कौ प्रकास, सोभा ससि रमनीय कौं।
विमल अकास, होत बारिज विकास, सेना—
पति फूले कास, हित हंसन के हीय कौं॥
छिति न गरद, मानौं रंग हैं हरद सालि,
सोहत जरद, को मिलावै हरि पीय कौं।
मत्त हैं दुरद, मिटयौ खजन दरद, रितु,
आई है सरद सुखदाई सब जाय कौं।
—"कवित्त रत्नाकर ३, ३३"

१—शरद् ऋतु के मनमोहक स्वरूप से प्रभावित होकर वह उसका वर्णन करना चाहते हैं, परन्तु परम्परा के मोह के कारण उद्दीपन की भावना आ जाती है। स्वच्छ आकाश, विकसित कास तथा हल्दी के रंग में रंगे हुए अगहन के धानों का वर्णन करते करते कवि को "हरिपीय" का स्मरण करना पड़ता है।

२—मकर सीत बरसत विषम, कुसुम कमल कुम्हिलात,
बन उपवन फीके लगत पियरे जोवत पात।
पियरे जोवत पात, करत जाड़ो दारुन अति,
सो दूनो बढ़ि जात, चलत मारुत प्रचंड गति।

भए नैंक माहौठि, कठिन लागै सुठि हिमकर,
सेनापति गुन यहै, कुपित दंपति संगम कर।

—"कवित्त रत्नाकर ३, ५२"

"दंपति संगम करि" कह कर स्पष्ट बता दिया गया है कि हेमन्त ऋतु में प्रकृति के साज किस प्रकार दाम्पत्यरति को उद्दीप्त करते हैं।

३—सखी सुख देन स्याम सुन्दर कमल नैन,
मिस के सुनए बैन देखि गुरुजन में।
सेनापति प्रीतम की सुनत सुधा सी बानी,
उठि धाई बाम, धाम काम छाड़ि छन में॥
छवि की सी छटा स्याम घन की सी घटा आइ,
झांकी चढ़ि अटा, पगी जोबन के मद में।
बे जु सीस बसन सुधारिबे कौं मिस करि,
कीनौं पाइलागनौ सो लागि रह्यौ मन मैं॥

—"कवित्त रत्नाकर २, ४८"

उपर्युक्त कवित्त में हेमन्त ऋतु की शीतल पवन का वर्णन किया गया है। इस समय के प्राकृतिक उपकरण दम्पति को पास रहने के लिए विवश कर ही देते हैं। मनुष्यों की तो बिसात ही क्या है, हेमन्त के प्रभाव से परम प्रतापी मार्तण्ड भी धनि (स्त्री) की कोख में आ घुसता है। (इन दिनों सूर्य धनि राशि पर रहता है। धन पर श्लेष है। उसके अर्थ स्त्री और धनि राशि दोनों ही होते हैं।

इसी प्रकार पावस ऋतु द्वारा कामदेव के उद्दीप्त होने का वर्णन किया गया है—

३—ग्रीषम तपति हर, प्यारे नभ जलधर,
सेनापति सुखकर जे हैं दंपतीन कौं।
सुब सरवर जीव सजत सकल घर,
धरत कदम-तरु कोमल कलीन कौं॥
सुनि घनघोर मोर कूक उठे चहूँ ओर,
दादुर करत सोर मार जामिनीन कौं।

काम धरे बाढ़ तरवारि तीर, जम डाढ़,
आवत असाढ़ परी गाढ़ बिरहीन कौं।
—"कवित्त रत्नाकर ३, २१"

४—आई रितु पावस कृपा बस न कीनी कंत,
छाइ रह्यो अन्त, बस बिरह दहत हैं।
गरजत घन, तरजत है मदन, सर,
जत तन मन नीर नैंननि बहत हैं॥
भग भग भग बोलै चातक बिहंग, प्रान।
सेनापति स्याम संग रंगहि चहत हैं।
धुनि सुनि कोकिल की बिरहिन को किलकी,
केका के सुने तें प्रान एकाके रहत हैं॥
—"कवित्त रत्नाकर ३, २५"

संयोग के समय जो पदार्थ सुखदायी होते हैं, वे ही वियोगावस्था में दुःखदायी हो जाते हैं। इसी प्रकार उद्दीस विरही की दशा सेनापति ने सफल मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

६—केतिक, असोक, नवचंपक, बकुल कुल,
कौन धौं वियोगिनी कौं बिकराल है।
सेनापति साँवरे की सूरति की सुरति की,
सुरति कराइ करि डारत बिहाल है॥
दछिन पवन एतौ ताहू की दवन जऊ,
सूनो है भवन परदेस प्यारो लाल है।
लाल हैं प्रबाल फूले देखत बिसाल, जऊ,
फूले और साल पै रसाल उर साल हैं॥
—"कवित्त रत्नाकर ३, ५"

बसन्त ऋतु में कामदेव अपने पाँचों बाणों को लेकर उपस्थित है। संयोग समय का स्मरण विरहिणी को विकल कर देता है। नूतन पल्लवादि तो पहिले से ही थे, आम्रमंजरी रूप के कामदेव के बाण ने उसे बस बेहाल कर डाला।

विरहावस्था में सुन्दर वस्तुएँ कितनी भयानक प्रतीत होने लगती हैं, इसका सेनापति ने अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा सुन्दर निरूपण किया है।

७—लाल लाल केसू फूलि रहे हैं बिसाल,
स्याम रंग भैंटि मानौ मसि में मिलाए हैं।
तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर पुंज,
मलय पवन उपवन बन धाए हैं॥
सेनापति माधव महीना मैं पलास तरु,
देखि देखि भाउ कविता के मन आए हैं।
आधे अन सुलगि सुलगि रहे आधे मानौ,
बिरही दहन काम क्वैला परचाए हैं॥

—"कवित्त रत्नाकर ३, ४"

फूले हुए टेसू के फूलों को कामदेव द्वारा सुलगाये गये कोयले बताकर कवि ने विरही का कलेजा निकाल कर रख दिया है। सेनापति ने 'ऋतु वर्णन" के अन्तर्गत वसन्त, ग्रीष्म आदिक छओं ऋतुओं का वर्णन तो किया ही है, साथ ही बीच-बीच में सावन भादों आदिक महीनों की चर्चा करके बारह मासे वाली परिपाटी का भी निर्वाह किया है। + उदाहरणार्थ—

८—खंड खंड सब दिग मंडल जलद सेत,
सेनापति मानौं सृंग फटिक पहार के।
अंबर अडंबर सौं उमडि घुमडि, छिन,
छिछके छिछारे छिति अधिक उछार के॥
सलिल सहल मानौं सुधा के महल नभ,
तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब कौं भाजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गगन घन क्वार के॥

—"कवित्त रत्नाकर ३, ३८"

+ देखो तीसरी तरंग छन्द सं० ६, १०, १२, १६, २१, २२, २७, २८, ३१, ३२, ४०, ४४, ४६, ४७, ४८, ५२ तथा ५४।

नख शिख वर्णन भी उद्दीपन की दृष्टि से ही किया गया है, स्वतन्त्र रूप में नहीं। यह कम बताया है कि प्यारी के नेत्र, कपोल आदि कैसे हैं, उनसे इस नायक के हृदय में उद्दीप्त काम की व्यंजना अधिक है। यथा :—

अंजन सुरंग जीते खंजन कुरंग, मीन,
नैंक न कमल उपमा कौं नियरात हैं।
नीके, अनियारे, अति चपल, ढरारे प्यारे,
ज्यौं ज्यौं मैं निहारे त्यौं त्यौं खरे ललचात हैं।
सेनापति सुधा से कटाछनि बरसि ज्यावैं,
जिनकौं निरखि हियौ हरषि सिरात है।
कान लौं बिसाल काम भूप के रसाल बाल,
तेरे दृग देखे मेरौ मन न अघात है॥

—"कवित्त रत्नाकर २, १"

नेत्रों के वर्णन के साथ नायक के "जरा चोर" नामक भाव का भी चित्रण किया गया है। इसी प्रकार केश-वर्णन में "दुखत हरत रति-कन्त के कलेस हैं" कह कर नायिका के केशों को देखकर नायक के हृदय में उत्पन्न काम-सुख की व्यंजना की गई है।

कालिंदी की धार निरधार है अधर गन,
अलि कै बिरत जा निकाई के न लेस हैं।
जीते अहिराज, खंडि डारे हैं सिखंडि घन,
इन्द्रनील कीरति कराई नाहिं एसहैं॥
पहिन लगत सेना हिए के हरष कर,
दुखत हरत रति कंत के कलेस हैं।
चीकने, सघन, अंधियारे तैं अधिक कारे,
लसत लछारे, सटकारे, तेरे केस हैं॥

—"कवित्त रत्नाकर २, ७"

"अङ्ग-वर्णन" के अन्तर्गत सेनापति ने भृकुटि, अधर, दाँत आदि का भी वर्णन किया है। × एक छन्द में विविध अङ्गों का वर्णन कर डाला है।*

सोलह शृङ्गार वर्णन की परिपाटी का सेनापति ने निर्वाह किया है किन्तु उसमें भी इनकी अपनी विशेषता है। यथा—

> नूपुर कौं झनकाइ मंद की धरति पाइ।
> ठाढी आइ आँगन भई ही साँझी यार सी।
> फरसा अनूप कीनी, रानी मैंन भूप की सी,
> राजै रासि रूप की बिलास कौं अधार सी॥
> सेनापति जाके दृग दूत ह्वै मिलत दौरि,
> कहत अधीनता कौं होत हैं सिपारसी।
> गेह कौं सिंगार सी, सुरत-सुख सार सी, सो,
> प्यारी मानौं आरसी, चुभी है चित आर सी॥

—"कवित्त रत्नाकर २, ६४"

कवि का नायिका के हाथ की आरसी की ओर विशेष ध्यान है। शब्द चमत्कार द्वारा "आरसी" पर चमक देकर उसकी मनोहर सुन्दरता का मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है।

अनुभावों की व्यंजना—अवश्य उदाहरण वाली शैली पर ध्यान न होते हुए भी इनकी रचना में यथा स्थान अनुभावों की सुन्दर एवं सजीव व्यंजना पाई जाती है। यथा—

> तोर्‌यो है पिनाक, नाक पाल बरसत फूल,
> सेनापति कीरति बखानै रामचंद्र की।
> लै के जयमाल सिय बाल ह्वै बिलोक छबि,
> दसरथ लाल के बदन अरबिंद की॥

× पहिली तरंग छन्द सं० १२, ३३ तथा दूसरी तरंग छन्द सं० २, ३, ४, ५, ६, १०, १२ तथा १९ व २१।

* २—दूसरी तरंग छन्द सं० ६, ११।

परी प्रेमफंद उर बाढ़्यौ है आनंद अति,
आछी मंद मंद चाल चलति गयंद की।
बरन कनक बनी, बानक बनक आइ,
झनक मनक बेटी जनक नरिंद की॥

—"कवित्त रत्नाकर ४, १७"

इसे ध्वन्यात्मक काव्य कहें अथवा अनुभावों का बोलता हुआ स्वरूप। स्वेद, रोमांच, कम्प तथा स्तम्भ सात्विक भाव हैं। मन्द मन्द चाली का कायिक अनुभाव है, प्रेम फंद में पड़ जाना हृदय के हर्षातिरेक वाले मानसिक अनुभाव की सूचना देता है। "हर्ष" संचारी भाव तो स्पष्ट रूप से व्यंजित है।

नायिका भेद कथन— 'शृङ्गार वर्णन" आलम्बन विभाव के अन्तर्गत सेनापति ने अपनी रुचि के अनुसार नायिकाओं के कुछ भेदों का वर्णन किया है। यथा—

१—मालती की माल तेरे तन कौं परस पाइ,
और मालातीन हूँ तैं अधिक बसाति है।
सोने तैं सरूप, तेरे तन कौं अनूप रूप,
जातरूप भूषन तैं और न सुहाति है॥
सेनापति स्याम तेरी सहज निकाई रीझे,
काहे कौं सिंगार के के बितवति राति है।
प्यारी और भूषन कौं भूषन है तन तेरो,
तेरियै सुबास और बास बासी जाति है॥

—"कवित्त रत्नाकर २, ६८"

उपर्युक्त कवित्त में सर्वगुणों से सम्पन्न एवं शोभा दीप्ति, कान्ति माधुर्य औदार्य आदि अयत्नज अलंकारों से युक्त नायिका का वर्णन है।

ऐसे ही लक्षणों से युक्त स्त्री को आचार्यों ने नायिका बताया है। ×

× रस सिंगार को भाव उर उपजत जाहि निहारि,
ताही को कवि नायिका, बरनत बिबिध बिचारि।

—"पद्माकर"

२—लोचन जुगल थोरे थोरे से चपल सोई,
सोभा मद पवन चलत अलजात की।
पीत हैं कपोल, तहाँ आइ अरुनाई नई,
ताही छवि करि ससि आभा पात पातकी ॥
सेनापति काम भूप सोवत सो जागत है
उज्ज्वल बिमल दुति पैये गात गात की।
सैसव निशा अथौत जोबन दिन उदौत,
बीत बाल बधू झाँई पाइ परभात की,

—"कवित्त रत्नाकर २, २६"

अवस्था के विचार से 'मुग्धा" नायिका है। लज्जाशीला किशोरी के शरीर में नवयौवन का संचार हो रहा है। धूप छाँह वाली यह अवस्था अनोखी ही होती है। सैसव जोबन "संगम भेद" कहकर विद्यापति ने इसका वर्णन किया है।

३—काम केलि कथा कनाटेरी पै सुनन लागी,
अरु अनुरागी बाल केलि के रसन है।
तरुन कै नैना पहिचानि, जिय मैं की जानि,
लागी दिन द्वैक ही तैं मोहिन हसन है।
चंपे के से फूल, भुज मूल की झलक लागी,
सेनापति स्याम जू के मन मैं बसन है ॥
सूधो चितवन तिरछौंही सी लगन लागी,
चिन ही कुचन लागी कुचकी लसन है।

—' कवित्त रत्नाकर २, ४८"

नायिका पर अकुंरित यौवन का प्रभाव परिलक्षित होने लगा है। काम भूप सोते से जाग गए हैं और यह जीवन में एक नवीन अनुभव करने लगी है। यह चंचला हो गई और काम चर्चा में उसे आनन्द आने लगा है।

४—झूठे काम कौ बनाइ, मिस ही सौं घर आइ,
सेनापति स्याम बतियान उचरत हौ।
आइ कै समीप, करि साहस, समान ही सौं,
हँसी हँसी बातन ही बाँह कौ धरत हौ ॥

मैं तो सब रावरे की बात मन मैं की पाई,
जाकी परपंच एतो हम सौं करत हौ ।
कहौ एती चतुराई पढ़ी आप जदुराई,
आँगुरी पसरि पहुँचा कौं पकरत हौ ॥
—"कवित्त रत्नाकर २, ३८"

यहाँ 'वचन विदग्धा' परकीया नायिका का वर्णन है । उस रीति "स्वकीया" की अपेक्षा परकीया नायिका का अधिक कथन होता था । खंडित वर्णन की विशेष प्रथा थी । सेनापति ने भी "खंडिता" का वर्णन किया है तथा प्रचलित प्रणाली के अनुसार दन्त क्षत, नख-क्षत, महावर आदि का उत्साहपूर्वक वर्णन किया है ।

बिन ही जिरह, हथियार बिन ताके अब,
भूमि मति जाहु सेनापति समझाए हौ ।
फारि डारि छाती घोर घाइन सौं राती-राती,
मोहिं धौं बतावौ कौन भाँति छूटि आए हौ ॥
पौढ़ौ बलि सेज, करौं औषद को रेज बेगि,
मैं तुम जियत पुरबिले पुन्य पाए हौ ।
कीने कौन हाल ! यह बाघिन है बाल ! ताहि,
कोसति हौं लाल, जिन फारि फारि खाए हौ ॥
—"कवित्त रत्नाकर २, २५"

यहाँ खंडिता नायिका का वचन है तथा सुन्दर वचन वक्रता का प्रयोग है । पराई स्त्री का बाघिनि कह कर अपने पति का पूर्णतया निर्दोष एवं असमर्थ बता कर मर्मभेदी व्यंग्य किया गया है । बड़पवन पर लाल लाल घाव कहकर दन्त-क्षत एवं नख-क्षत की ओर संकेत किया है । काम-केलि सूचक चिन्हों को देख कर नायिका ने केवल रोष ही प्रकट किया है, पति के प्रति आदर भाव का त्याग नहीं किया है । अतः यह मध्या खंडिता का सुन्दर उदाहरण है । "फारि फारि खाए" कहने से कुछ रस दोष अवश्य माना जाएगा ।

३ देखें दूसरी तरंग छन्द संख्या ११, २६ ।

सेनापति का ऐहिक श्रृङ्गार जब जीवन की एक क्षणिक घटना के रूप में आमुभास करने लगा तब उन्हें परमार्थ की चिन्ता हुई फल स्वरूप उन्होंने रामायण वर्णन और "राम रसायन" ये दो तरगें लिखीं। ससार की निस्सारिता से ऊब कर अन्त में आत्म-चिन्तन की ओर अग्रसर हुए। उन्होंने स्पष्ट कहा कि जीवन थोड़े के ताप की तरह शीघ्र ही समाप्त हो जाने वाली वस्तु है।

कीनौ बालापन बालकेलि में मगन मन,
लीनौ तरुनापै तरुनीके रस तीर कौं।
अब तू जरा में पर्‌यौ मोह पींजरा में सेना,
पति भजु रामैं जो हरैया दुख पीर कौं॥
चितहिं चिताऊ भूलि काहू न सताऊ, आउ,
लोहे कैसो ताऊ, न बचाऊ है सरीर कौं।
लेह देह करि कै, पुनीत करि लेह देह,
जीमैं अवलेह देह सुरसरि नीर कौं।

— 'कविता रत्नाकर ४, १२'

पढ़ी और विद्या, गई छूटि न अविद्या, जान्यौ,
अच्छर न एक, घोल्यौ कैयौ तन मन है।
तातैं कीजै गुरु, जाइ जगत गुरु कौं जातैं,
ज्ञान पाइ जीउ होत चिदानंद घन है॥
मिटत है काम क्रोध, ऐसी उपजत बोध,
सेनापति कीनौं सोध, कह्यौ निगमन है।
बारानसी जाइ, मनिकर्निका अन्हाइ, मेरो,
संकर तैं राम नाम पढ़िबे कौं मन है॥

—"कवित्त रत्नाकर ४, ४४"

रासमहलों के साथ रगों में राधा-कृष्ण के रास विलास की कल्पना करते करते अन्त में उन्हें वृन्दावन विहारी धनश्यामी के साहचर्य की आनन्दानुभूति की प्रबल इच्छा होने लगी।

पान चरनामृत कौं, गान गुनगनन कौं,
हरि कथा सुनि सदा हिय कौं हुलसिबौ।

प्रभु की उसीरन की, गूररायों धीरन की,
माल, भुज, कंठ, उर छापन की लसिबो ॥
सेनापति चाहत हैं सकल जनम भरि,
वृन्दावन सीमा तें न बाहिर निकसिबो ।
राधा मन रंजन की सोभा नैन कंजन की,
माला गरे गुंजन की, कुंजन की बसिबो ॥
—"कवित्त रत्नाकर ४, ३१"

(बिहारीलाल)

यह धौम्यगोत्री घरबारी माथुर चौबे थे। इनका जन्म ग्वालियर के पास बसुआ गोविन्दपुर में हुआ था। इनका जन्म सन् १६०० के आस-पास माना जाता है। अनुमानतः यह सन् १६६३ तक जीवित रहे थे।ऽ

एक दोहे के आधार पर इनकी बाल्यावस्था बुन्देलखंड में व्यतीत हुई थी और तरुणावस्था में यह अपनी ससुराल (मथुरा) चले आए थे।

तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव—बिहारीलाल कई दरबारों में आया जाया करते थे। शाहजहाँ के दरबार में इनका अच्छा मान था। जोधी और बूँदी के दरबारों में भी इनका आना जाना था। राजदरबारों के प्रभाव के कारण ही बिहारी सतसई की रचना हुई थी।

संवत् १६९१-९२ के लगभग जब यह अपनी वृत्ति लेने आमेर गए हुए थे तो पता चला कि तत्कालीन नरेश महाराजा जयसिंह एक नयी ब्याह कर लाई हुई रानी के प्रेम में मुग्ध होकर महल के भीतर ही पड़े रहते हैं। उन्होंने राज के कार्यों को सम्भालना भी छोड़ दिया है। उन्होंने यह आज्ञा भी कर दी है कि यदि कोई उनके रंग में भंग करेगा तो उसकी खैरियत नहीं। इसीलिए किसी की हिम्मत उनसे कुछ कहने सुनने की नहीं पड़ती थी। अन्त में

ऽ हिन्दी साहित्य का इतिहास। पृष्ठसंख्या ३११। संस्करण १९४०।

विशेष—इनके दोहे "बिहारी रत्नाकर" से उद्धृत किए गए हैं। दोहा संख्या बिहारी रत्नाकर के ही अनुसार है। ऐसा समझ लेना चाहिए।

बिहारी को एक युक्ति सूझी और उन्होंने अपनी कविता के प्रभाव से महाराज को सचेत करने की ठानी। उन्होंने उद्योग करके निम्नलिखित दोहा महाराज के निकट पहुँचाया।

> नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
> अली कली ही सौं बध्यौ, आगे कौन हवाल॥
>
> —"दोहा सं० ८"

इस दोहे की रहस्यमय उक्ति ने महाराज को सचेत कर दिया और वे तुरन्त महल छोड़ कर बाहर निकल आए। उन्होंने प्रसन्न होकर बिहारी को बहुतसा पुरस्कार दिया और कहा यदि आप इसी प्रकार कविता बना कर मुझे सुनाया करें तो आपको प्रति छन्द एक मोहर पुरस्कार स्वरूप मिला करेगी। बिहारी ने यह आदेश स्वीकार कर लिया बिहारी ने कुछ दोहे कुमार रामसिंह के जन्म अवसर पर बनाए थे + इसी समय जयसिंहजी ने कोई छोटी लड़ाई भी लड़ी थी और 'खावन" नाम के व्यक्ति को मार भगाया था। उसका वर्णन भी इन्होंने अपनी कविता में किया + अब बिहारी आमेर दरबार के राजकवि होकर अपना जीवन सुख पूर्वक व्यतीत करने लगे। कुछ समय बाद जब कुमार रामसिंह बड़े हुए तो चौहानी रानी के कहने से बिहारी ने ही कुमार का विद्यारम्भ संस्कार कराया। कुमार के पढ़ने के लिए बिहारी ने, उस समय तक इनके जितने दोहे बन थे उन्हें एकत्र करके संग्रह बना दिया। ×

इन दिनों की प्रजा का चित्त ठाकुरों के कारण व्यग्र था। राजे महाराजे, सरदार, सामन्त सब मिल कर प्रजा को पीस डालते थे। बाहिरी टाट-बाट के होते हुए भी प्रजा अपनी प्रतिष्ठा बचाने की चिन्ता में थी। लोग भगवान से यही प्रार्थना करते थे कि चाहे भर पेट भोजन न मिले, परन्तु इनकी इज्जत बनी रहे। बिहारी ने भी इसी प्रतिष्ठा रूपी सम्पत्ति की इच्छा की थी।

+ १—दोहा संख्या १६६, १६७।

+ २—दोहा संख्या ८०।

× ३—"बिहारी की वाग्विभूति पृष्ठ नं० ४, ६, सम्वत् १९९६ वाला संस्करण"।

तौ अनेक औगुन भरिहिं, चाहे याहि बलाइ।
जौ पति संपति हूँ बिना, जदुपति राखे जाइ॥
--"दोहा सं० ४२१"

उन दिनों के राज दरबार केवल शृङ्गारिकता के केन्द्र थे। वहाँ विलास का साम्राज्य था। वहाँ केवल कामदेवता का ही प्रसाद वितरित होता था, इसलिए केवल "स्वामिन सुखाय" ही होती थी।❀ दरबारी कवि ही के नाते बिहारी भी लोकरुचि के प्रभाव से अछूते न रह सके। "नहीं पराग" के मनाते तौर के मोह द्वारा अन्धकूप में महाराज जयसिंह को बाहर निकालने वाले बिहारी बाद में 'समै पलटि पलटै प्रकृति" ＼ के अनुसार स्वयं ही महाराज के आगे में मकरध्वज की पिचकारी छोड़ने लगे थे। यथा शृङ्गार परक दिखाने लगे थे।

परयौ जोरु बिपरीत रति, रुपी सुरत रन धीर।
करति कुलाहलु किंकिनी, गह्यौ मौनु मंजीर॥
—"दोहा सं० १२६"

बिनती रति बिपरीत की करी परसि पिय पाइ।
हँसि अनबोलै हीं दियौ उत्तरु, दियौ बताइ॥
--"दोहा सं० १३०"

तत्कालीन वातावरण एवं लोकरुचि का प्रभाव इनके दोहों से स्पष्ट परिलक्षित है।

लरिका लैबे के मिसुन, लंगर मो ढिग आइ।
गयौ अचानक आँगुरी, छाती छैलु छुवाइ॥
—"दोहा सं० ०८६"

उन दिनों समाज की कुछ ऐसी ही मनोवृत्ति हो गई थी। बिहारी ने तत्कालीन कुत्सित वातावरण का यथा स्थान वास्तविक वर्णन किया है।

समय के दूषित वातावरण के कारण बिहारी ने वात्सल्य का तिरस्कार करके रति का प्रतिपादन किया और भद्दी रुचि का परिचय दिया।

+ दोहा सं० ८०, १२१, ७१० व ७१३।
❀ दोहा सं० १११।

बिहँसि बुलाइ बिलोकि उत, प्रौढ़ तिया रस घूमि ।
पुलकि पसीजति पूत कौ पिय-चूम्यौ मुँहु चूमि ॥

—"दोहा संख्या ६१७"

उक्त दोहे में यह कहा गया है कि नायिका बालक का मुख इसलिए नहीं चूमती है कि उसके हृदय में वात्सल्य भाव है, बल्कि इसलिए चूमती है कि प्रियतम ने उसका चुम्बन किया है। मातृ हृदय की कोमल भावनाओं पर निर्मम आघात है। उन दिनों पारिवारिक जीवन में सम्भवतः व्यभिचार घर कर गए थे।

कहति न देवर की कुबत कुल-तिय कलह डराति ।
पंजर-गत मंजार ढिग सुक ज्यौं सूकति जाति ॥

—"दोहा सं० ८५" +

धार्मिक क्षेत्र में फैले हुए ढोंग एवं दम्भ को लक्ष्य करके बिहारी ने लिखा था।

जपमाला छापे, तिलक सरै न एकौ कामु ।
मन-काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु ॥

—"दोहा सं० १४१" ×

बिहारीलाल के समय में समाज का नैतिक स्तर कितना नीचा गिर गया था, इसका अनुमान निम्नलिखित दोहे से लगाया जा सकता है।

कन दैबौ सौंप्यौ ससुर, बहू थुरहथी जानि ।
रूप रहँचटै लगि लग्यौ माँगन सबु जगु आनि ॥

—दोहा सं० २१५"

अर्थात् नई आई हुई बहू को थुरहथी "छोटे छोटे हाथों वाली" जान कर ससुर ने उससे भिखारियों को अन्न देने का काम सौंपा 'ताकि कम अन्न खर्च हो" पर उसके रूप के लालच में लग कर सारा जगत उसके द्वार पर आकर भिक्षा माँगने लगा "फल स्वरूप और अधिक खर्च हुआ"।

ससुर की सूमता का व्यंजक होने के कारण इस दोहे को रत्नाकरजी ने

\+ दोहा सं० २२६, ६०२।

× दोहा सं० २१४, ४००।

हास्यरस का दोहा लिखा है परन्तु कुल वधू की ओर भिखारियों द्वारा देखना अथवा सामान्य विचारणीय विषय है। उस समय में माँगते भिखारी तक कुल वधुओं से छेड़-छाड़ कर सकते थे, अथवा कुछ ललनाएँ इतनी पतित हो चुकी थीं कि वे राह चलते भिखारियों को भी अपना रूप माधुरी का पान कराने में गर्व का अनुभव करती थीं। हमारे विचार से चाहे वस्तु स्थिति ऐसी न रही हो, परन्तु उक्त दोहे द्वारा तत्कालीन वातावरण की एक झाँकी अवश्य ही मिल जाती है।

तत्कालीन समाज की दशा को स्पष्ट करते हुए बिहारी के अनेक दोहे मिलते हैं। +

बिहारी का अधिकांश जीवन शहरों में बीता था। अतएव उनकी रसिकता सर्वथा नागरिक थी और उन्होंने कई स्थलों पर इसका उल्लेख किया है।

खेलन सिखए, अलि, भलैं चतुर अहेरी मार। +
कानन चारी नैन-मृग नागर नरनु सिकार॥
—"दोहा सं० ४५"

बिहारी की आँखों के सामने दिन-रात हर समय दरबारी ठाट-बाट ही नाचा करते थे। स्वरूप वर्णन करने में भी उन्होंने दरबारी उपकरणों से सहायता ली है। यथा—

लाज-लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं।
ए मुँहजोर तुरंग ज्यों, ऐंचत हूँ चलि जाहिं॥
अंग अंग प्रतिबिंब परि दरपन सें सब गात।
दुहरे तिहरे चौहरे भूषन जाने जात॥
—"दोहा सं० ६१८, ६८०" ×

दोहा सं० ६८० में बिहारी के सूक्ष्म निरीक्षण के साथ वैज्ञानिक ज्ञान भी परिलक्षित है।

+ देखें बिहारी रत्नाकर दोहा सं० १२, ७१, ७८, १६२, २४०, २६१, ३०३, ३०४, ३८१, ४१६, ५०३, ५१७, ६०२, ६१२ तथा ६९१।

+ दोहा सं० २०१, ३१८, ४६१ तथा ६३७।

+ दोहा सं० २०३, ११८, ७०१, तथा २०१।

दरबारी कवियों का एक ही काम होता है। अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करके उनके मुँह से वाह वाह कहलाना। इसके लिए वे चमत्कारमयी उक्तियों, विभिन्न विषय परक सूक्तियों आदि की रचना करते थे। बिहारी ने भी विविध विषयों ज्योतिष, आयुर्वेद आदि से सम्बन्धित अनेक दोहे लिखे थे। बिहारी को ज्योतिष, गणित, शास्त्र, आयुर्वेद आदि का कितना ज्ञान था हम नहीं कह सकते। परन्तु इतना सुनिश्चित है कि विविध विषयों से सम्बन्धित चमत्कार वादी दोहे ❀ इन्होंने अपने आश्रयदाता जयसिंह को प्रसन्न करने के लिए * लिखे थे।

सनि कज्जल चख झख लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यों न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेसु सब देहु॥
सीतलता अरु सुबास की घटै न महिमा मूरु।
पीनस वारैं जो तज्यो सोरा जानि कपूर॥
मैं लखि नारी, ज्ञानु, करि राख्यौ निरधारु यहु।
वहई रोग, निदानु, वहै बैदु औषधि वहै॥
युधि अनुमान प्रमान श्रुति किएँ नीति ठहराइ।
सूछम कटि पर ब्रह्म की अलख, लखीनहिं जाइ॥
—"दोहा स० ४, ५६, ४४७ तथा ६४८"

अन्ततोगत्वा बिहारीलाल ने सांसारिक भोग एवं ऐश्वर्य को ही जीवन का चरम लक्ष्य मान लिया था।

तंत्री-नाद कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग॥ —"दोहा सं० ६४"

उर्दू का प्रभाव—मुसलमानों के प्रभाव के कारण हिन्दी में अरबी और

❀ दोहा स० १६, २०, ४१, ४२, ७३, ८०, ९१ १११, ११२, ११७, ११९, १४९, १५१, १८१, २०४, ३२०, २५२, ३२८ तथा ४४२ आदि।

* हुकुम पाइ जयसाहि को, हरि राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद॥
—"दोहा सं० ७१३"

फारसी के अनेक शब्दों का प्रयोग होने लगा था। बिहारीलाल यद्यपि विशुद्ध ब्रज भाषा लिखने वाले कवि थे, परन्तु मुगल शासन एवं दरबारी वातावरण के कारण उनकी भाषा पर उर्दू भाषा का काफी प्रभाव पड़ा था। यथा

१—अपने अंग के जानि कै, जोबन-नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन नितम्ब कौ बड़ौ इजाफा कीन ॥
—"दोहा सं० २"

"इजाफा" अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है "बढ़ती अथवा वृद्धि" जब कोई बादशाह, अपने किसी सरदार अथवा कर्मचारी को अपना शुभचिन्तक समझ कर अथवा उसके किसी अच्छे काम से प्रसन्न होकर, उसकी जागीर अथवा उसके वेतन इत्यादि में वृद्धि कर देता है, तो वह "इजाफा" कहलाती है।

२—लखि, सोने, लोइननु कैं, कोइनु होइ न आजु।
कौन गरीब निवाजिबौ, कित तूठयौ रतिराजु ॥
—"दोहा सं० ५८"

यहाँ "निवाजिबौ" शब्द फारसी के "निवाज" शब्द से बना है। इसका अर्थ होता है। "कृपा करना" अथवा पालना।

इस प्रकार बिहारी ने अपनी अभिव्यंजना शक्ति को बल देने के विचार से विशेष कर दरबारी वातावरण से सम्बन्धित बातें लिखते समय, अरबी और फारसी (उर्दू) के शब्दों का खुल कर प्रयोग किया है। नीचे कुछ ऐसे ही शब्द और दिए जाते हैं। प्रत्येक के आगे कोष्ठक में बिहारी रत्नाकर के उस दोहे की संख्या दी गई है जिसमें उस शब्द का प्रयोग किया गया है।

(ताफता) ७०, (चसमा) १७०, १५१, (बपति) १११, (सहवास) १०१, (खुसगास) ३२९, (पायंदाज) ४१२ ।(नामूस) ५०२, (गुमान) १०६, (कतै) ७१० आदि।

शृङ्गार-वर्णन की प्रचलित परिपाटी के अनुसार बिहारीलाल ने नायक-नायिका के लिए 'कृष्ण' और 'राधिका' का प्रयोग किया है। उनके राधा कृष्ण केवल वृन्दावन की कुञ्जों में ही रास रचने वाले राधा कृष्ण नहीं थे। वे आगरा और अम्बर

की गलियों में भी परस्पर प्रेम-व्यापार करते तथा भाँति भाँति के खेल खेला करते थे। नायक-नायिकाओं का वर्णन करते समय इन्होंने कृष्ण तथा उनके पर्यायी शब्दों-मोहन, वनमाली, नन्दकिशोर गोपाल आदि, राधा, गोपी, ग्वालिनें, कुब्जा आदि शब्दों का निस्संकोच प्रयोग किया है।

कुंज-भवन तजि भवन कौं चलिए नंद किशोर।
फूलति कली गुलाब की चटकाहट चहुँ ओर॥
लाज गहौ, बे काज कत घेरि रहे घर जाँहि।
गोरसु चाहत फिरत हौ, गोरस चाहत नाँहि॥
गोप अथाइन तैं उठे, गोरज छाई गैल।
चलि, बलि, अलि अभिसारकी भली संझौखें सैल॥
रवि बन्दौ कर जोरि, ए सुनत स्याम के बैन।
भए हँसौ हैं सबनु कै, अति अनुखौं हैं नैन॥

(यह दोहा चीर-हरण प्रसङ्ग का है कृष्ण के नंगी गोपियों से हाथ ऊँचे कर के सूर्य की वन्दना करने को कहा है।)

—"दोहा सं० ८४, १२६, १७३ तथा २२४"

यहाँ तक कि कृष्ण और राधिका की विपरीत रति की भी चर्चा करती है।

राधा हरि, हरि राधिका बनि आए संकेत।
दंपति रति विपरीत-सुख सहज सुरत हूँ लेत॥

—"दोहा सं० १४५"

अभिसारिका, खंडिता आदि नायिकाओं के वर्णनों में कृष्ण-राधा के नाम ले देना तो एक साधारण सी बात थी। कहीं-कहीं तो शिव, विष्णु और लक्ष्मी की भी चर्चा कर डाली है। +

प्रान प्रिया हिय मैं बसै, नख रेखा ससि भाल।
भलौ दिखायौ आइ यह हरि हर-रूप रसाल॥

—"दोहा सं० २६७"

एक दो दोहों में बिहारीलाल ने राधा कृष्ण के प्रति भक्ति-भाव प्रदर्शित

+ इसी प्रकार दोहा संख्या ७४ में सीताजी की चर्चा है।

किया है। परन्तु यहाँ भी उनकी दृष्टि उनके शारीरिक सौन्दर्य एवं ऐहिक शृङ्गार पर ही आकर रुक गई है। शील आदिक का निरूपण न हो सकने से भक्ति-भावना अपूर्ण ही रह गई है।

तजि, तीरथ, हरि राधिका तन-दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज केलि-निकुंज मग-पग पग होत प्रयाग ॥
—"दोहा सं० ०१"

राधा-कृष्ण विषयक शृङ्गार वर्णन अन्य अनेक दोहों में पाया जाता है। + एक स्थान (पर दोहा सं० १००) में कृष्ण और राधिका नामों को श्लेष का विषय बना दिया है।

चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥

शृंगार वर्णन—× × × "शृङ्गार प्रेममय है। शृङ्गार में यथार्थ प्रेम वर्णन ही होता है। प्रेम तत्व की अनुभूत अभिव्यंजना ही शृङ्गार रस की जान है। इसमें स्थूल, संभोग और बाह्य सौन्दर्य का वर्णन उपकरण भले ही हों, परन्तु प्रधानता प्रेम भाव की सूक्ष्म सुकुमार, आनन्दमयी, हर्षातिरेकपूर्ण की अभिव्यंजना ही की होनी चाहिए, ऐसा न हो कि स्थूल संभोग की काली मेघ-घटा में प्रेम-चन्द्र ढक जाए + सम्भवतः इसी कारण कविवर बिहारी ने प्रेम-तत्व के निरूपण को टेढ़ी खीर बताया है।

गिरि तैं ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पसु नरन को प्रेम पयोधि पगार ॥
—"दोहा सं० ४१"

"बिहारीलाल को स्वामी हरिदास के सम्प्रदाय के महंत श्री नरहरिदासजी

+ देखें दोहा सं० २५, ११२, ११९, १८७, १४२, २१२ २२०, २३८, २४२, २४३ २४४, ३०२, ३१०, ३१२, ३१५, ३४८, ३९१, ३२२, ३३७, ६०६ ।

+ पृष्ठ सं० ११३ बिहारी दर्शन, लोकनाथ द्विवेदी, सम्वत् १९९१ का संस्करण पृष्ठ सं० १९ तथा १२१ बिहारी दर्शन सम्वत् १९९१ वाला संस्करण।

के शिष्य और माधुर्य रस पूर्ण सखी भाव की भक्ति वाले भी राधा कृष्ण के अनन्य उपासक थे।" इस दिव्य प्रेम की रमणता इनके दोहों में यथा स्थान मिलती है।

१—जौ न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकति मुँह दीन।
सो लहिए सँग सजन तो, धरक नरक हू कीन॥
—"दोहा संख्या ७५"

य. दोहा भक्ति-मार्ग और प्रेम की उत्कृष्टता का सुन्दर उदाहरण है। नरक में स्वर्ग से बढ़ कर आनन्द है, केवल प्रेम-पात्र पास हो।

२—मोहनि मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ।
बसत सुचित अंतर तऊ प्रतिबिंबित जग होइ॥
—"दोहा सं० १६१"

इसमें भक्ति की अनन्यता के साथ-साथ एकेश्वरवाद के दार्शनिक सिद्धान्त की भी अनोखी झलक है।

३—या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़े स्याम रंग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय॥
—"दोहा सं० १२१"

बिहारीलाल ने प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का सुन्दर वर्णन किया है। जीवन के अन्तस्थल में प्रविष्ट होकर उन्होंने अनुपम सौन्दर्य का उद्घाटन किया है। प्रेमादर्श, प्रेमप्रकर्ष, आत्मसमर्पण आदि विभिन्न प्रेमांगों के निरूपण बिहारी सतसई में उपलब्ध हैं। % यथा

चित दै देखु चकोर ज्यों तीजै भजै न भूख।
चिनगी चुगै अंगार की, पियै कि चन्द मयूख॥
उनको हित उनही बनै, कोइ करो अनेक।
फिरत काक गोलक भयो दुहू देह ज्यों एक॥
कीन्हेंहू कोटिक जतन, अब गहि काढ़े कौन।
भो मन मोहन रूप मिलि पानी में को लौन॥

% दोहा सं० २९७, ४४७, ३८।

यह तो हुई पारलौकिक पक्ष के प्रेम की बात। लौकिक प्रेम का भी बिहारी ने अत्यन्त उदात्त और प्रकृष्ट वर्णन किया है। +

१ ध्यान आनि ढिग प्रानपति, मुदित रहति दिन राति।
पल कंपति, पुलकति, पलक पलक पसीजति जाति॥

(उत्तमा पतिव्रता नारी अपने प्राणपति को ध्यान द्वारा अपने पास बुला लेती है) इसे हम नारद भक्ति-सूत्र के कथित स्मरणासक्ति का उदाहरण मान सकते हैं।

२—कहा भयौ जो बीछुरे, मो मन तो मन साथ।
उड़ी जात कितहू गुड़ी, तऊ उड़ायक हाथ॥

३—पिय के ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
आपु आपु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि॥

(उपर्युक्त दोनों दोहे वियोग में संयोग-शृङ्गार के सुन्दर उदाहरण हैं। क्योंकि "जो जाके मन में बसे सोई ताके पास")

"तदेव चिन्तयसि" के विषय में लिखते हुए बिहारी ने स्पष्ट लिखा है कि

प्रेम अडोल डुले नहीं, मुख बोले अनखाय।
चित उनकी मूरति बसी, चितवन माँहि लखाय॥

—"दोहा सं० ६३१"

इस प्रेम का कोई मापदण्ड निर्धारित नहीं किया जा सकता है। जो जिसके मन में समा जाए। केवल चित्त को अच्छा लगना मात्र। इस प्रेम के स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही रूपों में प्रकट होता है।

समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होय॥

—"दोहा सं० ४३२"

बिहारी ने शृङ्गार के मानुषी तथा ईश्वरीय दोनों ही पक्षों का बयान किया है और प्रेम की अनेक अवस्थाओं का निरूपण किया है। परन्तु इनके काव्य में मानुषी शृङ्गार की ही प्रधानता है। तन्त्री-नाद कवित्त रस तथा सरस राग और

+ दोहा संख्या ६०, १२१, २७६, ३०७।

रति रंग × के सागर में अवगाहन करके जीवन को सफल मानने वाले रसिक व्यक्ति के लिए यह स्वाभाविक ही था। किसी कामी के द्वारा बिहारी ने 'रति' की इस प्रकार प्रशंसा कराई है।

चमक, तमक, हाँसी, ससक, मसक झपट लपटानि।
ए जिहिं रति, सो रति मुकति, और मुकति अति हानि॥

—"दोहा सं० ७६"

अर्थात् जिस रति में चमक, तमक इत्यादि भाव हों, वही रति मुक्ति, परमानन्ददायनी है। अपरमुक्ति विनाश मात्र है।

सम्भोग शृंगार—इसके अन्तर्गत नायक-नायिका के दर्शस्पर्श केलिक्रीड़ा, रति, रति चिन्ह आदि समस्त अवयवों का कथन किया गया है यथा—

१—नाक चढ़ै सीबी करै जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै प्यौ ककरीली गैल॥

—'दोहा सं० ६०६"

मुग्धाओं की चेष्टाओं एवं क्रीड़ाओं का आनन्द लेने के लिए जान बूझ कर निस्याद अथवा गलती करना नायकों का स्वभाव होता है। इस दोहे में इसी प्रकार का वर्णन किया गया है। नायक नायिका अनुकूल होकर दर्श-स्पर्श तो कर ही रहे हैं। नाक चढ़ा कर सीसी करना नायिका का कायिक अनुभाव है। नायक का रोमांच सात्विक एवं हर्ष संचारी भाव व्यंजित हैं।

२—उन हरकी हँसि कै इतै, इन सौंपी मुसकाय।
नैन मिलें मन मिलि गये, दोऊ मिलावत गाय॥

—"दोहा सं० ११८"

श्रीकृष्ण ने हस कर राधिका रह मन में गाय मिलान का राका। यह कह कर कि यह हमारी गाय नहीं है। राधिका जी ने मुसकराकर गाय उन्हें सौंप दी, यह कह कर कि यह गायें हमारी हैं तुम चरा लाओ, हम चरवाई देंगे। इस प्रकार गो सम्मेलन में दोनों के नेत्र मिलते हैं। उनके मन मिल गए। यहाँ प्रत्यक्ष दर्शन" द्वारा अनुराग उत्पन्न हुआ है। रोमांच 'सात्विक" अनुभव तथा हर्ष पूर्व

× देखें दोहा संख्या ५४।

"चपलता" संचारी भाव व्यंजित है। मुसकराने में कायिक अनुभाव तथा मन की प्रसन्नता के कारण मानसिक अनुभाव स्पष्ट है ही।

३—दोऊ चोर मिहीचिनी, खेलु न खेलि अघात।
दुरत हियौं लपटाइ कै छुवत हियैं लपटात॥

—"दोहा सं० ५३०"

यहाँ "लिपटना" कायिक अनुभाव है ही। "रोमांच" कम्प, स्वेद आदि सात्त्विक भाव व्यंजित हैं। "हर्ष" तथा "चपलता" संचारी भाव व्यंजित है। पूर्ण सम्भोग है। इसी प्रकार—

४—मैं मिसिहा सोयौ समुझि, मुँह चूम्यौ ढिग जाय।
हँस्यौ खिस्यानी गल गह्यौ, रही गरें लपटाय॥

५—सहित सनेह सकोच सुख, स्वेद कंप मुसुकानि।
प्रान पानि करि आपने, पान धरे मो पानि॥

—"दोहा सं० २६५"

"सम्भोग शृङ्गार" के समस्त अवयव स्पष्ट हैं। "सनेह" द्वारा "रति" स्थायी भाव की व्यंजना है। मुसक्यानि कायिक अनुभाव है ही। "स्वेद" कम्प सात्त्विक अनुभाव तथा "हर्ष" व्रीडा संचारी भाव हैं।

अब "रति-वर्णन" भी देख लीजिए—

६—सुरतारम्भ वर्णन—

भौंहनि त्रासति मुख नटति, आँखिन सौं लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति कर इँची, आगें आवति जाति॥

—"दोहा सं० ६८३"=

७—रति वर्णन—

जदपि नाहीं नाहीं नहीं, बदन लगी जक जाति।
तदपि भौंह हाँसी भरिनु हाँ सीयै ठहराति॥

—"दोहा सं० ३०४"+

= देखें दोहा संख्या २४ ३६३, ४६४, ५६२, ५६६।

+ देखें दोहा संख्या ७६।

८—विपरीति वर्णन—

बिनती रति बिपरीत की, करी परसि पिय पाय।
हँसि अनबोले ही दियो, ऊतर दियो बुताय॥

—"दोहा सं० १३०" ×

९—सुरतान्त-वर्णन—

रंगी सुरत रंग पिय हिये, लगी जगी सब राति।
पैंड पैंड ठठकि कै, पेंड भरी ऐंडाति॥

—"दोहा सं० १८३" *

१०—रात्रि की क्रीड़ा से श्रमित दंपति के प्रात: काल जागने का दृश्य वर्णन—

नीठि नीठि उठि बैठि हूँ प्यौ प्यारी परभात।
दोऊ नींद भरैं खरैं, गरैं लागि गिरजात॥

—"दोहा सं० ६४२

बिहारी ने परकीया के साथ सोने (दोहा संख्या २०१) का भी वर्णन किया है।

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक दोहों में "संभोग" की विभिन्न चेष्टाओं एवं क्रीड़ाओं, हिंडोरा, जल-विहार, वन-विहार, प्रेम-क्रीड़ा, आँख-मिचौनी, मद्यपान आदि के वर्णन किए गए हैं। ॐ

वियोग-शृंगार वर्णन—बिहारी ने "विप्रलम्भ शृंगार" की समस्त दशाओं का स्वाभाविक वर्णन किया है। विरह-जन्य वेदना का वर्णन करते समय अत्युक्ति एवं ऊहा का आश्रय लिया है। यथा—

१—सघन कुंज छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥

—दोहा सं० ६८१"

× देखें दोहा सं० १२६, १२४ ३११।

* देखें दोहा संख्या ६५५।

ॐ देखें क्रमशः दोहा संख्या ३३, १४२, १३८, १२७, २००, १७३, ११० और देखें संख्या २०४, २३३, २५४, १९० ११०, ११२, ११३, ११४।

वियोग के समय प्रिय की पूर्व चेष्टाओं की याद आने से यहाँ "स्मरण" दशा का वर्णन किया है।

२—तोही को छुटि मान गो देखत ही ब्रजराज।
रही घरिक लौं मान की मान करे की लाज॥
—दोहा सं० ३१

यहाँ "लघुमान" जनित विप्रलम्भ का वर्णन है।

३—कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली, कहुँ पीत पट, कहूँ मुकुट बनमाल॥
—"दोहा सं० १५४"

यहाँ प्रथम पद में पूर्वानुराग का वर्णन है। नायिका के प्रति दूती के वचन "उद्दीपन" विभाव हैं। लाल का बेहाल पड़ा होना बताया है कि उनकी मानसिक क्रियाएँ स्तब्ध हैं। अतः 'प्रलय' अनुभाव है। "मूर्छा" दशा होने से "जड़ता" व्याधि एवं "उन्माद" संचारी भाव हैं।

विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत बिहारी ने "प्रवास" का अधिक वर्णन किया है। इनके अन्तर्गत प्रवत्स्यत्पतिका, प्रवत्स्यपतिका, प्रोषितपतिका तथा आगतपतिका नायिकाएँ आती हैं।० यथा—

४—बिलखी डभकौंहैं चखनु तिय लखि गवनु बराइ।
पिय गहबरि आऐं गरैं राखी गरैं लगाइ॥
—"दोहा सं० १६६"

यहाँ "प्रवत्स्यत्पतिका" का वर्णन है।

६—मृग नैनी दृग की फरक, उर उछाह तन फूल।
बिनही पिय आगम उमँगि, पलटन लगी दुकूल॥
—दोहा सं० २२२

इस दोहे में आगतपतिका नायिका का वर्णन है।

विरह वर्णन—

१—कहा कहौं बाकी दसा, हरि प्रानतु के ईस।
बिरह ज्वाल जरिबो लखैं मरिबो भई असीस॥

---

० देखें दोहा सं० ३०३, २२३, ३२८, २०२।

२—जो वाके तन की दसा, देख्यौ चाहत आपु।
तौ वलि नैंक बिलोकिये, चलि अचकाँ चुपचाप ॥

३—सीरैं जतननु सिसिर-रितु, सहि बिरहिनि तनु-ताप।
बसिबे कौं ग्रीषम दिननु परयौ परोसिनि पाप ॥

४—करके मीड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हिलाइ।
सदा समीपनि सखिन हूँ नीठि पिछानी जाय ॥ =

—"दोहा सं० ११०, १४२, १६६ तथा ४१६"

दूर की कौड़ी लाने में विरह-वर्णन कहीं-कहीं हास्यास्पद हो गया है। इनका मुख्य कारण फारसी तथा उर्दू की शायरी को नाजुक ख्याली है। यथा—

सुनत पथिक मुँह माह निसि चलति लुवै उहिं गाम।
बिन बूझें, बिनु ही कहें, जियति बिचारी बाम ॥

— दोहा सं० २८४" +

विरहोपचारवर्णन—विरह की वेदना के अन्तर्गत कपूर, चन्दन आदिक शीतल उपचारों की चर्चा करने का उन दिनों रिवाज चल पड़ा था। कवि कर्म को पूरा करने के लिए बिहारी ने भी इस परम्परा का अनुगमन किया है।

औंधाई सीसी सु लखि बिरह बरति बिललात। [illegible]

अरैं परै न करै हियौ खरैं जरैं पर जाइ।
लावति घोर गुलाब सौं, मलै मिलै घनसार ॥

—"दोहा सं० ४२१" ×

उद्दीपन विभाव वर्णन—उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत "ऋतु-वर्णन" तथा "नखशिख निरूपण" आते हैं।

ऋतु-वर्णन—बिहारी ने बसन्त, ग्रीष्म आदि षड्ऋतु तथा चन्द्र चन्द्रिका, शीतल मंद पवन आदि प्रकृति के उपकरणों का वर्णन किया है। यथा —

= देखें दोहा सं० १२०, १४७, १५२ १०८, २११, २१४, ५११ तथा २०८।

+ देखें दोहा संख्या २१२ २६१ ८३, ३१०, ३२८, १७६, २०३, तथा २५७ आदि।

× देखें दोहा सं० २१०, २६९ २८३।

८—छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गंध ।
ठौर ठौर झूमत झपत, भौंर भौंर मधु अंध ॥

यह वर्णन वसन्त ऋतु का है। उद्दीपन द्वारा "संभोग" व्यंजित एवं अभिप्रेत है।

२—पावस घन अंधियार में, रह्यौ भेद नहिं आन ।
राति द्यौस जान्यो परत, लखि चकई चकवान ॥

वर्षा ऋतु में कोई नायिका को दिन में ही अभिसार कराना चाहती है। वह कहती है कि दिन में रात्रि जैसा अंधेरा है, बस, कोई नहीं देखेगा। चकई-चकवा की फरियाद के शब्द से उनके वियोग का ज्ञान और वियोग से रात्रि का ज्ञान होता है। अंधेरे के कारण जब चकई चकवा ही न दिखाई दे सकेंगे, तब उनका संयोग वियोग देख कर दिन रात का ज्ञान कैसा ?

३—ज्यौं ज्यौं बढ़ति विभावरी, त्यौं त्यौं बढ़त अनंत ।
ओक ओक सब लोग सब कोक सोक हेमंत ॥

—"दोहा सं० ४६६, ४८६ तथा ४६२"

इस दोहे में यह बताया गया है कि हेमन्त ऋतु में रातें बड़ी हो जाने के कारण दम्पत्ति को अधिक समय तक मिलन-सुख प्राप्त होता और लोग अधिक सुखी होते हैं। —"दोहा संख्या ४६६, ४८६ तथा ४६२"

४—सघन-कुञ्ज छाया सुखद सीतल सुरभि समीर ।
मन ह्वै जातु अजौं वहै उहि जमुना के तीर ॥

—"दोहा सं० ६८१"

यहाँ सघन-कुञ्ज की छाया तथा शीतल मंद एवं सुखद समीर के उद्दीपक रूप का वर्णन किया गया है।

५—रनित भृंग घंटावली, झरत दान मधु नीर ।
मंद-मंद आवत चल्यौ, कुंजर कुंज समीर ॥

—"दोहा सं० ३८८"

इस दोहे में वासन्ती वायु का हृदयहारी एवं सविस्तार वर्णन है। ऐसा वायु किसके हृदय को बेध कर कामोद्दीपक न करेगा ?

इसी प्रकार वर्षा ऋतु का सुगन्धित पवन भी काम को उद्दीप्त करता है।

६—विकसित नवमल्ली कुसुम निकसित परिमल पाइ।
परसि पजारति बिरह-हिय बरसि रहे की बाइ॥
—"दोहा सं० १७५"

संयोग के समय सुखदायी पदार्थ वियोग काल में दुखदायी बन जाते हैं।

७—फिरि घर को नूतन पथिक चले चकित चित भागि।
फूल्यो देखि पलास बन समुहैं समुझि दवागि॥
—"दोहा सं० ५६७"

इस वर्णन में पथिक को विकसित पलाश पुष्प देखने से कामोद्दीपन हुआ है और प्रियतमा का वियोग उसके लिए असह्य हो उठा है उसके हृदय में वियोगानल के कारण दाह में उत्पन्न हो गया है। यह अनुभव हीन नवीन पथिक पलास-पुष्पों को दाह का कारण मान कर विकसित पलास को दावाग्नि समझने लगता है।

८—मरिबे को साहसु ककै बढ़ै बिरह की पीर।
दौरति ह्वै समुही ससी, सरसिज, सुरभि-समीर॥
—"दोहा सं० ५८५"

यह प्रोषितपतिका नायिका की विरह दशा का वर्णन है। नायिका समझती है कि चन्द्र कमल तथा सुगन्धित वायु के अधिक सेवन से मैं जल कर मर जाऊ गी और विरह-व्यथा से छुट्टी पा जाऊ गी। उद्दीपन विभाव ऽ में अन्तर्गत बिहारी ने "ऋतु वर्णन" के साथ तत्कालीन परम्परानुसार "होली और फागों" का भी वर्णन किया है *

नखशिख-वर्णन—इसके अन्तर्गत नायिका की सुन्दरता सुकुमारिता, विविध चेष्टायें तथा उसके अंग प्रत्यंगों एवं श्रृंगार के वर्णन किए गए हैं। ×

ऽ दोहा संख्या २९,३३ ११५, १२७, १०२, २२५, २३३, ३७२, ३७३, ३८४, ४१६, ४८०, ४३०, ४३५, ४३७, ५६२, ५३१, ६८४।

* दोहा संख्या २८०, ३२२, ५१४, ६३३।

× दोहा संख्या ५५, ६६, १०२, १०४, १०६, १३३, १०३, १८८, १८३, १६०, २००, २२७, २६८, ३४०, ४८३, ५११, ५०३ ५०१।

यथा—

१—छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोबन अंग।
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफता रंग॥
—'दोहा सं० ७६"

यह नायिका की "वयः सन्धि की अवस्था वर्णन है।

२—सहज सचिक्कन स्याम रुचि, सुचि सुगंध सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ लखि, बिथुरे सुथरे बार॥
—"दोहा सं० ६६'

यह नायिका के केशों का वर्णन है। यहाँ "स्मृति" संचारी भाव है।

३—बर सीते सर मैन के, ऐसे देखे मैन।
हरिनी के नैनानु तैं, हरि नीके ए नैन॥
—"दोहा सं० ६७'

उक्त दोहे में नेत्रों के कामोद्दीपक प्रभाव का वर्णन है।

४—जंघ जुगल लोचन निरे, करे मनो बिधि मैन।
केलि तरुन दुख दैन ए, केलि तरुन सुख दैन॥
—"दोहा सं० २१०"

यहाँ जंघाओं का वर्णन है।

५—भूपन भार संभारिहै क्यों यह तन सुकुमार।
सूधे पाय न परत धर, सोभा ही के भार॥
—"दोहा सं० ३०२"

उक्त दोहे में नायिका की सुकुमारता का वर्णन है।

६—झीने पट में झिलमिली, झलकति ओप अपार।
सुरतरु की मनु सिन्धु में, लसत सुपल्लव डार॥
—"दोहा सं० १६"

यहाँ नायिका की द्युति का वर्णन किया है।

७—तन भूपन, अंजन दृगनु, पगनु महावर रंग।
नहिं सोभा कौं साजियतु, कहिबैं ही कौं अंग॥
—"दोहा सं० २६१"

सखी द्वारा नायक से नायिका की स्वाभाविक शोभा का वर्णन किया गया है। "नहिं मोहताज अँवर का जिसे खूबी खुदा ने दी" का यह जीता जागता उदाहरण है।

८—सालति है नट सालि सी, क्यौं हूँ निकसति नाहिं।
मन-मथ-नेजा नोक सी खुभी खुभी मन माँहि।

—"दोहा सं० ६"

यहाँ तो नायिका की खुभी को स्पष्ट ही काम के नेजा की नोंक बना दिया है।

९—मिलिय बून बैंदी रही, गोरे मुख न लखाय।
ज्यों ज्यों मद लाली चढ़ै, त्यों त्यों उघरत जाय॥

—"दोहा सं० १८०"

अब नायिका की चेष्टायें भी देख लीजिए।

१०—कर समेटि कच भुज उलटि, खएँ सीस-पटु डारि।
काको मन बाँधै न यह जूरौ बाँधन हारि॥

—"दोहा सं० ६८४"

उक्त वर्णन में नायिका की जिन चेष्टाओं एवं मुद्राओं का वर्णन किया गया है वे किसी भाव से प्रेरित न होकर, कथन करने वाले के लिए केवल "उद्दीपन" रूप ही हैं।

११—त्रिबली नाभि दिखाय कै, सिर ढँकि सकुच समाहि।
गली अली की ओट ह्वै, चली भली विधि चाहि॥

—"दोहा सं० ८८"

यहाँ "त्रिबली" और "नाभि" दिखाने, सकुचदी खाना तथा सिर को ढक कर चलने आदि का चेष्टाओं का वर्णन है।

अनुभावों तथा संचारी भावों की व्यंजना—विहारी ने यद्यपि "लक्षण-उदाहरण" वाली शैली पर अनुभाव आदि का शास्त्रीय वर्णन नहीं किया है, परन्तु उन्होंने अनुभाव आदिक के स्वरूप की ऐसी सुन्दर योजना की है कि

अनुसार "परकीया" का विस्तृत वर्णन किया है + यह भी मुख्यतया ऊढ़िता अभिसारिका और 'मानिनी' नायिकाओं का विशेष वर्णन किया है। अवस्था के विचार से अधिकांश नायिकाएँ मुग्धा हैं। विरह वर्णन, विप्रलम्भ शृङ्गार, के अन्तर्गत प्रोषितपतिकाओं, विरहिणियों की स्वाभावतया अधिक चर्चा है।

१—समरस समर सकोच बस, बिबस न ठिकु ठहराय।
फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति दुरि-दुरि झमकति आय।
—"दोहा संख्या ४२७"

'काम' और 'लज्जा' दोनों के समान रूप से वश में होने के कारण नायिका मध्या है।

२—सही रंगीली रति जगे, जगी पगी सुख चैन।
अलसौं हैं सौंहैं किये, कहैं हँसौं हैं नैन।
"—दोहा सं०"

नायिका "रति प्रविता" है।

३—जुवति जोन्ह में मिलि गई, नैंक न होत लखाइ।
सौंधे के डोरैं लगी अली चली संग जाइ॥
—' दोहा सं० ७"

नायिका "शुक्लाभिसारिका है।

४—पलनु पीक, अंजनु अधर, धरे महावर भाल।
आजु मिले, सु भली करी, भले बने हौ लाल॥
—"दोहा सं० २९"

उपर्युक्त उक्ति प्रौढ़ा धीरा, खंडिता और नायिका की नायक के प्रति है।

५—चाले की बातैं चलीं, सुनत सखिन कैं टोल।
गोऐं हूँ लोइन हँसत, बिहँसत जात कपोल॥
—"दोहा सं० १०४"

—नायिका ऊढ़ा परकीया मुदिता है।

+ दोहा „ ११, १२, २३, ३४ ४६ ६२ ७२, ७६, ९१, ९९ १७, १०३, ११२, ११८, १२६, २४६, २६८, ३००, ३०८, ३२६।

६—घाम घरीक निवारिये, कलित ललित-अलि-पुञ्ज।
जमुना-तीर तमाल-तरु मिलित मालती-कुञ्ज ॥

—"दोहा सं० १६७"

नायिका स्वयं दूतिका है और वचन-चातुरी द्वारा वह नायक पर यमुना के किनारे रति करने का अभिप्राय प्रकट करती है। रमण-स्थल की ओर संकेत करती हुई वह व्यक्त करती है कि आप चलकर वहां ठहरिए, मैं अभी जल भरने के बहाने आती हूँ। अतः यहां "भविष्यसुरतसगामोपना वचन विदग्धा परकीया" नायिका का वर्णन किया गया है।

निम्नलिखित दोहे में सखी नायिका को मान करना सिखाती है।

७—तुहूँ कहति, हौं आपु हूँ समुझति सबै सयानु।
लखि मोहन जौ मन रहै, तौ मन राखौ मानु ॥

—"दोहा सं० ४४८"

बिहारी ने निम्नलिखित जाति की स्त्रियों का वर्णन किया है।

८—गोरी गदकारी परै हंसत कपोलनं गाड़।
कैसी लसति गंवारि यह सुन किरवा की आड़।

—"दोहा सं० ७०८"

यह ग्राम-वधूटी का वर्णन है।

निम्नलिखित दोहे में कातिहारी स्त्री की शोभा का वर्णन किया गया है।

९—ज्यौंकर त्यौं चिकुटी चलति, ज्यौं चिकुटी त्यौं नारि।
छवि सौं गति सी लै चलति चातुर कातनहारि ॥

—"दोहा संख्या ६५०"

बिहारी ने यथा स्थान भक्ति सम्बन्धी अनेक दोहे लिखे हैं। + ये चाहे कवि-परम्परा के निर्वाह के लिए लिखे गये हों अथवा भक्ति के उद्रेक में, परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वह संसार की असारिकता से ऊब गये थे।

+ दोहा सं० ११, ३१, ४१, ६१ ६८, ७१। १४१, १८१, २२१, २३१, ३०१, ४०१, ४२५ ४२७, ४२८, ५११, ६२१, ७२१।

या भव-पारावार कौं उलँघि पार को जाइ।
तिय-छवि-छाया ग्राहिनी गहै बीच हीं आइ॥
—"दोहा सं० ४३३"

दुनियावी दरबारों की दरबारदारी से निराश होकर शुद्ध भक्त की भाँति उन्होंने भगवान की शरण में पड़े रहने की इच्छा प्रकट की थी।

हरि कीजति बिनती यहै, तुम सौं बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डरयौ रह्यौ परयौ रहौं दरबार।
—"दोहा सं० ७४१"

(घनआनन्द)

आनन्द, आनन्दघन और घनआनन्द, इनके तीन नामों से ब्रजभाषा में कविता मिलती है। ये तीनों नाम एक ही महानुभाव के हैं अथवा ये तीन पृथक् व्यक्ति थे, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस ओर काफी खोजबीन की है। "घनानन्द" और "आनन्दघन" नामक पुस्तक के वाङ्मुख में उन्होंने कतिपय निष्कर्ष भी निकाले हैं। यथा—

इस प्रकार "आनंद" विक्रम की सत्रहवीं सदी के तृतीय चरण में वर्तमान थे। —"पृष्ठ सं० १" "आनन्द" नाम के कवि के वंश, स्थान और समय आदि सबका पता लग गया है।

"सुजान" × से इनका प्रेम भी तो परकीयत्व की ही ओर आने का आग्रह करता है। "राधिका चरन चस चन्द्र मों चकोर" (कृपाकन्द निबन्ध, २४) से भी परकीयत्व झलक रहा है। इससे माधव चैतन्य-सम्प्रदाय में "घनआनंद" के दीक्षित होने की बहुत सम्भावना है।

आनन्दघन की ओर आइये। इनके सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। "पदावली" के पद सं० १७० में इन्होंने श्री चैतन्य देव की प्रशस्ति ही पढ़ी है। ऐसी स्थिति में "घनआनंद" और "आनंदघन" के एक होने की सम्भावना अधिक है। —"पृष्ठ ११"

"इससे जब तक पक्का प्रमाण न मिल जाए तब तक "घनआनंद" और "आनंदघन" को एक मानने को भी जी नहीं चाहता। ब्रजवासियों का कहना तो यहाँ तक है कि अकबर "आनंदघन" ब्राह्मण थे और उनके वंशज अब तक नन्द गाँव में रहते हैं। इसलिए प्रस्तुत संग्रह में घनआनंद और आनंदघन को पृथक-पृथक ही रखा गया है। "—पृष्ठ सं० १२"

"इनका जन्म सम्वत् १७४६ के लगभग हुआ था और ये सम्वत् १७९६ में नादिरशाही में मारे गये थे। ये जाति के कायस्थ और दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मीरमुन्शी थे। कहते हैं कि एक दिन दरबार में कुछ कुचक्रियों ने बादशाह से कहा कि मीर मुन्शी साहब गाते बहुत अच्छा हैं। बादशाह से इन्होंने बहुत टालमटोल किया। इस पर लोगों ने कहा कि ये इस तरह न गायेंगे, यदि इनकी प्रेमिका 'सुजान' नाम की वेश्या कहे तब गायेंगे। वेश्या बुलाई गई। इन्होंने उसकी ओर मुँह करके और बादशाह की ओर पीठ करके ऐसा गाना गाया कि सब लोग तन्मय हो गए। बादशाह इनके गाने पर जितना खुश हुआ बेअदबी पर उतना ही नाराज। उसने इन्हें शहर से निकाल दिया। जब ये चलने लगे तब सुजान से भी साथ चलने को कहा पर वह न गई। इस पर इन्हें

× सदा रंगीले के दरबार की एक वेश्या, जिस पर घनआनंद आसक्त हो गए थे। उसका नाम इन्होंने कभी नहीं त्यागा।

विराग उत्पन्न हो गया और ये वृन्दावन जाकर निंबार्क सम्प्रदाय के वैष्णव हो गए और वहीं पूर्ण विरक्त भाव से रहने लगे।। ॐ।

"प्रेम की पीर को लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ, प्रेम-मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा ज़बांदानी का ऐसा दावा रखने वाला व्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ। +

तत्कालीन परिस्थितियों पर प्रभाव—घनआनन्द बहुत समय तक मुहम्मदशाह के दरबार में रहे थे। अतएव इनके ऊपर दरबारी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव इनकी रचनाओं + में स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। घनानन्द ने अपनी कविता में "सुजान" शब्द का बराबर प्रयोग किया है। इसे शृङ्गार-पक्ष में नायक के लिए तथा भक्ति-पक्ष में कृष्ण के लिए मानना चाहिए। कृष्ण और नायक का एकीकरण समय की माँग थी, जिसे इन्होंने भली प्रकार पूरा किया। आचार्य शुक्ल के शब्दों में इनकी अधिकांश कविता भक्ति काव्य की कोटि में नहीं आएगी, शृङ्गार की ही कही जायगी लौकिक प्रेम की दीक्षा पाकर ही ये पीछे भगवत्प्रेम में लीन हुए हैं। ×

हम उक्त कथन से शत प्रतिशत सहमत नहीं हैं। यह ठीक है कि घनानन्द की अधिकांश कविता लौकिक शृङ्गारोन्मुखी है और यह भी सत्य है कि लौकिक प्रेम से ही इन्हें पारलौकिक प्रेम की दीक्षा ही थी। परंतु उनकी भगवत् प्रेम संबंधी कविताओं में एक सच्चे भक्त का हृदय दिखाई देता है। समय के प्रभाव के कारण उन्होंने "राधा कवि पिथि" कृपा कंद निबन्ध, छन्द सं० ११। "रसिक रंगीले भली भांति परखिये" (कृपा कंद निबन्ध छं० सं० १४) आदि का उल्लेख किया है परन्तु "ताहि जो विसारौं तो संहारौं फिर कौन की तथा"

ॐ पृष्ठ सं० ४०१, हिन्दी इतिहास का साहित्य, रामचन्द्र शुक्ल, संस्करण सम्वत् १९९० ।

+ वही पृष्ठ सं० ४०१ ।

+ इनकी रचनाएँ श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित "घनआनन्द ग्रन्थावली" पुस्तक (सम्वत् २००९ संस्करण) से उद्धृत की गई हैं।

× पृष्ठ सं० ४०१ वही हिन्दी साहित्य का इतिहास ।

प्रानन्दि श्राधार नन्दनन्दन उदार हैं" + आदि वाक्यों में उनका पूर्ण दैन्य, भगवान के चरणों में पूर्ण विश्वास अभिव्यक्त है। =

घनआनन्द के विरह वर्णन में दरबारी ठाट बाट स्पष्ट ही व्यक्त है। ऽ कहीं मधुपान की चर्चा है, तो कहीं वीणा की मींड का उल्लेख है। "आस-भर्यौ गहि-द्वार पर्यौ प्रिय या घर आय कै जाय-कहां श्रब" (सुजान हित प्रबन्ध छन्द० १२१) आदि वाक्यों द्वारा दरबार का वातावरण अभिव्यक्त है, जिसके अन्तर्गत लोग "पाहिमाम्" कह कर दरबारों में आकर भड़ जाते थे। इसी प्रकार छौंडी और चौंडी आदिक शब्दों (छन्द सं० १००) के प्रयोग दरबारी प्रभाव के परिचायक हैं।

फारसी का प्रभाव—फारसी का घनआनंद के ऊपर काफीप्रभाव पड़ा था। यद्यपि इन्होंने फ़ारसी के बहुत थोड़े ही शब्दों + का प्रयोग किया है, तथापि फ़ारसी कविता की प्रवृत्तियों की इनकी रचना शैली पर स्पष्ट छाप है।

"वियोग-बेलि" ब्रजभाषा में होते हुए भी फ़ारसी छन्द में लिखी गई है। फ़ारसी की शायरी में माशूक की याद में कभी दिल में आग लगाई जाती है, कभी जिगर के टुकड़े किए जाते हैं, कभी कलेजे की किरच निकाली जाती हैं। घनानन्द के "विरह वर्णन" में ये सब प्रयोग मिलते हैं। × यथा

+ कृपाकन्द निबन्ध छन्द सं० ३२, ६४।

= देखें सुजान हित प्रबन्ध छन्द सं० २१५, २३६, ४९०। कृपाकंद निबन्ध छंद सं० ११, १२, १३, २३, २४, ३१, ३४ प्रकीर्णक छंद सं० ७३।

ऽ सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० १८, ३३, १०१, १२३, १३४, १००, २३३, २४४, २४१, २५१, ४९०, ३६४, ३८८।

+ कामी दिलसाज, निमाजी (प्रकीर्णक छन्द सं० ९३) इश्क चला तो शुरू से आखिर तक फ़ारसी के शब्दों से भरी पड़ी है। सूफ़ी, यार, चश्म, हुस्न आसिक।

× सुजान हित प्रबन्ध छन्द सं० ७८, ८३, ८६, ९०, ३४, ३८, ११०, १२६, १०१-२०३, २०५, २६०, २६६, २७३ २८२, ३८४। कृपाकंद निबन्ध छन्द सं० २६, ५।

घूंटे घटा चहुँधा घिरि कै गहि काहे करैओ कलानि कूकै।
सीरो समीर सरीर दहै, चहकै चपला चख लै करि ऊकै॥
एहो सुजान तुम्हें लगे प्रान सु पावस यौं तजि ग्यावस सूकै।
है घनआनन्द जीवनमूल धरौ चित मैं कित चातिक चूकै॥
—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० ८३"

कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री ।
कूकि कूकि अब ही करैजो किन कोरि लै॥
पैडे़ परे पापी ये कलापी निसद्यौस ज्यौं ही।
चातक घातक त्यौं ही सु हू कान फारि लै॥
आनन्द के घन प्रान जीवन सुजान बिना।
जानि कै अकेली सब घेरो दल जोरि लै॥
जौ लौं करैं आवन विनोद बरसावन वे।
तौ लौं रे डरा र बजमारे घन घोरि लै॥
—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० २९८"

तरुनाई माउनी छुटनि मतवारे मारे,
झुकि घुकि धाय रीझि घरझि गिरत हैं॥
सम्हरि उठत घनआनन्द मनोज ओज,
बिफरत बावरे न लाजनि घिरत हैं॥
सुघराई सान सौं सुधारि असि असि कसि,
कर ही में लियें निसवासर फिरत हैं।
तेरे नैन सुभट युहट चोट लागैं बीर,
गिरिधर धीरता पै किरचा परत हैं॥
—"प्रकीर्णक छन्द सं० ४०"

सैन कटारी आसिक उर पर तैं यारा सुक भारी है,
महर लहर मजबन्द यार दी जिंद असाडी प्यारी है।
—"इश्कलता छन्द सं० १९"

— कृष्ण के लिए रंगीले, छबीले आदि शब्दों का प्रयोग फारसी का ही प्रभाव समझना चाहिये। यथा—

रंगीले हो छबीले हो रसीले, न मू अपनीन सों हूजे गंसीले।
लगौ नीकै सबै विधि प्रान संगी, तिहारी मौन है प्यारे तरंगी॥
—"वियोग बेलि छन्द सं० २०"

छबीले छैल तुम को पीर काकी,
विथा की कथा तें छतिया जु पाकी।
सजीवन सांवरे कब धौं ढरौगे,
मेरे साधा, विरह बाधा हरौगे॥
—'वियोग बेलि छन्द सं० ११"

"इश्कलता" में सीधे सादे ढंग पर ब्रज-भाषा में सूफियों के प्रेम की पीर ही व्यंजित है।

संयोगी इश्क सें, इश्क वियोगी खूब।
आनन्द घन चश्मों सदा, लगा रहै महबूब॥
—"इश्कलता छन्द सं० ४"

इन्होंने स्पष्ट लिखा है कि कृष्ण के साथ इश्क लग जाने पर ही इश्कलता तैयार की गई थी।

लगा इश्क ब्रजचन्द सों, सुन्दर अधिक अनूप,
तब ही 'इश्कलता' रची, आनन्दघन सुख रूप।
—"इश्कलता छन्द सं० २"

"सजन सलोना यार नंद दा सोहना को यार बताने का यही अभिप्राय है" (इश्कलता छन्द सं० ६)।

आगे चलकर इन्होंने सूफी शायरी के ढर्रे पर आशिक और माशूक की चर्चा की है।

पल पल प्रीति बढ़ाय हुआ बेदर्द है।
आसिक दर्द पर जान चलाई कर्द है॥
धनी हुई महबूब सु मरम न छोलिये।
आनंद जीवन जान दयाकरि बोलिये॥
—"इश्कलता छं० सं० ७"

इनके चितचोर ने फारसी की कविता की शैली के अनुसार बेपीर होकर इनके दिल पर तीर भी चलाए हैं।

क्यों चितचोर किसोर हुआ बे पीर है।
भौंह कमानें तान चलाया तीर है॥
अन्त कहा हौं लेत नन्द के लाड़िले।
आनन्दघन के जान सुचित के लाड़िले॥

—"इश्कलता छन्द सं० ८"

इश्कलता के अन्तर्गत फारसी छन्द में दिल परुन्द दिलदार यार (छन्द नं० ११) मजनूं के साथ रंग का वर्णन करके विषय को पूर्ण बना दिया है।

कृष्ण राधिका का प्रयोग—श्रृंगार वर्णन करते समय घनानंद ने नायक-नायिका के लिए कृष्ण और राधा नामों का निःसंकोच प्रयोग किया है। यथा—

कुल उजियारी सु दुलारी लली कीरति की,
जाके जनमत मैया मोदनि सिहानी है।
राधा नाम नीको घनआनंद अमी को सोत,
रंचक उचारें रसरानी होति बानी है॥
सबै जग मंगल निकेत भयौ याहि आएँ,
महा प्रेम संपति बिलास ठकुरानी है।
गोकुल प्रकास्यौ मनमथ के उद्यो आली,
आज देखौं भाँति भाँति रावलि रवानी है॥

—"सुजान हित प्रबन्ध छन्द सं० ३०४"

एकहि लागि दुहुघा ढरी, लगी पुरातन प्रीति,
गोपी और गुपाल की, निपट नवेली रीति।

—"कृपाकंद निबन्ध छन्द सं० ६८"

"पदावली" में तो आद्योपान्त "राधा कृष्ण" के प्रेम और उनकी लीलाओं के ही वर्णन हैं। निम्नलिखित छन्द में युगल जोड़ी का वर्णन है।

कान्ह है गोकुल को, राधा बरसाने वारी।
है हो या ब्रज की जीवनि यह जोरी सरस बिरंचि संवारी॥

घुर की लगनि लगी अति गाढ़ी बाढ़ी चोप चटक जो प्यारी।
नवल नेह रस भर आनन्दघन लाग्यौइ रहत सदा री॥
—"पदावली छन्द सं० २१०"

कवि परम्परा के अनुसार इन्होंने राधा और कृष्ण के जीवन के विविध पर्वों के वर्णन किये हैं। यथा—

राधे अब की चौचरि बहुर्यौ वे तेरी ह्वौ चाचरि रंग।
फागुन मास फब्यौ मलें मिलि खेलैं ब्रजमोहन संग॥
ह्वौ रीझी तें रीझत ये तेरो लहलह्यो सुहाग।
रोम रोम आनन्द भरि पिय राच्यौ तेरे अनुराग॥
तेरी चाचरि रावनी तेरो होरी त्यौंहार।
तोतैं रग रहै सबै रस भीज्यौ रसिया रिझवार॥
तेरी भांवरि भरनि मैं थकि घूमै ब्रजनायक छैल।
बदन चंद लटकि लटकि सों रोकै मन लोचन गैल॥
ब्रज गोरी गावैं सबै तेरी चाचरि के गीत।
भिजयौ रीझनि चोप सौं अपनो आनंदघन मीत॥
—"पदावली छन्द सं० ४१२'

राधा नवेली सहेली समाज मैं होरी को साज सजैं अति सोहै।
मोहन छैल खिलार तहाँ रस प्यास भरी अँखियानि सौं जोहै॥
दीठि मिलैं मुरि पीठ दई हिय हेत की बात सकै कहि को है।
सैननि ही बरस्यौ घनआनंद भीजनि पै रंग रीझनि मोहै॥
—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० २७२,'

उपर्युक्त दोनों छन्दों में राधा-कृष्ण के होली खेलने का वर्णन है। + इतना ही नहीं होली के रंग में मदमस्त नागर कृष्ण से सीमा का अतिक्रमण भी करा जाता है।

+ देखें सुजान हित प्रबन्ध छन्द सं० ४१६, ४१२, प्रकीर्णक छन्द सं० १६, १८, १९ पदावली छन्द सं० ४०१, ४११ परिशिष्ट छन्द सं० ४१३, ४८५, ४१५ स्फुट छन्द सं० ३, ४, ५, ६, १८ २१।

शृंगार रस का वर्णन—कृष्ण और राधिका के राग-रंग, होली, वन विहार-वर्णन के अतिरिक्त घनानन्द ने ऐसे भी अनेक वर्णन लिखे हैं, जिनमें इन्हें शृंगार-रस की सावयव पूर्ण सामग्री मिल जाती है।

घनानन्द के विषय में एक बात विशेष रूप से समझ लेनी चाहिए। इन्होंने किसी वस्तु का वर्णन करते समय उसके द्वारा उत्पन्न प्रभाव पर विशेष ध्यान रखा है। इन्होंने यह तो कम लिखा है कि अमुक वस्तु कैसी है, यह अधिक बताया है कि उस वस्तु का हमारे हृदय के ऊपर क्या प्रभाव पड़ा। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में कविता इनकी भावपक्ष प्रधान है। कोरे विभाव पक्ष का चित्रण इनमें कम मिलता है। जहाँ रूप-छटा का वर्णन इन्होंने किया है वहाँ उसके प्रभाव का ही वर्णन मुख्य है। इनकी वाणी की प्रवृत्ति अन्तर्वृत्ति निरूपण की ओर ही विशेष रहने के कारण बाह्यार्थ-निरूपक-रचना कम मिलती हैं। (पृ० सं० ४०३, हिन्दी साहित्य का इतिहास)।

घनानन्द की कविता में आद्योपान्त प्रेम भरा समाई हुई है। वह प्रेम इस लिए करते हैं क्योंकि उन्हें प्रेम करना आता है।

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं,
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं,
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।
—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० २६६"

यह प्रेम एक दम सीधा और सच्चा है। कुटिलता के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है।

मनभावन, दुलारीलाल, गोकुल (छन्द संख्या ३०४) वनमाली (२३१) राधिका, मोहन, (२८४) प्रजनाथ (३०७) स्याम (७१२)।

कृपाकन्द निबंध—स्याम-सुजान (४) गोपी-गुपाल (६७) गोपी-मदन गुपाल मोहन (८५)।

वियोगबेलि—ब्रजनाथ, गोपीनाथ (११) जसोदानन्दन (१८)।

प्रकीर्णक—मनमोहन (१०) नन्द को लैलौं (१२)।

मुरिकलता—ईरवर के वीर (११) कुँवर कन्हैया (२०)।

संयोग शृ गार वर्णन—होली के उत्सव, मार्ग में नायिका की भेंट आदि में संयोग शृङ्गार का चाव निस्सन्देह दिखाई देता है। "संयोग" का वर्णन करते समय इन्होंने हृदय के उल्लास और लीनता को ही सामने रखा है, बाह्य चेष्टाओं का वर्णन बहुत कम किया है। यथा—

ललित उमंग बेली आल बाल अन्तर तें,
आनन्द के घन सींचो रोम रोम ह्वै बढ़ी।
आगम उमाह चाह छायो से उछाह रंग,
अंग अंग फूलनिदुकूलनि परै कढ़ी॥
बोलत बधाई दौरि दौरि कै छोलै दृग,
दसा सुभ सगुनौती नीकें इन पै पढ़ी।
कंचुकी तरकि मिले सरकि उरज, भुज,
फरकि सुजान ओप कुहल महा चढ़ी॥
—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० ७६"

इस मिलन वर्णन में संयोग समय की प्रत्येक चेष्टा का सजीव वर्णन है। "रोमांच" एवं "पुलक" सात्विक अनुभाव, "उमंग" के रूप में मानसिक अनुभाव कंचुकी की तरकना "हाव" है। हर्ष, गर्व, उत्कण्ठा तथा चपलता संचारी भाव स्पष्ट ही व्यंजित हैं।

सोए हैं अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग के रंग निरयौं करि,
केलि कला रस आरस आसव पान छके घनआनन्द यौं करि।
प्रेमनिसा मधि रागत पागत जागत अंगनि जागत क्यौं करि,
ऐसे सुजान बिलास निधान हौ साएँ जगे कहि न्यारिये क्यौं करि॥
—"सुजान हित प्रबन्ध छन्द सं० १२८"

नायक नायिका पारस्परिक प्रेम में पूर्णतया अनुरक्त हैं। स्पर्श एवं सलापादि का वे जी भर कर सुख भोग रहे हैं। "हर्ष" "मद" तथा "श्रम" संचारी भाव इस संभोग को परिपुष्ट करते हैं।

गिरि बन घन जमुना पुलिन, जल थल अमल बिहार।
सदा कुलाहल मधि रह्यो, लीला ललित अपार॥

रची निरंतर केलि यह, अद्भुत अमल रसाल।
विहरत भरि आनन्द सों, गोपी मदन गुपाल ॥
—"कृपानन्द निबन्ध छन्द सं० ७३-७६"

उपर्युक्त दोनों दोहों में नायक नायिका की रति-केलि को रसिक शिरोमणी और रमणी स्थान दे दिए गए हैं। यमुना कूल, गिरि बन आदि उद्दीपन विभाव हैं। "विलसत" "हुलसत" मानसिक भावों को व्यक्त करते हैं। "आनन्द सों विहरत" उनके परस्पर प्रेम में पगे होने तथा मानसिक साम्य के फलस्वरूप दर्शन, स्पर्श तथा संलाप की ओर संकेत करते हैं।

अति सुगंध मलयज घनसार मिलास, कुसुम जल सों छिरकाय।
उसीर सदन बैठे मदन मोहन संग ले राधा प्रान प्यारी रति रंगनि
यमुनातीर बानीर कुंज, मंजु त्रिविध पवन सुख पुंज।
परसि रोमांच होत छबीले अंगनि ॥
वृन्दावन सम्पति दम्पति विलसत हुलसत
ऐसें अपनी भरि-भरि उमंगनि।
आनन्दघन अभिलाष भरे भीजे संगम
रससागर की अतुल तरंगनि ॥
—"पदावली छन्द सं० १४५"

यहाँ "युगल विहार वर्णन" है। कृष्ण रूप नायक और राधिका रूपी नायिका रस सागर की अतुलित तरंगों का आनन्द ले रहे हैं। वे रस विभोर हैं, यमुना का तट, उसीर सदन, शीतल, मंद, सुगन्ध-मलयज पवन, कपूर तथा चन्दन के मधुरालेपन एवं गुलाबजल द्वारा सिंचित एवं सुवासित वायु मण्डल, उद्दीपन विभाव हैं। परस्पर स्पर्श जन्य रोमांच सात्विक अनुभाव का उल्लेख है ही। विलसत और हुलसत भरि भरि उमंगनि उनके आमोद प्रमोद एवं आनन्दातिरेक की व्यंजना करने वाले मानसिक तथा कायिक अनुभाव हैं। "लीला" और 'विलास" हाव हैं। "हर्ष" एवं "गर्व" संचारी भाव व्यंजित हैं। शृङ्गार पूर्णतया परिपुष्ट है।

संयोग प्रकार के इन्होंने और भी थोड़े से वर्णन लिखे हैं × कतिपय स्थलों पर केवल बाह्य चेष्टाओं पर ही जाकर इनकी दृष्टि ठहर गई।

मन उनमाद स्वाद मदन के मतवारे,
केलि के अखारि लौं संधारि सुख सोए हैं।
भुजनि उसीसो धारि अन्तर निवारि, जानु
जंघनि सुधारि तन मन क्यों समोए हैं॥
सुपने सुरति पागे मह्रा चोप अनुरागे,
सोए हू सुजान जागें ऐसे भाव भोए हैं।
छूटे बार टूटे हार आनन अपार सोभा,
भरे रस सार घनआनन्द अहो ए हैं॥
—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० ३८०"

निम्नलिखित छन्द में इन्होंने "सुरतान्त" का वर्णन किया है।

सब रैनि जगाई री प्रानेश्वर यातें दृगनि ललाई छाई,
अंगनि आलसताई लेति जमाई लागति मोहिं सुहाई।
आरस की सरसाई नीकैं देति दिखाई कचुकि हिय दरकाई,
रोम रोम कामांकुर प्रगटे आनन्दघन
परखि सुहरसी ह्वै हरष हंसाई॥
—"पदावली छन्द सं० ५१"

उक्त वर्णन में बाह्य चेष्टाओं का वर्णन है। "सुरति" के अन्तर्गत आन्तरिक भावों का भी निरूपण देख लीजिये।

मुख स्वेद कनी मुखचंद बनी बिथुरी अलकावलि भांति भली,
मद जोवन रूप छकीं अंखियों अवलोकनि आरस रंग रली।
घनआनन्द ओपित ऊंचे उरोजनि चोज मनोज के ओज दली,
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ बेलि फली।
—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० १५८"

× सुजानहित प्रबन्ध छन्द १२१, २३३, २३५, ३६० ३७३।
प्रकीर्णक छन्द संख्या ३७, ३५।
पदावली छन्द-संख्या ३, ५३, ६३।

—इन दिनों इस प्रकार के वर्णन विलम्ब कवि का कर्म बन गया था। "घनानन्द" भी इस परम्परा से कैसे अछूते रह सकते थे। ×

विप्रलम्भ शृंगार वर्णन—"यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया है पर वियोग की अन्तर्दशाओं की ओर ही दृष्टि अधिक है। इसी से इनके वियोग सम्बन्धी पद्य ‡ ही (अधिक) प्रसिद्ध हैं। वियोग वर्णन भी अधिकतर अन्तर्वृत्ति निरूपक है, बाह्यार्थ निरूपक नहीं उनकी मौन मधि पुकार है।"

(पृष्ठ संख्या ४०७, ४०८ हिन्दी साहित्य का इतिहास)

घनानन्द ने अधिकांश रचनायें सुजान के वियोग में लिखी थीं। वस्तुतः वह विप्रलम्भ शृङ्गार के ही कवि हैं। इनके विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत पूर्वानुराग ‡ को काफी महत्व दिया है।

मृदु मूरति लाड दुलार भरी अंग अंग बिराजति रंगमई।
घनआनन्द जोबनमाती बसा छबि लाकत ही मति छाक छई॥

× पदावली छन्द संख्या १२, ६६।

‡ सुजानहित प्रबन्ध छन्द संख्या १,६, १६, २२, ६०, ७०, ७२, ७७, ८६, ६३, ६८, १००, ११० ११८, ११६, १२३, १२४, १२७, १२८, १३२, १४४ १४७, १५४, १५२, १८८, २११, २१८, २३२, २३७, २४१, २४४, २६३ २६४, २६६, २७८, ३०४, ३०२, ३३३, ३३७, ३८४, ४०४, ४१२, ४२६।

प्रकीर्णक छन्द संख्या ६, १०, १२, ६८।

पदावली छन्द संख्या ६, १३, २६, २८, ३०, ४५, ४६, ४७, ४८, ६२, ६५, ६७, ६६, ७०, ७२, ७४, ७६, ७६, ८०, १०१, १०७, ११३, १२६, १३३, १३६ १४६, १४१, १४७, १६७, १६६, १६४, १६८, १७०, २२६।

‡ स्फुट छन्द सं० १, ८, ११, १२, १३, १७।

सुजान हित प्रबन्ध छं० सं० १, ३, २२, १०० इत्यादि।

पदावली छन्द सं० ६२, ६०, ७०, ७२, ७६, १३६, १३३, १३६, १३६, १३६, १३१, १२२, १३०, १४२, १६८।

बसि मान सलोनी सुजान रही चित पै हित हेरनि छाप दई।
वह रूप की रासि लखी तब तें सखी आँखिन कै हरतार मई॥
—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० १५२"

प्रथम दर्शन में ही नायक नायिका एक दूसरे पर अनुरक्त हो गए। मिलन न होने के कारण उनके मन में प्रेमपूर्ण अधीरता है। मिलनेच्छा होने के कारण "अभिलाषा" दशा हुई। "स्मृति" एवं "औत्सुक्य" संचारी भाव है। "प्रत्यक्ष दर्शन" से उत्पन्न "पूर्वानुराग" है।

सपने की सम्पति लौं भई है मलोनमई,
मीत को मिलन मोद जानौं न कहाँ गयौ।
जकी है थकी है जड़ताई जागि पागि पीर,
धीर कैसे धरौं मन सौं धन झरो गयौ॥
हाय हाय अगन की हीनता कहा लौं कहौं,
गए न लगेई संग रंग हू जहाँ गयौ।
रासे आप ऊपर सुजान घनआनन्द पै,
पट के फटत क्यों रे हिये फटि ना गयौ॥
—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० ६७"

उक्त छन्द में विरह व्यथा के अन्तर्गत "व्याधि" दशा का निरूपण किया गया है। मोह, आवेग, जड़ता, विषाद, दीनता औत्सुक्य, व्याधि, उन्माद तथा वितर्क संचारी भावों का एक साथ सजीव उल्लेख है।

अंग अंग छाइ है उद्वेग उरझानि महा,
सांस लेवो भारो गिरि हू तें गरवो लगै।
जोबन सरूप गुन सूल से सकल गात,
सूल तिनका लौं है गुमान हरुवो लगै॥
सुन्दर सुजान प्रान प्यारे के निहारे बिन,
दीठि तौ अदीठि सो उजार घरुवो लगै।
और जे सवाद घनआनन्द बिचारै कौन,
बिरह बिषाद जुर जीवो करुवो लगै॥
"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० १२७"

यहाँ विरह दशा के साथ निस्सयता का माधान्य है।

पीरी परी देह छीनी राजत सनेह भीनी,
कीनी है अनंग अंग अंग रंग बोरी सी।
नैन पिचकारी ज्यों चल्योई करें दिन रैन,
बगराए बारनि फिरति झकझोरी सी॥
कहाँ लौं बखानों घनआनन्द दुहेली दसा,
फागमई भई जान प्यारे वह भोरी सी।
तिहारे निहारे बिन प्राननि करत होरा,
विरह अंगारनि मगारे हिय होरी सी॥

—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द १३१"

विरहिणी की विरह व्यथा का चित्रोपम सजीव वर्णन किया गया है। "उद्वेग", "उन्माद", "व्याधि" एवं "जड़ता" विरह की इन चार दशाओं का सम्मिश्रण होकर विरह दशा "मरण" की अवस्था की ओर अग्रसर हो रही है। "वैवर्ण्य" "अश्रु" एवं "प्रलय" सात्त्विक अनुभाव हैं।

मारो गरजि गरजि घन मारो, हो डरावो,
प्रीतम प्यारे बिना मैं कैसें मरों हौं।
तैसिये निसि अंधियारी कारी तैसिये सियरी पवन,
परसि परसि तन जरों हौं।

—"पदावली छन्द सं० २४६"

यहाँ प्रवास हेतुक विरह वर्णन किया गया है। बादलों (उद्दीपन विभाव) के द्वारा उत्पन्न विरह व्यथा का निरूपण है।

पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौं आन घरी बिरंचि बनाई,
रूप को लोभिनि रीझ भिजाय है हाय इते पै सुजान मिलाई।
क्यों घनआनन्द धीर धरैं बिन पांख निगोड़ी मरैं अकुलाई,
प्यास भरी बरसैं तरसैं मुख देखन कौं अंखियां दुखदाई॥

—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० ७११"

यह भी प्रवास हेतुक विरह है "प्रलय" श्रम जनित" सात्विक अनुभाव है। "दैन्य" सचारी भाव की व्यजना है।

खोय दई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसे उनमाद जग्यो है,
मौन गहै, चकि चाकि रहै, चलि बात कहै तन दाह दग्यो है।
जानि परै नहिं जान तुम्हें लखि ताकि कहा कछु आहि खग्यो है
सोचनि ही पचिये घनआनन्द हेत पग्यो किधौं प्रेत लग्यो है॥
"सुजानहित प्रबंध छद स० १७७"

वियोग-जनित व्यथा के कारण बुद्धि विपर्यय हो गया है। इस कारण विरहिणी कभी व्यर्थ रोने लगती है, तो कभी हसने लगती है, कभी यों ही ऊट पटांग बकने लगती है मानो उसे कोई प्रेत लग गया है। अतएव यह उन्माद दशा का वर्णन है। मोह, आवेग, जड़ता, उग्रता विषाद, उन्माद तथा संचारी भाव स्पष्ट व्यक्ति है।

है है कौन घरी भाग भरी पुन्य पु ज फरी,
खरी अभिलाषिनि सुजान पिय भेंटि हौं।
अमी ऐन आनन कौं पान, प्यासे नैननि सों,
चैननि ही करिकैं वियोग ताप मेटि हौं॥
गाढ़े भुज दंडन के बीच उरमंडन कौं,
धारि घनआनन्द यौं सुखनि समेटि हौं।
मथत मनोज सदा सो मन पै हौं हूँ कब,
प्रानपति पास पाय ताप मद फेटि हौं॥
सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० २०५"

घनानन्द का निम्नलिखित सवैया बहुत प्रसिद्ध है।—

परकाजहि देह कौं धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ,
निधि नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ।
घनआनन्द जीवन दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियें परसौं,
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आंगन मो अंसुवानहिं लै बरसौ॥
सुजानहित प्रबन्ध छन्द स० ३३७"

यहाँ प्रवास हेतुक विप्रलम्भ शृङ्गार है। प्रेमी अपनी प्रियतमा के पास अपने आँसू पहुँचाना चाहता है। इस कार्य के लिए वह मेघ से अनुनय-विनय करता है। मेघ से ही निवेदन करने का एक विशेष कारण है अश्रु-जल खारा होता है। प्रेमी नहीं चाहता कि प्रियतमा के पास खारा जल पहुँचे। मेघ का जल मीठा होता है। अथवा मेघ का गुण है कि खारी पानी को मीठे जल में परिणत कर देता है। अश्रु जल तो पहुँचे, परन्तु मीठा होकर इस सुन्दर कार्य को सिवाय मेघ के और कौन कर सकता है। यहाँ दैन्य संचारी भाव सहानुभूति अपराय में पूर्ण सहायक हो गया है।

वियोग-वेलि के अन्तर्गत केवल विरह दशा-कथन ही है।

दशा है अटपटी पिय आय देखो,
न देखो तो परेखो है परेखो।
जु चंदा तें झरें दैया अंगारे,
चकोरन की कहौ गति कौन पारे॥
—"छन्द सं० ७, १६"

विरह-व्यथा इतनी बढ़ जाती है कि विरही मरणासन्न हो जाता है।

इते पै जो न पाऊं पीर प्यारे,
रहैं क्यों प्रान ये विरही बिचार।
—"छन्द सं० १४"

घनानन्द ने स्वयं भी विरह का महत्व स्वीकार किया है।

मिलन मैं के कपट है गए प्यारे।
—"वियोग-वेलि छन्द सं० ३०"

सयोगी से इश्क ते, इश्क वियोगी खूब,
आनंदघन चश्मों सदा, बना रहै महबूब।
—"इश्कलता छन्द सं० ४"

बात ठीक ही है। संयोग-समय कभी उपेक्षा-भाव भी आ सकता है। परन्तु वियोग-समय तो प्रेमी की याद हर समय सताती रहती है। और प्रमी आँखों के आगे नाचा ही करता है।

बिरह सूल सों बारि करि, घनआनद सों सींच,
इश्कलता भालरि रही, हिये चमन के बीच।
—"इश्कलता छन्द सं० ४"

उद्दीपन विभाव का वर्णन—उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ऋतु-वर्णन तथा नख शिख-वर्णन आते हैं। घनानन्द ने परम्परा के अनुसार न तो षड्ऋतु वर्णन किया है और न अंग, प्रत्यंग का ही निरूपण किया है। उन्होंने उद्दीपक पदार्थों द्वारा संयोग के समय सुखद तथा वियोग के समय दुखद उत्पन्न प्रभाव का सजीव वर्णन किया है। नख शिख के अन्तर्गत नायक और नायिका के स्वरूप के वर्णन किए हैं। अंग प्रत्यंग के निरूपण कम। रूप माधुरी के अधिक।

ऋतु वर्णन—घनानन्द ने प्राय वसन्त और पावस इन्हीं दो ऋतुओं का वर्णन किया है। ×

लहकन लागी री बसंत बयार मन बनचारी लौं लग्यौ बहकन,
आनौं न आगे कछू करिहै अब लगिहै पलास वन दहकन।
मदन मरक कछू हूँ कि काढ़ि है भौरें पुहुप लागे बरन बरन महकन,
आनंदघन पिय कित अब छाए इत कुम कुछू लागी गहकन॥
—"पदावली छन्द सं० १६६"

उपर्युक्त छन्द में 'वसंत" के आगमन काल का चित्रण किया गया है। निम्न लिखित छन्द में "बसन्त विलास" का निरूपण है।

जयति रोहिनीनंदन उदार विक्रम विपुल,
अतुल बलधाम अच्युत कृपानिधि।
जयति गौर सुन्दर बरन नील अंबर धरन,
एक कुंडल करन आभा विधि॥

× सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० २१ ७२, ८३, २२२, २३२, २२१, २४९, २७१, २११, ११२, ११३, ४०८, ४०१ ४४४।
पदावली छन्द सं० १८२, १८४।

जयति प्रम अमज भ्रज विलास मैगल सदन,
काम पालक सदा मस्त रसरंग निधि
करुना सुदृष्टि आनंदघन वृष्टि करि,
ताप मोचन देत परम सुखसिधि ॥

—"पदावली छन्द सं० ९८७"

प्यारे की अनुपस्थिति में 'बसन्त' के विरहीजनों की दृष्टि में सर्वथा नीरस एवं शुष्क ही प्रतीत होता है यथा—

ललित तमालनि सों वलित नवेली वेलि,
केलि रस केलि हंसि लखी सुखसार है।
मधुर विनोद स्वेद जलकन मकरंद,
मलय समीर सोई मोद उदगार है ॥
वन का बनक देखि कठिन बनी है आनि,
वनमाली दूर आली सुने को पुकार है।
बिन घनआनंद सुजान अंग पीरे परि,
फूलत बसंत हमें होत पतझार है ॥

—"सुजानहित प्रबंध छन्द सं० ३६"

'बसन्त' के साज-सामान, शीतल मन्द पवन, आम मंजरी की भीनी सुगंध कोकिल की सुधा-वर्षिणी मधुर वाणी इत्यादि प्यारे की याद दिला कर हृदय को क्षुब्ध कर देती है। फिर ध्यान आता है कि प्रियतम को भी मेरी याद आ रही होगी, यह अवश्य ही आता होगा। यह विचार आते ही आशा का सपना हो उठता है और मन एक बार फिर प्रफुल्लित हो उठता है। परन्तु फिर वही बात। बिना प्यारे के आए सब व्यर्थ है। मिलन-सुख तथा वियोग दुःख के झूले में विरही इधर-उधर झूला करता है। घनानंद "है पतझार बसन्त हुई घनआनंद एक ही बार हमार" कह कर इस 'धूप छांह' का वर्णन किया है। यथा

किंसुक पुंज से फूलि रहे सु लगी उर दौ जु वियोग विहारे।
मानो फिरै न घिरै अबलानि पै, जान मनोज यौं हारत मारे॥

है अभिलाषनि पात निपात कहे हिय सूल उसासी डारे ।
है पतझार बसंत दुहू घनआनंद एक ही बार हमारे ॥
—"सुजानहित प्रबंध छन्द सं० २६१"

इन उद्दीपनकारी वस्तुओं के कारण विरहिणी को उन्माद हो उठता है।

सुधि आई पिय मिलि खिली, सों याही बन मांझ ।
सरसों सी फूलति सखो, देखति फूली सांझ ॥
"पदावली छन्द सं० ८१"

इन्होंने 'वसन्त' को अनुराग कहकर "रतिराज" का सहायक बताया है। +

आई रितु सुखदाई पावस की सुहाई,
बोलत मधुर पिक चातक अरु माते मुरवा ।
स्याम घन में चपला की चमक चहुँ ओर सु बम्यो है मनोरथ पुरवा ।
आनंदघन पिय बैन बजावत अति आरति सों तोहि बुलावत
लै रीझनि भीजै सुरवा ॥
—"पदावली छं० सं० ३०४"

पावस ऋतु विरही जनों के लिए, विशेष कर नारियों के लिए बड़ी ही दुख दायी होती है। चपला की चमक, जुगनू की चिनगी, बादलों की गर्जना, वर्षा की फुहार आदि वस्तुएँ कामोद्दीपन कर मन विकसित कर देती हैं।*

लहकि लहकि आवै ज्यौं ज्यौं पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौं त्यौं तन तांवरे तचै ।
बहकि बहकि जात बदरा बिलोकें हिय,
गहकि गहकि गहबरनि हियें मचै ॥
चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहें,
कैसें घनआनद सुजान बिन ज्यौं बचै ।

+ सुजानहित प्रबन्ध छन्द संख्या १६१ ।

* सुजानहित प्रबन्ध छन्द संख्या १२६ १३६
पदावली छन्द संख्या ३०१ ३०८ ।

महकि महकि मारै पावस प्रसून बास,
प्रासनि उसास दैया को लौं रहिये पचै ॥
—"सुजानहित प्रबंध छं० सं० ५५"

जब कोई उत्सव मनाया जा रहा हो, कोई तीज त्यौहार हो उस समय अपने प्रियतम की याद का आना स्वाभाविक ही है। ध्यान आता है कि पिछली बार हम दोनों ने एक साथ बैठ कर यह उत्सव मनाया था, साथ-साथ दिवाली मनाई थी अथवा एक साथ होली मेली थी। ऐसे अवसरों पर विरही के हृदय पर क्या बीतती है, घनानन्द ने इसकी सुन्दर अभिव्यंजना की है।

आइ है दिवारी चीते काजनि जिवारी प्यारी,
खेलैं मिलि जूवा पैंज पूरें दाव पावहीं।
आरहि उतारि जोतैं मीत धन लच्छिन सौं,
चोप चढ़े चैन चैन चहल मचावहीं॥
रंग सरसावै बरसावै घनआनंद,
उमग ओपे अंगनि अनंग दरसावहीं।
दियरा जगाय जागैं पिय पाय तिय रागैं,
हियरा जगाय हम जोगहि जगावहीं॥
—"सुजानहित प्रबंध छं० सं० ४५"

जिस प्रकार प्यारे की अनुपस्थिति में चारों ओर दीपकों की मालाओं का प्रकाश होते हुए भी मन मन्दिर में अंधेरा बना रहता है उसी प्रकार 'रंग रचावन हार' के बिना अबीर गुलाल के बादलों तथा केशर कुसुम की कीच के बीच रहने पर भी वायुमंडल सूना और नीरस प्रतीत होता है। सब रंग फीका लगता है। यथा—

सोंधे की बास उसासहि रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को।
नैननि वैरी सो है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही को॥
राग विराग धमार त्यों धार सी, लौटि परयो ढंग यों सबही को।
रंग रचावन जान बिना घनआनंद लागत फागुन फीको॥
—"सुजानहित प्रबंध छं० सं० २१२"

दूती कर्म तथा सघटन आदि भी उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं। घनानन्द ने इनका भी वर्णन किया है। +

नखशिख वर्णन—निम्न लिखित छन्दों में क्रमशः कृष्ण और राधा की रूप माधुरी का आनन्द लीजिये—

मोरचन्द्रिका सीस धरैं यह सांवरो चेटक है धौं को।
पैठि परत आँखिन ह्वै अनेरो याहि निरखि पन लै निबहै धौं को॥
फिरि याको मोहन मुरली सुनि धीरज धरि धरि तरुनी रहै धौं को।
गुपत प्रगट भिजवै आनदघन मन की गतिपति बिसरि रहै धौं को॥

—"पदावली छं० सं० १००"

तेरी निकाई तोहि दई है विधाता राधे रूप रती भरिपूरि।
रति रंभा सची उमा रमा आदिकनि के गरब हारे री चरननि चूरि।
रसकि मुकुटमनि मनमोहन मनमानी जानी।
बखानी बेदनि महिमा भूरि पदवी परमपूरि।
आनदघन पिय कौं रस सम्पति दैनी जिय की जीवनि मूरि।

—"पदावली छं० सं० १०४"

मृदु तरवनि में लसति ललाई।
झमकि जहाँ पग धरति लाडिली मनहु अरुनता आनि बिछाई॥
महा रुचिर वर गोरी गुलफनि मुकावलि फबि रही सुहाइ।
संभ्रम होत निरखि नैननि दुति झलमलाति अति अद्भुत झाँई॥
जगमगि रह्यौ सुरंग जावक पै सरस रसकि रचना जु बनाई।
नखन अंग की मंजु मयूखनि चहुँ दिसि खुलि खिलि रही जुन्हाई॥
बिबिध न्यास अनयास प्रकासत नटनागर लखि लेत बलाई।
तब की कहा कहौं आनंदघन अब पिय संग निरंतर सुखदाई॥

—"पदावली छं० स० १८६"

उपर्युक्त छन्द में चरणों की सुन्दरता का वर्णन किया गया है। नख से लेकर शिख तक प्रत्येक अंग से शोभा छलकी पड़ती है।

+ सुजानहित प्रबन्ध छन्द संख्या ३०० तथा पदावली छन्द संख्या २६०।

सुन्दर सरस लोनो ललित रंगीलो मुख,
जोबन झलक क्यों हूँ कही न परति है।
लोचन चपल चितवनि चाय चोज भरी,
भ्रकुटी सुठौन भेद भायकि ढरति है॥
नासिका रुचिर अधरनि लाली सहजै ही,
हँसनि दसन जोति हियरा हरति है।
नख सिख आनंद उमंग की तरंग यहि,
अंग अंग आली छवि छलक्यों करति है॥

—"प्रकीर्णक छन्द सं० ११"

'मर्दों मोहताज जेवर का जिसे खूबी खुदा ने दी" की भाँति स्वाभाविक सौन्दर्य का वर्णन भी देख लीजिये।

एड़ी तें सिखा लौं है अनूठिये अंगेट आछी,
रोम रोम नेह की निकाई में रही है सनि।
सहज सुछवि देखें दपि जाहिं सबै बाम,
बिना ही सिंगार औरे मानिक बिराजै बनि॥
गति लै चलत लखें मतिगति पंगु होति,
दरसति अंग रंग माधुरी बसन छवि।
हँसनि लसनि घनआनंद सुहाई छाई,
लागे चौंध चेटक अमेट ओपी भौंहैं तनि॥

—"सुजानहित प्रबंध छं० सं० ७८"

उनके विचार से नायिका सौन्दर्य एवं आकर्षण की खानि है। उसकी झलक मात्र से कामोद्दीपन हो जाता है।

कंठ काँच घटी तें बचन चोखो आसव लै,
अधरपियालैं पूरि राखति सहेत है।
रूप मतवारी घनआनंद सुजान प्यारी,
काननि है प्राननि पिवाय पीवै चेत है॥
छकेई रहत रैनि द्यौस मेम प्यास आस,
कीनी नेम धरम कहानी उपनेत है।

ऐसे रस बस क्यों न सोव और स्वाद कहौ,
रोम रोम जाग्योई करत मीनकेत है ॥

—"सुजानहित प्रबंध छं० सं० १८४"

ओप वर्णन सम्बन्धी घनआनन्द ने काफी वर्णन लिखे हैं * शरीर के अंगों में सबसे अधिक वह आँखों द्वारा प्रभावित हुए जान पड़ते हैं। घनआनन्द ने अनेक अप्रस्तुतियाँ लिखी हैं। =

अनुभाव, सञ्चारी भाव आदि की व्यञ्जना—आचार्य कोटि के कवि न होने के कारण घनआनन्द ने लक्षण उदाहरण के रूप में अनुभाव आदिक के वर्णन नहीं लिखे हैं। अन्तर्वृत्तियों का उद्घाटन करते हुए भी इनकी कविता में काव्य के इन उपांगों का स्वाभाविक रूप में प्रस्फुटन हो गया है। +
यथा—

एड़ी तें सिखा लौं है अनूठिये अंगेट आछी,
रोम रोम नेह की निकाई में रही है सनि।
सहज सुकवि दर्से धुधि जाहि सबै दाम,
बिन ही सिंगार औरै बानिक विराजै बनि॥

---

* सुजान हित प्रबन्ध छन्द संख्या २० ३६, ६२ ८२, ८७, ६६, ६७ १०२, १०६, १०८ ११३ ११७ १२०, १२६, १३४, १४० १४३, १४८, १५३, १५७ १५५, १६१, १६५ १६६, १७२ १७८, १८४, १८५, २१७।

प्रकीर्णक छन्द संख्या ११, १२, १६, ३३, ३४, ४७, ४८, ५१ ६३।

पदावली छन्द संख्या ७७, १००, १०४, १०८, १२३, १११, १७६, ११४, २४१।

= सुजानहित प्रबन्ध छं० सं० १०८, १८४। प्रकीर्णक छन्द सं० ४१।

पदावली छन्द संख्या १६१, १६७, २४१।

+ सुजानहित प्रबन्ध छन्द संख्या ६१, ४३, ७६, १२७, १२८, १७६, १७७, १६६, १९७।

पदावली छन्द संख्या ७३, १६६, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २१४।

गति लै चलति लखें मतिगति पगु होति,
दरसति अ ग र ग माधुरी वसन छबि।
हसनि लसनि घनआनंद जुन्हाई छाई,
लागे औंध चेटक अमेट आपी औंहैं तनि।
—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० २८"

यहाँ किशोरी नायिका का वर्णन किया गया है। उसके शरीरावयवों के सौन्दर्य के कारण समस्त अलंकार उसके शरीर में स्वयं ही झूलने लगे हैं। रूप यौवन लालित्य आदि से समग्र शरीर की सुन्दरता के कारण 'शोभा' है। उसे देखकर कामोद्रेक होता है अतः कान्ति' है। लावण्य नेत्रों में प्रकाशादि का संचार करता है। अतः वह 'दीप्ति से युक्त है। प्रत्येक दशा में रमणीय होने के कारण 'माधुर्य' का पूर्ण प्रकर्ष है। यौवन विकास के कारण अकारण हँसी का आना 'हसित' का द्योतक है।

केलि की कला निधान सुन्दरि सुजान महा,
आन न समान छवि छांह पे छिपैये सौंनि।
माधुरी मुदित मुख उदित सुसील भाल,
चंचल बिसाल नैन लाज भीजिये चितौनि॥
पिय अङ्ग संग घनआनंद उमंग हिय,
सुरति तरङ्ग रस बिबस उर मिलौनि।
झूलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम,
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि॥
—"सुजानहित प्रबंध छन्द सं० ३१"

यहाँ 'रोमांच' तथा 'स्वेद' सात्विक अनुभाव व्यंजित हैं। तथा हर्ष, गर्व, श्रम आलस्य, भ्रम, चपलता, इतने संचारी भाव एक साथ व्यक्त हैं।

नायिका भेद वर्णन—घनआनद' ने परकीया भाव से कृष्ण की उपासना करने वाले सम्प्रदाय में दीक्षा पाई थी। अतः यह स्वाभाविक ही है कि उन्होंने अपनी रुचि के अनुकूल तथा समसामयिक कवि परम्परा के अनुसार 'परकीया' नायिका का ही अधिक वर्णन किया है। नायिका वर्णन के अन्तर्गत

इन्होंने दो तीन भेदों का ही लिया है। खंडिता के वचन भवस अधिक हैं।*
और वे सुन्दर हैं।

रूप के भारन होति है सौंही, लजौंहियै दीठि सुजान यों भूली।
लागियै आलि न लागी कहूँ निसि, पागी तहाँ पल की गति भूली।
बैठियै जू हिय पैठत आजु, कहा उपमा कहियै सम तूली।
आप ही भोर भए घनआनंद, आलिन मांझ तौ सांझ सी फूली॥

—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० २५"

प्रात आने वाले नायक के शरीर पर परस्त्री-रति के चिन्ह देखकर ईर्ष्या करने वाली होने के कारण नायिका खंडिता है। आदरभाव के साथ व्यंग्य वचनों द्वारा अपना कोप प्रकट करने के कारण वह मध्याधीरा है।

कौन हठ परी है, हौं न जानौं प्रानप्यारो कब को हा हा करत।
तेरो क्यों तनक कठोर मैं कबहूँ न पायौं देया अब कैं न डरत॥
हौं हूँ फिरि तोसों न बोलिहों, मो बिना कौनहु सों काज न सरत।
आनदघन अरु मो सी निठुर सों पपीहा प्यासन मरत यह दुख
क्यों हूँ सह्यौ न परत॥

—"पदावली छन्द सं० २२६"

यह मानवती नायिका-वर्णन है।

एरे बीर पौन तेरो सबै ओर गौन, बीरो,
तो सो और कौन, मनैं ढरकौंहीं बानि दे।
जगत के प्रान ओछे बड़े सों समान घन,
आनंद निधान सुखदान दुखियानि दै॥
जान उजियारे गुन भारे अन्त मोही प्यारे,
अब है अमोही बैठे, पीठि पहिचानि दै।

---

* सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० २५, ३१५,
पदावली छन्द सं० ८, १२, २४, २५, ३१, ३२, ३६, ७४, ८२।
स्फुट छन्द सं० १, ७।

बिरह बियाहि मूरि आँखिन में राखौं पूरि,
धूरि तिनि पायनि की हा हा नेकु आनि दै ॥
—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द स० २४८"

नायिका अपने पति के वियोग में दुखी है, तथा अपनी विरह-व्यथा को निस्संकोच व्यक्त कर रही है अतः यह प्रोषितपतिका प्रौढ़ा स्वकीया नायिका की दशा वर्णन है।

सांसारिक सुखों की असारता—नश्वर संसार के सुखों में लिप्त रहने के बाद 'घनआनन्द' भी इसी परिणाम पर पहुँचे थे कि सब व्यर्थ हैं उनके मत में तो संसार के भोग-विलास जीवन-पथ से विमुख करने वाले हैं। +

लरकाई प्रदोष में टोल लग्यौ, हँसि रोय सु औसर खोय दयौ।
बहुर यौ करि पान पिये मदिरा, तरुनाइ तमीं भमि सोय लयौ ॥
तजि कै रसमैं घनआनंद कों, जग धू धर यौ चातिक नेम लयौ।
अह जीव न जागत अजहूँ किनि, केसनि ओर तें भोर भयौ ॥
—"सुजानहित प्रबन्ध छन्द स० २६७"

यदि कल्याण चाहते हो यदि सुखी रहना चाहते हो, तो इन्द्रियों के पीछे मत भागो। 'इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करने पर ही सुख की प्राप्ति सम्भव है'* निम्न लिखित छन्द में, नैनन भग फिरै भटक्यौ पल मू दि सरूप निहारत क्यौं नहीं' से यही तात्पर्य है।

आय जो छाय तौ धूरि सबै, सुख जीवन मूरि सम्हारत क्यौं नहीं।
ताहि महागति तोहि कहा गति, पैठें बनैगी बिचारत क्यौं नहीं ॥
नैननि सग फिरै भटक्यौ, पल मूँदि सरूप निहारत क्यौं नहीं।
स्याम सुजान कृपा घनआनंद, प्रान पपीहन पारत क्यौं नहीं ॥
—"कृपाकन्द निबन्ध छन्द सं० १२"

\+ सुजानहित प्रबन्ध छन्द सं० १४८, ४२२।

* कृपाकन्द निबन्ध छन्द सं० ८…११।

(५)

(केशवदास)

इनका जन्म सन् १५५५ (विक्रमी संवत् १६१२) में और मृत्यु सन् १६१७ (विक्रमी संवत् १६७४) के आस पास हुई । यह सनाढ्य ब्राह्मण थे । केशवदास ओरछा-नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह की सभा में रहा करते थे, जहाँ इनका बहुत मान था ।

शास्त्रीय पद्धति पर साहित्य चर्चा करना इनके लिए स्वाभाविक ही था । इसके दो कारण थे । (१) इनके परिवार में बराबर संस्कृत के अच्छे पंडित होते आए थे तथा (२) इनके समय तक हिन्दी में काव्य रचना प्रचुर मात्रा में हो चुकी थी ।

आचार्य शुक्ल के शब्दों में "अब तक किसी कवि ने काव्यांगों का पूरा परिचय नहीं कराया था । यह काम केशवदास जी ने किया ।

ये काव्य में अलंकार का स्थान प्रधान समझने वाले चमत्कारवादी कवि थे ।§

केशवदास द्वारा लिखे हुए सात ग्रन्थ उपलब्ध हैं । कविप्रिया, रसिकप्रिया रामचन्द्रिका, वीरसिंहदेव-चरित, विज्ञान-गीता, रतनबावनी और जहाँगीर जस-चन्द्रिका ।

हिन्दी के इतिहास-लेखकों ने केशवदास को भक्ति-काल के अन्तर्गत रक्खा है । सम्भवतः इसका कारण यह रहा हो कि राम और सीता के श्रृङ्गार-वर्णन में इन्होंने कहीं भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया है । आचार्य शुक्ल ने इन्हें भक्ति-काल के फुटकल कवियों के अन्तर्गत रखकर इनकी रचनाओं को भक्त

§ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं० २५१ ।

कवियों को रचनाओं के साथ स्थान दिया है। कारण यह बताया है कि 'हिन्दी में लक्षण ग्रन्थों की जो परम्परा चली वह केशव के मार्ग पर नहीं चली'।×

काव्य-विभाजन की सुविधा की दृष्टि से केशवदास भक्ति काव्य के अन्तर्गत भले ही आ जायें, परन्तु इनकी रचनाओं को भक्ति-काव्य के साथ रखना हमारे विचार से उचित नहीं। न तो यही आवश्यक है कि शृङ्गार-वर्णन करते समय मर्यादा का उल्लंघन कर ही दिया जाए और न यही बात कही जा सकती है कि किसी भक्त कवि ने किसी प्रकार कहीं भी मर्यादा का अतिक्रमण किया ही नहीं है। रीति-निरूपण और शृङ्गार वर्णन करते हुए मर्यादा का किस प्रकार निर्वाह किया जा सकता है केशवदास इसके सब से बड़े उदाहरण हैं।

हिन्दी में लक्षण उदाहरण वाली शैली पर शास्त्रीय ढंग से काव्य-निरूपण का मार्ग केशवदास ने ही प्रशस्त किया था। अतः हम उनकी गणना रीति ग्रन्थकारों अथवा रीति-कवियों के अन्तर्गत करना ही अधिक समीचीन समझते हैं।

तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव—सन् १५४१ में कृपाराम दोहा मा रस-निरूपण कर चुके थे। इसी समय में चरखारी के गोपालचन्द्र मिश्र ने 'शृङ्गार-सागर' नामक शृङ्गार सम्बन्धी एक ग्रन्थ लिखा था। करनेस कवि ने 'कर्णाभरण' 'श्रुतिभूषण' और 'भूप भूषण' नामक तीन ग्रन्थ अलंकार सम्बन्धी लिखे थे। केशवदास ने इसी परम्परा के अन्तर्गत रीति-सम्बन्धी रचना लिखी। संस्कृत साहित्य-शास्त्र में निरूपित अवयवों का परिचय कराना इनकी अपनी विशेषता थी।

केशवदास के समय तक दरबारों तथा समाज में भोग-विलास का साम्राज्य नहीं छा पाया था। इनके समस्त वर्णन संयत और भक्ति की मर्यादा के भीतर ही हैं।

> फंटत चटफत फटि फटि जात,
> उड़ि उड़ि बसन जात बरा बात।

× हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं० २२२।

तऊ न तिनके तन लखि परे,
मणि गण अङ्ग अङ्ग प्रति धरे ॥
—"रामचन्द्रिका ३१ वां प्रकाश, छन्द सं० ४०"

एक स्थान पर इनका श्रृङ्गार वर्णन अश्लील हो गया है।

बिना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राजैं,
किधौं साँचेहू श्रीफलै सोभ साजैं।
किधौं स्वर्ण के कुम्भ लावण्य परे,
वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण परे ॥
—"रामचन्द्रिका २६ वाँ प्रकाश, छन्द सं० ३१"

अंगद मंदोदरी के केश पकड़ कर चित्रशाला के बाहर ले आए थे। उस समय के उनके कंचुकी रहित उरोजों का यह वर्णन है। कहने को कहा जा सकता है कि भक्ति के आवेश में शत्रु की स्त्री की दुर्गति का वर्णन किया गया है परन्तु शिष्टता का उल्लंघन तो अशिष्टता ही है।

केशवदास दरबार में रहते थे। अतः पांडित्य प्रदर्शन द्वारा अपने आश्रयदाता के ऊपर अपने प्रचुर ज्ञान और आचार्यत्व की छाप लगाने की इन्हें भी चिन्ता रहती थी। इनके काव्य की जटिलता और दुरूहता इस मनोवृत्ति की परिचायिका है। शुक्ल जी के शब्दों में केशव केवल उक्ति वैचित्र्य और शब्दक्रीड़ा के प्रेमी थे।×

"वीरसिंहदेव-चरित" तथा "जहांगीर-जस चन्द्रिका" ये दोनों ग्रन्थ आश्रयदाता की प्रशस्ति में लिखे गये ग्रन्थ हैं। इन्होंने अनेक प्रकार के तथा नये-नये छन्दों का प्रयोग किया है। + "रसिक प्रिया" की रचना भी आश्रयदाता के

× हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं २२४

+ देखें रामचन्द्रिका, मही छन्द, विमोहा छन्द, मन्थना छन्द, मालती छन्द, मरहट्टा छन्द, चंचला छन्द, पंकज वाटिका छन्द, मधु छन्द, बंधु छंद, कलहंस छंद, अनुकूला छंद, नाराच छंद, मदिरा छंद सुमुखी छंद, मोटनक छंद, कुसुम विचित्रा छंद, विशेषक (नील, अश्वगति) छन्द, मत्त रूप छन्द, सारवती छन्द, अमृत गति छंद, चित्रपदा छंद, मत्तमातंग-लीला-करण दंडक छन्द, प्रतिमाक्षरा छंद, स्यामिनी छन्द इत्यादि।

देतु दा की गई थी। (रसिक-प्रिया, प्रथम प्रकाश छन्द सं० ७, १०)

केशवदास राज कवि थे। "राम राज्य" के प्रसंग के अन्तर्गत इन्होंने राज्य की बातों का भी खोज कर वर्णन किया है × उदाहरण के लिए २१ वें प्रकाश में चौगान वर्णन, अयोध्या की रोशनी का वर्णन, रामभागार का वर्णन, राजसभा का वर्णन, ३० वें प्रकाश में सगीत-वर्णन, मृत्य-वर्णन, सेज-वर्णन, प्रभात-वर्णन प्रातः कृत्य-वर्णन, २१ प्रकार के भोजन का वर्णन, ३१ वें प्रकाश में नगरि वर्णन, ३२ वें प्रकाश में बाग वर्णन, कृत्रिम पर्वत-वर्णन, कृत्रिम सरिता-वर्णन जलाशय-वर्णन, जल क्रीड़ा-वर्णन, स्नानागार विषयक शोभा-वर्णन आदि वर्णन लिखे हैं। इसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत सम्भवतः इन्होंने दशरथ राजा के सम वर्णित और मद्य मंडित हाथियों का वर्णन किया है।

> जहँ तहँ लसत महा मदमत्त, वर वारन वारन दल दत्त।
> अंग अंग चरचे अति चदन, मुंडन मुर के देखिय वंदन ॥
> —"रामचन्द्रिका, प्रथम प्रकाश छन्द सं० ६८

राम को मनाने के लिए आते हुए भरत के साथ चलने वाले हाथि को आभूषणों से सुसज्जित एवं मणि मुक्ताओं से जटित बताया है, जो हम विचार से अवसर के सर्वथा प्रतिकूल है (१०, ११)।

परम्परा के प्रेम के कारण वसन्तऋतु न होते हुए भी इन्होंने दशरथ बगीचे में कोयल की उपस्थिति बताकर उसके द्वारा काम का सन्देश सुनवा है। +

विशेष—जिस समय विश्वामित्र अयोध्या आए थे, उस समय का वर्ण है और उन दिनों वसन्त ऋतु न थी।

तत्कालीन दरबारी वातावरण से प्रभावित होकर केशवदास ने राजा दशर के दरबार में आने वाले व्यक्तियों को मूर्तिधारी भाग-विलास बताया है। यथा

× रामचन्द्रिका प्रकाश संख्या १ २८, २९, ३०, ३१, ३२।

+ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छंद सं० ३०।

आवत जाता राज के लोगा, मूरति धारी मानुहु भोगा ।
—"रामचन्द्रिका २, १"

राजमहल के सामने वाले मैदान में भैंसों, मेढ़ों, मृगों, बैलों तथा हाथियों के युद्ध की चर्चा की है, मल्ल युद्ध, पटेबाजी तथा दैनिक परेड के अतिरिक्त नटों की कलाबाजी का भी उल्लेख किया है।

आवत जाता राज के लोगा, मूरति धारी मानुहु भोगा ।
× × × ×
महिष मेष मृग वृषभ कहुँ भिरत मत्त गजराज ।
लरत कहूँ पायक सुभट, कहुँ नर्तत नटराज ॥
—"रामचन्द्रिका द्वितीय प्रकाश छन्द सं० १, २" ×

आगे राजा जनक के दरबार में पंचावली पर बैठे हुए राजाओं को हाथ उठाकर बातचीत करने के वर्णन में केशवदास ने हाथ के अनेक भाव बताकर नाचने वाली वेश्या की अपेक्षा की है। + रावण बाण गृह के प्रसंग में केशवदास ने लिखा है कि कहीं कोई स्त्री मदिरा पीती है कोई माला गूंथती है, कोई बनी-ठनी स्त्री नाचघर में नाच रही है, कहीं कोई कोकिल कंठी स्त्री सुआ के (सुग्गी) और मैना के साथ लेकर (पिंजरों में एकत्र करके) कोकशास्त्र के मन्त्र (आलिंगन चुम्बनादि की परिभाषायें) पढ़ा रही है। +

इसी प्रकार राम राज्य का वैभव वर्णन करने के बहाने से निम्नलिखित छन्दों में यह बताया गया है कि उन दिनों राजाओं के महलों के भीतर % और बाहर किस प्रकार वैभव और विलास क्रीड़ा किया करते थे।

× देखें १ ११ रामचन्द्रिका ।

+ देखें ३, १६ रामचन्द्रिका ।

+ देखें १३, ४२ रामचन्द्रिका । ।

% सेज वर्णन छन्द १२, १६, १० वां प्रकाश रामचन्द्रिका । छन्द सं० २० २५, २६ वां प्रकाश ।

चंपकदल द्युति के गेंडुए, मनहुँ रूप के रूपक ठए।
कुसुम गुलाबन की गलसुई, बरणि न जाय न नैनन छुई॥

—"रामचन्द्रिका ३०, १४"

यह सभा का वर्णन है। घर के बाहर की दशा भी कुछ कम न थी।

घर घर संगीत गीत, बाजन बाजैं अजीत,
काम भूप आगम जनु होत है बधाय।
राजभौन आस पासदीप वृक्ष के विलास,
जगति ज्योति यौवनु जनु ज्योतिवंत आए॥
मोतिन मय भीति नई, चन्द्र चन्द्रिकानि मई,
पंक अंक अंकित मय भूरि भेदधारी।
मानहु शशि पंडित करि, ओप्यहु ज्योति मंडित की,
खड शैल की अखंड, शुभ्र पुरी सारी॥

—"रामचन्द्रिका २६, २१"

उन दिनों प्रमदा और मदिरा साथ-साथ चलती थीं, इस बात की इनके काव्य पर स्पष्ट छाप है।

सुन्दरता पय पावक जावक पीक छिये नख चन्दन ये हैं।
चन्दन चित्र सुधा विष अंजन टूटि सबै मणि हार गये हैं॥
केशव नैनिन नीदमई मदिरा मद घूमत मोद मये हैं।
केलिकै नागरिनागर प्रात उजागर सागर भेप भये हैं॥

—"रसिक प्रिया तृतीय प्रकाश छं० म० ५५"

रीति बद्ध रचना की प्रवृत्ति केशवदास की काव्यकला का एक अविच्छिन्न अंग बन गई थी। प्रत्येक प्रकाश के प्रारम्भ में एक दोहा लिख कर वस्तु निर्देश कर देना इनकी विशेषता है। प्रारम्भिक दोहा का पढ़ते ही समझ में आजाता है कि इस प्रकाश में क्या वर्णन किया गया है। ×

श्रृङ्गार रस वर्णन—केशवदास द्वारा वर्णित श्रृङ्गार भक्तिपरक है, उसमें

×या द्वितीया परकाश में, मुनि आगमन प्रकाश।
राजा सों रचना बचन, राघव चलन विलास॥

ऐन्द्रियता बहुत कम है। रामचन्द्रजी जैसे ही सुन्दर सेज पर जाकर लेटते हैं, वैसे ही उन्हें ध्यान आ जाता है कि—

> जिनके न रूप रेख, ते पोढ़िबो नर बेष।
> निशि नाशियो तेहि बार, बहु बंदि बोलत द्वार॥
> —"रामचन्द्रिका ३०, १६"

केशवदास के समय तक कृष्ण विषयक शृङ्गार वर्णन का मार्ग प्रशस्त नहीं हो पाया था। केशवदास ने राम के चरित्र का वर्णन किया है। उसके लौकिक शृङ्गार गौण रूप से ही आसका है। "रसिक प्रिया" में इन्होंने लक्षण और उदाहरण देकर शृङ्गार रस का सावयव निरूपण किया है और यहां पर उसनी अच्छी तरह संयम और शील का निर्वाह नहीं हो सका है। मर्यादा निर्वाह के हेतु केशव दास ने सर्वप्रथम यह कहा है कि ब्रजराजजी कृष्ण नवों रसों में हैं जिसकी जिसमें प्रीति हो उसी रस में वह श्री कृष्ण का सेवन करे। श्री वृषभान दुलारी राधिका इनके शृङ्गार रूप की हेतु हैं। /

केशवदास ने शृङ्गार रस को रसराज बता कर उसका लक्षण यह कह कर दिया है कि जिसके द्वारा कामदेव सम्बन्धी रति, चतुराई, भाव और विचार प्रकट हों, वही शृङ्गार रस है।

> नवहू रस को भाव बहु, तिनके भिन्न विचार।
> सबको केशवदास हरि, नाइक है शृंगार॥
> रतिमति की अति चातुरी, रतिपति मन्त्र विचार।
> ताही सों सब कहत हैं, कवि कोविद शृंगार॥
> —"प्रथम प्रकाश छं० सं० १६, १७"

उपर्युक्त परिभाषा पर "कामशास्त्र" की छाप स्पष्ट है। रतिपति काम देव के मन्त्रों और विचारों का उल्लेख कामशास्त्र के अन्तर्गत किया गया है।

केशवदास के मतानुसार अनुकूल परिस्थितियां उपलब्ध होने पर कामदेव साधुओं के चित्त को भी चलायमान कर देते हैं।

> अति आदर अति लोभते अति सगति ते मित्त।
> साधुनिहू को होति है, केशव चंचल चित्त॥
> — "८ ५७"

/ छन्द सं० १ प्रथम प्रकाश।

केशवदास ने शृङ्गार के संयोग और वियोग ये दो भेद करके, प्रत्येक के "प्रच्छन्न" और "प्रकाश" ये दो-दो भेद और किए हैं।

जिस संयोग को सखा-सखी जानते हैं। यह प्रच्छन्न संयोग शृङ्गार है।

संयोग शृ गार वर्णन—

वन में वृषभानु कुमारि मुरारि रमे रुचि सों रस रूप पिये।
कल कूजत पूजत कामकला विपरीत रची रति केलि हिये॥
मणि सोहत श्याम जरा झरी अति चौंकि चले चल चार हिये।
मखतूल के झूल झुलावत केशव भानुमनों शनि अंक लिये॥
—"१, २०"

'रति केलि हिए' 'रति' स्थायी स्पष्ट ही व्यंजित है। राधा और मुरारि का नाम नायिका, नायक के लिए आया है। यह समय का प्रमाण है। उनका रमण करना, तथा रस रूप पीना सम्भोग शृङ्गार का साक्षी है। उनकी विपरीत रति का वर्णन करना स्वकीयत्व है जो तत्कालीन कामुक एवं विलासितापूर्ण वातावरण की प्रतिच्छाया है। 'श्रम सीकर स्वर' सात्विक अनुभाव व्यंजित हैं। काम-कला का पूजन' कह कर उनके मानसिक अनुभाव व्यंजित किये गए हैं। 'हर्ष' संचारी भाव है। एकान्त वन तथा कल कूजन आदि उद्दीपन विभाव हैं। रति' स्थायी पूर्णतया परिपुष्ट है।

जिसे अन्य कोई न जाने 'प्रकाश संयोग शृङ्गार है (१, २१) इसका उदाहरण इस प्रकार दिया गया है।

केशव एक समै हरि राधिका आसेन एक लसे रंगभीने।
आनंद सों तिय आनन की द्युति देखत दर्पण में दृगदीने॥
भाल के लाल में बाल विलोकत ही भरि लालन लोचन लीने।
शासन पीय सवासिन सीय हुतासन में जनु अनुशासन कीने॥
—"१ २०"

नायक नायिका के लिए हरि और राधिका के नाम क्रेम परम्परा विशेष का परिचायक है। उनका एक आसन पर बैठना उनके सान्निध्य का द्योतक है

रसिकप्रिया १, ११।

तथा 'रंग भीने' होना उनके मानसिक साम्य का परिचय देता है। अतएव वे दोनों पूर्णतया पारस्परिक अनुराग के अनुरक्त हैं। 'रंग भीने' में रति स्थायी की स्पष्ट व्यंजना है।

दर्पण में द्युति देखना 'उद्दीपन' विभाव है। आनन्दातिरेक के कारण 'रोमांच' सात्विक अनुभाव होना स्वाभाविक है। परस्पर अवलोकन कायिक अनुभाव है, भ्रूनिक्षेपादि 'हाव' हैं। हर्ष चपलता एवं मोह संचारी भाव हैं। 'रति' स्थायी भाव पूर्णतया पुष्ट होने से 'संयोग श्रृंगार' हुआ।

लोचन ऐंचि लिये इतको मन की गति यद्यपि नेह नहीं है।
आनन आइ गए श्रमसीकर रोम उठे उर कंप गही है॥
तासों काइ कहिए कहि केशव लाज समुद्र में बूड़ि रही है।
चित्रहु हरि मित्रहि देखति यों सकुची जनु बाँह गही है॥
—"४, ११"

यह नायक नायिका के प्रच्छन्न चित्र दर्शन का वर्णन है। इसमें 'स्वेद' 'रोमांच' तथा 'कम्प' सात्विक अनुभावों का सुन्दर वर्णन है।

इसी प्रकार साक्षात् दर्शन का भी वर्णन देख लीजिये :—
कहि केशव श्री वृषभान कुमारि श्रृंगार श्रृंगार सबै सरसै।
सविलास चितै हरि नायक त्यों रतिनायक शायक से बरसै॥
कबहूँ मुख देखति दर्पण लै उपमा मुख की सुखमा परसै।
जनु आनंदकंद सुपूरणचंद दुर्यो रविमंडल में दरसै॥
—"रसिकप्रिया ७, ६"

निम्नलिखित दोहे में राधिका के 'जल विहार' का वर्णन किया गया है।
ग्रीषम मीषम की प्रतिवासर केशव खेलत हैं जमुना जल में।
इत गोप सुता वहि पार गुपाल विराजत गोपन के दल में॥
अति बूड़त हैं गति मीनन की मिलि जाइ उठे अपने थल में।
इहि भाँति मनोरथ पूरि दुवोजन दूरि रहें छवि सों छल में॥
—"रसिकप्रिया १४, ८"

वियोग श्रृंगार वर्णन—सम्भोग श्रृंगार की भाँति केशवदास ने विप्र

सम्य श्रृंगार के भी 'प्रच्छन्न वियोग श्रृंगार' तथा 'प्रकाश वियोग श्रृंगार' करके दो भेद किए हैं। यथा

फीट ज्यों फाटे त्यों पानन कान सों मानहिमें कहि आवत ऊनो।
नाहि चले सुनके चुपके ह्वै गय नीके ही केशव एकहि सूनो।
नेक घटे पर फूटत आँखि सु देखत हैं छवि यो प्रज सूना।
काहे को काहू को काजे परेखो गुजीले रे जीव कि नाक दै चूनो॥
—'रसिकप्रिया ७, २३'

मान करने के समय राधिका (नायिका) ने कृष्ण (नायक) से कुछ चरपरी बात कह दी थी। उसी का पश्चात्ताप है। समस्त गुरुजनादी यमुना इस समय विरह ताप को बढ़ाने वाली बनी हुई हैं। शारीरिक सान्निध्य न होने पर भी मानसिक साम्य है और प्रिय मिलन अभाव होने के कारण वियोग श्रृंगार है। 'वितर्क' 'चिन्ता' 'दीनता तथा 'स्मृति' संचारी भाव हैं।

जिनके सुख को गति देखत ही निसिवासर केशव दीठ घटी।
पुनि प्रेम पदाखन की बतियाँ तजि आनि कछू रसना न रटी॥
जिनके पदपाणि सरोज परोज हिये धरिके पल नैन फटी।
तिनके संग छूटत ही फटुरे हिय तोहिं कहा न दरार फटी॥
—"रसिकप्रिया १, २४'

यहाँ प्रवास हेतुक विप्रलम्भ श्रृंगार है। प्रियतम के साथ सम्भोग समय पुराने सुखों की स्मृति 'नायिका' के हृदय में एक कम्पक सी उत्पन्न कर देती है। स्मृति एवं विषाद संचारी भाव हैं। चारों ओर के पदार्थ दुखद लगने लगे हैं कि वह अब केवल मरना ही चाहती है। इसे हम 'निर्वेद संचारी भाव' कह सकते हैं। इष्ट प्राप्ति के मिलन का विकल्प अब उसके लिए असह्य हो रहा है। अतः औत्सुक्य संचारी भाव भी व्यंजित है। मानसिक साम्य होने पर भी प्रिय मिलन का अभाव होने से 'रति' स्थायी पुष्ट हो कर विप्रलम्भ श्रृंगार हुआ।

विप्रलम्भ श्रृंगार का केशवदास ने विस्तार से वर्णन किया है। लक्षण इस प्रकार से दिया है।

बिछुरत प्रीतम प्रतिमा, होत जुरगतिहि ठौर।
विप्रलम्भ तासों कहैं केशव कवि सिरमौर॥
—"रसिकप्रिया ८, १"

विप्रलम्भ शृंगार के पूर्वानुराग, करुणा मान तथा प्रवास करके चार भेद किए हैं। पूर्वानुराग के प्रच्छन्न और प्रकाश करके दो भेद किए हैं और प्रत्येक के नायक और नायिका दोनों पक्षों से सम्बन्धित उदाहरण लिखे हैं × आगे चल कर ११ वें प्रकाश में करुणा और प्रवास विरह के प्रकाश और प्रच्छन्न दो दो भेद करके लक्षणों सहित उदाहरण लिखे हैं। चतुर्थ प्रकाश में साक्षात, स्वप्न चित्र तथा श्रवण इन चार प्रकार के दर्शनों अथवा 'पूर्वानुराग' के कारणों का लक्षण सहित वर्णन किया है।

नायक और नायिका के एक दूसरे को देखने एवं एक दूसरे से मिलने की आकुलता के विचार से इन्होंने वियोग की दस दशाएँ अभिलाषा, चिंता, गुण कथन, स्मृति, उद्वेग प्रलाप, उन्माद व्याधि, जड़ता तथा मरण लिखी हैं। यथा—

अविलोकन आलापते, मिलिवे को अकुलाहिं।
होत दशा दस बिन मिले, केशव क्यों कहि जाहिं॥
अभिलाष। सुचिंता गुण कथन, स्मृति उद्वेग प्रलाप।
उन्माद व्याधि जड़ता भये होत मरण पुनि आप॥
—"रसिकप्रिया ८, ८ व ९"

प्रत्येक दशा के प्रच्छन्न और प्रकाश करके दो भेद किये हैं और प्रत्येक के नायक और नायिका दोनों पक्षों में लक्षण सहित उदाहरण लिखे हैं। + यथा

नैन बैन मन मिलि रहे, चाहै मिलन शरीर।
कहि केशव अभिलाष यह वर्णत हैं मतिधीर॥
—"रसिकप्रिया ८, १०"

इस लक्षण के अनुसार इन्होंने निम्नलिखित प्रकार से नायिका के प्रकाश अभिलाषा का उदाहरण दिया है। —

है कोउ माइ हितू इनको यह बार कहै किहिं बायु बहै है।
न्यार ही केशव गोकुल की कुलटा कुल नारिन नाउ लहै है॥

× आठवाँ प्रकाश, छंद सं० २ ७।

+ आठवाँ प्रकाश छंद सं० १० ४४।

देखिरी देखि लगाइ टकी इत सोनो सो कालि जु चाहि रहे हैं।
को है री को जैसे जानत नाहिं न कालिह ही वाके सन्देश कहेहैं॥

—"रसिकप्रिया आठवाँ प्रकाश छं० सं० १४"

यहाँ नायिका के हृदय में नायक से मिलने की उत्कट इच्छा का वर्णन है। वियोगावस्था में 'अभिलाषा' दशा स्पष्ट है।

वियोग के समय सुखदायक पदार्थ अनायास दुखदायक हो जाते हैं। इस दशा को 'उद्वेग' कहा है।

दुखदायक ह्वै जात जहं, सुखदायक अनयास।
सो उद्वेग दशा दुसह, जानहु केशव दास॥

—"रसिकप्रिया आठवाँ प्रकाश छन्द सं० ३१"

नायिका के पक्ष में 'प्रकाश उद्वेग' का निम्नलिखित वर्णन किया है।

केशव कालिह विलोकि भजी यह आजु विलोके बिना सो मरै जू।
बासर बीस बिसे बिषे मीझिये राति जु हाइ की ज्योति जरै जू॥
पालिक तैं भुवभूमि तैं पालिक आलि करोरि कलाप करै जू।
भूषन देहि कछू गजभूषण दूषण देहि को हेरि हरै जू॥

—"रसिकप्रिया आठवाँ प्रकाश छ० सं० ३"

विरह जनित व्याकुलता के कारण नायिका को चन्द्र, चाँदनी, गहने, कपड़े कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लग रही है।

निम्नलिखित छन्द में प्रिय के प्रवास विरह का वर्णन किया है।

जिन बोल सुबोल अमोल सबै, अंग केलि कलोलन मोल लिये।
जिनको चित लालची लोचन रूप अनूप पियूष सु पीय जिये॥
पद 'केशव' पानि हिए, मुख मानि सबै दुख दूर किये।
तिन संग छूटत ही फिर रे, फटि कोटिक टूटि भयो न हिये॥

—"रसिकप्रिया ग्यारहवाँ प्रकाश छ० सं० ११"

मिलन समय के सुखों का स्मरण विरह ताप को बढ़ा कर देता है। 'स्मृति' संचारी भाव है। मिलन में विलम्ब होते देख कर विरहिणी अपनी मृत्यु की कामना करती है अतः यहाँ पर 'मरणसुख' संचारी भाव व्यंजित है। मरण अनुभाव है।

राधिका के प्रकाश 'वियोग शृङ्गार' के वर्णन के अन्तर्गत केशवदास ने उद्दीपनकारी पदार्थों को दुःखदायी बताने के बहाने से अनेक विरहोपचारों शीतल समीर करना, चन्दन कपूर के लेप आदि की चर्चा करती है। यथा

शीतल समीर डारि चन्द्र चन्द्रिका निवारि,
केशोदास ऐसे ही तो हरप हिरातु है।
फूलन फैलाइ डार फारि डारि घनसार चंदन को,
डारे चित्त चौगुनो पिरातु है॥
नीर हीन मीन मुरझाइ जीवे,
नीर होते छीरके छिरीके कहा धीरज धिरातु है।
पाई है तैं पीर के धौंयों ही उपचार करे,
आगि को तो डाढो अग आग ही सिरातु है॥

—"रसिकप्रिया प्रथम प्रकाश छं० सं० २५"

'नीर हीन मुरझावै' कह कर विरहिणी की अस्थिरहीनता बताई है। इसे 'वैवर्ण्य' सात्विक अनुभाव कहेंगे। व्याधि' 'विषाद' 'औत्सुक्य' संचारी भाव व्यंजित हैं। उपयुक्त उदाहरण वाली परम्परा के अतिरिक्त केशवदास ने 'राम चन्द्रिका में वियोग दशा के सुन्दर वर्णन किये हैं। + इसमें विरह-व्यथा की मार्मिक व्यंजना हुई है। यथा—

हिमांशु सूर सी लगै सो बात वज्र सी वहै।
दिशा लगैं कृसानु ज्या विलेप अ ग को दहै।
विसेस कालराति सो कराल राति मानिये,
वियोग सीय को न काल लोकहार जानिये॥

—"रामचन्द्रिका बारहवां प्रकाश छ० सं० ४८"

उपर्युक्त पद में राम की वियोग दशा का वर्णन है। इसमें (अ) राम की वियोग व्यथा व्यंजित है। (ब) वियोग के दिनों में समस्त संसार काटने को दौड़ता है। प्रम पात्र के बिना सब कुछ बुरा लगता है तथा (स) लेपमादि विरहोपचारों की ओर संकेत है।

+ रामचन्द्रिका तेरहवां प्रकाश छन्द सं० ८७, ८८, ९० तथा चौदहवां प्रकाश छन्द सं० २१।

निम्नलिखित छन्द में हनुमानजी के मुख से श्रीराम के सम्मुख सीता की विरहदशा गर्व उत्पन्न व्यथा का वर्णन कराया है।

प्रति अगन के सगही दिन नासै,
निशि मों मिली शाढति दीह उसासैं।
निशि ने कछु नींद न आवति जानौं,
रवि की छवि क्यों अथरात बखानौ॥

उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव आदि का वर्णन—केशवदास ने भाव का लक्षण इस प्रकार लिखा है "आनन नय, तथा वचन से जो मन की बात प्रकट करे, भाव है यथा—

आनन लोचन वचन गग, प्रकटत मन की बात।
ताही सों सब कहत हैं, भाव कविन के तात॥
—"रसिकप्रिया छठवाँ प्रकाश छं० सं० १"

केशवदास ने आठ स्थायी भाव लिखकर केवल आठ रस माने हैं। शान्त रस नहीं माना है। वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा की पर्याय निन्दा बताया है।

रति हासो अरु शोक पुनि, क्रोध उछाह सुजान।
भय निन्दा विस्मय सदा, स्थाइ भाव प्रमान॥
—"रसिकप्रिया छठवाँ प्रकाश छं० सं० १०"

भाव के पाँच भेद किए हैं। ऽ स्थायी भाव, अनुभाव, विभाव संचारी भाव तथा सात्विक भाव।

भाव सु पांच प्रकार को, सुनु विभाव अनुभाव।
थायाइ सात्त्विक कहि व्यभिचारी कविराव॥
—"रसिकप्रिया छठवाँ प्रकाश छं० सं० ३"

ऽ भरतमुनि के विभावानुभाव व्यभिचारी संयोग द्रसनिष्पत्ति" वाले सूत्र में केवल चार अवयव ही दृष्टगत हैं सात्विक भाव को केशवदास ने अपनी ओर से जोड़ा है।

विभाव के दो भेद किए हैं। आलम्बन और उद्दीपन।

— 'रसिकप्रिया छठवाँ प्रकाश छं० स० ३, ४, ५।"

"आलम्बन स्थान" वर्णन में इन्होंने निम्नलिखित पद्य लिखा है।

दंपति जोबनरूप जाति लक्षणयुत सखिजन।
कोकिलकलितवसंतफूलि फलदलिअलिउपवन॥
जलयुत जलचरअमलकमलकमलाकमलाकर।
चातकमोरसुशब्दतडितघनअम्बुद अम्बर॥
शुभसेजदीपसौगन्धगृहपानखानपरधानिमनि।
नव नृत्य भेद वीणादि सब आलंबन केशव वरनि॥

— 'रसिक प्रिया छठवां प्रकाश छं० सं० ६"

उद्दीपन विभाव का इसी प्रकार वर्णन किया है।

अविलोकन आलापपरि रंभननखरदवान।
चुम्बनादि उद्दीपए, मर्दन परस प्रवान॥

—"रसिकप्रिया छठवां प्रकाश छं० स० ७"

आलम्बन विभाव के अन्तर्गत प्राय सभी आचार्यों ने नायक नायिका को ही लिया है और यही ठीक है। सखिजन कोकिल, वसन्त चातक मोर, सौगन्ध, नृत्य, वीणा आदि को देख कर काम विकार का दीपन होता है, अत ये सब उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ही आते हैं। जिसके प्रति 'रति" भाव उत्पन्न हो, वह 'आलम्बन' विभाव है। केशवदास ने स्वयं लिखा है।

जिन्हें अतन अवलंबई, ते आलम्बन जान।
जिनते दीपन होत है, ते उद्दीप बखान॥

—"रसिकप्रिया छठवां प्रकाश छं० स० ४"

उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत इन्होंने दम्पति की कामुक चेष्टाओं को लिया है, जो प्राय कायिक अनुभाव हैं। अनुभावों के आचार्यों ने तीन भेद किए हैं। सात्विक अनुभाव, मानसिक अनुभाव और कायिक अनुभाव, कायिक अनुभाव भी किसी हद तक "उद्दीपन" का कार्य करते हैं, परन्तु चूँकि "रस सिद्धान्त" की आधार शिला मानसिक संस्थान है, अत इन शारीरिक चेष्टाओं को

विभाव के अन्तर्गत न रखकर कायिक अनुभाव कहना ही अधिक युक्तियुक्त है। केशवदास ने स्वयं लिखा है "जिनते दीपति होत हैं ते उद्दीप बखान" (रसिकप्रिया ६ ५) जब तक रतिभाव पूर्णरूपेण दीप्त न हो जायेगा, तब तक दम्पति परिरम्भन, नखक्षत आदिक चेष्टायें करेंगे ही नहीं।

सात्विक अनुभावों की तरह केशवदास ने सात्विक भाव आठ ही माने हैं। स्तंभ, कम्प, स्वेद रोमांच, स्वरभंग, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलाप (रसिकप्रिया ६, १०)।

व्यभिचारी भाव ३३ माने हैं। "अमर्ष" की जगह "क्रोध" तथा "असूया" की जगह "निन्दा" शब्दों का प्रयोग किया है। (रसिकप्रिया ६, १२, १४)

हाव वर्णन—राधा कृष्ण के श्रृङ्गार की चेष्टाओं को "हाव" × कहा है। लक्षण उदाहरण सहित (नायक नायिका दोनों पक्षों में) इनके तेरह भेद लिखे हैं * हेला, लीला, ललित, मद विभ्रम, विहित विलास। किलकिंचित, विब्बोक, विच्छित्त, मोट्टायित, कुट्टमित तथा बोध।

नमूने के लिए केशवदास के द्वारा लिखे गए हावों के लक्षणों और उदाहरणों में से एक उदाहरण (किलकिंचित हाव का लक्षण उदाहरण) नीचे उद्धृत किया जाता है।

> श्रमअभिलाष सगर्वस्मित, क्रोध हरष भय भाव।
> उपजत एकहि बार जहं, तहं किलकिंचित हाव॥
> कीने रसै विहंसे लखि कौनहि कापर कोपि कै भौंह चढ़ावै।
> भूलति लाज भट्ट कबहूँ कबहूँ मुख आंचल मेलि दुरावै॥
> कौनकि लाल बलाय बलाय त्यों तेरि दशा यह मोहि न भावै।
> ऐसि तौ तू कबहूँ न भई अब तोहि दई जनि याइ लगावै॥
> रसिकप्रिया छठवां प्रकाश छं० सं० ३६, ४०"

× प्रेम राधिका कृष्ण को, है ताते शृंगार।
ताके भाव प्रभाव ते, उपजत हाव विचार॥
— 'रसिकप्रिया छठवां प्रकाश छं० सं० १५'

* देखें रसिकप्रिया ६ वाँ प्रकाश छन्द संख्या १६, से २०।

केशवदास ने सात्विक अनुभावों तथा व्यभिचारी भावों का परिगणन मात्र किया है। उनके उदाहरण नहीं लिखे हैं।

कायिक अनुभावों को केशवदास ने दम्पति की चेष्टा कहा है ३ चेष्टा का लक्षण इन्होंने इस प्रकार लिखा है।

पिय सों प्रकटन प्रीति कहुँ जितने करत उपाय।
ते सब केशवदास अब, वरणत सघन सुनाय॥
—"रसिकप्रिया पाँचवाँ प्रकाश छं० सं० ४" ×

इन चेष्टाओं के प्रकाश और प्रच्छन्न करके दो भाग किए हैं और प्रत्येक का नायक और नायिका (राधाजी, प्रिया जू) दोनों पक्षों में वर्णन किया है। उदाहरणार्थ :—

भूलक हँसि हँसि उठे, कहै सखी सों बात।
ऐसे मिस ही मिस प्रिया, पियहि दिखावे गात॥
—' रसिक प्रिया पाँचवां प्रकाश छन्द स० ७"

निम्नलिखित छन्द में नायिका की प्रच्छन्न चेष्टा का वर्णन है।

छोर छोर बांधे पाग आरस सों आरसी ले,
अनतही आनभाँति देखत अनैसे हो।
तोरि तोरि डारत तिनूका कहो कौन पर,
कौनके परत पांय बावरे क्यों ऐसे हो॥
कबहुँ चुटक देतचटकी खुजावो कान,
मटकीयों डाउजुरी क्यों जम्हात जैसे हो।
बार बार कौन पर देत मणिमालामोहिं,
गावत कछूक कछू आज काहू कैसे हो॥
—"रसिकप्रिया पाचवाँ प्रकाश छं० स० ११"

यहाँ पर "स्वर भंग" तथा "जृम्भा" सात्विक अनुभाव व्यंजित हैं। "ललित" हाव स्पष्ट है।

---

३ रसिकप्रिया पाँचवाँ प्रकाश।

× रसिकप्रिया पाँचवाँ प्रकाश २ १२।

इन चेष्टाओं के बाद स्वयं दूतत्व, प्रथम मिलन स्थान, सखी के घर का मिलन, सहेली के घर का मिलन, धाय के घर का मिलन, सूने घर का मिलन, निशिचारि का मिलन, भतिभय का मिलन उत्सव का मिलन, व्याधिमिस का मिलन, न्योते के मिस मिलन, वन विहार के मिस मिलन तथा जल विहार का मिलन का वर्णन × लिखे हैं। इन वर्णनों पर "कामशास्त्र" की छाप स्पष्ट है। उन दिनों समाज की क्या दशा हो चली थी, इन वर्णनों द्वारा इस ओर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

केशवदास ने संचारीभाव तथा सात्त्विक अनुभावों के स्वतन्त्र उदाहरण देकर अलग ही चर्चा नहीं की है, पर जैसा हम उद्धृत किए गए उदाहरणों में बता चुके हैं इनके ग्रन्थों का अनुभाव संचारी भाव आदिक यथावत यथास्थान सफलतापूर्वक व्यंजित हैं। + यथा—

आवत बिलोकि रघुवीर लघुवीर तजि,
व्योमगति भूतल बिमान तब आइयो।
राम पद पद्म सुख सद्म कहँ बंधु युग,
दौरि, तब षट्पद समान सुख पाइयो॥
चूमि मुख सूँघि सिर अंक रघुनाथ धरि,
अश्रु जल लोचननि पेखि उर लाइयो।
देव मुनि वृद्ध परसिद्ध सब सिद्धजन,
हर्षि तन पुष्प बरषानि बरषाइयो॥

—"रामचन्द्रिका २१ वाँ प्रकाश, छं० सं० ३०"

उद्दीपन विभाव का वर्णन—उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ऋतु-वर्णन तथा नखशिख-निरूपण आते हैं। केशवदास ने शास्त्रीय ढंग पर अर्थात् "रसिकप्रिया" के छठवें प्रकाश में आलम्बन स्थान वर्णन के अन्तर्गत उद्दीपन सामग्रियों का परिगणन करके विषय को समाप्त कर दिया है। रसिकप्रिया में इन्होंने दंपति

× रसिकप्रिया ५ वाँ प्रकाश छन्द संख्या १६, ४० ।

+ रामचन्द्रिका इक्कीसवाँ प्रकाश छन्द संख्या १२ बाइसवाँ प्रकाश छन्द संख्या ?१ ।

की चेष्टाओं (९ वाँ प्रकाश) मान (९ वाँ प्रकाश) मान मोचन (१० वाँ प्रकाश) सखी (१२ वाँ प्रकाश) तथा सखीजन कर्म (१३ वाँ प्रकाश) के वर्णन किये हैं। हमारे विचार से ये सब वर्णन उद्दीपन विभाव के ही अन्तर्गत आते हैं। वैसे उद्दीपन सामग्री और शृङ्गार वर्णन की यथास्थान चर्चा करके शृङ्गार रस के पक्ष को सर्वथा अछूता नहीं छोड़ा है।

यथा—

कोकिल केकी कुलाहल हूल उठी उरमें मतिकी गति लूली।
केशव शीतसुगंध समीर गयो उढि धीरज ज्योंतन तूली॥
जे मुनि जै मुनि केचवि जो हमी यामिनी पैन भजों सुधि भूली।
क्योंजिये कैसी करे बिरसी बहुरयों बिनसी बिसबासिन फूली॥
—"रसिक प्रिया ग्यारहवाँ प्रकाश छं० सं० १०"

नायक के प्रकाश गुण कथन के अन्तर्गत नखशिख का वर्णन किया है, जो सर्वथा मौलिक है।

खंजन हैं मनरंजन केशव रंजननैन किधौ मतिजीकी।
मीठी सुधारस की सुधाकी घु तिदंतनकी किधौ दाडिमहीकी॥
चन्द्रभलो मुखचन्द्रसखी लखि सूरति कामकी काहू की नीकी।
कोमलपंकजके पदपंकज प्राणपियारेकी मूरति पीकी॥
—"रसिक प्रिया आठवाँ प्रकाश छं० सं० २१"

(रसिकप्रिया) के १३ वें प्रकाश में "सखीजन कर्म" के अन्तर्गत कृष्ण और राधिका के शृगार का बयान किया गया है। यथा—

दीनो मैं पाइ झंवाइ महावर आंजी मैं आंजन आँख सुहाइ।
भूषणभूषित कीने मैं केशवमाल मनोहरहू पहिराई॥
दर्पण लै अब दीपत देखि सखी सब अंग शृ गार सिधाई।
पंक बिलोकन आक लै पान खवावै को काहू कुमार की नाई॥
—"रसिकप्रिया तेरहवाँ प्रकाश छं० स० १३"

पाग बनी अरु बागो बन्यो पहु आप हुकाफटिराजत नीको।
सोंधो बन्यो अतिचार चढावत हार बन्यो उरभावत जीको॥

बीरी बन्यो मुख सात मनोहर मोहिं शृंगार लग्यौ सब फीको।
भाग भली विधि औलों गुपाल कियो बहु बाल बनाइ नटी को॥
—"रसिकप्रिया १३ वाँ प्रकाश छं० सं० १८"

नायिका भेद के अन्तर्गत केशवदास ने अंग प्रत्यंग तथा सर्वांग दोनों ही से सम्बद्ध सुन्दर छन्द लिखे हैं। ×

यथा—

चंदके सौभागमाल भृकुटि कमान ऐसी
मैन कैसे पैने शर नैनन बिलास है।
नासिकासरोजगंधवाह से सुगंधवाह,
दारयों सदेशन कैसो बीजुरी सो हास है॥
भाइ ऐसी ग्रीवाभुज पानसों उदर अरु,
पंकज सों पाँइ गतिहंस ऐसी बासु है।
देखी है गुपाल एक गोपिकाम देवतासी,
सोनो सो शरीर सब सोंधे कैसीबासु है॥
—"रसिकप्रिया तृतीय प्रकाश छं० सं० २४"

यह नायिका का सर्वांग वर्णन है। समस्त अंगों का उपमानों सहित निरूपण किया गया है। केशवदास ने नायिका "वर्णन" के साथ-साथ नायिकाओं के सोलह शृंगार भी लिखे हैं।

प्रथम सकल शुचि मज्जन अमलबास,
जावक सुदेशकेशपाशको सम्हारिबो।
अंगराग भूषणविविध मुखबास,
रागकज्जलकलित लोललोचन निहारिबो॥
बोलनि हंसनि मृदु चलनि चितौनि,
चारुपलपलप्रति पतिव्रतपरिपारिबो।
केशोदास सा विलास करहु कुवरि राधे,
इहि विधि सोरह शृंगारनि शृंगारिबो॥
—"रसिकप्रिया तृतीय प्रकाश छं० सं० ४४"

× रसिकप्रिया प्रकाश तृतीय तथा सातवाँ।

"रामचन्द्रिका" में उद्दीपन रूप में केशवदास ने ऋतु × और नखशिख = दोनों के वर्णन लिखे हैं। यथा—

मित्र देखिये सोभत हैं यों रामसाज बिनु सीतहिं हौं क्यों।
पतिनी पति बिनु दीन अति, पति पतिनी बिनु मंद।
चन्द्र बिना ज्यों जामिनी, ज्यों बिनु जामिन चंद।

—"१३ वाँ प्रकाश छ० सं० ६, १०"

आगे २३ वें छन्द में पहिले शरद ऋतु को सुजाति सुन्दर कह कर छन्द २४ तथा २५ में उसका रूपक कहा है। वसन्त वर्णन में स्पष्ट ही कहा है कि "ये कमल खिले हैं, या है रघुराय जी लोगों के मन रूपी मीनों को पकड़ने के लिये "कामदेव" ने बहुत हाथ फैलाये हैं। (रामचन्द्रिका ३०, ३१)।

विरह-व्यथा के कारण सीता जी की बुद्धि का विपर्यय हो जाता है और अशोक वृक्ष के नवीन पल्लव उन्हें अङ्गार सदृश जान पड़ते हैं।

देखि देखि कै अशोक राजपुत्रिका कह्यौ।
देहि मोहिं आगि तैं जु अंग आगि ह्वै रह्यौ॥

—"रामचन्द्रिका १३ वाँ प्रकाश छ० सं० ६५"

नखशिख-वर्णन के अन्तर्गत निम्नलिखित छन्द में नेत्रों का वर्णन किया गया है। यथा—

लोचन मनहु मनोभव यत्रहिं, भ्रूयुग ऊपर मनोहर मंत्रहिं।
सुन्दर सुखद सुअंजन अंजित बाण मदन विष सों जनु रंजित॥

—"रामचन्द्रिका ३१ वाँ प्रकाश छं० सं० ४५"

× रामचन्द्रिका १३, ६, २२, (वर्षा-वर्णन) १३, २३, २० (शरद-वर्णन) ३० ३२, ४० (वसन्त-वर्णन) ३० ४१, ४१ (चन्द्र-वर्णन) १२, ६१ (सीता जी की चाँदनी) १३, ६६, ६६।

= रामचन्द्रिका ६, ४६, २८ (राम-नख-शिख-वर्णन) ६, ६२, ६६ (सीता का नखशिख-वर्णन (६, ४० ४२) सीता-मुख-वर्णन ११, ३० ३० सुन्दरता का प्रभाव तथा ३१, ४ ४१ (नखशिख-वर्णन)

केशवदास की वर्णन-शैली सर्वथा मौलिक और मर्मस्पर्शिनी है। सीता के मुख की शोभा का वर्णन उन्होंने अतीव अनूठे ढंग पर किया है।

एकै कहैं अमल कमल मुख सीता जू को,
एकै कहैं चन्द्र सम आनन्द को कंद री।
होय जो कमल तो रयनि में न सकुचै री,
चन्द जो तो बासर न होती दुति मंद री॥
बासर ही कमल रजनि ही में चन्द्र मुख,
बासर हू रजनि बिराजै जगचंद री।
देखे मुख भावै अनदेखई कमल चन्द्र,
ताते मुख मुखै सखी कमलै न चन्द री॥

—"रामचन्द्रिका नवाँ प्रकाश छं० सं० ४०"

बात बिल्कुल सच्ची और स्वाभाविक है। स्त्री का मुख सामने होने पर चन्द्र आदि की ओर किसका ध्यान जायगा? ये सब वस्तुएँ तो तभी अच्छी लगती हैं जब तक सुन्दरी का सुन्दर मुखड़ा आँखों के सामने न आये। कतिपय आलोचक गण ने इस छन्द के कारण केशवदास की सहृदयता पर सन्देह किया है। उनके विचार से केशवदास को कमल और चन्द्रमा में कोई सुन्दरता ही नहीं दिखाई देती थी। हमारे विचार से यह आक्षेप निराधार है। "देखे मुख भावै अनदेखई कमल, चन्द्र' कह कर उन्होंने स्थिति स्पष्ट कर दी है। मुख सामने होने पर तो फिर मुख की ओर ही देखते बनता है। चन्द्र, कमल आदि की ओर किसी अणु तक का ध्यान भले ही जाय।

नायिका भेद-वर्णन—केशवदास ने निम्न प्रकार से भेद करके नायिकाओं के लक्षण और उदाहरण लिखे हैं।

१—जाति अनुसार ४ भेद ऽ पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी।

२—नायक के सम्बन्ध से नायिका के ३ भेद। ×
स्वकीया, परकीया और सामान्या।

ऽ रसिकप्रिया ३, १।

× रसिकप्रिया ३, १२।

३—स्वकीया के ३ भेद। [] मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा।

अ—इनमें प्रत्येक के चार चार भेद किए हैं। ()

ब—मुग्धा के ४ भेद।)(नववधू, नवयौवना भूषिता, नवल अनंगा और लज्जाप्रायरति।

स—मध्या के ४ भेद। ऽ आरूढ़यौवना, प्रगल्भवचना, प्रादुर्भूतमनोभवा और सुरतिविचित्रा।

द—प्रौढ़ा के ४ भेद। ❀ समस्त रस कोविदा विचित्रविभ्रमा, अक्रमति और लब्धापति।

ध—मध्या के ३ भेद। ‡ धीरा, अधीरा और धीराधीरा।

न—प्रौढ़ा के ३ भेद। ✽ धीरा, धीराधाकृति गुप्ता और अधीरा।

४—परकीया के २ भेद। = अनूढ़ा और ऊढ़ा।

केशवदास के मत में जितनी भी नायिकाएँ हैं, वे सब आठ प्रकार की होती हैं। प्रत्येक नायिका हर समय इन आठ अवस्थाओं में से किसी एक में रहती है। केशवदास ने अवस्थानुसार इन अष्ट नायिकाओं का लक्षण उदाहरण सहित वर्णन किया है। % स्वाधीनपतिका, उत्का वासकशय्या अभिसंधिता, खंडिता, प्रोषित पतिका, विप्रलब्धा और अभिसारिका।

विशेष—१—प्रच्छन्न और प्रकाश करके केशवदास ने उपर्युक्त आठ भेदों में प्रत्येक के दो-दो उपभेद किए हैं।

२—सामान्या के अभिसार का वर्णन किया है। +

३—प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका तथा कामाभिसारिका प्रत्येक के प्रच्छन्न और प्रकाश दो-दो उपभेदों सहित वर्णन किये हैं। +

[] रसिकप्रिया ३, १६।

() रसिकप्रिया ३, १९।

)(रसिकप्रिया ३, १७, २४।

ऽ रसिकप्रिया ३, ३२, ४०।

❀ रसिकप्रिया ३, ४१, ४४।

‡ रसिकप्रिया ३, ४६, ५०।

✽ रसिकप्रिया ३ ६०, ६६।

= रसिकप्रिया ३, ६७, ७३।

% रसिकप्रिया ७, १, २८।

+ रसिकप्रिया ७ २८, ३३।

+ रसिकप्रिया ७, ३१, ३०।

२—अन्त में स्त्रियों के तीन भेद किए हैं। उत्तमा, मध्यमा और अधमा×
केशव ने अपनी नायिकाओं की कुल संख्या ३६० बताई है।

केशवदास सुतीन विधि, बरणी सुकिया नारि।
परकीया द्वै भाँति पुनि, आठ आठ अनुहारि॥
उत्तम मध्यम अधम अरु, तीन तीन विधि जानि।
प्रकट तीन सौ साठ त्रिय, केशवदास बखानि॥

—"रसिकप्रिया ७ वाँ प्रकाश छं० सं० १७, ३८"

नायिका-भेद-वर्णन के अन्तर्गत केशवदास ने निम्नलिखित विशेष बातों का उल्लेख किया है—

१—मुग्धा की शयन का वर्णन। ३, २६, २७।

२—मुग्धा की सुरति का वर्णन। ३, २८, २९।

३—मुग्धा का मान-वर्णन। ३, ३०, ३१।

४—सुरतान्त वर्णन। ३, ४२।

५—सात बाह्यरति।

आलिंगन चुम्बन परस, मर्दन नख रद दान।
अधर पान सो जानिये, बाह्य रति सात सुजान॥

—"रसिकप्रिया ३ रा प्रकाश छं० सं० ४१"

६— सात अन्तरति।

थिति तिर्यक सनमुख विमुख अध ऊरध उत्तान।
सात अन्तरित समझिए, केशो सकल सुजान॥

—"रसिकप्रिया ३ रा प्रकाश छं० सं० ४२"

य स्थिति इत्यादिक सात आसन हैं।

७—षोडश शृङ्गार-वर्णन। ३, ४३, ४४।

८—अगम्य स्त्रियों का उल्लेख। ७, ३९ व ४०।

९—पद्मिनी चित्रिणी आदि चार प्रकार की स्त्रियों का वर्णन।

१०—धाय, जनी पड़ोसिन, नाइन, नटी, मालिन बरइन शिल्पिनि, चुरिहेरि सुनारिन, रामजनि, पटइनि आदिक सखी अथवा दूतियों के वर्णन।

(बारहवाँ प्रकाश)

× रसिकप्रिया ७, १८, २४।

११—मान-मोचन के उपायों साम, दाम, भेद प्रणति तथा उपेक्षा का वर्णन। १०, १ २२।

उपर्युक्त सख्या २–१० से स्पष्ट है कि केशवदास का कामशास्त्र का अच्छा ज्ञान था और नायिका-भेद-वर्णन में इन्होंने उसका आवश्यकतानुसार यथा स्थान उपयोग किया है।

नाट्य-शास्त्र के अनुसार अथवा नाटक के विचार से केशवदास ने नायक के लक्षण और उसके अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ठ, इन भेदों का लक्षण एव उदाहरण सहित वर्णन किया है ×, आगे तृतीय प्रकाश में उसी के सम्बन्ध के अनुसार नायिका के स्वकीया, परकीया और सामान्या ये तीन भेद किये हैं।

ता नायक की नायिका, म धनि तीनि बखान।
सुकिया परकीया अवर, सामान्या सुप्रमान॥
—"रसिकप्रिया ३ रा प्रकाश छं० सं० १४"

केशवदास के शृ गार रस-वर्णन की निम्नलिखित विशेषताएँ हमारे सामने आती हैं।

१—केशवदास ने यथाशक्ति सयम और मर्यादा का ध्यान रखा है। राम सीता के प्रसंग में उसका पूर्ण निर्वाह भी किया है।

२—समय की गति एव तत्कालीन परम्पराओं के कारण राधा-कृष्ण विष यक शृङ्गार-वर्णन में मर्यादा का अतिक्रमण हो गया है। केशवदास ने इसे अपनी ढिठई कह कर क्षमा याचना की है।

राधा राधारमण के, कहे यथाविधि हाव।
ढिठई केशवदास की, छमियो कवि कविराव॥
—"रसिकप्रिया ६ वॉ प्रकाश छं० स० ५७"

३—माध्व चैतन्य-सम्प्रदाय की उपासना पद्धति के अनुसार इन्होंने परकीया के प्रेम को श्रेष्ठ माना है।

सबतें पर परसिद्ध जो, ताकी प्रिया जु होइ।
परकीया तासों कहैं, परम पुराने लोइ॥
— "रसिकप्रिया ३ प्रकाश छं० सं० ६७"

× रसिक प्रिया दूसरा प्रकाश छन्द सं० १ १८।

४—केशवदास ने परकीया के गुप्ता, विदग्धा आदि भेद नहीं किए हैं। केवल ऊढ़ा और अनूढ़ा ये दो भेद लिख कर प्रसंग को समाप्त कर दिया है।

"तृतीय प्रकाश, रसिक प्रिया"

५—तत्कालीन शृङ्गारिक एवं कवि परम्पराओं के अनुरूप केशवदास ने भी नायक और नायिका के लिए कृष्ण और राधिका तथा प्रियतम् शब्दों का प्रयोग किया है, परन्तु इन्होंने कृष्ण और राधिका का उपनायक और उनकी नायिका बताया है + और ग्रन्थ के प्रारम्भ में यह भी कहा है कि ब्रजराज सो नव-रस में हैं। जिसकी जिसमें प्रीति हो उसी रस में कृष्णोपम का सेवन करे। ×

६—केशवदास ने सामान्य नायक के लक्षण तो लिखे हैं, परन्तु नायिका के सामान्य लक्षण नहीं दिये हैं। +

७—शृङ्गार-वर्णन में प्रकाश और प्रच्छन्न इन दो उपभेदों का उल्लेख केशवदास की अपनी सूझ अथवा मौलिक उद्भावना है।

८—केशवदास का शृङ्गार-रस निरूपण काव्य-शास्त्र तथा काम-शास्त्र से बहुत कुछ प्रभावित है।

९—पाण्डित्य प्रदर्शन तथा आचार्यत्व के मोह के कारण, केशवदास द्वारा किए गये शृङ्गार-रस वर्णन में कहीं-कहीं अस्वाभाविकता आगई है।

जैसे—(क) नायक पक्ष में हाव-वर्णन (रसिकप्रिया छठवाँ प्रकाश)।

(ख) नायक का मान तथा मान-मोचन। (रसिकप्रिया ९ वाँ प्रकाश)

समस्त जीवन राज-दरबारों के विलासमय वातावरण में व्यतीत करने के पश्चात् केशवदास इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि संसार के भोग-विलास, जीवन के छल-चार तथा आश्रय-दाताओं की कृपा आदि अस्थाई हैं और ये अन्त में दुःख देने वाले ही सिद्ध होते हैं। यथा—

+ रसिकप्रिया तृतीय प्रकाश छन्द सं० ७४।

× रसिकप्रिया, प्रथम प्रकाश छंद सं० १।

+ रसिकप्रिया दूसरा प्रकाश छंद सं० १, २।
रामचन्द्रिका ११, २१ तथा सम्पूर्ण २७ वाँ प्रकाश।

धूम से नील निचोलनि सोहै,
जाय छुई न विलोकत मोहै।

× × × ×

पावक पाप शिखा बड़ वारी।
जारति है नर को परनारी॥

× × × ×

जहाँ भामिनी, भोग तहँ, बिन भामिन कहँ भोग।
भामिन छूटे जग छुटै, जग छूटे सुख योग॥
—"रामचन्द्रिका २२ वाँ प्रकाश छं० सं० ६, १४"

मतिराम

परम्परा से मतिराम चिन्तामणि तथा भूषण के भाई ठहरते हैं। यह तिकवाँपुर (जिला कानपुर) के रहने वाले कश्यपगोत्री ब्राह्मण थे।

सम्भवतः मतिराम का जन्म संवत् १६६० के लगभग हुआ था और स्वर्गवास संवत् १७५० के लगभग हुआ। ॐ

मतिराम बूँदी के महाराव भावसिंह के यहाँ बहुत दिनों तक रहे थे। महाराव भावसिंह का राज्यकाल संवत् १७१५ से संवत् १७३८ तक ठहरता है। मतिराम के प्रसिद्ध अलंकार ग्रन्थ 'ललित-ललाम' की रचना सम्भवतः संवत् १७१६ में हुई थी।×

मतिराम द्वारा विरचित ग्रन्थों के सम्बन्ध में मतिराम ग्रन्थावली (संवत् १६८३ का संस्करण) की भूमिका में कृष्ण बिहारी मिश्र ने इस प्रकार लिखा है।

ॐ पृष्ठ-संख्या २४० भूमिका मतिराम ग्रन्थावली, सम्पादक कृष्ण बिहारी मिश्र संवत् १६८३ वाला संस्करण।

× सब बातों पर ध्यान देने के पश्चात् हमारी राय है कि ललित ललाम संवत् १७१६ में बना (भूमिका पृष्ठ सं० २४२ वही मतिराम ग्रन्थावली, संस्करण सं० १६८३)

१—फूल मंजरी—इस ग्रन्थ में ६० दोहे हैं। यह पुस्तक कवि की प्रथम रचना है। फूल मंजरी के अन्तिम दोहे से यह बात स्पष्ट है कि दिल्लीश्वर जहाँगीर की आज्ञा से आगरा नगर में मतिराम ने इस पुस्तक को बनाया था। उस समय कवि की अवस्था १८ वर्ष के लगभग थी। पृष्ठ-संख्या २२०, २१।

२—रसराज—इस ग्रन्थ में शृङ्गार रसांतर्गत नायिका-भेद का वर्णन है। यह किसी राजा के आश्रय में नहीं बनाया गया है। कवि की अवस्था उस समय ३० या ३५ वर्ष की होगी। (पृष्ठ सं० २२०)।

३—छंदसार पिंगल—इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में मिश्रजी कोई निश्चित मत नहीं दे सके हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे महाराज शंभुनाथ सोलंकी को समर्पित बताया है।

४—ललित ललाम—यह अलंकारशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ है। बूँदी के महाराज भावसिंह जी के लिए इस ग्रन्थ की रचना हुई थी। हमारा विचार है कि यह पुस्तक संवत् १७१८ और १७४५ के बीच में बनी थी। (पृष्ठ-सं० २२३)।

५—मतिराम-सतसई—यह पुस्तक किन्हीं भोगनाथ नाम के गुणी राजा के लिए मतिरामजी ने बनाई थी। सम्भवतः यह ग्रन्थ संवत् १७२५ और १७४५ के बीच बना है। (पृष्ठ-सं० २२३)

६—अलंकार पंचाशिका—यह ग्रन्थ संवत् १७४७ में कुमायूं के राजा उद्योतचन्द के पुत्र ज्ञानचन्द के लिए मतिराम जी ने बनाया था। (पृष्ठ-सं० २२४)।

इनके अतिरिक्त इनके लिखे हुए साहित्यसार और लक्षण शृङ्गार नाम के और दो छोटे छोटे ग्रन्थ मिलते हैं। इनकी पृष्ठ-सं० क्रमशः १० और १७ है

---

१ पृष्ठ संख्या ३०४, हिन्दी साहित्य का इतिहास, संवत् १९९७ संस्करण।

तथा उनके रचना-काल क्रमशः संवत् १७४० तथा संवत् १७४५ के आस पास ठहरते हैं।

मतिराम रीतिकाल के मुख्य कवियों में हैं। यथा—

> 'अगर छोटे मुँह बड़ी बात न मानी जाय,
> तो मतिराम कालिदास के पीछे नहीं हैं।'
> —"मतिराम ग्रन्थावली, भूमिका पृष्ठ-सं० १५८"

मतिराम की रचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसकी सरसता अत्यन्त ही स्वाभाविक है, न तो उसमें भावों की कृत्रिमता है और न भाषा की।

सारांश यह है कि मतिराम की सी रस स्निग्ध और प्रसादपूर्ण भाषा रीति का अनुसरण करने वालों में कम मिलती है।

भारतीय जीवन से छाँट कर लिए हुए इनके मर्मस्पर्शी चित्रों में जो भाव भरे हैं वे समान रूप से सबकी अनुभूति के अंग हैं।

(हिन्दी साहित्य का इतिहास संवत् १९९७ वाला संस्करण पृष्ठ सं० २०५, २०६।)

तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव—मतिराम का लगभग सम्पूर्ण जीवन राजाश्रय एवं राज-दरबारों में व्यतीत हुआ था। इसी वातावरण के अनुरूप इन्होंने काव्य-रचना भी की। आचार्य शुक्ल के शब्दों में "ये यदि समय की प्रथा के अनुसार रीति की बंधी लीकों पर चलने के लिए विवश न होते, अपनी स्वाभाविक प्रेरणा के अनुसार चलने पाते, तो और भी स्वाभाविक और सच्ची भाव-विभूति दिखाते, इसमें कोई सन्देह नहीं। (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ-सं० २०५)

देखें वही मतिराम ग्रन्थावली भूमिका पृष्ठ संख्या २२४। इनसे समस्त उदाहरण इत्यादि इसी पुस्तक (सुकवि माधुरी माला द्वितीय पुष्प) से दिए हैं। यह एक संग्रह ग्रन्थ है। स्वतंत्र दोहों के अतिरिक्त इसमें 'ललित ललाम' और 'रस-राज के दोहे संगृहीत हैं।

'रसराज' को छोड़कर मतिराम के अन्य समस्त ग्रन्थ किसी न किसी आश्रयदाता के लिए लिखे गए हैं। अतः नियमानुसार इन ग्रन्थों में इन्होंने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा अथवा खुशामद की है +यथा—

१—हुकुम पाय जहाँगीर को, नगर आगरे धाम।
फूलन की माला करी, मति सों कवि मतिराम॥
—'फूल मंजरी दोहा सं० ६०"

२—तिनके राज कुमार वर, ज्ञानचन्द कुमरचंद।
कुवलय कोविद कविन कों बरसे सुधा अनंद॥
—"अलंकार पंचाशिका"

इन ज्ञानचंद के पिता कुमायूँ नरेशउदोतचंद की प्रशंसा में मतिराम ने बहुत लिखा था। एक छन्द नीचे उद्धृत किया जाता है।

पूरन पुरुष के परम दृग दोऊ जानि,
कहत पुरान वेद बानी यों ररति गई।
कवि मतिराम दिनपति औ निसापति यों,
दुहुन की कीरति दिसान मांझ मढ़ि गई॥
रवि कारन भये एक महादानियह,
जानि जिय आनि चिंता चित मांझ चढ़ि गई।
तेहि राज बैठत कुमायूँ श्री उदोतचन्द,
चन्द्रमा की करक करेजे हूँ ते कढ़ि गई॥×

मतिराम ने रावराजा भावसिंह के हाथियों के अत्यन्त सजीववर्णन लिखे हैं=कहीं उन्हें सजीव पहार बताया है, कहीं हाथियों के समूह को वर्षाकालीन मेघ के रूप में वर्णन किया है, आदि।

+अलंकार पंचाशिका।

×मतिराम ग्रन्थावली भूमिका पृ०-स० २२६।

= ललित ललाम छन्द सं० २३, ७३, ७६, ८७, १०४, १२२, १४०, २११।

गज-वर्णन के साथ-साथ मतिराम ने महाराज भाऊसिंह के 'गज दान' का वर्णन किया है। उनके मत में महाराज भाऊसिंह किसी दरिद्र का दारिद्रय नष्ट करने का विचार उठते ही 'गज दान' से छोटा दान करना जानते ही नहीं हैं। इन हाथियों को दान के रूप में प्राप्त करने के लिए बड़े बड़े सामन्त तक लाला-यित रहते हैं। यथा—

> अगनि उतंग जग जैतवार जोर जिन्हैं,
> चिक्करत दिक्करि इज्जत कज्जकत हैं।
> कहै मतिराम सैन-सोभा के ललाम,
> अभिराम जरकस भूल झाँपे झज्झकत है॥
> सत्ता को सपत, राव भावसिंह रीझि देत,
> छहू ऋतु छके मद-जल छलकत है।
> मंगन की कहा है मतगन के माँगिबे को,
> मनसबदारन के मन ललकत है॥

—"छन्द सं० १२२"×

मतिराम ने महाराज के हाथियों की दिग्गजों (ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम और सुप्रतीक) से तुलना की है और फिर यह दिखाया है कि भाऊसिंह जो ऐसे ही हाथियों का दान किया करते थे।‡ 'ललित ललाम' के बहुत से छन्द केवल राजा की प्रशंसा में ही लिखे गए हैं 'ललित ललाम' की रचना उन्हीं के ० लिए की गई थी।

> भाव सिंह की रीझि कौं, कविता भूषन धाम।
> मन्य सुकवि मतिराम यह कीनों ललित ललाम॥

"छन्द सं० १८"

× ललित ललाम छन्द सं० २०१।

‡ ललित ललाम छन्द सं० ११०।

० देखें विशेष कर भूपवंश वर्णन ललित ललाम छन्द सं २१, २८।

मतिराम ने कविजनों को राज-सभा का शृङ्गार कहा है।

"कवि मतिराम राज सभा के सिंगार हम,
जाके बैन सुनत पियूष पीजियतु है"

अपने आश्रयदाता को प्रभावित करने के लिये मतिराम ने भी यथा स्थान उक्ति वैचित्र्य का सहारा लिया है तथा अपने विविध विषयक ज्ञान का प्रदर्शन किया है। ऽ

राजसी ठाट-बाट का मतिराम के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा था। + बूँदी वर्णन में इन्होंने लिखा है।

सरद बारिधर से लसत, धवल धौरहर धाम।
चित्रनि-चित्रित सिखरजहं, इन्द्र धनुष से नौल॥
जहाँ छहों ऋतु में मधुर, सुनि मृदंग मृदु सोर।
संग ललित ललनानि के, नृत्य करत गृह मोर॥

—"ललित ललाम छन्द सं० ८, १०"

निम्नलिखित छन्द में विलास वैभव वर्णन के अतिरिक्त मतिराम ने आश्रयदाता की खुशामद भी की है। ×

वासव की राजै रुचि ललित बसंत खेल,
खेलत दिवान बखतेस सुलतान में।
कहै मतिराम कवि मृगमद पंक छवि,
छावत फुलेल औ गुलाब आपगान में॥

ऽ ललित ललाम छन्द सं० ६७ १०७, १४७, २६२, ३२६, ३८१, मतिराम सतसई छन्द सं० ११६, १२२, २११।

+ ललित ललाम छन्द सं० ६ से २२ २६२, ३११।

× वही ललित ललाम छं० सं० ३०८ तथा सूक्ति भाव पचन छन्द सं० ७१, १८।

कुंकुम गुलाल घनसार और अबीर उड़ि,
छाय रहे सघन अवनि आसमान में।
मेरे जानि राव भावसिंह को प्रताप जस,
रूप धरे फैलि रह्यो दसहू दिसान में॥

—"ललित ललाम छं० सं० १०३"

उन दिनों राज दरबार ही क्या, जन समुदाय भी विलास के रंग में रंग चुका था। मतिराम की रचना उसका दर्पण है। ०

कंत चौक सीमंत की, बैठी गांठि जुराइ,
देखि परोसी को पिया, घूँघट में मुसिकाइ॥

—"मतिराम सतसई छ० सं० ८"

मतिराम कृत शृङ्गार वर्णनों में विशेष रूप से उक्त प्रवृत्ति का समावेश मिलता है। उन दिनों समाज का दृष्टिकोण ही इस प्रकार का हो गया था। +

लाल सखीनि मैं बाल लखी मतिराम भयो उर आनद भीनों।
हाथ दुहूनि सों चंपक गुच्छनि को जुग छाती लगाय कैं लीनों॥
चंद मुखी मुसकाय मनोहर हाथ उरोजनि अंतर दीनों।
आँखिन मूंदि रही मिसि कै मुख ढांपि निचोल को अंचल कीनों।

—"ललित ललाम छन्द सं० ३४५"

प्रचलित परम्परा के अनुसार मतिराम ने शृङ्गार रस का निरूपण करते

---

० रसराज छन्द सं० २६, १३४, १०६, १४४, २०१, ३३१। मतिराम सतसई छ० ४४, ७३, ८०, १११।

+रसराज छ० सं० १२, २८, ६०, ३६। ललित ललाम छं० ४, ९, २०, २१, १०४, ११३, १२१, १६०, २५२। मतिराम सतसई छं सं० १०१, १०२, ११४, ११५, १२४ १३१, १७२, २०३, २१८, ६४८।

समय कृष्ण और राधा को साधारण नायक नायिका के रूप में ग्रहण किया और उनके शृङ्गार का निस्संकोच वर्णन किया। ❀

मनमोहन आय गए तित ही, जित खेलति बाल सखीगन में।
तहँ आपु ही मूँदे सलोनी के लोचन, चोर मिहीचनी खेलनि में॥
दुरिवे कौं गई सगरी सखियाँ, मतिराम कहै इतने छन में।
मुसकाय के राधिके कंठ लगाय, छिप्यौ कहूँ जाय निकुञ्जन में॥
—"ललित ललाम छन्द सं० १८१"

कतिपय स्थलों पर वे प्रायः मर्यादा का अतिक्रमण करके अश्लील × हो गए हैं। इनमें विपरीत रति आदि की भी चर्चा है।

अंजन दै निकसे नित नैनन, मंजन के अति अंग सँवारे।
रूप गुमान भरी मग में, पग ही के अँगूठा अनौट सुधारै॥
जोबन के मद सौं मतिराम, भई मतवारिनि लोग निहारै।
जाति चली यहि भाँति गली, बिथुरी अलकैं अँचरा न सँभारै॥
—"रसराज छन्द सं० ८०"

राधाकृष्ण प्रेम की चर्चा के अन्तर्गत मतिराम ने 'भ्रमर-गीत' से भी सम्बन्धित कुछ छन्द लिखे हैं। •

यद्यपि मतिराम ने ब्रजभाषा में रचना की थी, परन्तु इनकी कविता पर

❀ रसराज छं सं० ३५, ३८, ४१, ५०, ५७, ७७, १०५, ११८, १०४, २३७, २४६, ४०१ ४३६। ललित ललाम छं० सं० ६६, ६६, १९६, १०७, १८१, २१०, २१२, २२१, २२३, २२६ २३३, २४४, २४३, ३०६, ३१६ ३२२, ३२६, ३३४, ३४०, ३६१, ३६२। मतिराम सतसई ३, ११, १४, १५, १६, २६, ४१, ४०, ६६, ६७, ११०, १२३, १४३, १४४, १५५, २०३, ४१३, ४२२, ४६८।

× रसराज छन्द स० ८०, मतिराम सतसई छन्द सं० ५३, १३०, १३८, ४६१।

• ललित ललाम छन्द सं० २१३, ३०१। मतिराम सतसई छन्द सं० ६२१।

फारसी की शायरी का भी काफी प्रभाव पड़ा था। इनके द्वारा लिखे गये छन्दों में यथा स्थान अरबी के शब्द ❀ पाए जाते हैं, तथा फारसी शायरी के ढंग पर कलेजे के टुकड़े करने वाली अभिव्यंजनाएँ भी पाई जाती हैं।

छुर्‌यो मोहि उहि नैन सों, नैननि कियो अचेत।
काढ़ि बहुरि विष आपनो, ज्यों विषधर हर लेत॥
—"मतिराम सतसई छन्द सं० २८"

भलो एक मन हीं गह्यो, सज्जनता को नेम।
दृगनि माहि घाइल कियो, तासों बाँधत प्रेम॥
—"मतिराम सतसई छन्द सं० ६८"

शृङ्गार रस का वर्णन—मतिराम के शृङ्गार-वर्णनमें आचार्य और कवि दोनों ही स्वरूप समानान्तर चलते हैं। वर्णात्मकता और भाव प्रवणता का सुन्दर संयोग है। मतिराम ने "शृङ्गाररस" को दाम्पत्य विषयक रति बताकर रस राज माना है।

जो बरनत तिय पुरुष को, कवि कोविद रति भाव।
तासों रीझत हैं सुकवि, सो सिंगार रस राव॥
—"रसराज छन्द सं ३४२"

शृङ्गार संयोग वर्णन—नायक नायिका के प्रमुदित होकर मिलनावस्था को इन्होंने संयोग शृङ्गार कहा है। ×

❀ अचित कलाम—जहान (४१, ५२, ६६, १०३, ११२) लायक, दरबार (४१) बखत (२१) साह, पातसाह, उमराव (४८) मोम दरियाव दीवान (६६, १७२) दिमाग, मुश्ताक (१०३) सूबनि, गरीबी, गनीम, बरगीन, पात साह, हकिम, उमराव (१६१) तलफत (१६३) फकीरा, मुलतानी (११२) पलत, पिशव, गरद, गुमान (२२०) महाम, मकमियो मकपियो, (१०३) फत्ते है, दीवान, मजलिस, रोम, चिरावे (१०८) मतिराम सतसई छन्द सं० हरामो (४०) मखतूल (१२७) तथा दरियाव (२२२)।

× रसराज छन्द सं १४४।

प्रान प्रिया प्रिय आनंद सों, विपरीति रची रति रंग रह्यो ह्वै।
कामकलोलनि में 'मतिराम' रही धुनि त्यों कलिकिंकिनी की ह्वै ॥
आनन की उजियारी परी, श्रमबूँद समेत उरोज लसे है।
चंद की चाँदनी के परसे मनों, चंदपखान पहार चले च्वै ॥
छुवत परसपर हेरि कैं, राधा नंदकिसोर।
सबमें द्वै ही होत है चोर मिहीचनि चोर।
—"रसराज छन्द सं ३५५, ३५६"

नायक नायिका आलम्बन तथा चन्द्र और चाँदनी "उद्दीपन" विभाव हैं। "श्रमसीकर" सात्विक अनुभाव है। "हर्ष" संचारी भाव है। "आनन्द सों रति रंग" करना स्थायी भाव की स्पष्ट व्यंजना करता है। "विपरीत रति" की चर्चा के कारण इस वर्णन में कुछ अश्लीलता आ गई है। राधा और नन्दकिशोर के नाम समय की गति के परिचायक हैं।

इस अन्य प्रकार का सम्भोग शृंगार वर्णन नीचे उद्धृत किया जाता है। इसमें भी विपरीत रति की चर्चा है।

प्यार पगी पगरी पिय की, घर भीतर आपने सीस सँवारी।
एतें में आँगन तें उठि कैं, तहाँ आय गयो मतिराम बिहारी ॥
देखि उतारन लागी पिया, पिय सोंहनि सौं बहुर्यो न उतारी।
नैन नवाय लजाय रही, उर लाय लई मुसकाय पियारी ॥
—"रसराज छन्द सं० ४१"

"ललित ललाम" में भी यथास्थान शृंगार वर्णन किए गए हैं।

मोहन लला कौं मनमोहनी बिलोकि बाल,
कसि करि रालति है उमगे उमाह कौं।
सखिनि की दीठि कों बचाय के निहारति है,
आनंद प्रवाह बीच पावति न थाह कौं ॥
कवि मतिराम और सब ही के देखत ही,
ऐसी भाँति देखति छिपावति उछाह कौं।

चन्द, कमल, चन्दन, अगर, बन, बाग विहार।
उद्दीपन शृंगार के, जे उज्वल सम्भार॥
—"रसराज छन्द सं० २८४"

इस प्रकार मतिराम ने उद्दीपन-विभाव में नख-शिख-वर्णन को नहीं रखा है, और उन्होंने अङ्ग-प्रत्यंग निरूपण वाले शास्त्रीय ढंग पर नख-शिख-वर्णन किया भी नहीं है। उद्दीपन के भेद बताते हुए मतिराम ने सखी, दूती और उनके कार्यों, मंडन उपालम्भ शिक्षा तथा परिहास का वर्णन किया है। +

उद्दीपन-विभाव के उदाहरण स्वरूप मतिराम ने निम्नलिखित छन्द लिखा है।

पूरन चन्द उदोत कियौ घन, फूलि रही बन जाति सुहाई।
भौरन की अवली कल कैरव कंजन पुञ्जन में मृदु गाई॥
बाँसुरी ताननि काम के बाननि, लै 'मतिराम' सबै अकुलाई।
गोपिन गोप कछू न गनै, अपने अपने घर तैं उठि धाई॥
—"रसराज छन्द सं० २८५"

कृष्ण बिहारी मिश्र ने इस छंद में शृङ्गार-रस का पूर्ण परिपाक माना है। मतिराम ने सीधे-साधे तौर पर षट्-ऋतु-वर्णन न लिख कर उनके द्वारा उत्पन्न प्रभाव के यथा-स्थान वर्णन लिखे हैं, जो सुन्दर बन पड़े हैं। ※ यथा

आयौ बसन्तरसाल प्रफुल्लित कोकिल बोलनि औन सुहाई।
भौंरनि को 'मतिराम' कियैं गुन काम प्रसून कमान चढ़ाई॥
रावरौ रूप लग्यौ मन में तन में तिय की झलकी तरुनाई।
धीर धरौ अकुलात कहा अब तौ चलि बात सबै बनि आई॥
—"ललित ललाम छन्द सं० २८४"

+ रसराज छंद सं० २८०, १०८।

मतिराम ग्रन्थावली, प्रथम संस्करण (सम्वत् १६८३) भूमिका पृष्ठ सं० ९१।

※ ललित ललाम छंद सं० १२१। मतिराम सतसई छंद सं० २११, २०७, २८५, २८८, १०६, १०८।

यह वसन्त ऋतु का वर्णन है।

जहाँ तहाँ रितुराजमनैं, फूले किंसुक जाल।
मानहुँ मान मतंग के, अंकुस लोहू लाल॥
—"मतिराम सतसई छन्द सं० ६६"

विरहावस्था में सुखदायी वस्तुएँ किस प्रकार कष्टदायी दीखती हैं, यह उसी का वर्णन है। फारसी के प्रभाव के कारण 'लोहू' यह लिक्खा है। 'रसराज' में नायिका भेद के अन्तर्गत प्रकृति के अतिरिक्त विभिन्न ऋतुओं के प्रभाव के भी वर्णन किये गये हैं। × यथा

आई ऋतु पावस अकास आठौं दिसन मैं,
सोहत स्वरूप जलधरन की भीर की।
'मतिराम' सु कवि कदंबन की बास जुत,
सरस बढावै रस परस समीर को॥
भौन ते निकसि वृषभानु की कुमारि देख्यौ,
ता समै सहेट को निकुञ्ज गिर्‌यो तीर को।
नागरि के नैननि तैं नीर को प्रवाह बढ़्यो,
निरखि प्रवाह बढ़्यो जमुना के नीर को॥
—"रसराज छन्द सं० ८६"

अनुभाव और हाव-वर्णन—मतिराम ने केवल सात्विक अनुभावों का वर्णन किया है। रस-ग्रन्थों के अनुसार इन्होंने आठ सात्विक अनुभाव लिये हैं %। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय। नवां 'जृम्भा' सात्विक अनुभाव इन्होंने और लिखा है। उदाहरणों के अन्तर्गत

× रसराज छंद सं० ८१, ८६ ९९, १२२, १२३, ११६, ११०, २०१, २०२।

% रसराज छंद सं० ११३, ४५१।

यह बसन्त ऋतु का वर्णन है।

जहाँ तहाँ ऋतुराजमैं, फूले किंसुक जाल।
मानहुँ मान मतंग के, अंकुस लोहू लाल॥
—"मतिराम सतसई छन्द सं० ६६"

विरहावस्था में सुखदायी वस्तुएँ किस प्रकार काटने दौड़ती हैं, यह उसी का वर्णन है। फारसी के प्रभाव के कारण 'लोहू' यह लिखा है। 'रसराज' में नायिका भेद के अन्तर्गत प्रकृति के अतिरिक्त विभिन्न ऋतुओं के प्रभाव के भी वर्णन किये गये हैं। × यथा

आई ऋतु पावस अकास आठौं दिसन मैं,
सोहत स्वरूप जलधरन की भीर की।
'मतिराम' सु कवि कदंबन की बास जुत,
सरस बढावै रस परस समीर को॥
भौन ते निकसि वृषभानु की कुमारि देख्यौ,
ता समै सहेट को निकुञ्ज गिर्‌यौ तीर को।
नागरि के नैननि तैं नीर को प्रवाह बढ्यौ,
निरखि प्रबाह बढ्यौ जमुना के नीर को॥
—"रसराज छन्द सं० ८६"

अनुभाव और हाव-वर्णन—मतिराम ने केवल सात्विक अनुभावों का वर्णन किया है। रस ग्रन्थों के अनुसार इन्होंने आठ सात्विक अनुभाव लिये हैं %। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय। उदाहरणों के अन्तर्गत 'जृम्भा' सात्विक अनुभाव इन्होंने और लिखा है।

× रसराज छंद सं० ८१, ८६, ६२, १२१, १२६, १६२, १६०' २०१, २०२।

% रसराज छंद सं० ११६, १५१।

वर्णित के अतिरिक्त अन्य अनेक स्थलों पर अनुभावों की सुन्दर व्यंजना हुई है । ×

१—चलत सुभाय पाय पैजनिन की झनक,
उर उपजन लागे केलि के कलोल हैं ।
फूलनि के हार हियरे सों हिरकनि लागे
छलकन रस नैन तामरस लोल हैं ॥
भौन के सरोज के परस 'मतिराम' लाल,
कंटकित होन लागे कोमल कपोल हैं ।
तौ बनै बनाव मिलै जोबन में कहूँ नीके,
लोचन के जोबन के बासर अमोल हैं ॥
—"ललित ललाम छन्द सं० २१७"

'स्तम्भ' और रोमांच' स्पष्ट हैं ।

२ लाल तिहारे संग में, खेले खेल बनाइ ।
मूँदत मेरे नैन हो, करनि कपूर लगाइ ॥
—"मतिराम सतसई छन्द सं० ४५"

स्वेद सात्विक अनुभाव की यह अनोखी व्यंजना है ।

संयोग-शृङ्गार के अन्तर्गत मतिराम ने पृथक् रूप में हावों का वर्णन किया है । हाव दस हैं ◎ लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम किलकिंचित मोट्टायित कुट्टमित बिब्बोक, ललित और विहित ।

२ लेन गई हुती बागन फूल अन्यारी लखें डर पायगो महाई ।
रोम उठे तन कंप छुटे, 'मतिराम' भई भम की सरसाई ॥

ललित ललाम छंद सं० २११, १०४, ११०, मतिराम सतसई छंद सं० २५, २६, २७, २६, ३१, १२०, १२७ १२३, १२४, २०५, ३१५, ३२०, ३१२ ।

× रसराज छंद सं० ११६, १०१ ।

◎ रसराज छंद सं० १४७—२०३ ।

१ वेलिन में उरझी अंगियाँ, छतियाँ अति कंटक के छत छाई।
देह में नेक संभार रह्यो न यहाँ लगि भाजि मरु करि आई।
—"रसराज छन्द सं ६८"

यहाँ रोमांच, कम्प और स्वेद का एक साथ निरूपण है।

संचारी-भाव वर्णन—मतिराम ने शास्त्रीय ढंग पर, शृंगार रस के अवयव के रूप में संचारी-भावों का वर्णन नहीं किया है, परन्तु उनकी रचनाओं में यथा-स्थान संचारी-भाव व्यंजित हैं।

नख शिख वर्णन—मतिराम ने यद्यपि कपोल-वर्णन, अधर-वर्णन आदि वर्णनों की शैली पर नखशिख निरूपण नहीं किया है। तथापि इसका यह अर्थ न समझ लेना चाहिए कि नायक-नायिका के अंगों की शोभा ने इनके ऊपर कोई प्रभाव ही न डाला था। मतिराम ने शरीर और अंग, सामूहिक और आंगिक दोनों ही प्रकार की सुन्दरता के सुन्दर वर्णन किये हैं। × यथा

मोर पखा 'मतिराम' किरीट, मनोहर मूरति सौं मनु लेगो।
कुंडल डोलनि, गोल कपोलनि, बोल सनेह के बीज से वैगो॥
लाल बिलोचनि कौलन सौं, मुसकाई इतै अरुझाइ चितैगो।
एक घरी घन से तन सौं, अँखियान घनो घनसार सो देगो॥
—"रसराज छन्द सं० ४०१"

२—आभा तरिवन लाल की, परी कपोलनि आनि।
कहा छपावति चतुर तिय, कंत दंत छत जानि॥
× × × ×
परखि परे नहि अरुन रंग, अमल अधर दल माँझ।
कैधौं फूली दुपहरी, कैधौं फूली साँझ॥
—"ललित ललाम छन्द सं० ८३, ८४"

× ललित ललाम छन्द सं० ८१ ८१, ११२ ११३ १०० १८७ २०१ २०३ २०४ २०६, २२५ २८० ३२२ ३४०, ३४० मतिराम सतसई छंद सं० ५, १२ २८, ३१ ४० ५४, ८० १०१, १००, १०८, १०६, १११ ११३ ११४ ११६, ११३ २१६ २२१ २२२।

३ मगपति जित्यो सुलंक सों मृग लच्छन मृदु हास।
मगमद जित्यो सु नैन सों, मृगमद जित्यो सुवास ॥
—"मतिराम सतसई छन्द स० ३४,,

नायिका भेद-वर्णन—मतिराम नायिका-भेद-वर्णन के माने हुये आचार्य हैं। परवर्ती आचार्यों में अधिकांश को इनका वर्गीकरण मान्य रहा है। ×

मतिराम ने नायक-नायिका को श्रृङ्गार-रस का आलम्बन विभाव बताकर 'रसराज' में उनके भेदों-उपभेदों का शास्त्रीय ढंग पर, लक्षण उदाहरण वाली शैली पर वर्णन किया है। +

होत नायका नायकहि, आलंबित सिंगार।
तातें बरनों नायका, नायक मति अनुसार ॥
— 'रसराज छन्द सं० ४,,

'रसराज' के अन्तर्गत वर्णित नायिका भेद की चर्चा करने के पूर्व यह बता देना आवश्यक है कि मतिराम ने अन्य स्थलों पर भी आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार की नायिकाओं की चर्चा की है।

मतिराम के मतानुसार जिस रमणी को देखकर चित्त में रस-भाव उत्पन्न हो उसे नायिका कहना चाहिये।

उपजत जाहि बिलोकि कै चित्त बीच रस भाव।
ताहि बखानत नायका, जे प्रवीन कविराव ॥
—"रसराज छन्द स० ५,,

उदाहरण में नायिका का स्वरूप वर्णन करते हुए मतिराम' ने लिखा है कि 'ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरै सी निकाई'। (रसराज

× देखें पाठ सं० ३।

+ रसराज छंद सं० ४ से २०७ तक।

ललित ललाम छंद नं० १६३, २०८ २६० ३१८ ३२१ १४२ १७७ १९९ १९७ ३२६; १६३, २०१ मतिराम सतसई छंद सं० ६१ ६२, १०० १०३, १२१, १२६ १४० १६८, १७० १०१, १०६, १८३ १८६, १६१, १६९, १६३ ३२७ १०१ १०२।

छंद सं० ६) जितने ही सन्निकट से उसकी परीक्षा की जाती है उतनी ही अच्छी अच्छी बातें देखने में आती हैं । यही है यह प्रतिक्षण दिखाई देने वाली नवीनता जिसका निरूपण भवभूति ने "पयो-पयो यदवतामुपैति तदेव रूप रमणीयतायां" कह कर किया था और बिहारी ने उसी को भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर" वाले दोहे में व्यक्त किया ।

मतिराम ने नायिकाओं के निम्नलिखित प्रकार से भेद किए हैं ।

(१) नायिका के तीन भेद—स्वकीया परकीया और गणिका (रसराज छन्द ६) ।

(२) स्वकीया के तीन भेद—मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा । (छं० सं० १३)

(३) मुग्धा के तीन भेद—अज्ञात यौवना तथा ज्ञात यौवना (छंद सं० १७) ज्ञात यौवना के अन्तर्गत नवोढ़ा और विश्रब्ध-नवोढ़ा ये दो प्रकार के भेद लिखे हैं । (छंद सं० २४, २०,) ।

(४) मध्या और प्रौढ़ा प्रत्येक के मान-भेद से तीन-तीन, धीरा-अधीरा और धीराधीरा भेद किये हैं । (छ० सं० ३६) ।

(५) स्वकीया के पति प्रेम के अनुसार ज्येष्ठा और कनिष्ठा ये दो भेद किये हैं । (छं० सं० ५५) ।

(६) परकीया के दो भेद—ऊढ़ा और अनूढ़ा । (छं० सं० ५८) ।

(७) परकीया के छः अन्य भेद—गुप्ता विदग्धा (वचन, क्रिया) लक्षिता कुलटा मुदिता और अनुशयना (पहिली दूसरी, तीसरी) (छं० सं ६८ ९३)

(८) गणिका के कोई भेद नहीं किए हैं उसकी तो सीधी-सादी एक ही पहिचान है ।

> धन दै जाके संग मैं, रमैं पुरुष सब कोइ ।
> म धन को मत देखि कै, गणिका जानहु सोइ ।।
>
> —"छन्द सं० ६४"

(९) चार अन्य भेद—अन्य सम्भोग दुःखिता, प्रेम गर्विता, रूप-गर्विता और मानवती (छं० सं० ६१) ।

(१०) अवस्था-भेद से १० प्रकार की नायिकाएँ । प्रोषितपतिका, खंडिता,

कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, वासकसज्जा स्वाधीनपतिका अभिसारिका, प्रवत्स्य प्रेयसी, आगतपतिका।

(११) अन्त में प्रिय के हित अनहित करने के विचार से उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा नायिकाओं का वर्णन किया है। (छं० सं० २२८ २३९)।

यहाँ कुछ विशेष बातें ध्यान देने योग्य हैं। (१) मतिराम ने सामान्या अथवा गणिका की भी दशों अवस्थाएँ मानी हैं। (छं० सं० १२० १२१ १३१ १३२ १४२ १४३ १५४, १५५ १६५, १९९ १७६, २०३, २०७ २१७ २२६ २२७,)। (२) स्वकीया के अन्तर्गत मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा तीनों के वर्णन किए हैं। (३) परकीया के विभेद नहीं किए हैं। (४) अभिसारिका के तीन उपभेद लिखे हैं—कृष्णा, चन्द्रा और दिवा।

आगे चल कर नायिकों के भेद लिखे हैं। यथा

(१) तीन प्रकार के पति माने हैं 'पति, उपपति तथा वैशिक।
(छं० सं० २४०)

(२) चतुर्विध नायक। अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट। (छ सं० २४३)

यह नाट्य-शास्त्र का प्रभाव है—

(३) मानी क्रिया-चतुर और वचन चतुर ये त्रिविध नायक लिखे हैं। (छं० सं० २६०) प्रोषित नायक का भी वर्णन किया है।

मतिराम ने नायक के लिए सुन्दर कामकला में प्रवीण तथा कवित्त-रस लीन होना आवश्यक बताया है। (छन्द सं० २३७)।

आलम्बन विभाव के अन्तर्गत 'दर्शन' को रखकर उसके ४ उपभेद किए हैं। श्रवण-दर्शन, स्वप्न- र्शन, चित्र-दर्शन तथा साक्षात-दर्शन (छं० सं० २७५)

मतिराम द्वारा लिखे गये शृङ्गार रस वर्णन की निम्नलिखित विशेषतायें ठहरती हैं—

(१) पहले एक दोहे में लक्षण लिखकर बाद में उदाहरण स्वरूप कवित्त या सवैया तथा उसके साथ एक दोहा लिखा गया है।

(२) मतिराम का शृङ्गार-वर्णन काम-शास्त्र तथा नाट्य-शास्त्र से प्रभावित

होने के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक भी है। स्वकीया के उदाहरण में उन्होंने लिखा है कि—

> जानति सौति अनीति है, जानति सखी सुनीति।
> गुरुजन जानत लाज है, प्रीतम जानति प्रीति॥
>
> —"रसराज छन्द सं० १२"

(३) मतिराम ने 'काम' को सर्वत्र व्याप्त बताने के अतिरिक्त सर्व-शक्तिशाली तथा बलवान मूल प्रवृत्ति माना है।

> क्यों न फिरै सब जगत में, करत दिगविजै मार।
> जाके रग-सामन्त है, कुवलय जीतनहार॥
>
> —"ललित ललाम छन्द सं० १६६"

तथा

> रति नायक सायक सुमन, सब जग जीतनवार।
> कुवलय दल सुकुमार तन, मन कुमार जय मार॥
>
> —"मतिराम सतसई छन्द स० ३"

(४) मतिराम ने शृङ्गार-रस को रस राज माना है। दाम्पत्यरति को ही शृङ्गार-रस का स्थायी भाव बताया है। 'भक्ति' आदि के फेर में वह नहीं पड़े हैं। (छं० सं० १४२)

(५) मतिराम ने उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नख-शिख और षट्-ऋतु सम्बन्धी वर्णन नहीं लिखे हैं।

(६) मतिराम ने संचारी भावों की चर्चा नहीं की है।

(७) मतिराम ने 'गणिका' का विस्तार के साथ वर्णन किया है। उसके खण्डिता, अभिसारिका आदि भेद तो लिखे ही हैं। स्वाधीनपतिका के रूप में भी उसका वर्णन किया है। (रसराज छं० सं० १८० १८६)।

(८) मतिराम ने स्वकीया प्रम को श्रेष्ठ और पवित्र बताया है।

> लाजवती, निसदिन पगी निज पति के अनुराग।
> कहत स्वकीया सीलमय, ताको पति बड़भाग॥
>
> —"रसराज छन्द सं० १०"

तथा

ये ही नैन रूखे से लगत, और लोगनि कों।
वेई नैन लागत सनेह भरे नाह कों॥

—"ललित ललाम छन्द सं० ३५२ तथा रसराज छन्द सं० २८२,,

ऐसी पत्नी को पाकर कौन ऐसा पति होगा जो अपनी प्रिया पत्नी को अप्रसन्न होने का अवसर देगा। यथा—

सपनेहूँ मनभावतो, करत नहीं अपराध।
मेरे मन ही में रही, सखी मान की साध॥

—रसराज छन्द सं० २८६,,

चाहे तो हम इसे एक पति तथा एक पत्नीव्रत का प्रतिपादन मान सकते हैं। पति हित की कामना से प्रेरित पत्नी स्वयं दोष पूर्ण बनने में भी गौरव समझती है।

गुरुजन दूजे ब्याह कों, प्रतिदिन कहत रिसाइ।
पति की पति राखे बहू, आपुन बाँझ कहाइ॥

—"मतिराम सतसई छन्द सं० ६"

(६) परकीया का वर्णन करते समय मतिराम ने भी सुजन कोमल भावनाओं और सामाजिक मर्यादा का पूरा-पूरा ध्यान रखा है।

क्यों इन आँखिन सों निरसंक ह्वै, मोहन को तन पानिप पीजे।
नेकु निहारे कलंक लगै इहि गाँव बसे कहो कैसे के जीजे॥
होत रहै मन यौं मतिराम, कहूँ बन जाय बड़ो तप कीजे।
ह्वै बनमाल हिए लगिए अरु ह्वै मुरली अधरारस लीजे॥

—"रसराज छन्द सं० ६०"

यह ऊढ़ा परकीया का उदाहरण है।

यदि सुकुमारी अनूढ़ा होती, तब तो वह इसी शरीर द्वारा अपने प्रेम पात्र को प्राप्त करने के लिए इच्छा करती। उसका किसी अन्य पुरुष के साथ विवाह हो चुका है। वह जानती है कि हिन्दू ललना का दूसरा विवाह नहीं होने का। अतः यदि प्यारा मिलेगा, तो अगले जन्म में।

(१०) मतिराम ने सूक्ष्म निरीक्षण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा समाज की रीति-रिवाजों का विशेष ध्यान रखा है।

अ—पांव धरे दुलही जिहिं ठौर, रहे मतिराम तहाँ दृग दीने।
  छोड़ि सखान के साथ को खेलिबो, बैठ रहे घर ही रस भीने।
  सांझहिं ते तलफे मन ही मन, लालन यों रस के बस लीने।
  लोनी सलोनी के अंगनि नाह सु, गौने की चूनरी टौने से कीने॥
—"रसराज छन्द सं० २४१"

ब—केलि के रति अघाने नहीं, दिन ही में लला पुनि घात लगाई।
  प्यास लगी कोउ पानी दे जाइयो, भीतर बैठि के बात सुनाई॥
  जेठी पठाई गई दुलही हंसि, हेरि हरे 'मतिराम' बुलाई।
  कान्ह के बोल में कान न दीनो, सो गेह की देहरी पै धरि आई॥
—"रसराज छन्द सं० ७८"

(११) यदि रसराज के छन्द सं० १, २, ३, को मतिराम कृत मान लिया जाए, तो स्पष्ट है कि मतिराम ने कृष्ण और राधा को नायक-नायिका मान कर ही श्रृङ्गार-रस वर्णन किया था।

(१२) अन्य अनेक दरबारी कवियों की भाँति 'मतिराम' का भी यह अनुभव था कि राजा-महाराजाओं की खुशामद तथा दरबारदारी थोड़े ही समय तक सुखी रख सकती है। राजा-महाराजा के सम्पर्क में रहना आग से खेलना है। न मालूम कब विमुख हो जाएँ।

तेरो कह्यो सिगरो मैं कियो निसि द्योस तप्यो तिहुँ तापनि पाई।
मेरो कह्यो अब तू करि जो सब, दाह मिटे परिहै सियराई॥
संकर पायनि में लगि रे मन, थोरे ही बातनि सिद्धि सुहाई।
आक धतूरे के फूल चढ़ाए तें, रीझत है तिहुँ लोक के साई॥
—"ललित ललाम छन्द सं० १६६"

तुरग भरथ पेराक के, मनि आभरन अनूप।
भोगनाथ सों भीख लै, भए भिखारी भूप॥

तथा

भोगनाथ नरनाथ की रीझयो खीझ अनूप ।
होत भिखारी भूप है, भूप भिखारी रूप ॥
—"मतिराम सतसई छन्द सं ६९९, ७००"

पद्माकर

"पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट मध्यप्रान्तान्तर्गत सागर में रहा करते थे। इनके पूर्व पुरुषों का निवास उत्तर में माने पर पहले पहल बाँदा हुआ, इसीलिए ये लोग बाँदावाले भी कहलाते थे। पद्माकर का जन्म विक्रमी सम्वत् १८१० में सागर में ही हुआ था।

इन्होंने ८० वर्ष की आयु पाई। सम्वत् १८९० में कानपुर में गंगातट पर इनका स्वर्गवास हुआ था।

पद्माकर कई स्थानों पर रहे। एक प्रकार से यह जन्मभर भटकते रहे। केवल जयपुर में ही थोड़े समय तक जम कर रहे थे।

पद्माकर कई राजदरबारों में रहे थे और इनकी अधिकांश रचनाएँ राजाश्रय में ही लिखी गईं थीं।"सुगरा के नोने अर्जुनसिंह ने इन्हें अपना मंत्रगुरु बनाया। संवत् १८४९ में ये गोसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मत बहादुर के यहाँ गए जो बड़े अच्छे योद्धा थे और पहले बाँदे के नवाब के यहाँ थे, फिर अवध के बादशाह के यहाँ सेना के बड़े अधिकारी हुए थे। इनके नाम पर पद्माकर जी ने "हिम्मतबहादुर विरदावली" नाम की वीर रस की एक बहुत ही फड़कती हुई पुस्तक लिखी। सम्वत् १८५६ में ये सितारे के महाराज रघुनाथराव (प्रसिद्ध राघोबा) के यहाँ गए और एक हाथी, एक लाख रुपया और दस गाँव पाए। इसके उपरांत पद्माकर जी जयपुर के महाराज प्रतापसिंह के यहाँ पहुँचे और वहाँ बहुत दिनों तक रहे। महाराज प्रतापसिंह के पुत्र महाराजा जगतसिंह के समय में भी ये बहुत काल तक जयपुर रहे और उन्हीं के नाम पर अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ "जगद्विनोद" बनाया। ऐसा जान पड़ता है कि जयपुर में ही इन्होंने अपना अलंकार का ग्रन्थ 'पद्माभरण" बनाया जो दोहों में है। ये एक बार उदयपुर के महाराणा भीमसिंह के दरबार में भी गए थे जहाँ इनका बहुत अच्छा

सम्मान हुआ था। महाराणा साहब की आज्ञा से इन्होंने "गनगौर" के मेले का वर्णन किया था। महाराज जगतसिंह का परलोकवास संवत् १८६० में हुआ। उसके अनन्तर ये ग्वालियर के महाराज दौलतराव सिंधिया के दरबार में गए और यह कवित्त पढ़ा—

मीनागढ़ बंबई सुमंद मंदराज बंग,
बन्दर को बंद करि बन्दर बसावैगो।
कहै पद्माकर' कसिक कासमीर हू को,
पिंजर सों घेरि कै कालिंजर छुड़ावैगो।
बांका नृप दौलत अलीजा महाराज कबै,
साजि दल पक्करि फिरंगिन दबावैगो।
दिल्ली दहपट्टि, पटना हू को झपट्ट कर,
कबहूँक लत्ता कलकत्ता को उड़ावैगो।

सेंधिया दरबार में भी इनका अच्छा मान हुआ। कहते हैं कि वहाँ सरदार ऊदाजी के अनुरोध से इन्होंने हितोपदेश का भाषानुवाद किया था। ग्वालियर से यह बूँदी गए और वहाँ से फिर अपने घर बाँदे में आ रहे। आयु के पिछले दिनों में ये रोगग्रस्त रहा करते थे। उसी समय इन्होंने "प्रबोध पचासा" नामक विराग और भक्तिरस से पूर्ण ग्रन्थ बनाया। अन्तिम समय निकट जानि पद्माकर जी गंगातट के विचार से कानपुर चले गए और वहीं अपने जीवन के शेष सात वर्ष पूरे किए। अपनी प्रसिद्ध "गंगालहरी" इन्होंने इसी समय बनाई थी।

इस प्रकार पद्माकर द्वारा विरचित पांच ग्रन्थ मिलते हैं। हिम्मत बहादुर विरुदावली, पद्माभरण जगद्विनोद, प्रबोध पचासा और गंगालहरी। इनके अतिरिक्त पद्माकर के लिखे हुए कुछ फुटकल छन्द भी मिलते हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'रीतिकाल के कवियों में सहृदय समाज इन्हें बहुत श्रेष्ठ स्थान देता आया है। ऐसा सर्वप्रिय कवि इस काल के भीतर बिहारी को छोड़ दूसरा नहीं हुआ। इनकी रचना की रमणीयता ही इस सर्वप्रियता का एक मात्र कारण है। रीतिकाल की कविता इनकी और प्रतापसाहि की वाणी द्वारा अपने पूर्ण उत्कर्ष को पहुँच कर ह्रासोन्मुख हुई। अतः जिस प्रकार ये अपनी परम्परा के

परमोत्कृष्ट कवि हैं उसी प्रकार प्रसिद्धि में अन्तिम भी। देश में वैसा ग्रन्थ नाम गूँथा वैसा फिर आगे चलकर किसी और कवि का नहीं।"

—"हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं० ३६८"

तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव—पद्माकर के जीवन वृत्त द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि यह दरबारी कवि थे। इनकी अधिकांश रचनाएँ आश्रयदाता राजाओं को प्रसन्न करने के लिए लिखी गई थीं। यह जिस राजा के दरबार में जाते थे उसी की प्रशस्ति में कविता रच डालते थे। महाराज जगतसिंह की प्रशंसा में इन्होंने अनेक छन्द लिखे थे। +

छत्रिन के छत्र छत्रधारिन के छत्रपति,
छाजत छटानि छिति छेम के छवैया हौ।
कहै 'पद्माकर' प्रभाव के प्रभाकर,
दया के दरियाव हिंद हद के रखैया हौ॥
जागते जगतसिंह साहिब सवाई,
श्रीप्रताप नृप नंद कुलचंद रघुरैया हौ।
आछे रहौ राजराज राजन के महाराज,
कच्छ कुल कलस हमारे तो कन्हैया हौ॥

—"जगद्विनोद छन्द सं० ५"

ऊपर वाले छन्द से यह बात स्पष्ट है कि कविगण उन दिनों किस प्रकार आश्रयदाताओं की चाटुकारी किया करते थे। तत्कालीन ग्वालियर नरेश दौलतराव सेंधिया की प्रशंसा में पढ़े गए कवित्त की चर्चा हम कर ही चुके हैं। 'आलीजाह प्रकाश' नामक ग्रन्थ का पद्माकर ने इस प्रकार उपसंहार किया है।

दौलत नृप के हुकुम तें, आली अतिहि हुलास।
कवि पद्माकर ही कियो, आली जाह प्रकास॥

हिम्मत बहादुर को इन्होंने रुद्र, हरिश्चन्द्र, कवि कुल कमल सूर्य, नवरस न मालूम क्या क्या बता डाला है।—

+ जगद्विनोद छन्द सं० ९, ६, १८९, ७३०।

—हिम्मत बहादुर विरदावली छन्द सं० ३, १५।

यह जयपुर के महाराज जगतसिंह के दरबार में बहुत दिनों तक रहे थे। इनकी प्रसन्नता के हेतु ही "जगद्विनोद" की रचना हुई थी × वहाँ इन्हें अधिक आनन्द मानने का अवसर मिला था। महाराज के भोग विलास, ठाट बाट के वर्णन के अन्तर्गत पद्माकर ने उनके हाथी, घोड़ों आदि के अतिरंजित वर्णनों के अतिरिक्त तीतर बटेरों की लड़ाइयों की भी अतिशयोक्ति पूर्ण चर्चा की है। बेचारा कवि क्या करे, जब राजाओं की प्रसन्नता का साधन ही यह बन गया है। देखिए महाराज के यशस्वी तीतर का वर्णन।%

पक्के पीजरान ही तें खोलत खुले परत,
बोलत सो बोल जिमि दुंदुभी से वै रहैं।
कहै 'पद्माकर' चभोटैं करि चोंचन की,
चूकत न चोट चटकीले अंग वे रहैं।
तेते सुंग तीतुर तयार नृप कूरम के,
लै लै फर्द फर्द के फतूहन फबे रहैं।
बासा को गनैं न कछु अंग जुरैं जुरैंन सों,
बाजी बाजी बेर बाजी बाज हू सों लै रहैं॥

—'कुरंकर छन्द सं० १५'

पद्माकर स्वयं भी बड़े ठाट-बाट से रहते तथा लाव लश्कर के साथ निकलते थे। एक बार जयपुर से लौटा आते समय इनके लाव लश्कर को देखकर बूँदी वालों ने समझा कि कोई हमारे ऊपर चढ़ाई करने आ रहा है उनका भ्रम दूर करने के लिए अपना परिचय देते हुए पद्माकर ने निम्नलिखित कवित्त बनाकर सुनाया था।

सूरत के साह कहै कोऊ नरनाह कहै,
कोऊ कहै मालिक ये मुलुक दराज के।
राव कहै कोऊ उमराव पुनि कोऊ कहै,
कोऊ कहै साहिब ये मुसंद समाज के॥

× जगद्विनोद छन्द सं० ७, ८।
% छबा वर्णन छन्द स० १९, कुरकर।

देखि असबाब मेरो भरमें नरिंद सबै,
तिनसों कहै मैं बैन सत्य सिरताज के ।
नाम 'पद्माकर' डराऊ मति कोऊ भैया,
हम कबिराज हैं प्रताप महाराज के ।।
—"फुटकर छन्द सं० ३"

पद्माकर की कविता में कवि और आचार्य दोनों पक्ष साथ साथ चलते हैं। 'जगद्विनोद' एक रस-ग्रन्थ है। इसमें लक्षण-उदाहरण वाली शैली पर समस्त रसों की चर्चा की गई है। शृङ्गार-रस का निरूपण विस्तारपूर्वक किया गया है, अन्य रस लक्षण-उदाहरण देकर चलते कर दिए गए हैं।

इनका 'पद्माभरण' अलंकार-ग्रन्थ है। यह चन्द्रालोक की शैली पर लिखा गया है × इस प्रकार रस और अलंकार दोनों पर ही लक्षण ग्रन्थ लिख कर पद्माकर ने परम्परानुसार कवि-कर्म पूरा किया था। 'पद्माभरण' के अन्तर्गत मंगलाचरण वाले दोहे में इन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि कवि-परम्परा का निर्वाह ही ग्रन्थ-रचना का कारण है।

राधा राधावर सुमिरि, देख कविन को पंथ ।
कवि पद्माकर करत हैं, पद्माभरण सु ग्रन्थ ।।

ग्रन्थ के उपसंहार में भी 'पद्माकर' ने यही लिखा है कि "राधा माधव की कृपा से 'पद्माकर' ग्रन्थ पूरा हुआ और सुकवियों के पंथ का अनुसरण हो गया। (छन्द सं० ३४४)

आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए यह आवश्यक था कि कवि जो अपनी विविध विषयक जानकारी का प्रदर्शन करें। पद्माकर भी इस मनोवृत्ति के अपवाद न थे। हिम्मत बहादुर-विरुदावली में ऐसे कई स्थल हैं जहाँ 'पद्माकर' ने अकारण, बिना किसी विशेष अवसर एवं प्रयोजन के विभिन्न वस्तुओं के

× शास्त्र बोध कराना इसका उद्देश्य है। विषय को थोड़े में समझने और कंठस्थ करने योग्य बनाने के विचार से एक ही श्लोक में लक्षण और उदाहरण दोनों रख दिए गए हैं। इसके साथ ही इसमें शृङ्गार के उदाहरणों का आग्रह होने पर दुराग्रह कहीं नहीं है।

परिगणन कर डाले हैं। जैसे (१) अर्जुन सिंह के सहायकों का वर्णन करते समय राजपूतों के ३६ कुलों के नाम गिना डाले हैं (छन्द सं० २७, ३०) (२) तलवारों के प्रसंग में सिरोही, सुरती, सुलेमानी आदि तलवारों के नाम लिए हैं (छन्द म० १४७) (३) तोपों की चर्चा के समय विभिन्न प्रकार की तोपों की सूची लिख डाली है (छन्द सं० ६३, ६०) (४) एक स्थान पर विभिन्न हथियारों के नाम लिख डाले हैं (छन्द सं० ११२) और (५) कर्मफल प्राप्ति के महत्व तथा क्षात्र धर्म का प्रतिपादन जिसका कोई अवसर ही न था (छन्द सं० ६७, १११)

पद्माकर के ऊपर फारसी के वातावरण का भी प्रभाव पड़ा था। इनकी रचनाओं में फारसी-अरबी (उर्दू) के अनेक शब्दों का प्रयोग तो हुआ ही है। साथ ही इनकी कविता-शैली पर फारसी कविता की परम्पराओं की भी छाप पड़ी थी। जैसे —

१—पद्माभरण में कई जगह दिल में आग लगाई गई है। (छन्द सं ७८, ३३८)

२—जगद्विनोद में शृंगार-रस-वर्णन है अत उसमें ऐसे स्थल अनेक हैं कहीं कलेजा निकालने की चर्चा है (छन्द सं० ७६) तो कहीं तड़फने और आहें भरने की बात है (छन्द म० ११७) कहीं बाजार बीरन बेचारे कामीजनों पर गजब की दुधारी तलवार चलाती है (छन्द स० १९२) तो कहीं विपतम के

---

५ शब्दों के आगे कोष्ठक में छन्द सं० दी गई है।

हिम्मत बहादुर विरुदावली सामिली, मौज (४) कत्ल (१९) मालूम, गनीम (१२) मुलुक (१६) अमल, बादशाहत (१०) सिरही, मीरन, सिपाही, (७८) मेहर, कहर, दरियाव, गजब (६६) जहान, मुकर्रर, गनिम दर गनिम (१०२) उमरी, बखतर, जग जिहाद (१२०) जुलफिकार (१२१) सफजंग, फतह (२१०) पद्माभरण, जाहिर (१६३) तरफदारी (१४७) जगद्विनोद, जाहिर (२) दरियाव (२) दराज उमर दराज (६) इसी प्रकार देखें जगद्विनोद सं० स० ७१ १४०, १५०, १२० १६३, १००, १८१, १८४ १६६, १६८, २०२, २००, ११२, २२६, ११८, ४११, ४३६, ४७१, ४२१, ४४०।

बिना गुलाल और अरगजा बिखरो और फाग बरसाने लगते हैं (छन्द सं० १८२) +

जिस समय पद्माकर का आविर्भाव हुआ उन दिनों सामाजिक जीवन विलास में आकंठ निमग्न था। पद्माकर के वर्णनों में इस वातावरण की आद्योपान्त झलक मिलती है + यथा।

बजत बीन डफ बाँसुरी, रह्यो छाइ रस-राग।
मिस गुलाल के तियन पै, पिय बरसत अनुराग॥

—"पद्माकर छन्द सं० ५३"=

शृंगार रस का वर्णन करते समय आलम्बन विभावान्तर्गत नायक नायिका के लिए कृष्ण और राधिका नामों को प्रयुक्त करने की एक परिपाटी सी बन गई थी। पद्माकर ने भी उक्त परम्परा का निर्वाह किया और कृष्ण-राधा को साधारण नायक-नायिका के रूपों में निस्संकोच भाव से ग्रहण किया। (=)

+ और भी देखें छन्द सं० १४७, १८०, २०१।

+ पद्माभरण छन्द सं० २२२, २२७ २५०, २६१।

जगद्विनोद छन्द सं० १९, ६५, ७४, ७८, ८२, ८६, ९०, ९६, १००, १०१, १०४, १२०, १३१, १५६, १८५, २०३, २०५, २०७, २२८, २६२, ४१७ तथा फुटकर छन्द सं० ४, २४ आदि।

= पद्माभरण छन्द सं० ५१, ६३, ७३, ११४, १३८, २२५, जगद्विनोद छं० सं० ८, २६, १३६ ३१०, ४१५, ४२७, ४३४, ४४१, ४७४, ५६१ आदि।

(=)पद्माभरण, घनश्याम (४८) गुपाल (७३) तथा देखें छन्द सं० २२६, २३१, २३५ २६७ आदि।

जगद्विनोद—रसिक सिरोमनि साँवरे (२) वृषभान किशोरी, नंद किशोर (१४) तथा देखें छन्द सं० ४३, ७८, ८७, ९१, ९६, १००, १०२, ११०, ११३, १२२, १२८, १६३, १८५, २००, २०५, २१७, २१३, २२८, २३०, २६०, ४१५, ४७०, ४३३, ५२४ ५५७ आदि। फुटकर छन्द सं० २२, २४, २५, २६।

समसामयिक परिस्थितियों और परम्पराओं के अनुसरण के फलस्वरूप पद्माकर द्वारा लिखे गए वर्णनों में यथा स्थान अश्लीलता आ गई है। यथा—

रीति रची बिपरीति रची रति,प्रीतम संग अनंग झरी में।
त्यों 'पद्माकर' टूटे हरा ते, सरासर सेज परे सिगरी में॥
यों करि केलि बिमोहित ह्वै रही, आनंद की सुघरी उघरी में।
नीवी औ बार संभारिबे की सु, भई सुधि नारि कों चारि घरी में॥

—"जगद्विनोद छन्द सं० ४१" ×

शृंगार रस का वर्णन—स्थायी भावों का वर्णन करते हुए पद्माकर ने हृदय में उत्पन्न होने वाले रस अनुकूल विकार को स्थायी भाव कहा है। ❀ परम्परागत नौ स्थायी भाव लिख कर "रति" स्थायी भाव का इस प्रकार वर्णन किया है।

सुप्रिय-चाह तें होत जो सुमन अपूरब प्रीति।
ताही को रति कहत हैं, रस-ग्रन्थन की रीति॥

—जगद्विनोद छन्द सं० ४५६"

रति के उदाहरणान्तर्गत पद्माकर ने उसे प्रिय के हृदय में उत्पन्न होने वाला प्रेमांकुर कहा है। ऽ

पद्माकर का रस-निरूपण-वर्णन निम्नलिखित है :—

मिलि बिभाव अनुभाव पुनि, संचारिन के वृन्द।
परिपूरन थिरभाव यों, सुर स्वरूप आनंद॥
सो सिंगार द्वै भाँति को, दंपति मिलन संयोग।
अटक जहाँ कछु मिलन की, सो शृंगार वियोग॥

जगद्विनोद छन्द सं० ६०४ ६१४"

इसका सारांश यह हुआ कि :—

१—रति स्थायी भाव पुष्ट होने से शृंगार रस व्यंजित होता है।

× जगद्विनोद छन्द सं ३९, ४१, ८६, ११५।

❀ जगद्विनोद छन्द सं० ४०२।

ऽ जगद्विनोद छन्द सं० ४०८।

२—कवि परम्परा के अनुसार शृङ्गार रस रसिकजनों का प्यारा रहा है।

३—शृङ्गार रस के आलम्बन नायक और नायिका हैं।

३—शृङ्गार रस के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत सखा, सखी, वन, उद्यान आदि के विहार, हाव, भाव, मृदु मुस्कान तथा अन्य प्रकार की केलि क्रीड़ाएँ आती हैं।

४—शृङ्गार रस के नौ अनुभाव हैं (आठ अनुभाव तो परम्परा प्रसिद्ध हैं ही) पद्माकर ने "जृ भा" एक और अनुभाव माना है। =

६—उन्माद आदि इसके सञ्चारी भाव हैं।

७—शृङ्गार रस के देवता भी कृष्ण हैं।

८—शृङ्गार रस का वर्ण श्याम है।

९—शृङ्गार रस रसराज है।

१०—दम्पति के मिलन और मिलन में घटक के अनुसार शृङ्गार रस के दो भेद होते हैं। सयोग और वियोग।

विशेष—पद्माकर ने आलम्बन विभाव के अन्तर्गत चार प्रकार के दर्शनों, श्रवण, चित्र, स्वप्न तथा प्रत्यक्ष का वर्णन किया है। ऽ

संयोग शृ गार-वर्णन—

१—कल कुण्डल दुहुं डुलत, खुलत अलकावलि बिपुलित।
स्वेद सीकरन मुदित, तनक तिलकावलि सु ललित॥
सुरत मध्य मति लसत, हरष हुलसत चख चंचल।
कवि 'पद्माकर' छकित, झपति झपि रहत दृगंचल॥

= स्तंभ स्वेद रोमांच कहि, बहुरि कहत स्वर भंग।
कंप वरन वैवर्न्य पुनि, आँसू प्रलय प्रसंग॥
—"जगद्विनोद छन्द सं० ३६४'
अंतरगत अनुभाव में, आठहु सात्विक भाव।
जृ भा नवम बखानहीं, जे कवीन के राव॥
—"जगद्विनोद छन्द सं ३६५"

ऽ जगद्विनोद छन्द सं० १२१, १२२।

इमि नित विपरीत सुरति समै, अस तिय साधक सु सब।
हरि हर बिरंचि पुर सरगपुर, सुरपुर लै कह काम अब॥
—"जगद्विनोद छन्द सं० ६१५"

नायिक-नायिका आलम्बन विभाव हैं। कुण्डलों का झुलना, अलकावलि का झुलना, चपल दृगों के झुकमने से भ्रू निक्षेपादि का व्यंजित होना आदि हाव उद्दीपन हैं। नेत्रों का मुकुलित होना मानसिक अनुभाव की व्यंजना करता है। 'स्वेद' एवं 'कंप' सात्विक अनुभाव हैं। हर्ष, चपलता तथा अवहित्था संचारी भाव हैं। दृगचल का चपना कायिक अनुभाव होकर नारी सुलभ लज्जा को अभिव्यंजित कर रहा है और रस परिपाक में पूर्ण सहायक है।

२—तिय पिय के पिय तीय के नखसिख साजि सिंगार।
करि अदली तन मन हू को, दंपति करत बिहार॥
—"जगद्विनोद छन्द सं० ६१५"

दम्पति आलम्बन विभाव है। एकान्त स्थान उद्दीपन विभाव है। नख-शिख के साज-शृंगार आहार्य अनुभाव हैं। 'विहार' शब्द द्वारा दम्पति के आमोद प्रमोद में पूर्ण रूपेण अनुरक्त होना अभिप्रेत है तथा अनुभावों का व्यंजक है। 'लीला' तथा 'विलास' हाव स्पष्ट हैं। 'हर्ष' संचारी भाव व्यंजित है। रति स्थायी भाव पूर्णतया परिपुष्ट है।

३—तीर पर तरनि तनूजा के तमाल तरे,
तीज की तयारी ताकि आई सखियान हैं।
कहै 'पदमाकर' सो उमंगि उमंग उठी,
मेंहदी सुरंग की तरंग नखियान में॥
प्रेम रंग बोरी गोरी नवलकिसोरी तहाँ,
झूलति हिंडोरे यों सुहाई सखियान में।
काम झूले उर में उरोजन में दाम झूलें,
स्याम झूले प्यारी की अन्यारी अँखियान हैं॥
—"फुटकर छन्द सं० ३०"

उक्त कथन में हिंडोला झूलने का वर्णन है, श्रावण मास, हरियाली तीज,

तरनि-तनूजा-तीर तथा समाज के पूर्व उद्दीपन विभाव हैं। रोमांच एवं कंप सात्त्विक अनुभाव हैं। हर्ष और गर्व सचारी भाव व्यंजित हैं। हृदय में उमगों का उठना मानसिक भाव है। 'स्याम मूरी प्यारी की अम्यारी अँखियान में' ये शब्द संयोग-शृङ्गार को पूर्णतया परिपक्व बना देते हैं।

लक्षण-उदाहरण के अतिरिक्त भी पद्माकर ने यथा-स्थान संयोग-शृङ्गार के वर्णन लिखे हैं। +

वियोग शृङ्गार का वर्णन—पद्माकर ने विप्रलम्भ शृङ्गार का लक्षण इस प्रकार लिखा है। 'जहाँ प्रिय प्रिया का बिछोह दुःखदायी हो वहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार होता है। × यथा

४—सुम सीतल मंद सुगंध समीर, कछू छल छंद से छ्वै गये हैं।
'पद्माकर' चांदनी चंद हू के, कछू औरहि डौरन च्वै गये हैं।
मनमोहन सों बिछुरे इत ही, बनि कै न अबै दिन द्वै गये हैं।
सखि वे हमते तुम वेई बने, पै कछू के कछू मन ह्वै गये हैं।
—"जगद्विनोद छन्द सं० ६१८"

नायिका अपनी सखी से अपनी विरहावस्था का वर्णन कर रही है। शीतल मन्द सुगन्ध समीर तथा चन्द्रिका उद्दीपन विभाव हैं। प्रिय समागम के समय सुखद लगने वाली समस्त वस्तुएँ वियोग समय दुःखदायिनी बन जाती हैं। मन का फिर जाना मानसिक अनुभाव है तथा विषाद एवं त्रास संचारी भावों की व्यंजना करता है। %

पद्माकर ने वियोग-शृङ्गार के तीन भेद किए हैं। पूर्वानुराग, मान और प्रवास।

+ पद्माभरण छं० सं० ६६। जगद्विनोद छं० सं० १९, ४६, ११८, १२०, १२१ फुटकर छ० सं० २२, ३०। पद्माभरण में प्रत्यक्ष प्रमाण अलंकार के उदाहरण छं० सं० २०८, ३११।

× जगद्विनोद छं० सं० ६१७।

% जगद्विनोद छन्द सं० ६१६ ६११।
छन्द सं० ६२९, ६४०।

मोहिं तजि मोहनै मिल्यो है मन मेरो दौरि,
नैन हू मिले हैं पेखि देखि साँवरो शरीर।
कहै 'पद्माकर' त्यों तानमय कान भये,
हौं तो रही जकि थकि भूली सी भ्रमी सी बीर।
ये तो निरदई दई इन को दया न दई,
ऐसी दसा भई मेरी कैसे धरौं तन धीर।
होत मन हू के मन नैनन के नैन जो पै,
कानन के कान तो पै जानतो पराइ पीर।

—"जगद्विनोद छन्द सं० ६२५"

कृष्ण के प्रथम दर्शन से व्रजबाला के हृदय में प्रेमांकुर उत्पन्न हो गया है। मुरली की टेर ने रति-भाव को उद्दीप्त किया है। जकी-सी, भूली-सी थकी-सी तथा भ्रमी-सी अनुभाव हैं। *विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत पूर्वानुराग पूर्णतया परिपुष्ट है।*

मान के समय नायक-नायिका का सान्निध्य होने पर भी मानसिक साम्य नहीं होता है। इसी कारण उसे वियोग का भेद माना गया है। पद्माकर ने लघुमान का लक्षण 'पर तिय दरसन दोष तें करै जु तिय कछु रोष। (छन्द सं० ६२६) कह कर दिया है *उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित छन्द दिया है।*

याही के रंगो है रंग याही के पगी है मग,
याही के लगी है संग आनन्द अगाधा को।
कहै 'पद्माकर' न चाहै तजि नेकु दृग,
टारन तें न्यारो कियो एक पल आधा को।
ताहू पै गोपाल काहू ऐसे ख्याल खेलत हैं,
आन गोपरबे को देखिबे को करि साधा को।
काहू पै चलाइ चख प्रथम खिझावैं फेरि,
बाँसुरी बजाइ कै रिझाइ लेत राधा को।

—"जगद्विनोद छन्द सं० ६३०"

इस छन्द में लक्षण के अनुरूप उदाहरण नहीं है। यहाँ नायक ने नायिका को मानचेष्टाओं को देखने के लिए जान-बूझ कर उसे रुष्ट किया है और तुरन्त ही मना लिया है। पद्माकर ने वियोगावस्था के वर्णन के अन्तर्गत केवल पाँच अवस्थाओं अभिलाषा, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप और मूर्छा के वर्णन लिखे हैं +

इस लक्षण उदाहरण वाले क्रम के अतिरिक्त भी पद्माकर ने अन्य कई स्थलों पर विप्रलम्भ-शृङ्गार सम्बन्धी वर्णन लिखे हैं। ×

हे हरि तुम बिन राधिका, सेज परी अकुलाति।
तरफराति तमकति नचति, सुसुकति सूखति जाति।
—"पद्माकर छन्द सं० १६४"

उपर्युक्त वर्णन में फारसी की शायरी का प्रभाव स्पष्ट है। यह ऊहापोह उसी की देन है।

परम्परानुसार पद्माकर ने यथा-स्थान विरहोपचारों का भी वर्णन किया है। ÷

आई फाग खेलन गुविंद सों अनन्द भरी।
जा को लखे लंक मंजु मखतूल ताग सो।
कहै 'पद्माकर' तहाँ न ताहि मिल्यो स्याम,
छिन में छबीली कों अनंग दयो दाग सो।
कौन करै होरी कोऊ गोरी समुझावै कहा,
नागरी कों राग लग्यो विष सो बिराग सो।
कहर सी केसरि कपूर लग्यो काल सम,
गाज सो गुलाब लग्यो अरगजा आग सो।
—"जगद्विनोद छन्द सं० १८५"

+ जगद्विनोद छन्द सं० १४२, १६४।

× जगद्विनोद छन्द सं० १४२ १५५ तथा छन्द सं० २०६ ' २२६ फुटकर छन्द सं० ३१, ३५।

÷ जगद्विनोद छन्द सं० १६६।

उद्दीपन विभाग का वर्णन—पद्माकर ने उद्दीपन विभावान्तर्गत सखा सखी, दूती, वन उपवन, षट्ऋतु, पवन, चन्द्र, चाँदनी चन्दन तथा पुष्पराग के वर्णन लिखे हैं + पद्माकर ने चार प्रकार के सखाओं के लक्षण-उदाहरण सहित वर्णन किये हैं। पीठमर्द, विट, चेटक तथा विदूषक सखी के भेद न करके उसके कार्यों-मण्डन शिक्षा, उपालम्भन और परिहास के वर्णन किये हैं।

दूतियाँ चार प्रकार की बताई हैं—उत्तमा, मध्यमा, अधमा तथा स्वयंदूती। इनके दो काम हैं — विरह निवेदन तथा संघट्टन।

इन वर्णनों में कहीं-कहीं पद्माकर ने समाज की वास्तविक स्थिति के सुन्दर चित्रण किए हैं जो सर्वथा मनोवैज्ञानिक भी हैं।

गोरी कों जु गोपाल कों, होरी के मिस ल्याइ।
बिजन साँवरी खोरि में, दोऊ दिए मिलाइ।
—"जगद्विनोद छन्द सं० २५४"

उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत पद्माकर ने षट्ऋतु वर्णन किया है जो तत्कालीन विलासी वातावरण से खूब अच्छी तरह प्रभावित है।

गुलगुली गिलमें गलीचा हैं गुनीजन हैं,
चाँदनी हैं चिक हैं चिरागन की माला हैं।
कहैं 'पद्माकर' त्यों गजक गिजा हैं सजी,
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं।
सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हें,
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला हैं बिनोद के रसाला हैं,
सुबाला हैं दुसाला हैं बिसाला हैं चित्रसाला हैं।
—"जगद्विनोद छन्द सं० ३८८"

+ जगद्विनोद पृ० सं० ३३८ ३८६।
+ जगद्विनोद पृ० । ० ३३३।
जगद्विनोद पृ० सं० ३०८ ३८६।

परम्परा निर्वाह के हेतु लिखे जाने वाले वर्णनों के अतिरिक्त भी पद्माकर ने यथा स्थान ऋतुओं तथा होली आदिक उत्सवों के सुन्दर वर्णन लिखे हैं। +
यथा—

मौंरन को गुञ्जन विहार वन कुञ्जन में,
मञ्जुल मलारन को गावनो लगत है।
कहै 'पद्माकर' गुमान हूँ तें मान हूँ तें,
प्रान हूँ तें प्यारो मनभावनो लगत है।
मोरन को सोर घन घोर चहुँ ओरन,
हिंडोरन को वृन्द छवि छावनो लगत है।
नेह सरसावन में मेह बरसावन में,
सावन में झूलिबो सुहावनो लगत है।
—"फुटकर छन्द सं० ६७"

यह हिंडोला-वर्णन है। भ्रमरों की गूँज, मल्हार संगीत की ध्वनि, केकी की कूक, वर्षा की वारि बूँदे आदि उद्दीपन ही उद्दीपन हैं। ×

संयोग के समय सुखदायी वस्तुएँ वियोगावस्था में दुःख देने वाली बन जाती हैं। कविगणों ने उद्दीपन विभावान्तर्गत इस सम्बन्ध में सुन्दर और हृदयहारी वर्णन लिखे हैं। पद्माकर ने एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उनके विचार से वे पदार्थ, जो साधारणतया सुख कर नहीं लगते हैं, प्रिय समागम के समय अथवा प्रिय मिलन की खुशी में सुहावने प्रतीत होने लगते हैं।

दिन के किवारि खोलि कीनो अभिसार, पै
न जानि परी काहू कहाँ जाति चली छल सी।
कहै 'पद्माकर' न नाँक री संकोयो जाहि,
कांकरी पगनि लगै पंकज के दल सी।

+ जगद्विनोद छं० सं० ८८, ८६, ११६, ११७, ११६, १२०। फुट छं० सं २४, ३०।

× पद्माभरण छंद सं० ११ ३७, ११६, १८०, १८२, २०१। जगद्विनोद छं० सं० १२, २३, २४, २२, २८, २०३, २२१।

कामद सो कानन कपूर ऐसी धूरि लगे,
पट सो पहार नदी लागत है नल सी।
घाम चाँदनी सी लगै चन्द सो लगत रवि,
मग मखतूल सो मखी हू मखमल सी।
—"जगद्विनोद छन्द सं० २३६"

नख शिख वर्णन—पद्माकर ने प्राचीन पद्धति पर नख-शिख निरूपण न लिखकर यथा स्थान नायिका की सुन्दरता के वर्णन लिखे हैं। +

कमल चोर दृग, सुख अधर, विद्रुम-रिपु निरधार।
कुच कोकन के बन्धु हैं, तम के वादी बार।
—"पद्माभरण छन्द सं० २१"

ये अलि या बलि के अधरान में, आनि चढ़ी कछु माधुरई सी।
ज्यों 'पद्माकर' माधुरी त्यों कुच, दोउन की चढ़ती उनईसी।
ज्यों कुच त्यों ही नितंब चढ़े कछु, ज्यों ही नितंब त्यों चातुरईसी।
जानि न ऐसी चढ़ाचढ़ि में किहि, धौं कटि बीच ही लूटि लईसी।
—"जगद्विनोद छन्द सं० २२"

फुटकर छन्दों में नायिका के नेत्र, तिल तथा हास के वर्णन मिलते हैं। (फुटकर छन्द सं० १८, १६, २०, २१।) देखिये निम्नलिखित छन्द में फारसी के प्रभाव से अनुप्राणित नेत्र-वर्णन।

रूप रस चाखैं मुख रसना न राखैं फेरि,
भाखैं अभिलाखैं तेज उर के मभारतीं।
कहै 'पद्माकर' त्यों कानन बिना हू सुनैं,
आनन के मान यों अनोखे मन मारतीं।
बिन पग दौरैं बिन हाथन हथ्यार करैं,
कोर पै कटाच्छन पटा से भूमि भारतीं।

+ पद्माभरण छ० सं० ३६, ३७, ११६ १८०, १८१, १८७।
जगद्विनोद छ० सं० १६, ३१, ७४, ६६, ५८, २०६, २२२।

पालन बिना ही करैं लालन ही बार आँखें,
पावतीं जो, पाखें तो कहा धौं करि डारतीं।
—"फुटकर छन्द सं० १९"

अनुभाव, हाव तथा संचारी भाव का वर्णन—पद्माकर ने ९ अनुभाव लिखे हैं। ८ प्रचलित अनुभाव तथा ९ वां जृंभा। (जगद्विनोद छन्द सं० ४१६, ४२०)।

पद्माकर ने परम्परागत लीला आदिक १० हावों का वर्णन किया है। + इन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि हाव अनुभाव के अन्तर्गत आते हैं तथा इनका वर्णन केवल संयोग-शृङ्गार-वर्णन के अन्तर्गत ही हो सकता है। पद्माकर ने हाव-लक्षण इस प्रकार दिया है।

अनुभावहि में आनिये, लीलादिक जे हाव।
ये सयोग शृंगार में, बरनत सब कवि राव।
— 'जगद्विनोद छन्द सं० ४२३"

पद्माकर ने परम्परागत तेंतीस संचारी भाव ही माने हैं। ×

नायिका-भेद-वर्णन—मतिराम की भाँति पद्माकर ने भी नायिका का यही लक्षण बताया है कि जिस रमणी को देखकर शृङ्गार रस का भाव उत्पन्न हो, उसे नायिका कहते हैं। यथा—

रस सिंगार को भाव उर, उपजत जाहि निहारि।
ताही कों कवि नायिका, बरनत बिबिध बिचारि।
—"जगद्विनोद छन्द सं० ११"

पद्माकर द्वारा वर्णित नायिका-भेद संक्षेप में इस प्रकार हैं।

(१) त्रिविध नायिका % स्वकीया, परकीया और गणिका।

(२) अवस्था-क्रम से स्वकीया के तीन भेद * मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा।

+ जगद्विनोद छं० सं० ४१२ ४६७।

× जगद्विनोद छं० सं० ४१२ २०१।

% जगद्विनोद छं० सं० १६।

* जगद्विनोद छं० सं० २०।

(३) मुग्धा के दो भेद + अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना तथा ज्ञात यौवना के दो भेद × नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा।

(४) प्रौढ़ा के दो भेद + रतिप्रीता और आनन्द संमोहिता।

(५) मान समय के अनुसार मध्या और प्रौढ़ा प्रत्येक के तीन-तीन भेद × धीरा, अधीरा और धीराधीरा।

(६) परकीया के दो भेद + ऊढ़ा और अनूढ़ा।

(७) षट्विध परकीया = गुप्ता (भूत वर्तमान, भविष्य) विदग्धा (वचन क्रिया) लक्षिता, कुलटा, मुदिता और अनुशयाना। (पहिली, दूसरी और तीसरी।)

(८) उपर्युक्त समस्त नायिकाओं में प्रत्येक के तीन-तीन भेद ० अन्य सुरति, दुखिता, मानवती और वक्रोक्ति गर्विता (प्रेम गर्विता रूप गर्विता)।

(९) दशविध नायिकायें + प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा उत्कंठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, प्रवत्स्यत्प्रेयसी तथा आगतपतिका।

विशेष—(१) उपर्युक्त दशा में प्रत्येक के पांच विभेद किए हैं। मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और गणिका।

(२) अभिसारिका के तीन सामान्य भेद। दिवा, कृष्णा और शुक्ल। (जगद्विनोद छं० सं० ३११, ३१७)

(१०) नायिकाओं के अन्य भेद। उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

+ जगद्विनोद छं० सं० २१।

× जगद्विनोद छं० सं० १० ११।

+ जगद्विनोद छं० सं० ३८।

× जगद्विनोद छं० सं० ५१।

+ जगद्विनोद छं० सं० ७६।

= जगद्विनोद छं० सं० ८३, ८४।

० जगद्विनोद छं० सं० १२४ १२९।

+ जगद्विनोद छं० सं० १५०, १११।

पद्माकर ने विवाहिता पत्नियों के ज्येष्ठा और कनिष्ठा भेद भी किए हैं। (छ० सं० ७१) पद्माकर को फुटकर छन्दों में एक स्थल पर परकीया-नायिका का वर्णन पाया जाता है) (छन्द स० २१, २३ ।)

पद्माकर के नायिका-भेद वर्णन की सब-सी बड़ी विशेषता है मनोवैज्ञानिक विश्लेषण । ×

कुशल करै करतार तौ, सकल संक सियराइ।
यार क्वारपन को जु पै, कहूँ ठ्याहि लै जाइ।
—"जगद्विनोद छन्द सं० ८२"

है नहिं माइको भट्ट यह सासुरो है सबकी सहिबो करौ।
त्यों 'पद्माकर' पाइ सोहाग सदा सखियानहु कों चहिबो करौ।
नेह भरी बतियां कहि कै नित सौतिन की छतियां दहिबो करौ।
चन्द मुखी कहें होती दुखी तौ न कोऊ कहैगो सुखी रहिबो करौ।
—"जगद्विनोद छन्द सं० १३८"

आलम्बन विभावान्तर्गत होने के कारण पद्माकर ने नायक का निरूपण भी किया है।

सुन्दर, युवा, कला-प्रेमी आदि होने के अतिरिक्त इनके विचार से नायक युवतियों को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ होना चाहिए। + यह लक्षण नाट्यशास्त्र की अपेक्षा कामशास्त्र के अनुकूल पड़ता है।

नायक के भेद = विधिपूर्वक विवाहिता स्त्री के पति " पति, उपपति तथा वैसिक ।

नायक के अन्य भेद ✪ अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ठ ।

नायक के अन्य त्रिविध भेद + मानी, वचन-चतुर और क्रियाचतुर । यह त्रिभेद भी कामशास्त्र के अधिक अनुकूल पड़ता है ।

× जगद्विनोद छं० सं० १८, ८१, ११२, १३३, १३८, २११, ।

+ जगद्विनोद छं० स० ७०१ ।

= जगद्विनोद छ० सं० २८२ ।

✪ जगद्विनोद छं० सं० २८५ ।

+ जगद्विनोद छं० स० ३०१ ।

इसके बाद प्रोषितपति के लक्षण उदाहरण देकर अनभिज्ञ नायक का वर्णन करके इस विषय को समाप्त कर दिया है। ×

हमारे विचार से अनभिज्ञ नायक का वर्णन सर्वथा अस्वाभाविक है। जब नायक का गुण ही यह हो कि वह युवतियों को आकृष्ट करने में प्रवीण हो, तो फिर काम-चर्चा में उसकी अनभिज्ञता कैसी ? और फिर जिस पुरुष की यह दशा हो कि स्त्री-दर्श, स्पर्श, कथन, हाव भाव आदि जिसके चित्त को चलायमान न कर सकें + उसके पुरुषत्व अथवा पुंस्त्व पर सन्देह ही किया जायगा। यह नायक-कोटि में कदापि नहीं आ सकता है।

निष्कर्ष रूप से पद्माकर के शृंगार वर्णन की निम्नलिखित विशेषताएँ ठहरती हैं —

(१) पद्माकर ने पहले दोहा में लक्षण लिखकर बाद में कवित्त अथवा सवैया तथा दोहा में उदाहरण लिखे हैं।

(२) इन्होंने छ्मा एक नयो स्थायी भाव माना है।

(३) पद्माकर का शृंगार-वर्णन कामशास्त्र से प्रभावित है तथा यह सर्वथा मनोवैज्ञानिक है।

(४) आचार्यत्व-प्रदर्शन के प्रेम के कारण अनभिज्ञ नायक-वर्णन में अस्वाभाविकता आगई है। गर्विता के सविस्तार वर्णन के सम्बन्ध में भी यही बात समझ लेनी चाहिए।

(५) इनका नायिका-भेद मतिराम से बहुत प्रभावित है।

(६) पद्माकर ने भी स्वकीया के प्रेम को श्रेष्ठ बताया है। पति-पत्नी के सच्चे प्रेम को इन्होंने सोने में सुगन्ध बताया है।

> सोभित स्वकीया गन गुन गनती में तहाँ,
> तेरे नाम ही की एक रेखा रेखियतु है।
> कहै 'पदमाकर' पगी यों पति प्रेम ही में,
> पदुमिनि तो सी तिया तू सी पेखियतु है।

× जगद्विनोद छं० सं० ३१३ ३२० ।

+ जगद्विनोद छं० सं० ३१४, ३२० ।

सुबरन रूप जैसो तैसो सील सौरभ है,
याही तें तिहारो तन धन्य लेखियतु है।
सोने में सुगंध न सुगंध में सुन्यो री सोनो,
सोनो औ सुगंध तो में दोनों देखियतु है।
—"जगद्विनोद छन्द सं० १८"

पद्माकर ने भारतीय संस्कृति के अनुरूप पति की अनुगामिनी स्त्री को ही 'उत्तमा' नायिका कहा है और उसी को 'सोना और सुगन्ध' वाले भावों का स्वरूप बताया है।

बिनती इती है के हमेस हू मुद्दे तो निज,
पाइन की पूरी परिचारिका गने रहौ।

तथा

खान पान पीछे करति, सोवति पिछले छोर,
प्रान-पियारे तें प्रथम, जागति भावती भोर।
—"जगद्विनोद छन्द सं० २७० तथा १६"

अन्तिम समय—में पद्माकर ने भी इस सांसारिकता को व्यर्थ और सार हीन बताया। इनके द्वारा विरचित 'प्रबोध-पचासा' और 'गङ्गा लहरी' ये दो ग्रन्थ इसके प्रमाण्य हैं।

कुष्ट रोग होने पर पद्माकर ने 'राम रसायन' और 'प्रबोध-पचासा' लिखे थे तथा ग्वालियर के महाराज रतनसिंह के व्यवहार के फलस्वरूप उत्पन्न आत्मग्लानि के कारण यह पतित पावनी गंगा के किनारे चले गये थे और रास्ते में ही गंगा की स्तुति में इन्होंने गंगा-लहरी की रचना की थी। +

पद्माकर की भक्ति-विषयक रचनाओं में संसार की असारताओं का कथन है। विषम एवं विकट परिस्थिति के फेर में पड़े रहने कारण उनके हृदय में जो आत्मग्लानि हुई और फल स्वरूप जो भक्ति-भावना जाग्रत हुई, इनकी भक्ति-विषयक कविता के निर्माण का वे ही मूल कारण बनीं। यही कारण है कि इनकी

\+ देखें पद्माकर पंचामृत आमुख पृष्ठ सं० १८ १६।

कविताओं में भक्त और माया का निरूपण नहीं है, उसमें कहीं पेट की बेगार का निरूपण है, तो कहीं तृष्णा और लोभ की चर्चा। × यथा—

पेट की चौरे चपेट सही,
परमारथ स्वारथ लागि बिगारे।
त्यों 'पद्माकर' भक्ति भली सुनि,
दंभ के द्रोह के दीह नगारे।
छौन के आसरे आस तजों,
सुधि लेत न क्यों दसरत्थ दुलारे।
लोभ रु मद अपोतप जाल,
बिहाल परे कलिकाल के मारे।

तथा

यों मन लालची लालच मैं,
लगि लोग तरंगन मैं अवगाह्यो।
त्यों 'पद्माकर' गेह के देह के,
नेह के काज न काहि सराह्यो।
पाप किये पै न पातकी पावन,
जानि कै राम को नेम निबाह्यो।
चाह्यो भयो न कछू कबहूँ,
जमराज हू सों वृथा बैर बिसाह्यो।

"—प्रबोध पचासा छन्द सं० ४१, ४८"

पद्माकर द्वारा की गई देव-स्तुतियों तथा इनकी भक्ति-परक रचनाओं को देखने से प्रतीत होता है कि यह किसी सम्प्रदाय विशेष के अनुयायी नहीं थे। शृङ्गार-वर्णन लिखते समय इन्होंने 'राधा-कृष्ण' को ग्रहण किया और भक्ति की चर्चा करते समय 'सीताराम की शरण' ली। जिस प्रकार पद्माकर ने भक्ति और शृङ्गार को अलग-अलग रखा, दोनों के पृथक्-पृथक् वर्णन लिखे, उसी प्रकार इन्होंने कहीं भी राधा-कृष्ण और सीताराम का मिश्रण नहीं होने दिया। एक शृङ्गार-ध्येय रहे और दूसरे आराध्य-रूप।

× देखें गङ्गा-लहरी और प्रबोध-पचासा।

ग्वाल

कवि का जन्म वृन्दावन में हुआ था और यह वहीं के रहने वाले थे।
(वृन्दावन) पर उनके मकानों के चिन्ह मिलते हैं। उसी स्थान के
इनके कुछ वशजों का अभी तक निवास स्थान भी है। इनकी जन्म
तिथि शुक्ला ९, सम्वत् १८४८ ठहरती है। यह जाति के ब्रह्मभट्ट
थे तथा इनके पिता का नाम सेवाराम था।

रचना में पारगत हो जाने पर यह पजाब में नामा नरेश महाराजा
के यहाँ चले गए थे। 'रसिकानन्द' की रचना इन्होंने वहीं की थी।
महाराजा रणजीतसिंह के दरबार (लाहौर) में चले गए। वहाँ
व धन वैभव प्राप्त किया।

में अशान्ति और मारकाट होने के कारण (सम्वत् १९०० के आस
त्र पंजाब की पहाड़ी रियासतों में भ्रमण करने लगे। यह सुकेत मडी
समय में टिक गए। वहीं पर इन्होंने अपने दोनों लड़कों-खूबचन्द और
भी ब्याह किया। वहाँ अपने छोटे पुत्र खेमचन्द को छोड़कर यह
गए तथा यमुना तट के पास मकान बनवा कर रहने लगे। इनकी
राजा-महाराजाओं जैसी थी। यहाँ से यह यथा समय राजस्थान की रिया
रा करने आया करते थे। इस बीच में यह टौंक गये। वहाँ के नवाब
सार इन्होंने 'कृष्णाष्टक' बनाया। गदर के बाद सम्वत् १९१७ में इनकी
नवाब युसुफअलीखाँ से मित्रता हो गई थी और ७ महीने तक यह
दरबार में भी रहे।

स्था में इन्हें फिर रामपुर जाना पड़ा था। इस बार यह रामपुर में
६ महीना तक रहे। वहीं सम्वत् १९२२ के प्रारम्भ में इनकी मृत्यु
तीनाई साहब के मतानुसार ग्वाल की की मृत्यु रामपुर में सन् १८६७
गस्त को हुई थी। +

ग्वाल के जीवन वृत्त का आधार। श्री प्रभुदयाल मीतल का लेख
के जीवन वृत्तान्त की समीक्षा, ब्रज भारती भाद्र ४ वर्ष ६ पौष फाल्गुन
२००८ वि०।

कवितामों में ब्रह्म और माया का निरूपण नहीं है, उसमें कहीं पेट की बेगार का निरूपण है, तो कहीं तृष्णा और लोभ की चर्चा। × यथा—

पेट की चौरे चपेट सही,
परमारथ स्वारथ लागि बिगारे।
त्यों 'पद्माकर' भक्ति भजी मुनि,
दंभ के द्रोह के दीह नगारे।
कौन के आसरे आस तजौं,
सुधि लेत न क्यों दसरत्थ दुलारे।
जोग न जज्ञ जपोतप जाल,
बिहाल परे कलिकाल के मारे।

तथा

यों मन लालची लालच में,
लगि लोग तरंगन में अवगाह्यो।
त्यों 'पद्माकर' गेह के देह के,
नेह के काम न काहि सराह्यो।
पाप किये पै न पातकी पावन,
जानि कै राम को नेम निबाह्यो।
चाह्यो भयो न कछू कबहूँ,
जमराज हू सों वृथा वैर बिसाह्यो।
"—प्रबोध पचासा छंद सं० ४१, ४२"

पद्माकर द्वारा की गई देव-स्तुतियों तथा इनकी भक्ति-परक रचनाओं को देखने से प्रतीत होता है कि यह किसी सम्प्रदाय विशेष के अनुयायी नहीं थे। शृङ्गार-वर्णन लिखते समय इन्होंने राधा-कृष्ण को ग्रहण किया और भक्ति की चर्चा करते समय सीताराम की शरण ली। जिस प्रकार पद्माकर ने भक्ति और शृङ्गार को अलग-अलग रखा, दोनों के [illegible] लिये, उसी प्रकार इन्होंने कहीं भी [illegible] सीताराम [illegible] होने दिया। एक शृङ्गार-देव रहे [illegible] देव। [illegible]

× देखें गई [illegible]

ग्वाल

ग्वाल कवि का जन्म वृन्दावन में हुआ था और यह यहीं के रहने वाले थे। कालिपघाट (वृन्दावन) पर उनके मकानों के चिन्ह मिलते हैं। उसी स्थान के आस-पास उनके कुछ वंशजों का अभी तक निवास स्थान भी है। इनकी जन्म तिथि मार्गशीर्ष शुक्ला २, सम्वत् १८४८ ठहरती है। यह जाति के ब्रह्मभट्ट (बन्दीजन) थे तथा इनके पिता का नाम सेवाराम था।

काव्य-रचना में पारंगत हो जाने पर यह पंजाब में नाभा नरेश महाराज जसवन्तसिंह के यहाँ चले गए थे। 'रसिकानन्द' की रचना इन्होंने यहीं की थी। वहाँ से यह महाराजा रणजीतसिंह के दरबार (लाहौर) में चले गए। यहाँ इन्होंने अतुल धन वैभव प्राप्त किया।

पंजाब में अशान्ति और मारकाट होने के कारण (सम्वत् ११०० के आस पास) ग्वाल पंजाब की पहाड़ी रियासतों में भ्रमण करने लगे। यह सुकेत मण्डी के पहाड़ी राज्य में टिक गए। वहीं पर इन्होंने अपने दोनों लड़कों-खूबचन्द और खेमचन्द को भी बुला लिया। वहाँ अपने छोटे पुत्र खेमचन्द को छोड़कर यह मथुरा आ-गए तथा यमुना तट के पास मकान बनवा कर रहने लगे। इनकी रहन-सहन राजा-महाराजों जैसी थी। यहाँ से यह यथा समय राजस्थान की रियासतों में दौरा करने जाया करते थे। इस बीच में यह टोंक गये। वहाँ के नवाब की इच्छानुसार इन्होंने 'कृष्णाष्टक' बनाया। गदर के बाद सम्वत् १९१४ में इनकी रामपुर के नवाब युसुफअलीखाँ से मित्रता हो गई थी और ७ महीने तक यह रामपुर के दरबार में भी रहे।

वृद्धावस्था में इन्हें फिर रामपुर आना पड़ा था। इस बार यह रामपुर में १ वर्ष और ६ महीने तक रहे। वहीं सम्वत् १९२२ के प्रारम्भ में इनकी मृत्यु हुई थी। मीनाई साहब के मतानुसार ग्वाल जी की मृत्यु रामपुर में सन् १८६० की १६ अगस्त को हुई थी। +

+ ग्वाल के जीवन वृत्त का आधार। श्री प्रभुदयाल मीतल का लेख 'ग्वालजी के जीवन वृतान्त की समीक्षा, ब्रज भारती भाग ७ वर्ष ६ पौष फाल्गुन सम्वत् २००८ वि०।

ग्वाल कवि ने कई ग्रन्थ लिखे थे। काल क्रमानुसार उनके नाम ये हैं। यमुना लहरी (सम्वत् १८७६) रसिकानन्द (सम्वत् १८७६) हमीरा हठ (सम्वत् १८८१) राधा-माधव-मिलन, राधा अष्टक (सम्वत् १८८१) श्री कृष्ण-जू का नख-शिख (सम्वत् १८८४) नेह निबाह, बन्सी बीसा गोपी-पचीसी, कृष्णा अष्टक ये चारों ग्रन्थ (सम्वत् १८८४ के आस-पास) कवि दर्पण ॥ (सम्वत् १८९१) साहित्यानन्द (सम्वत् १९०४) रसरंग (सम्वत् १९०४) अलंकार-भ्रम भंजन, प्रस्तार-प्रकाश और भक्ति-पावन (सम्वत् १९१०) भक्ति-पावन का लघु संस्करण कवि हृदय विनोद के नाम से छप चुका है।

इस प्रकार ग्वाल ने चार रीति-ग्रन्थ लिखे,। 'रसरंग' और 'रसिकानन्द' (रस सम्बन्धी) श्री कृष्ण जू का नख-शिख, अलंकार-भ्रम-भंजन (अलङ्कार सम्बन्धी) और प्रस्तार-प्रकाश (पिंगल सम्बन्धी) "कवि-दर्पण" को चाहे आलोचना-ग्रन्थ कह लें चाहे रीति-ग्रन्थ। ग्वाल रीति-कालीन परम्परा के अन्तिम श्रेष्ठ कवि थे।

तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव—ग्वाल कवि ने अपने जीवन का अधिकांश भाग राज-दरबारों में सम्मानित होकर व्यतीत किया था, और वह स्वयं बहुत ठाट बाट तथा वैभव की रहन-सहन रखते थे। फलतः साटन, मखमल, मखतूल, कीमखा, मोती की भालरें आदि वस्तुएँ उनकी आँखों में सदैव भूला करती थीं।

> जगा जोति जैसी समे दानन की चहूँ ओर जैसोई।
> प्रभाहर कोहे रह्यो प्रकासा है।

॥ इस ग्रन्थ के तीन अन्य नाम प्रचलित हैं। दूषण दर्पण, साहित्य दर्पण, साहित्यभूषण।

हमने श्री कन्हैयालाल पोद्दार (मथुरा) के पास रसरंग की हस्तलिखित प्रतिलिपि देखी है। समस्त उद्धरण उसी से दिए हैं।

ब्याहु करि विमल बिछौना पै बिराजी बाल,
लाललगी सिरफ तिहारी ताहि आसा है।

\+ + × —"१, ६४"

फूल इके हरिचंदन को रुक्मिनी भगिनी कों दिया है कहाई।
क्यों न बने यह प्यारी बड़ी बिन बामन भेजि लियो है बुलाई।
त्यों कवि ग्वाल भजी जन लाख में मात पिता हू की लाज न छाई।
पीहर में कहवाई खराब औ भाई को सीस मुड़ाई के आई।

\+ + + —"१, ८६"

मंजुल मुकर मनि महल सहल तामें,
मखमल फरस बढ़ावे मोद हिया कों।
रोसन मृदंगी रंग रंग करि रंगी चंगी,
अंगी अलि अवली सवार्‌यो करे दिया कों।
ग्वालकवि आसन अंगूरी कर तान भरे,
भाव भरे प्याले अति प्यारे लगें जिया कों।
प्यारी कहे प्यारे पियो, प्यारो कहे प्यारी पियो,
पियो पियो कहत पिया ही दियो पिया कों।

\+ + + —"१, ६०"

आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए ग्वाल की वाक्‌चातुरी का उदाहरण भी देख लीजिए—

सीस फूल वृषभान कुंवर कौर तड़कोने,
केशघन दुति बीजु बरषा ऋतिवु की।
अम्बर अमल मुख मंजुल सरद ससि,
रूप की झला झली बरफ हिमारितु की॥
'ग्वाल' कवि मैन की तरंग रंग सिसुराई,
अधर कुसुम्भ श्री बसन्त सन्त जितु की।
मिले एक साल में सो लाल चलि लीजे हाल,
बाला के सरीर में बहार षटारितु की॥

—"ग्वाल रत्नावली छंद,सं० १०८"

मुसलमानों शासन के प्रभाव के कारण हिन्दी में फारसी अरबी के बहुत से शब्द घुलमिल चुके थे। ग्वाल नवाबों के सम्पर्क में आए थे। इनकी कविता में ढेर फारसी अरबी के अनेक शब्द पाये जाते हैं। 'रसरंग' में पाये जाने वाले कुछ शब्द यहाँ दिए जाते हैं। प्रत्येक शब्द के सामने कोष्ठक में छन्द संख्या लिख दी गई है। प्रथम उमंग कमाइन (५६) आपस अरबी (८०) कुफा (६०) कीमरवा (१०१) द्वितीय उमंग दूलाव (२) महताबी, सिताबी (११)* तृतीय उमंग "आरयार, बजारन, आटम, अरदार, इसारो, आसरो कीमखाबी मुख्तसिजयाद (७० ७४) पंचम उमंग वगा (७) खुसबोइन (८) सिरफ, खाइफ, खफगि (१४) दीदार (२१) षष्ठम उमंग नूर (१) बीज इमाम (७) सप्तम उमंग बागम (४६) सहखाने, ससखाने (२०) मुराफा इजाफा (११०)।

इनकी काव्य रचना पर यथा स्थान फारसी की पर्याप्त शैली का प्रभाव भी परिलक्षित होता है:—

> रेत की परी सी, आखें सफरी सी।
> पथरी सी, फेन बूंद मुखे भरी सी॥ —"१, १४८"
> मोहरे, चाल फेरना, मखमूल जाल।
> की फसन, फरफराते से खजन॥ —"१, १४६"

तथा—

> दूनरी चढ़ाइ रंग फ़र गाई खून री। —"६, ३६"

उन दिनों राधा-कृष्ण की भक्ति का अत्यधिक प्रचार था और भक्ति-भावना

---

* रसरंग प्रथम उमंग छन्द संख्या १८, ४८, ७३, १६१, ४२, १११, १२३, ११७ १८३, १८६।
" द्वितीय उमंग छ० सं० ४३, ६०, ७२, ९३, १०१।
" तृतीय उमंग छन्द सं० ४३ ३०।
" सप्तम उमंग छं० सं० ४७, ४२ ४६, ७६ से ८३ तक तथा ११३ से ११७ तक।—

विकृत हो चुकी थी। 'रसरंग' में ग्वाल ने मङ्गलाचरण में राधाजी की वन्दना 'त्रिभुवन की परमप्रिया कह कर' की है।

"राधा कृष्ण" का चरित्र और शृङ्गारिक जीवन प्रायः पर्यायवाची बन चुके थे। प्रारम्भ में लीलाधारी कृष्ण का ध्यान करके मानो कृष्ण और राधा को इन्होंने साधारण नायक नायिका के रूप में निस्संकोच भाव से ग्रहण किया है। ×

नवरस में सिंगार की, पदवी राज विसाल।
सो सिंगार रस के प्रभू, हैं श्री कृष्ण रसाल॥
सो श्री कृष्ण रसाल की, कहिए धन मन प्रान।
जिनकी लीला गाइ के, तरत जु सकल जहान॥
याते श्री मन राधिका, सरषो परिजु अभंग।
तिन पद पुन मिस्रु ग्वाल कवि, रचत ग्रंथ रसरंग॥
वृन्दावन तें मधुपुरी, किय सुखवास प्रमानि।
विदित विप्र बंदी विसद, नाम ग्वाल कवि जानि॥
× × × ×
नोहू रस के भेद सब, वरनत सहित उमंग।
राधा कृष्ण चरित्र मय रसिकन को रसरंग।

—"रसरंग प्रथम उमंग छंद सं० ५, ६"

समय के अनुसार ग्वाल ने भी जी खोल कर शृङ्गार-वर्णन लिखा है और वे कहीं-कहीं अश्लील भी हो गए हैं। % आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार

× रसरंग प्रथम उमंग छं० सं० २८, १०७, १११, १२६ १२७, १४२, १४५, १७७, १८१। द्वितीय उमंग छं० सं० १६, १६, ८१ तृतीय उमंग ४, ५, २६, पञ्चम उमङ्ग ७, २६, पञ्चम उमङ्ग १२, ४८, ६२, ७७। सप्तम उमङ्ग छन्द सं० ११८ से १६४ तक।

% रसरंग प्रथम उमंग छं० सं० १४४, १६२ द्वितीय उमंग २६, ६०, ६२, ६६, तृतीय उमङ्ग ७०, ७४, इनमें सुरतान्त सम्बन्धी वर्णन है।

यह एक विदग्ध और कुशल कवि थे पर कुछ फक्कड़पन लिए हुए। इनकी बहुत-सी कविता बाजारी है। * यथा—

दिया है खुदा ने खूब खुसी करो ग्वाल कवि,
खाव पियो, देव लेव यही रह जाना है।
राजा राव उमराव केते बादशाह भये,
कहाँ ते कहाँ को गये, लग्यो न ठिकाना है॥
ऐसी जिन्दगी के भरोसे पे गुमान ऐसो,
देस देस घूमि घूमि मन बहलाना है।
आए परवाना पर चले ना बहाना यहाँ,
नेकी कर जाना फेरि आना है न आना है॥
आई रात सोवत में बाल एक मेरे पास,
कान के तरौना मनु सूरज उदै भए।
जोम भई जोवन की जोति जुर जागी जोय,
अंग अंग कोमल गोदना गुदे भए॥
ग्वाल कवि नीवी खोलि जंघनि पे राखी जंघ,
मीजे रिस कुच कंचुक उदै भए।
हाय हम आगे जब ही कछु करन लागे,
तब ही उलट पापी पलक जुदे भए॥

—"स्वप्न वर्णन"

शृंगार रस का वर्णन—ग्वाल ने रस का निरूपण सर्वथा शास्त्रीय ढंग पर किया है। भाव, विभाव, संचारी, अनुभाव, रस, नायक आदि वह इस शास्त्रीय क्रम को लेकर चले हैं। +

---

* हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ संख्या ४०५ (सम्वत् १९९७, वाला संस्करण)।

\+ भाव चार प्रकार के। स्थायी, अनुभाव, विभाव तथा संचारी। (१, १० ११)। विभाव के दो भेद (१, १२) उद्दीपन का वर्णन (१, १६) संचारी भावों के भेद (१, २० १०)

रस का लक्षण देते हुए ग्वाल ने लिखा है कि—(१) विभाव, अनुभाव, सात्विक और सचारी जहाँ ये चारों मिल कर स्थायी भाव को पूर्ण बनावें वहीं रस होता है। (२) रस चिन्दानन्द परमब्रह्म के समान है। (३) रस के दो भेद होते हैं। लौकिक और अलौकिक। फिर अलौकिक वाले भाग के औपन यनिक विभेद के अन्तर्गत इन्होंने शृङ्गार, हास्य आदिक भी रस लिखे हैं। ×

रस की अलौकिकता की ओर संकेत करना ग्वाल की अपनी विशेषता है। इसके अतिरिक्त ग्वाल द्वारा वर्णित रस निरूपण की एक और बड़ी विशेषता है। इन्होंने सचारी भावों की सख्या ४० बताई है और सात्विक अनुभावों को सचारी भावों के विभेद के रूप में स्वीकार किया है। स्वतन्त्र रूप में नहीं लिखा है। प्रत्येक संचारी भाव से सम्बन्धित अनुभावों का उल्लेख भी किया है। यथा—

संचारी भावों के दो भेद होते हैं। तनज और मनज। तनज सात्विक अनुभाव है और मनज संचारी भाव है।

संचारी सो द्विविधि है तनज मनज करि पाठ,
मन सहाय सम्बन्ध सों तन भव सात्विक आठ।
—"रसरंग प्रथम उमंग छंद सं० ३७, ३८"

स्तम्भ, स्वेद आदि आठ सात्विक होते हैं (रसरग १, ४०) फिर छन्द संख्या ४३ से ८० तक स्तम्भ आदि सात्विक अनुभावों के लक्षण उदाहरण लिखे हैं।

संचारी भावों की संख्या किस प्रकार चालीस होती है, इसका विवेचन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है।

पाँचो इन्द्रिन जोग तें, एक एक प्रकटत आँच,
चक्षु, श्रोन पुनि घ्रान कहि, रसना त्वक में पाँच।
पाँच पाँच विधि सें प्रकट, होत जु सात्विक भाव,
इमि चालीस विधि में किए, नूतन विधि वर नाव॥
—"रसरंग १, ४८"

× रसरंग द्वितीय उमंग छन्द सं० १ — ६।

आठ सात्विक अनुभावों (१, १११) के अतिरिक्त ग्वाल ने नवाँ तन-संचारी भाव जृम्भा की भी चर्चा की है और इस सम्बन्ध में रसतरंगिणीकार भानुदत्त का मत स्वीकार किया है।

> कहूँ आदि कहूँ अन्त में, नींद अमल के जान।
> काम सम्भ्रमादिकन तें, उपजत जृंभा मान ॥
>
> —"रसरंग १, ६२"

इसी प्रकार इन्होंने तैंतीसवें मन संचारी भाव छल भी माना है।

> भानुदत्त जी ने लिख्यो, रसतरंगिनी माँहि।
> नूतन एक औरो बनत, छल संचारी आहि ॥
>
> —"रसरंग १, १६८"

अतः ग्वाल ने ४९ संचारी भाव, ३३ मन संचारी भाव तथा ९ तन संचारी भाव (सात्विक) लिखे हैं। यह इनकी सबसे बड़ी विशेषता है।

ग्वाल ने परम्परागत, रति आदिक नौ स्थायी भाव तथा नौ रस लिखे हैं। (२,१ १) श्रृंगार का पर्याप्त विस्तार से ७ उमंगों में किया है। शेष अन्य रसों को केवल एक उमंग-अष्टम उमंग में वर्णन कर दिया है।

रति स्थायी भाव का लक्षण इस प्रकार है—

> प्रिय कौं लखि सुनि काम मय मानस जनित विकार।
> अपरिपूर्ण सों कीजिए रति थाई उच्चार ॥
>
> —"रसरंग १, ७"

इन्होंने "श्रृंगार" पद का अक्षरार्थ निम्न प्रकार से किया है—

> मुख्य लिये है अंगपद समन्तात आकार।
> पुनि र कार कहि मदन कौं, अक्षरार्थ सु विचार ॥
> शृं ग आर की सन्धि करि, शृंगारी संचाहि।
> है सु मुख्यता भांतिय विधि, मदन को सुमिरहि माहिं ॥
>
> —"रसरंग २,७, ८"

प्रारम्भ में ग्रन्थ के अन्तर्गत "श्रृंगार" को रसराज तो इन्होंने कहा ही

है। + ग्वाल ने कवि परम्परानुसार शृङ्गार रस का रंग श्याम बताया है तथा यह भी कहा है कि श्री कृष्णजी इसके देवता हैं। ×

शृङ्गार रस के दो भेद किए हैं। + संयोग और विप्रलम्भ।

संयोग शृ गार रस का वर्णन—जहाँ प्रियतम और प्रियतमा के हिय और चित्त मिलने से अभीष्ट सिद्ध होता है, वहाँ 'संयोग, शृङ्गार मानते हैं। * यथा—

अ मोहन तें कछुक सचों ही पटिया हैं परी,
कचिर रुचौंही दिए माँग रंगराती हैं।
नैन अनी जोरे गोरे कोमल कपोल गोल,
मोतिन की बढ़िया हू बेसर सुहाती हैं॥
ग्वाल कवि मैं तो रति रीति के उलटि परयौ
रची बिपरीत प्रानप्यारी अलसाती हैं।
उचकि सचकि रहि रहि उचकत फेर
सकुच सकुच कुच मैल लगें छाती हैं॥ —"१, २"

संयोग शृङ्गार का यह उदाहरण समय के प्रभाव के कारण कुछ अश्लील सा हो गया है। इस उदाहरण के अतिरिक्त भी यथा-स्थान विशेषकर नायिका-भेद वर्णन में, ग्वाल ने संयोग-शृङ्गार सम्बन्धी छन्द लिखें हैं ✓ उनमें अधिकांश में विपरीत रति की चर्चा है तथा अश्लीलता की छाप है। यथा—

ब प्रीतम पास पलंग पै राजत, प्यारी पगी बतियाँ रसफीन में,
आसव आछो अगूरी हूँ क्यौं, अचवै अंचवावे अदा सुघरीन में।
त्यों कवि ग्वाल करै तुकलै न, कलै नई लावत हैं लहरीन में,
झूमें झुके झिझके झहरे, झमका झलके झमके झपकीन में॥
—'१, ८६

+ रसरंग प्रथम उमंग छन्द सं० २।

✗ वही द्वितीय उमंग छ० सं० १ ११।

+ वही पञ्चम उमंग छ० सं० १।

* वही पञ्चम उमंग छन्द सं० २

✓ वही पञ्चम उमंग छं० सं० ३०।

साजत पलंग पै उमंग, अंग अंग भरी
रंग रंग बसन सवारि पेन्हें सुघ पै।
मोतिन के छरे परे कानन में सानदार
हीरन के हार बेना बेदनी ससेच पै॥
ग्वाल कवि कहें तहाँ राजत रसिक लाल
ख्याल में विसाल मन आयो अति चपपै।
नैन लगे प्यारी ओर ओठ लगे प्याले ओर
जीभ लग्यो रति जोर कर लग्यो कुचपै॥

—"१, ६१"

विप्रलम्भ शृंगार रस का वर्णन—

प्यारी पिय में वांछित जु, अप्रापति सु निहारि।
हिय संजोग आसा रहे, सो वियोग सिंगारि॥

—"रसरंग षष्ट उमंग, छंद सं० २१"

विप्रलम्भ शृङ्गार के तीन भेद किए हैं ऽ प्रवास, पूर्वानुराग तथा मान। पूर्वानुराग के दो भेद किए हैं + अत्यानुराग और पूर्वानुराग।

प्रवास हेतुक विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन देखिए—

मेरे मन भावन न आए सखि सावन में,
लावन लगी है, लता लरजि लरजि के।
घूमें कबौं रुवें, कबौं धारें हिय फारें देया,
बीजुरी हू बारे, छारी बरजि बरजि के॥
'ग्वाल' कवि पातकी परम पातकी सों मिलि,
मोर हू करत सोर तरजि तरजि के।
गरजि गए जे घन गरजि गए हैं भला,
फेरि वे कसाई आए गरजि गरजि के॥

—"रसरंग षष्ठ उमंग छंद सं ३२"

ऽ रसरंग षष्ठ उमंग छन्द सं० ३०।
+ रसरंग षष्ठ उमंग छन्द सं० ३०।

यहाँ प्रवास हेतुक विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन है। वर्षा ऋतु तथा उसके साथ सामान श्रावण मास, बादलों का गर्जन, जलधार एवं बिजुरिया आदि उद्दीपन विभाव हैं। "प्रभु" सात्विक अनुभाव व्यंजित हैं। "त्रास" आवेग एवं "औत्सुक्य" संचारी भाव हैं। प्रिय मिलन का अभाव होने पर भी उत्कट अनुराग है। अतः रति स्थायी पूर्णतया परिपुष्ट होकर विप्रलम्भ शृङ्गार हुआ।

उर गई बात, पिय पर पुर जाइबे की,
मुर गई, जुर गई, विरहागि पुर गई।
घुर गई ही जो खेल उमङ्ग सो बुर गई,
फुरगई पीर मुख, द्युति ह्वै ओर गई॥
ग्वाल कवि अलि सों बिछुरि गई, लरि गई,
नारि हू निहुरि गई, नैंन सो निचुरि गई।
दुरि गई कोठरी में, मुरि गई सासें तकि,
जुरि गई लाज, लाजवंती सी सिकुर गई॥

यह भविष्यत् प्रवास जन्य विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन है। वैवर्ण्य, अश्रु आदि सात्विक अनुभावादि समस्त अवयव स्पष्ट हैं। रति स्थायी भाव तो है ही।

मुग्धा गमिष्यति पतिका का वर्णन है (रसरंग ७, ११)॥

यह नायिका की विरह-दशा का वर्णन है। विरही नायक पर क्या बीतती है, इसको इन्होंने प्रोषितपति वर्णन में स्पष्ट किया है।

रंगन की मेल तेल गरम समान लगे,
खेल की खिलाई सेल रेल सी लगत है।
फूलन की माल हाल, व्याल सी विहाल,
करे सौरभ जहर की लहर उमगत है॥
ग्वाल कवि गहर गुलालन की लाल,
मूठ मूठ सी लगत उर दागन दगत है।
नवलकिसोरी चित चोरी चोंप बोरी,
ऐसी गोरी बिन होरी अंग होरी सी लगत है॥

—"रसरंग सप्तम उमंग छंद सं० ४५"

विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत दस दशाओं का वर्णन किया है, + चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण।

निम्नलिखित कवित्त में वियोग शृङ्गार की स्मृति दशा का सजीव वर्णन देखिए—

ऐसी लौं न गरमी गलीचन के फरसों में,
है न बेसकीमती बनात के दुसाला में।
मेचन की लौज में, न हौज में हिमाम हू को,
मृगमद मौज में, न माफरान नाला में॥
ग्वाल कवि अंबर अंतर में अगर में न,
उमदा सबेरे हू में है न दीप माला में।
है दै हू दुसाला में न, अमलों के प्याला में न,
जैसी पाला हरन सकति प्यारी बाला में॥

—"रसरंग षष्ठ उमंग छंद सं० ५७"

उक्त छन्द में जानकारी की एक खानि सी भरी हुई है। यह ग्वाल के व्यापक ज्ञान का घोतक भी है। नायिका-भेद वर्णन के अन्तर्गत विप्रलम्भ शृङ्गार के अनेक उदाहरण लिखे गए हैं। स्वभावज चेष्टाओं को ग्वाल ने हाव कहा है। +

इन्होंने दस हावों के लक्षण सहित उदाहरण लिखे हैं लीला, विलास, विच्छित, विभ्रम, किलकिंचित मोट्टाइत, कुट्टमित विव्वोक, ललित और विहित।

आलम्बन विभाव वर्णन के अन्तर्गत ग्वाल ने नायिकों के भेद निम्न प्रकार से लिखे हैं—

१—जाति के अनुसार ४ भेद + पोषास, दत्त, कुम्मार और मग्र। इनमें

+ रसरंग पञ्चम उमंग छन्द सं० २१ १०१

+ रसरंग चतुर्थ उमंग छन्द सं० १६ १० पांचवीं उमंग छन्द सं० २० पञ्चम उमंग छन्द संख्या ३२।

+ रसरंग सप्तम उमंग छं० सं० २, ३।

पद्मिनी आदि नारियों के क्रम से समझ लेना चाहिए। क्रमानुसार इनके ही वर्णन होते हैं।

२—कर्मानुसार नायक के तीन भेद। = पति उपपति और वैसिक।

३—स्वभाव के अनुसार पति के चार भेद। [] अनुकूल, दक्षिण, धृष्ठ और शठ।

४—गुणानुसार तीन भेद। % उत्तम, मध्यम और अधम।

५—वैसिक नायक के तीन भेद। + उत्तम, मध्यम और अधमक।

६—त्रिधा नायक ॥ दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य।

७—नायक के अन्य तीन भेद। + मानी, चतुर और प्रोषितपति। चतुर के अन्तर्गत क्रियाचतुर और वाक्य चतुर नायकों को लिखा है।

८—फिर ग्रन्थ में नायक की दस विरह दशाओं की ओर संकेत किया है।

> विरह दसा दस जे कहीं तेतिहु प्रोषित माँहि।
> लछन वे ही सबन के यातें फिरि न लिखाहि॥
>
> —"रसरंग सप्तम उमंग छंद सं० ४२"

९—केलि कला की रीति से अपरिचित मूर्ख नायक को ग्वाल ने अनभिज्ञ कहा है और नायक का आभास बताकर दोष का समुचित परिहार कर दिया है। ꖴ

१०—नायक के सखा, उनके प्रकार, भेद तथा कार्यों का भी ग्वाल ने वर्णन किया है। × इस सम्बन्ध में ग्वाल ने कामशास्त्र की शिक्षाओं की ओर स्पष्ट संकेत किया है।

= रसरंग सप्तम उमग छं० सं० ४।

[] रसरंग सप्तम उमंग छं० सं० ६।

% रसरंग सप्तम उमंग छं० सं० १६।

+ रसरंग सप्तम उमंग छं० सं० २६।

॥ रसरंग सप्तम उमंग छं० सं० ३१।

+ रसरंग सप्तम उमंग छं० सं० ३७।

ꖴ रसरंग सप्तम उमंग छं० सं० ४४, ४५।

× रसरंग सप्तम उमंग छं० सं० ५०' ६६।

मदन मन्त्र बहु भाँति के औरनु मन्त्र अनेक।
नायक कों जु सिखावई सो सखर सख सविवेक॥

—"रसरंग सप्तम उमंग छंद सं० ६१"

नायिका भेद वर्णन—ग्वाल के समय तक विलासिता अपनी चरमावस्था पार कर चुकी थी। प्रत्येक दृष्टिकोण का मापदण्ड "मज़ा" और "नायिका" बन चुके थे। इनके द्वारा दिए गए नायिका के लक्षण में यह मनोवृत्ति स्पष्ट है।

रूपवती हू लखि जुमे अति प्रवीन गुनखान।
बहुत जायिका दायिका कहे नायिका जान॥

—"रसरंग २, १४"

नायिकाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया है।

१—जाति-भेद से ४ भेद + —पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी।

२—गुणानुसार तीन भेद × —उत्तमा मध्यमा और अधमा।

३—त्रिधा नायिकायें = —दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य।

४—धर्मानुसार तीन भेद + —स्वकीया, परकीया और गणिका।

५—स्वकीया के तीन भेद % —मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा।

६—मुग्धा के चार भेद [] —अज्ञातयौवना ज्ञात यौवना, नवोढ़ा और विश्रब्धनवोढ़ा।

७—प्रौढ़ा के दो भेद ॥ —रति-प्रीता और आनंद-सम्मोहिता।

विशेष—मध्या और प्रौढ़ा के सुरतान्त वर्णन किये हैं, जो प्रायः अश्लील

\+ रसरंग दूसरी उमंग छं० सं० ११।

× रसरंग दूसरी उमंग छं० सं० २६।

= रसरंग दूसरी उमंग छं० सं० ३३।

\+ रसरंग दूसरी उमंग छं० सं० ३६।

% रसरंग दूसरी उमंग छं० सं० ४०।

[] रसरंग दूसरी उमंग छं० सं० ४१, ४२।

॥ रसरंग दूसरी उमंग छं० सं० ६६।

है * प्रौढ़ा के 'सुरतान्त वर्णन" में विपरीत रति की चर्चा है। यथा—

करि रतिरीत विपरीति में रचाई आज अहा,
अहा कैसो लच्यो प्यारी को सुलंक है।
मसक भरत भरत ससकी करत करत,
रसकी नदी में लीन ह्वै गई निसंक है॥
ग्वाल कवि छाती पर छपकि छरी सी गई,
ले कै थर परी सी विसुधि भयो अंक है।
मेरो उर मखमल मृदुल बिछौना पाय,
सोयो मनो सरद की पून्यो को मयंक है॥

—"रसरंग दूसरी उमंग छंद सं० ७०"

८—पिय पर कोप करने के आधार पर मध्या और प्रौढ़ा के तीन भेद। धीरा अधीरा और धीराधीरा। +

इसके पश्चात् मान और मान मोचन का वर्णन किया है। =

९—परकीया दो प्रकार की कह कर, रूपासक्त और कामासक्त, इन्होंने परम्परानुसार दो भेद किए हैं। × ऊढ़ा और अनूढ़ा।

१०—अनूढ़ा के तीन भेद % सुखसाध्या, दुखसाध्या, और असाध्या। असाध्या के तीन भेद ० वद्धकुरूपिका, वद्धरूपिका, अतिकार्श्या।

नोट—मिश्रन की सुविधा पर यह वर्गीकरण आश्रित है।

११—ऊढ़ा सुखसाध्या के दो भेद () समया और असमया।

---

* रसरंग दूसरी उमंग छं० सं० ६९, ७०, ७१ ७२।

+ रसरंग दूसरी उमंग छं० सं० ७३, ७५।

रसरंग दूसरी उमंग छ० सं० ९७, ११२।

× रसरंग तीसरी उमंग छं० सं० १, २।

% रसरंग तीसरी उमंग छं० सं० ९।

० रसरंग तीसरी उमंग छ० सं० १०, १२।

(:) रसरंग तीसरी उमंग छं० सं० १८।

१२—समया के ५ भेद ※ मुग्धा लक्षिता, विदग्धा, मुदिता और अनुशयना। अमया के दो भेद % एकपुरुषासक्त और बहुपुरुषासक्त। बहुपुरुषासक्त को ही कुलटा कहा है।

इस उमंग को समाप्त करने के पूर्व बीच में वृत्तियों का वर्णन कर दिया है। (०)

१३—गणिका का कोई भेद नहीं किया है। +

१४—स्वकीया आदिक व्यापक भेद के अवस्था के विचार से १५ विभेद किए हैं। = (१) मध्य सभोग दुखिता, (२) गर्विता, (रूप, प्रेम, गुण) (३) गमिष्यतपतिका, (४) गच्छतपतिका, (५) प्रोषितपतिका (६) खंडिता, (७) कलहांतरिता, (८) विप्रलब्धा, (९) उत्कंठिता, (१०) वासकसज्जा, (११) स्वाधीनपतिका, (१२) अभिसारिका, ⟍ श्यामा, शुक्ला और दिवा। (१३) आगमिष्यतपतिका, (१४) आगच्छतपतिका, (१५) आगतपतिका।

विशेष—उपयुक्त भेद संख्या १ से १५ तक, प्रत्येक के मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और गणिका करके पाँच-पाँच उपभेद किए हैं। +

उद्दीपन विभाव वर्णन—उद्दीपन विभाव का "थाई कौं दीपत करै सो दीपन मानि" + ग्वाल ने उद्दीपन विभावों का इस प्रकार वर्णन किया है।

> चारु चाँदनी चन्द्रमा, घन बिज्जुरी अरु मेह।
> कोयल कोकिल चात्र गज, मोरादिक शुभ गेह॥

※ रसरंग तीसरी उमंग छं० सं० १४, २१।

% ,, ,, ,, ,, ,, २०, ११।

(०) रसरंग तीसरी उमंग छं० सं० ३८, ४३।

+ रसरंग तीसरी उमंग छं० सं० ६३।

= रसरंग चौथी उमग छं० सं० १ ४।

⟍ रसरग चौथी उमंग छं० सं० ८८।

+ देखें रसरंग चौथी उमंग छं० सं० १०, १११।

+ रसरंग प्रथम उमंग छं० सं० १३।

चदनादि, सौरभ सफल, त्रिविध समीर इकत।
बाग राग नृत चित्र सर, पद् ऋतु सुख सरसंत॥
—"रसरग सप्तम उमंग छन्द सं० ६६"

इसके अन्तर्गत ग्वाल ने पट्ऋतु वर्णन सविस्तार लिखा है (०) इन वर्णनों ग्रीष्म ऋतु वर्णन छ० सं० ७८, ८६ पावस ऋतु वर्णन ६०.. १०१ शरद ऋतु वर्णन, १०२.. १०४, १०५, ११० शिशिर ऋतु वर्णन ११८, ११४।
के सम्बन्ध में दो बातें विशेप रूप से ध्यान देने योग्य हैं (१)—वर्णन के पूर्व प्रत्येक ऋतु का लक्षण लिख दिया है ( ) तथा (२)—ये वर्णन आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों ही रूपों में लिखे हैं।

सरसों के खेत की बिछायत वसन्त बनी,
तामें खरी चाँदनी बसन्ती रति कंत की।
सोने के प ग पर वसन बसन्ती साज सोन,
जुही माले हालें हिय हुलसन्त की॥
ग्वाल कवि प्यारो पुखराजन को प्यालो,
पुर प्यावत प्रिया को करे बात विलसन्त की।
राग में बसन्त बाग बाग में बसन्त फूल्यो,
लाग में बसन्त क्या बहार है वसन्त की॥
—"रसरंग सप्तम उमंग छंद सं० ७४"

ग्रीषम की गजब धुकी है धूप धाम धाम,
गरमी झुकी है जाम जाम अति तापिनी।
भीजे खस बीजन झलेहू न सुखात स्वेद,
गात न सुहात बात दावा सी डरापिनी॥
'ग्वाल' कवि कहै कोरे कुम्भन तें कूपन तें,
लै जलधार बार बार मुख थापिनी।

---

(०) रसरग सप्तम उमंग छ० सं० ७१ १५४ वसन्तऋतु वर्णन ७२..७०
( ) रसरंग सप्तम उमग छं० सं० ७१, ७८, ६०, ६२, १०५, १०६, ११६

जब पीयो तब पीयो अब पीयो फेर अब,
पीवत हूँ पीवत मुझे न प्यास पापिनी ॥
—"रसरंग सप्तम उमंगछन्द सं० ८०"

यह हुआ ग्रीष्म ऋतु का वर्णन । अब ग्रीष्म की विलास सामग्री की सूची भी देख लीजिए ।

जेठ को न त्रास जाके पास ये विलास होंय,
खस के पवास में गुलाब उछरयो करै ।
बिही के मुरब्बे छलके चाँदी के बरक भरे,
छैठे पाग केवरे में बरफ परयो करै ॥
ग्वाल कवि चन्दन चहल में कपूर चूर,
चन्दन अतर तर बसन खरयो करै ।
कंज मुखी कंज नैनी कंज के बिछौनन पै,
कंजन की पंखी कर कंजन कर्यो करै ॥
—'रसरंग सप्तम उमंग छं० सं० ८८"

उपर्युक्त छन्द में समस्त भोग-विलासों का सजीव वर्णन है। ऐसे अनुकूल वातावरण के उपलब्ध होने पर एक जेठ क्या, पचास जेठ एक साथ आजायें, तब भी वे "कंजन की पंखी कर कंजन करयो करें" वाले का क्या बिगाड़ सकते हैं। उसे तो होश भी न होगा कि कब दिन हुआ और कब रात आई ।

सीत की सवाई सो दिखाइ परे दिन रात,
खेतन में पात पात जमे जात सोरा से ।
सरर सरर बरफान की पवन आवै,
करर करर दंत बाजैं झकझोरा से ॥
'ग्वाल' कवि कहै ऊन अंबर निचोरे जहाँ,
सूती वसनन तें तौ बहे जात घोरा से ।
जोर जोर जंघन उदर पर धर धर,
सिकुर सिकुर नर होत हैं कफोरा से ॥
—"रसरंग सप्तम उमंग छन्द सं० ११०"

ग्वाल कवि ने हेमन्त के भी समुख्य उपादानों की व्यवस्था की है। यथा—

सोने की अंगीठिनि में अगिन अधूम होय,
होय धूम धारहू तो मृगमद आला की।
पौन को न गौन होय, भरक्यो सो मौन होय,
मेवा को खौन होय, डब्बियों मसाले की॥

अथवा

मंजुल मसाले, मिले सुरा के रसाले पियें।
प्याले पर प्याले मिटैं पाले के कसाले तब॥

—"रसरंग सप्तम उमंग छन्द सं० ११५"

निम्नलिखित छन्द में शरद की नैसर्गिक एवं मनोमुग्धकारी छटा निहारिये।

मोरन के सोरन की नैंको न मरोर रही,
घोर हू रही न, घन घने या फरद की।
अम्बर अमल, सर सरिता विमल,
मल पंक को न अंक, औ न उड़नि गरद की॥
ग्वाल कवि चहूँधा चकोरन के चैन भयो,
पंथिन की दूर भई, दुखन दरद की।
जल पर, थल पर, महल अचल पर,
चांदनी सी चमक रही चांदनी सरद की॥

—"रस रंग सप्तम उमंग छन्द सं० १०२"

शिशिर ऋतु के अन्तर्गत ही होली वर्णन लिखे गये हैं। × यथा—

आई एक ओर तें अलीन ले किसोरी गोरी।
आयो एक ओर तें किसोर वाम ग्वाल पै॥
भाजि चल्यो छैल छड़ी छोड़ि पै छबीलिन ने।
छरी कों उठाय धाय मारी उर माल पै॥
ग्वालकवि हो हो कहि चोर कहि चैरो कहि।
बीच में नचायो थेई तत थेई ताल पै॥

× रसरंग सप्तम उमंग छन्द सं० १२१। १३७।

ताल पै तमाल प गुलाल चढ़ि छायो ऐस।
भयो एक ओर नन्ददलाल न दलाल पै॥
—"रसरंग सप्तम उमंग छन्द सं० १२२"

होली के इन वर्णनों में मर्यादा एवं शील का अतिक्रमण करने वाले कतिपय वाक्यांशों "कपोल गोल गोरे चूम कै" (छन्द स० १२४) "मैं कुच गहे धाय कै" (छन्द स० १२५) "सैनन चलाय कै गई हमें घुमाय कै" (छन्द सं० १११) "धाय के धोखे उरोजन ऊपर लाल दई पिचकारी की धारैं" (छंद सं० १११) "एक की मुठ्ठीन में भरि के गुलाल लाल लाल दूजी के कपोल चूमि चले भजि कै" (छन्द सं० ११२) आपद का आ जाना स्वाभाविक ही है।

पंचम उमंग में ग्वाल ने सखी, लक्षण तथा उसके कर्म, मण्डन, उपालम्भ, शिक्षा और परिहास का वर्णन किया है।

मंडन सखी के मुख से "सोलह शृंगार" कहलवा दिए हैं।

प्रथम अन्हवाय चीर चुनि पहिराय बेनी
बनाय फूल गूथन गहत है।
मांग सीस फूल खोरि कजरा सु नथ डारे
पत्रावली करत कपोलन भरत है॥
ग्वाल कवि बीरी बेंदो बिंदु हार फूल गेंद
किंकनी महावर पै आनँद लहत है।
राई नौन वारत निहारत रहत मोहि
सोरहौं सिंगारन सिंगारत रहत है॥
—"रसरंग पंचम उमंग छन्द सं० २"

इसी के साथ दर्शन स्वप्न, चित्र, साक्षात और श्रवण का वर्णन मिला है+ इसके अतिरिक्त भी यथा स्थान उद्दीपन वर्णन है। +

+ रसरंग पंचम उमंग छन्द सं० २८, ३२

+ रसरंग प्रथम उमंग छन्द सं० ११२।

रसरंग पंचम उमंग छन्द सं० २२ 'मानव वर्णन तथा छन्द स० २१' शरद वर्णन।

नखशिख वर्णन—ग्वाल ने 'रसरंग' में शास्त्रीय ढंग पर अंग प्रत्यंग वर्णन द्वारा नखशिख निरूपण नहीं किया है, अथवा नखशिख वर्णन को उद्दीपन विभाव का अंग नहीं माना है। वैसे नायक नायिका की सुन्दरता सम्बन्धी इन्होंने अनेक छन्द लिखे हैं।×

गोरे गात वारी ग्वारि गोकुल गली में, जोकि
गोरी करि दीनी परछाया मो अनद ने।
देखि गति मेरी हंस फेरी करै चारों ओर
दौर करि सीखी करहू मिरले गयंद ने॥
ग्वाल कवि कोयल हू तप करि कारी भई,
तोहू स्वर फीको कियो मेरे स्वरछंद ने।
ताब मेहताब की न चारु चांदनी की काब दाब
लीनी आब सब मेरे मुखचंद ने॥
—"रसरग प्रथम उमंग छन्द सं० १, १३४"

पारजात जात हू न नरगिस छातहू न,
चम्मक फूलात हू न सरसिज ताब में।
माधवी न मालती में जुही में न ओयत में,
केतकी न केवड़ा में सरस सिताब में॥
"ग्वाल" कवि ललित लवंग मैन चेलन में,
चंदन न चंद्रकन केस रहिताब में।
सुवती गुलाब में न अतर अबाब में न,
जैसी है सुबास कान्ह मुख महताब में॥
—"ग्वाल रत्नावली छन्द सं० १२, ऽ"

× रसरंग प्रथम उमग छन्द सं० ३४, १२६, १३२, १३७।
रसरंग दूसरी उमग छन्द स० १३, ४३, ४१, ३०, २०१।
पचम उमंग छन्द स० १२,१३,१२, षष्टम उमंग छन्द सं० ४१,४२,४८।
सप्तम उमंग छन्द स० ३।

ऽ भारतोक पुस्तकमाला संख्या १३, प्रकाशक भारतवासी प्रेस, इलाहाबाद सन् १३४२ वाला संस्करण।

चतुर चमावे सो झमाकेदार झुकि झाँके,
चंचल चलाकैं कोस कोष की कला के हैं।
रति के न रंभा के न सोहत तिलोतमा के,
मैनका पै कहूँ कौन ऐसे न गिरा के हैं॥
"ग्वाल" कवि भरे सुखमा के पै न उपमा के,
अजब अदा के मन मोहन मजा के हैं।
ह न सरमा के ऐसे हैं न सुरमा के सजे
जैसे सुरमा के नैन बाँके राधिका के हैं॥
—"ग्वाल रत्नावली छन्द सं० ८६, *"

नखशिख रूप की झलाझली है सधनहि,
जंघ फेल नाभि कूप आवे दरशन में।
हाथ में न आवे कटि केहरी सु बीच तहाँ,
उदर सरोवर अपार है तरन में॥
"ग्वाल" कवि कुच कोक छूटे कर वासन तैं,
नैन ये न मृग मरैं चौकड़ी चलन में।
जो पै तुम्हें सीख है सिकार ही सों प्यारेलाल,
तो पै क्यों न खेलौ तरुनी के तन वन में॥
—"ग्वाल रत्नावली छन्द सं० ६६"

इस प्रकार की अनोखी कल्पना कि, सुचकर रुचिकर उच पद पाइये कौं प्यारी कुच शिव कौं पूजन करत हैं" ग्वाल की विशेषता है।

अन्तिम समय में ग्वाल को भी सांसारिकता से विरक्ति हो गई थी। उनके भक्ति परक ग्रन्थ इसी मनोभावना के द्योतक हैं। जीवन के भोग-विलास और ऐश्वर्य को वह निश्चय ही व्यर्थ समझने लगा थे।

---

* ग्वाल रत्नावली छन्द सं० ८४ ८० से ६०, ११० से ११६ १४१, १५२, १८१ १८१।

× रसरंग सप्तम उमंग छन्द सं० ६। अष्टम उमंग शान्तरस वर्णन।

अरक्यो मन मेरो मसीरन में,
मुरवा की जंजीरन में अरक्यो।
तरक्यो फिरे द्वां ते मुफिकनी में,
भुजबंद में फेर फिर्यो फरक्यो ॥
थरक्यो कवि "ग्वाल" हिरावली में,
गुलीबंद में माय भर्यो भरक्यो।
हरक्यौ पय मैं गय के सय मैं,
न थम्यो न थम्यो नथ में गरक्यो ॥
—"ग्वाल रत्नावली छंद १७५"

कौन भई नहीं रूपवती अरु,
कौन पै आई न रीझ है जाकी।
कौन के कंठ पर्यो नहिं माल है,
चाल यही जिन सीखी सदा की ॥
यों कवि 'ग्वाल' अनेकन कों दगा,
दै दै न पूछत कौन कहां की।
भूलो न कोऊ गुविंद के नेह पै,
है यह चांदनी चार दिना की ॥
—"ग्वाल रत्नावली छन्द सं० १८३"

वारिध तात बड़े विधि से सुत,
सोम से बंधु सहोदर आई।
रंभा रमा जिनकी भगिनी
मघवा मधुसूदन से बहनोई ॥
सुच्छ सुसार इतो परिवार,
भयो न सहाय कृपानिधि कोई।
सूखि सरोज गयो जल मैं,
सुख संपति में सब को सब कोई ॥
—"ग्वाल रत्नावली छन्द सं० १६४"

उनके मत में रसरीति ही जीवन का सार है 'मीह के मेहन की सिरजी, दिल में, मिल के, रहियौ जगसार है' 'ग्वाल ग्रन्थावली छन्द सं० १०३'

ग्वाल कवि द्वारा वर्णित शृंगार रस की विशेषताएँ।

१—ग्वाल ने रस निरूपण पूर्ण वैज्ञानिक ढंग पर किया है। अर्थात् भाव, रस, विभाव आदि की चर्चा क्रमश: की है। मतिराम और पद्माकर की भाँति नायिका भेद वर्णन से ग्रन्थ को प्रारम्भ नहीं किया है। परम्परा के अनुसार नायिका भेद कथन को सब से अधिक स्थान दिया है।

२—लक्षण देकर उदाहरण स्वरूप केवल कवित्त अथवा सवैया ही दिया है। मतिराम तथा पद्माकर की भाँति साथ में एक दोहा नहीं लिखा है।

३—अनुभावों को "संचारी भावों के अन्तर्गत रखा है। हमारे विचार से यह रस सिद्धान्त का विरोधी है, संचारी भावों का काम स्थायी भाव को तीव्रता प्रदान करना है और अनुभावों का कार्य मन की स्थिति का अनुभव कराना तथा आलम्ब के लिए उद्दीपन का कार्य करना।

४—'ग्वाल' का श्रृंगार वर्णन कामशास्त्र से बहुत प्रभावित है। अतः नायिका के मुग्धा माध्या, समपा आदि भेद इसी बात के द्योतक हैं।

५—ग्वाल ने शृंगार रस को रसराज के रूप में स्वीकार किया है।

६—ग्वाल ने नायिका भेद-कथन में भानुदत्त और मतिराम का अनुसरण किया है तथा देव के "छल" संचारी भाव को स्वीकार किया है। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने विषय को सब प्रकार से पूर्ण बनाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया था।

७—ग्वाल के वर्णन सर्वथा मनोवैज्ञानिक और वास्तविकता को लिए हुये हैं।[1]

(अ) प्रेम गल चाही है कि तेरी यह नाहीं है।

(रसरंग १, १८)

(ब) पीय जोई कहै सोई गहै सदा सुखी रहै।
जाय पिया चाहै सोई नारि सुहागिनी॥

(रसरंग ५, ६)

1—रसरंग १, ५१, २, ५६, ६० ।

(स) द्वारे पै मिलौंगी या मिलौंगी पिछवारे पै।
(रसरंग ६, ३६)

(द) सिनर्ते सिनर्ते जिय राजी अरी
तौ करोगे कहो फिर काजी कहा।
—"ग्वाल भन्यावली छन्द सं० १७६"

८—ग्वाल ने यद्यपि परकीया और गणिका के विस्तार पूर्वक कथन किए हैं, तथापि वह स्वकीया के प्रेम अथवा एक पतिव्रत को ही श्रेष्ठ समझते थे।

ग्वाल कवि मेरे यही प्रन है साधन धन
प्यारे की खुसी में खुसी होत मन अति को।
पति ही है पति और संपति सुगति रूप
पति ही है रघुपति बाधक बिपति को॥
—"रसरंग प्रथम उमंग छन्द सं० १६८"

स्वकीया नायिका का लक्षण देते हुए ग्वाल ने लिखा है कि—

छाहौं न छुवावत है गुर लोगन देख्यौ न आनन जाको लुगाइन।
—"रसरंग २, ३६"

इतना ही नहीं इन्होंने परदारा प्रेम को व्यभिचार कहकर उसकी निन्दा की है।

आहू पाप इन्द्र की सहस्र भग देह भई,
जाई पाप चन्द्रमा कलंकी आन छायो है।
जाई पाप मिटिगे बराती शिशुपाल जू के,
आई माथे हाथ धर भसम करायो है॥
जाई पाप बाली बन माली मोरि तासो हुतो,
जाई पाप कीचक कू कीच ठहरायो है।
जाई पाप रावण कौ मारि लंक छार करी,
सोई पाप लोगन खिलोना करि पायो है॥
—"ग्वाल रत्नावली छन्द सं० १६३"

गणिका को तो उन्होंने यह लोक और परलोक, सब कुछ बिगाड़ने वाली बताया है।

काया सों काम जात गाँठ हूँ सों दाम जात,
मित्रन सों प्रीति जात रूप जात दाग तें।
धरम करम जात कुल के धरम जात,
गुरु की सरम जात निज चित्त भंग तें।
राग रङ्ग रीति जात ईश्वर सौं प्रीत जात,
सज्जन प्रतीत जात मज्जन उमंग तें।
सुरपुर वास जात भक्ति को निवास जात,
पुण्यन को नास जात गनिका प्रसंग तें॥
—"ग्वाल रत्नावली छन्द स० १६२"

१—ग्वाल ने परम्परा के वशीभूत होकर कृष्ण राधा को सामान्य नायक नायिका के रूप में ग्रहण करके उनके श्रृङ्गार का प्रयोग कहीं-कहीं असमर्यादित और अश्लील भी किया अवश्य परन्तु उन्हें अपने कार्य के अनौचित्य का ध्यान हर समय रहता था। श्यामदास की भाँति ग्वाल ने भी राधा कृष्ण के श्रृंगार वर्णन के लिए क्षमा याचना की थी।

श्री राधा पद पदुम कों प्रनमि प्रनमि कवि ग्वाल।
छमवत है अपराध कों, कीयो जु कथन रसाल॥
श्री राधा जगदीश्वरी, यह बिनती है मोर।
निज पद पदमनि के विषै, लीजै मो मन खोर॥

यह राधिका जी के उपासक थे।

श्री वृषभान कुमारिका, त्रिभुवन तारनि बाम।
सीस नवावत ग्वाल कवि, सिद्ध कीजिए काम॥
—"मंगलाचरण यमुना लहरी"

× × × ×

इन कवियों की समीक्षा के फलस्वरूप हमारे निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं।

१—हिन्दी में श्रृंगार रस की रचनाएँ लिखने वाले कवियों की दो कोटियाँ ठहरती हैं।

(क) केवल कविता लिखने वाले कवि। और

(ख) शास्त्रीय ढंग पर लक्षण उदाहरण देकर रस का सावयव निरूपण करने वाले आचार्य कवि।

२—दोनों ही कोटि के कवियों का वर्णन विषय शृङ्गार रस है।

३—आचार्य कवियों ने शृङ्गार रस के विवेचन को प्रधानता दी है, अन्य रस चलते कर दिए हैं।

४—आचार्य कवियों ने एक स्वर से शृङ्गार रस को 'रसराज' माना है।

५—इन कवियों की रचनाओं पर 'कामशास्त्र' की गहरी छाप है। शृङ्गार रस वर्णन के अतिरिक्त ऋतु वर्णन में भी हमें यही बात दिखाई देती है। 'कामशास्त्र' के अनुसार पुरुष का काम वसन्त ऋतु में विशेष रूप से जाग्रत होता है और स्त्री को वर्षा ऋतु में कामदेव विशेष सताते हैं। इन कवियों ने वसन्त और वर्षा के ही अधिक वर्णन लिखे हैं।

६—दोनों कोटि के कवियों के वर्णन मर्मस्थलों को पहचानने में समर्थ हैं। उनके वर्णन पूर्णतया मनोवैज्ञानिक हैं।

७—उनकी रचनाओं में काव्य नैपुण्य एवं उक्ति वैचित्र्य अधिक है, तल्लीनता कम।

८—ऋतु वर्णन में संश्लिष्ट योजना का सर्वथा अभाव है। ये वर्णन उद्दीपन विभावान्तर्गत ही किए गए हैं। यही कारण है कि इनमें कहीं कहीं अस्वाभाविकता आ गई है 'जैसे विश्वामित्र के आगमन के समय केशव द्वारा किया गया वसन्त वर्णन।'

९—राधा-कृष्ण-भक्ति विषयक शील का निर्वाह करने में ये सर्वथा असमर्थ रहे और उनकी रचनाओं में मर्यादा का अतिक्रमण हो गया है। यहाँ तक कि उनके शृङ्गार-वर्णन अश्लील हो गए हैं। राधा कृष्ण के भक्त होते हुए भी उन्हें समय की गति तथा परम्परा प्रवाह के सम्मुख झुक जाना पड़ा था। अकेले पद्माकर ऐसे कवि हैं जिन्होंने शृङ्गार-वर्णन के लिए राधा कृष्ण को ग्रहण किया और भक्ति परक रचनाएँ सीता राम के नाम पर लिखीं अर्थात् वो शृङ्गार देव और आराध्यदेव को पृथक रख सके।

१०—आचार्य कोटि के कवियों ने सभी प्रकार की नायिकाओं के लक्षण उदाहरण सहित वर्णन लिखे हैं। प्रथम कोटि के कवियों ने यथास्थान थोड़ी ही नायिकाओं के निरूपण लिखे हैं। इनमें मुग्धा और खंडिता नायिकाओं के वर्णन अधिक हैं।

११—आचार्य कवियों ने हावों को सम्भोग शृङ्गार के अन्तर्गत रखा है।

१२—ग्वाल ने अनुभावों को संचारी भावों के अन्तर्गत माना है।

१३—पद्माकर और ग्वाल ने नवां सात्विक अनुभाव 'जृंभा' माना है।

१४—ग्वाल ने देव के अनुकरण पर ३४ वें संचारी भाव 'छल' को स्वीकार किया है।

१५—बिहारी के विरह वर्णन में सबसे अधिक ऊहात्मक उक्तियाँ हैं।

१६—शृङ्गार रसान्तर्गत प्रकाश और प्रच्छन्न नामक विभाजन केशवदास की विशेषता है।

१७—केशवदास यद्यपि रीति रचना करने वाले प्रथम आचार्य कवि थे, तथापि रीतिकालीन कवियों ने उनका अनुसरण नहीं किया। रीति सम्बन्धी क्रमबद्ध रचनाएँ उनके ५० वर्ष बाद प्रारम्भ हुईं।

१८—मतिराम नायका भेद के सर्वमान्य आचार्य हैं। वह भानुदत्त कृत 'रसमंजरी' से अत्यधिक प्रभावित हैं।

१९—दोनों ही कोटि के कवियों ने परकीया का प्रश्रय नहीं दिया है। समाज के एक अङ्ग के नाते उसका वर्णन मर कर दिया है। परकीया की दयनीय सन्तापमय अवस्था का बोध कराते हुए इस मार्ग पर चलने वालों को सावधान कर दिया है। सामान्या की अर्थलोलुपता और स्वार्थ परता की उन्होंने निंदा की है और पैरगामी पुरुषों से अपने धन, धर्म और यौवन को व्यर्थ नष्ट न करने की बात कही है।

२०—सबने अन्त में विलासिता और शृङ्गारिकता के प्रति निराशा और उदासी भरे भाव प्रकट किए हैं। सबने यही कहा है कि इनमें लिप्त होना अपने जीवन को व्यर्थ ही नष्ट करना है। इन कवियों ने समाज को कामुकता का पाठ नहीं पढ़ाया अपितु कामुकता के प्रति सचेत किया है।

षष्टम् अध्याय

उपसंहार

शृंगार साहित्य का महत्त्व
और
भविष्य

अध्याय ६

उपसंहार

शास्त्रीय निरूपण की दृष्टि से श्रृंगार रस-वर्णन का हिन्दी काव्य में स्थान—श्रृंगार रस को सभी रसों से ऊँचा स्थान दिया गया है। हिन्दी के रीतिकालीन समस्त आचार्य कवियों ने एक स्वर से उसे 'रसराज' के रूप में स्वीकार किया है।

भरतमुनि के मतानुसार 'संसार में जो पवित्र, उत्तम और उज्ज्वल और दर्शनीय है, उसमें श्रृंगार रस का विकास है। श्रृंगार रस समस्त सुखों का मूल प्रेम प्रमोद का अधिष्ठाता और प्रीति का प्राण है। इस रस की तीव्रता, विस्तार-शक्ति और प्रभावशालिता अद्वितीय है। इसकी महत्ता को सभी ने स्वीकार किया है। चक्रवर्ती नरेशों से लेकर निर्जन विपिन विहारी मिताचारी मुनि-महर्षि तक इसके सम्मुख नतमस्तक हुए हैं। श्रृंगार-भावना के अभाव में संसार और साहित्य, दोनों ही अपूर्ण हैं। कवि दिनकर लिखते हैं कि 'काव्य को एक बार मैंने मानस पौरुष का उद्गार कहा था, लेकिन तब मैं इतना ओछा भूल गया था कि उसका विकास अर्द्ध-नारीश्वर के आशीर्वाद से होता है। हलाहल का पान करने वाले नीलकंठ का अन्य अर्द्धांग अमृतपूर्ण है यह कल्पना ही मानो काव्य को अपनी पूर्णता की याद दिलाती है ऽ बाबू गुलाब राय के शब्दों में 'इसमें आनन्द लौकिक सीमा को उल्लंघन कर अलौकिकता को प्राप्त हो जाता है। 'दो का एक भेद में अभेद का यह एक अच्छा उदाहरण है।*

ऽ रसवन्ती, भूमिका पृष्ठ सं० ७।

* नवरस, पृष्ठ संख्या ११६, द्वितीय संस्करण।

स्थूल और सूक्ष्म करके शृङ्गार की कई श्रेणियाँ होती हैं। प्रीति के जितने भी रूप हो सकते हैं, उतने ही रूप शृङ्गार के होते हैं। वात्सल्य रस और भक्ति रस को शृङ्गार रस के अन्तर्गत रखने का यही कारण है।

मनुष्य के सम्बन्ध में सबसे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध दाम्पत्य प्रेम का है। यही प्रेम-भावना विकसित होकर ईश्वर-प्रेम में परिणत हो जाती है। शृङ्गारी उपासकों की उपासना का यही मूल आधार है। भारतवर्ष के सन्त और भक्त दोनों ही प्रकार के कवियों ने भगवान को पति रूप में वरण किया, फारस के शायरों तथा सूफी सन्तों ने खुदा को माशूक कहा अथवा उसे पत्नी रूप में ग्रहण किया, यूरोप में ईसाई सम्प्रदाय में मसीह की स्त्री माना है और दाम्पत्य प्रेम को प्रेम का आदर्श कहा है। सुलेमान (Solomon) का श्रेष्ठ गीत भी शृङ्गार की भाषा से परिपूर्ण है। पारलौकिक शृङ्गार के लिए लौकिक-शृङ्गार एक आवश्यक पृष्ठ भूमि है।

भारतवर्ष के वैष्णव धर्म के अन्तर्गत भगवान की बालक रूप में उपासना का विधान है। ईसाई धर्म में वात्सल्य रस प्रेम का आदर्श माना गया है। रोमन कैथोलिक लोग मरियम और बाल-ईसा की पूजा करते हैं। बाल-रूप में भगवान की उपासना के विधान का हमारी आन्तरिक वृत्तियों के साथ सीधा और सहज सम्बन्ध है। बालकों के प्रति जीव मात्र के हृदय में स्वाभाविक आकर्षण होता है। कहीं भगवान् के प्रति आकर्षण कम न हो जाय, इसी कारण हम उन पर आयु का प्रभाव नहीं देखना चाहते हैं।

इस प्रकार शृङ्गार-रस-वर्णन के अन्तर्गत हमें दाम्पत्य-प्रेम, वात्सल्य-प्रेम और ईश्वर प्रेम ये तीन प्रकार के वर्णन मिलते हैं। तीनों में ही सौन्दर्य और शृङ्गार की पूर्ण प्रतिष्ठा रहती है। इनसे सम्बन्धित काव्य-रचनाओं में हमें सौन्दर्य-वर्णन, रूप के प्रति आकर्षण और शृङ्गार-भावना, तीनों का एक साथ समावेश मिलता है। फलतः हिन्दी के कवियों ने शृङ्गार रस रति और कामदेव को सुन्दरता के उपमान रूप में ग्रहण किया है।

राम सीय सुन्दर प्रति छाहीं,
जगमगात मनि खंभन माहीं।

मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा,
देखत राम विवाह अनूपा।
—"बालकाण्ड, रामचरितमानस"

जब राम और सीता के प्रतिबिम्ब मदन और रति हैं, तब उनके स्वयं मदन और रति होने में क्या सन्देह है।

हिन्दी का कदाचित ही कोई कवि हो, जिसकी रचनाएँ शृङ्गार-रसान्तर्गत न आती हों अथवा आ सकती हों। वात्सल्य शृङ्गार ने सूरदास जैसे महात्मा कवि दिए, ईश्वरीय शृङ्गार की सबसे महान् विभूति गोस्वामी तुलसीदास हैं। दाम्पत्य शृङ्गार ने रीतिकालीन अगणित कवि उत्पन्न किए, जिन्होंने समस्त साहित्य-सागर का मन्थन ही कर डाला, और मणि मुक्ता के अतिरिक्त सीप और घोंघे भी एकत्र कर डाले।

शृङ्गार रस में प्रायः अन्य समस्त रसों का साम्य हो जाता है—कुछ का संयोग में, कुछ का वियोग में। दो विभाग होने से शृङ्गार-रस का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत और व्यापक हो जाता है। सुख और दुख के अतिरिक्त संसार में है ही क्या ⊛ और ये दोनों ही 'शृङ्गार' के अधीन हैं।

'शृङ्गार रस' का पक्ष इतना व्यापक होने के फलस्वरूप शृङ्गार-रस-विवेचन के अन्तर्गत प्रचुर काव्य का सृजन, निरूपण, विवेचन सभी कुछ हुआ। शृङ्गार रस के शास्त्रीय विवेचन में काव्य के समस्त अंग और उपांगों के सांगोपांग विवेचन हुए। शृङ्गार रस का वर्णन करते समय कविजनों ने भाव, विभाव, अनुभाव, हाव, संचारी भाव आदिक की तो विस्तृत चर्चा की ही, साथ ही शृङ्गार रस के सहायक हास्यरस वीर रस आदि रसों से सम्बन्धित प्रचुर काव्य का भी सृजन किया। शृङ्गार और शौर्य के एक साथ वर्णन, समरांगण

⊛ दुखों की सुख में स्मृतियाँ मधुर,
सुखों की दुख में स्मृतियाँ शूल।
विरह में किन्तु, मिलन की याद,
नहीं मानव मन सकता भूल।
—दिनकर, रसवन्ती पृष्ठ सं ४"

में कामदेव के दर्शन और उनसे सम्बन्धित काव्य का सृजन हिन्दी साहित्य की आदि कालीन परम्परा है। रीतिकालीन रचनाओं में शृङ्गार-रस का अपूर्व विवेचन हुआ। शृङ्गाररस के जितने भी अवयव हो सकते हैं, उनका सफल चित्रण किया गया है। शृङ्गार रस को देखने के जितने भी दृष्टिकोण हो सकते थे, इन कवियों ने उन सब का कलापूर्ण विवेचनात्मक वर्णन किया है।

शृङ्गार-रस के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ऋतु-वर्णन तथा नखशिखवर्णन और आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायिका-भेद-कथन, विशेष महत्त्व रखते हैं। ऋतु-वर्णन और नखशिख-निरूपण में परम्पराओं का निर्वाह मात्र है। परन्तु नायिका-भेद कथन में कवियों ने सफल मनोवैज्ञानिक विवेचन किए हैं और मौलिक उद्भावनायें भी की हैं।

नायिका-भेद-वर्णन के अन्तर्गत स्त्री-पुरुष के विचारों, भावों एवं मनोदशा के चित्रण के अतिरिक्त हमें भारतीय कुल ललनाओं के त्याग एवं अद्भुत प्रेम, के पवित्र और महान स्वरूप भी देखने को मिलते हैं। इन वर्णनों में राधा-कृष्ण के समावेश ने भक्ति के स्वरूप को अवश्य ही विकृत किया किन्तु हिन्दी-जन-जीवन में एक नवीन उत्साह का संचार किया, हिन्दू जाति को नवकिसलय युक्त मधुर जीवन प्रदान करके उसे सरस सुहाया बनाया और उसके उदासीन हृदयों में नवोत्साह का संचार करके निरुत्साह व्यक्तियों को नवीन प्रेरणायें प्रदान कीं। हिन्दी के रीतिकाल की शृङ्गार-रस-परक रचनाएँ सकारण, सार्थक और साभिप्राय हुई थीं। वे हिन्दी-साहित्य-सागर की अक्षय निधि हैं। इस साहित्य सागर का जब जब मंथन होगा तब तब रस रत्नाकर के मणि मुक्ता प्रकाश में आकर पारखियों को चमत्कृत करेंगे।

शृंगार-रस का समाज और धर्म भावना पर प्रभाव—जिस प्रकार चरित्र व्यक्ति सापेक्ष है, उसके निर्माण में व्यक्ति विशेष के संस्कार विशेष महत्त्व रखते हैं, उसी प्रकार किसी भी वस्तु का उपयोगी अथवा हानिकारक होना उपभोक्ता की अपेक्षा रखता है अथवा संसार की प्रत्येक वस्तु प्रयोग सापेक्ष होती है। सुधा स्वर्गीय पदार्थ है और उसमें अमरत्व प्रदान करने की क्षमता है परन्तु यदि वह किसी दुष्ट के पास हो और उसके पक्ष पर यदि वह व्यक्ति उच्छृङ्खल

एवं उत्पीड़क बन जाए, तो इसे हम सुधा का दुरुपयोग ही कहेंगे न कि सुधा की उच्च सबलता प्रदान करने की शक्ति। शृङ्गार-रस पर्यास के सम्बन्ध में विचार करते समय यह बात हमें सिद्धान्त रूप में सदैव अपने सामने रखनी चाहिए।

महाभारत के रण-कृष्ण और दार्शनिक योगी राज कृष्ण हिन्दी कविता में आते आते संयोगवश केवल बाल कृष्ण ही रह गए। उनके अन्य स्वरूप पीछे पड़ गए। लूट-लूट कर दही खाने वाले बालक कृष्ण राह चलती ग्वालिनों को छेड़ने वाले छैला बना दिए गए। राधिका में प्रारम्भ से प्रेम की प्रतिष्ठा हुई। राधा के प्रति विमल भक्ति-भाव की स्थापना होते हुए भी, उनकी प्रेममयी मूर्ति ही समाज के सम्मुख नाचने लगी।

पति पत्नी का प्रेम जहाँ तक उन्नत हो सकता है, उस उन्नतावस्था को राधा का प्रेम पहुँच कर कृष्ण-भक्ति से परिपूर्ण हो गया था। इसी से इस भक्ति का नाम प्रेमा-भक्ति है। दाम्पत्य प्रेम की पूर्णता को भगवदर्पण करना इसका उद्देश्य है, क्योंकि भगवान् ही प्राण वल्लभ हैं। राधिका उसी प्रेम-भक्ति में उल्लासिनी और कृष्ण-लीला मयी हो गई थीं। उनके लिए कृष्ण का प्रेम ही ससार था। वह श्याम के प्रेम में मत्त थीं। राधा और गोपियों के अतिरिक्त कोई नहीं कह सकता कि भगवान् हमारे प्राणवल्लभ हैं। सत्यभामा ने ऐसा कहा था, पर राधिका प्रेमी कृष्ण ने उनका दर्प चूर कर दिया था।

कृष्ण और राधा के नाम प्रारम्भ से ही सामान्य नायक और नायिका के पर्यायवाची नहीं बन गये थे। मधुरा अथवा प्रेमाभक्ति के अन्तर्गत वर्णित राधा की महिमामयी प्रेम मूर्ति को साधारण स्थूल दृष्टि से देखा गया। दाम्पत्य प्रेम साधन मात्र न रह कर साध्य बन गया। परकीया प्रेम-भावना ने उसे नवीन गति प्रदान कर दी और कृष्ण की उपासना परकीया भाव से होने लगी। शृङ्गारी कवियों ने कुछ ऐसी परम्परा सी बना दी कि प्रत्येक स्त्री परकीया भाव से पर पुरुष से प्रेम कर सकती है। परिणाम यह हुआ कि दाम्पत्य प्रेम भी निम्न स्तर पर आ गया और उसकी पवित्रता जाती रही। कृष्ण और राधिका की भक्ति के विकृत होने का परिणाम बुरा हुआ। इस विकृत शृङ्गार-भावना से प्रभावित हो कर अश्लील साहित्य का सृजन तो हुआ ही, अन्य ललित कलाएं भी इसके

कुप्रभाव से अछूती न रह सकी, नग्नावस्था में स्नान करती हुई स्त्रियों के वस्त्र चुराने वाले कृष्ण के चित्र बनाना एक साधारण सी बात हो गया। नंगन स्त्रियों की मूर्ति बनाना एक सामान्य प्रवृत्ति हो गई। गोपियों के चीर हरण वाले प्रसङ्ग को लेकर स्नान करती हुई अर्द्ध नग्न स्त्रियों के चित्र आज दिन भी बाजार में बिकते हैं। इन्हें देखकर लोग यही समझते हैं कि कृष्ण युवतियों को छेड़ा करते तथा पनघट पर जा कर उन्हें नग्नावस्था में देखने के शौकीन थे। हिन्दू-समाज भूल गया कि १०—११ वर्ष की अवस्था में ही कृष्ण ब्रज छोड़ गए थे। कालो मर्दन कंस निकंदन श्रीकृष्ण थैय्या-थैय्या के नचैय्या रह गए और बांके सांवरिया के रूप में वह कसरमा में रंग कर ब्रजबालाओं के स्वरूप का आरोप करने वालों के ऊपर नैन बाण चलाने लगे। आज दिन भी आप मोर-मुकुट धारी ग्वालों को कृष्ण बन कर नाचते हुए देख सकते हैं। नौटकी की तर्ज पर कृष्ण-लीला करना जैसे कोई बात ही नहीं है।

इस शृङ्गारी भावना के कारण सखी सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा हुई थी। परकीया प्रेम के निर्वाह के नाम पर देव-मन्दिर राधा कृष्ण की रंगस्थली समझे जाने लगे और तथा-कथित भक्तगण भक्तिनों और चेलियों को लेकर रास रङ्ग में मस्त हो गए। परकीया प्रेम की भक्ति-भावना के एक अङ्ग विशेष के रूप में प्रतिष्ठा होने के फलस्वरूप इस प्रकार की प्रेम लीलाएं गर्हित होने पर भी समाज के एक बड़े भाग का संरक्षण प्राप्त कर सकीं। कहते हैं कि गुजरात में एक ऐसा सम्प्रदाय है जिसकी नव विवाहिता वधू घर में आने के पूर्व एक रात गोसाईं जी की सेवा में रहती है। बाद में उसका पति उसे गोसाईं जी के प्रसाद रूप में ही प्राप्त करता है।

पहिले भक्तगण और बाद में कविगण कृष्ण-राधा के इस अतिरंजित स्वरूप को आदर्श बताकर स्वयं भी सावन की बदरिया झुकने पर झूला झूलन लगे और वसन्तोत्सव आने पर अबीर और गुलाल की मूठें चलाने लगे। आज दिन भी ब्रज के मन्दिरों के पुजारी होली के दिनों में दर्शक महिलाओं पर ताक-ताक कर रंग भरी पिचकारियां छोड़ते हुए देखे जा सकते हैं। परिणाम स्वरूप बहुत से

देवालय व्यभिचार के अड्डे बन गये। समाज और शिक्षा की नव चेतनाओं ने इन सब बातों को अब बहुत कम कर दिया है।

नायक के रूप में मुरली मनोहर और नायिका के रूप में वृषभानु नन्दिनी का ग्रहण किया जाना अनेक कार्यों में अधर्म का कारण बना। इस भाव की प्रबलता के कारण सत असत् का विवेक लुप्त प्रायः हो गया था। आज दिन भी बहुत से मन्दिरों में भजन एवं कीर्तन के नाम पर कृष्ण और राधा की लीलाओं से सम्बन्धित अश्लील पद गाए जाते हैं। भगवन्नाम की सुधाधार के पान की उत्सुक श्रोता मंडली के कानों में मकरध्वज की पिचकारियाँ डाली जाती हैं। कुछ लोग इन्हें स्वर्ग सोपान समझते हैं। यह हमारा प्रमाद है।

अनेक जातियों में वैवाहिक अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों में, जिन्हें हम गालियाँ कहते हैं, वृषभानु-लली और नन्द नन्दन के नाम ले ले कर कुत्सित चर्चाएँ की जाती हैं। कृष्ण और राधा को कुत्सित कामुकता को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनाया जाता है।

युगल मूर्ति की प्रेममय मधुर लीलाओं के रस का प्रवाह रामावत सम्प्रदाय में भी बहा। साकेतीपुरी-खण्ड के रचयिता महन्त युगलानन्द शरण ने श्रीमती जानकीजी और उनकी सखियों को लेकर राम-मण्डल तक रच डाला। उनकी तथा उनकी मण्डली के कतिपय सहृदय कवियों की रचनाएँ अष्टछाप के कवियों की रचनाओं के समान सरस हैं। समय के प्रभाव के कारण राम-काव्य के अन्तर्गत राम के हिंडोला, बसन्त-विहार, होरी की हुड़ंग आदि के वर्णन किये गए। परन्तु राम-काव्य की मर्यादा कुछ इस प्रकार बाँधी गई कि वे राधाकृष्ण की क्रीड़ाओं से पूर्ण कामुक वातावरण से दूर ही बने रहे। रामलीला और कृष्ण लीला को देखकर उक्त भेद सहज ही समझा जा सकता है। कृष्ण-लीला में होगी ता ता थेई थेई और रामलीला में होंगे कुम्भकर्ण और रावण के वध।

हिन्दी में लिखे गए कृष्ण-राधा विषयक शृङ्गार-वर्णनों का सब से बुरा प्रभाव यह पड़ा कि कृष्ण-राधा एक सामान्य दम्पति बन गये, वे पिता माता के आदरणीय एवं पूज्यपद पर प्रतिष्ठित न रह सके।

विज्ञान और अर्थ के वर्तमान युग में शृंगार—साहित्य का स्थान

और भविष्य कारण, प्रवाह प्रभाव और परिणाम, प्रत्येक दृष्टि से शृङ्गार-रस का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह हमें जीवित रहने की प्रेरणा प्रदान करता, जीवन के प्रति हमारे हृदय में आस्था उत्पन्न करता तथा ललितकलाओं साहित्य, सङ्गीत आदि की ओर हमें अग्रसर करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह हमारी एक मौलिक वृत्ति और जीवन का अनिवार्य तत्त्व है। सामाजिकता की दृष्टि से यह हमारे कार्य-कलापों और जीवन का प्रवाह निर्धारित करने में एक अत्यन्त प्रभावशाली अवयव है। प्रत्येक देश के साहित्य में शृङ्गार-भावना समाविष्ट है। यह बात दूसरी है कि देशकाल के विचार से उसके स्वरूप बदलते रहे हैं।

हिन्दी की आदिकालीन रचनाओं में हमें समराङ्गण में कामदेव के दर्शन होते हैं। उन दिनों सुन्दरी बाला की प्राप्ति हेतु ही प्रायः युद्ध हुआ करते थे। कवि गण उसके नखशिख का अतिरंजित वर्णन कर के अपने आश्रयदाता राजा को युद्ध के लिये उत्साहित किया करते थे। वर्त्तमान समय में थोड़ा सा परिवर्तन हो गया है। अब युद्ध स्थल को जाते हुए सैनिकों के साथ साक्षात् सुन्दरियाँ ही जाती हैं। कह नहीं सकते इन सुन्दरियों की उपस्थिति रण-क्षेत्र में सैनिकों में उत्साह भरती है अथवा उनके बल-वीर्य का अपहरण कर के रण के प्रति उदासीन बनाने में अधिक सहायक होती हैं। जो भी हो शृङ्गार-भावना को वीर भावना का पूरक मानना चाहिये।

वर्त्तमान युग दो बातों पर विशेष बल देता है—१—निरीक्षण एवं विश्लेषण तथा २—आत्म-संयम। आज का वैज्ञानिक विश्व के प्रत्येक कण का निरीक्षण विश्लेषण और वर्गीकरण करना जीवन की साधना और चरम परिणति मानता है। उसने कीट-पतंगों, वृक्ष-पत्ते, लता वल्लरी आदि प्रत्येक वस्तु के विश्लेषणात्मक गम्भीर अध्ययन किए हैं। इनके आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि प्रत्येक वस्तु चेतनायुक्त है और सब में शृङ्गार भावना समाई हुई है। एक विशेष क्रम के अन्तर्गत, कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में उसका उद्रेक होता रहता है। सूर्य और चन्द्र के उदय होने और अस्त होने, वृक्षों में पुष्प और फल लगने आदि सब का कारण यथा-समय उत्पन्न होने वाली शृङ्गार भावना ही है।

"Throughout the vegetable and animal worlds the sexual functions are periodic, From the usually annual period of flowering in plants, with its play of sperm cell and germ cell, and consequent seed production, upto the monthly effervescence of the generative organism in woman, seeking not without the shedding of blood for the gratification of its reproductive function from first to last, we find unfailing evidence of the periodicity of sex. At first the sun, and then, as some have thought the moon, have marked throughout a hythmic impress on the phenomena of sex (Studies in the psychology of sex. Vol.II Havelock Ellis)

फ्रायड ने समस्त जीवधारियों के समस्त कार्यों के मूल में यौन-भावना मान कर यौनिकता का विशद् विवेचन किया है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं* कि विश्लेषण सम्बन्धी वैज्ञानिक चर्चाओं एवं प्रयोगों ने शृंगार-भावना के महत्व को स्वीकार कर लिया है। शृंगारिकता और विलास-प्रियता अन्योन्याश्रित हैं। यही कारण है कि वर्त्तमान युग विलास प्रियता और अर्थ-संचय का युग बन गया है। कुत्साओं का दमन करने की झिझक का समाप्त हो जाना विज्ञान की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है।

युग की अर्थ-संचय की प्रवृत्ति, विलास-प्रियता, कामुकता की ओर झुकाव शील-संकोच की उपेक्षा आदि का जीता जागता स्वरूप हम चलचित्रों अथवा सिनेमा-संसार में देख सकते हैं। धन बटोरने के लिये चलचित्रों के निर्माता निम्न वृत्तियों को उत्तेजित कर के जन-जीवन के साथ किस प्रकार खिलवाड़ कर रहे हैं यह किसी से छिपा नहीं है।

वर्त्तमान चलचित्र अथवा सिनेमा, नाटक अथवा रूपक के परिवर्तित एवं

---

* देखें पाठ १ "स" भाग।

और भविष्य कारण, प्रवाह अभाव और परिश्रम, प्रत्येक दृष्टि से शृङ्गार-रस का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह हमें जीवित रहने की प्रेरणा प्रदान करता, जीवन के प्रति हमारे हृदय में आस्था उत्पन्न करता तथा ललितकलाओं साहित्य, संगीत आदि की ओर हमें अग्रसर करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से वह हमारी एक मौलिक वृत्ति और जीवन का अनिवार्य तत्त्व है। सामाजिकता की दृष्टि से वह हमारे कार्य-कलापों और जीवन का प्रवाह निर्धारित करने में एक अत्यन्त प्रभावशाली अवयव है। प्रत्येक देश के साहित्य में शृङ्गार-भावना समाविष्ट है। यह बात दूसरी है कि देशकाल के विचार से उसके स्वरूप बदलते रहे हैं।

हिन्दी की आदिकालीन रचनाओं में हमें समरांगण में कामदेव के दर्शन होते हैं। उन दिनों सुन्दरी बाला की प्राप्ति हेतु ही प्रायः युद्ध हुआ करते थे। कवि गण उसके नखशिख का अतिरञ्जित वर्णन कर के अपने आश्रयदाता राजा को युद्ध के लिये उत्साहित किया करते थे। वर्त्तमान समय में थोड़ा सा परिवर्तन हो गया है। अब युद्ध स्थल को जाते हुए सैनिकों के साथ साक्षात् सुन्दरियां ही जाती हैं। कह नहीं सकते इन सुन्दरियों की उपस्थिति रण-क्षेत्र में सैनिकों में उत्साह भरती हैं अथवा उनके बल-वीर्य का अपहरण कर के रण के प्रति उदासीन बनाने में अधिक सहायक होती हैं। जो भी हो शृङ्गार-भावना को वीर भावना का पूरक मानना चाहिये।

वर्त्तमान युग दो बातों पर विशेष बल देता है—१—निरीक्षण एवं विश्लेषण तथा २—अर्थ-संचय। आज का वैज्ञानिक विश्व के प्रत्येक कण का निरीक्षण, विश्लेषण और वर्गीकरण करना जीवन की साधना और चरम परिणिति मानता है। उसने कीट-पतंगों फूल-पत्ते, लता मञ्जरी आदि प्रत्येक वस्तु के विश्लेषणात्मक गंभीर अध्ययन किए हैं। इसके आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि प्रत्येक वस्तु चेतनतायुक्त है और सब में शृङ्गार भावना समाई हुई है। एक विशेष क्रम के अन्तर्गत, एक विशिष्ट परिस्थितियों में उसका उद्रेक होता रहता है। सूर्य और चन्द्र के उदय होने और अस्त होने, वृक्षों में फूल और फल लगने आदि सब का कारण यथा समय उत्पन्न होने वाली शृङ्गार भावना ही है।

"Throughout the vegetable and animal worlds the sexual functions are periodic, From the usually annual period of flowering in plants, with its play of sperm cell and germ cell, and consequent seed production, upto the monthly effervescence of the generative organism in woman, seeking not without the shedding of blood for the gratification of its reproductive function from first to last, we find unfailing evidence of the periodicty of sex At first the sun, and then, as some have thought the moon, have marked throughout a hythmic impress on the phenomena of sex (Studies in the psychology of sex. Vol.II Havelock Ellis)

फ्रायड ने समस्त जीवधारियों के समस्त कार्यों के मूल में यौन-भावना मान कर लैंगिकता का विशद् विवेचन किया है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं* कि विश्लेषण सम्बन्धी वैज्ञानिक चर्चाओं एवं प्रयोगों ने शृंगार-भावना के महत्व को स्वीकार कर लिया है। शृंगारिकता और विलास-प्रियता अन्योन्याश्रित हैं। यही कारण है कि वर्तमान युग विलास प्रियता और अर्थ-संचय का युग बन गया है। कुरूपताओं का वर्णन करने की झिझक का समाप्त हो जाना विज्ञान की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है।

युग की अर्थ-संचय की प्रवृत्ति, विलास-प्रियता, कामुकता की ओर झुकाव शील-संकोच की उपेक्षा आदि का जीता जागता स्वरूप हम चलचित्रों अथवा सिनेमा-संसार में देख सकते हैं। धन बटोरने के लिये चलचित्रों के निर्माता निम्न वृत्तियों को उत्तेजित कर के जन-जीवन के साथ किस प्रकार खिलवाड़ कर रहे हैं यह किसी से छिपा नहीं है।

वर्तमान चलचित्र अथवा सिनेमा, नाटक अथवा रूपक के परिवर्तित पूर्व

* देखें पाठ १ "स" भाग।

परिवर्द्धित रूप हैं। नाट्य शास्त्रकार श्री भरत मुनि के मतानुसार प्रजाजन के मनोरंजन के लिए ब्रह्मा ने चारों वेदों की सहायता से पंचम वेद "नाट्यशास्त्र" की रचना की थी।+

भारतवर्ष में लौकिक, सामाजिक और धार्मिक कृत्यों में कोई विरोध भेद नहीं है। समस्त आनन्दों के साधनों का मूल धर्म में है। नाटक की रचना भी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के लिये हुई थी।

काम की सिद्धि के लिये नाटकों में शृङ्गार रस को महत्व दिया। प्राचीन नाटकों से लेकर वर्तमान नाटकों तथा सिनेमा की कथावस्तु में शृङ्गार-रस प्रधान रहने का यही कारण है। जब-जब समाज में विलास प्रियता बढ़ी है, तब-तब नाटक तथा नाटकीय प्रसंगों में निरूपित शृङ्गार में अश्लीलता का समावेश हुआ है। संस्कृत के नाटक भी इस प्रवृत्ति से निर्लिप्त नहीं रह सके थे। महाकवि कालिदास प्रणीत "कुमार सम्भव" के अष्टम सर्ग में उन्होंने जो पार्वती और शिव के विहार का वर्णन लिखा है, वह अवर्णनीय है, क्योंकि समय के प्रभाव में आकर पूज्य व्यक्तियों के चरित्र में अश्लीलता आई गई है। ×

गोस्वामी तुलसीदास जैसे मर्यादावादी कवि ने भी यथास्थान शृङ्गार-चर्चा की है। यद्यपि अत्यन्त मर्यादित व संयत ढंग पर, आजकल सिनेमाओं में देवी देवताओं से लेकर साधारण सामाजिक तक, प्रत्येक के जीवन में अश्लील शृङ्गार का समावेश किया जाता है, क्योंकि उसके द्वारा अच्छी आमदनी होती है। धर्म अर्थ और काम की सिद्धि करने वाले रूपक सिनेमा के रूप में आकर केवल अर्थ और काम की सिद्धि के साधन बन गए हैं। यह सुनिश्चित है कि शृङ्गार का जीवन और जीविका दोनों ही पक्षों में महत्वपूर्ण स्थान है और आगे भी रहेगा। जीवन की विषमताओं से त्राण पाने के लिए, शुष्क जीवन में सरसता लाने के लिए, जीवन-संग्राम की थकान दूर करने के लिए शृङ्गारिक वातावरण एक शक्ति-

---

+ नाट्यशास्त्र १—७,

× "यो यथाभूतस्तस्या यथा वर्णनं प्रकृति विपर्ययो दोष : यथा कुमार सम्भवे उत्तमदेवतयो पार्वती परमेश्वरयोः सम्भोग शृंगार वर्णनम्" "साहित्य दर्पण"।

वार्य तथ्य है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि वह सयत बना रहे। इस प्रकार के वातावरण का निर्माण हो जो हमें कामुक न बनाये, अपितु काम-भावना का उन्नयन सिखाए। शृंगार जीवन में पवित्रता और प्रसन्नता लाने का साधन है, क्रय-विक्रय अथवा सौदा करने की वस्तु नहीं। विज्ञान के साथ शृंगार के योग का अर्थ मस्तिष्क और हृदय का समन्वय है। रति-भाव अपने उदात्ततम रूप में भक्ति-भाव कहलाता है अथवा यों कहिए कि शृंगार भावना का परिष्कृत रूप ही भक्ति-भावना है। यही कारण है कि ब्रह्म और उसकी शक्ति को शृंगार और रति के समान बताकर भक्तजनों ने उन्हें एक मण्डप तले बैठा कर उनके विरल-विमो हक स्वरूप के नित्य दर्शन की कामना की है।

जीवन अथवा ससार के दुःखों से छुटकारा पाने की दृष्टि से भगवद्भक्ति का क्या महत्व है, इसे दोहराने की आवश्यकता नहीं। ससार के झंझटों से छुटकारा मिलने का ही नाम संसार के दुःखों से छूट जाना है। इस स्थिति को भक्तजनों ने मुक्ति अथवा भगवत्प्राप्ति कहा है। उनके मत में भगवान स अपने आपको पृथक समझने के कारण ही जीव दुःखी बनता है। जैसे ही वह यह समझने लगता है कि ईश्वर में और उसमें कोई भेद नहीं है, वैसे ही वह जीवन्मुक्त हो जाता अथवा चिर आनन्द को प्राप्त हो जाता किंवा भगवान् के साथ तदाकार हो जाता है। अखिल विश्व में ब्रह्म की व्यक्त प्रवृत्ति है। उसके प्रति सरसता की अनुभूति भक्ति का सबसे बड़ा लक्षण है। सरसता की अनुभूति रति भाव के सिवाय और कुछ नहीं ठहरती।

वर्तमान वैज्ञानिक युग ने इस भावना का निषेध कर के जीवन को सुखी बनाने के लिए विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उनमें चार सिद्धान्त मुख्य हैं।

१—कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त (Marxian Theory) इस सिद्धान्त के अनुसार मानव यदि अपनी आर्थिक समस्या सुलझा ले, तो वह सुखी रह सकता है।

२—डार्विन का सिद्धान्त (Darwinian Theory) इस अनुसार मनुष्य का निर्माण पाशविक वृत्तियों द्वारा हुआ है।

३—फ्रायड का सिद्धान्त (Freudian Theory) इसके अनुसार मनुष्य यदि अपनी यौनि सम्बन्धी समस्याओं को समझ ले तो वह सुखी रह सकता है।

४—मशीन वाला सिद्धान्त (Instrumental Theory) इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य अगर अपनी समस्त आवश्यकताएँ मशीनों के द्वारा पूरी कर सके, तो वह सुखी रह सकता है।

उपर्युक्त चारों सिद्धान्तों में आत्मा अथवा परमात्मा का निषेध है। इनके द्वारा मानव सुखी न हो सका। फलतः अब यह सिद्धान्त स्वीकार हो चुका है कि संसार के कष्ट मानसिक हैं और इनको दूर करने के लिए मानव का आध्यात्मिक प्राणी मानना ही पड़ेगा। आजकल की सांस्कृतिक यात्रायें, विश्व-बन्धुत्व की चर्चा करने वाली संस्थाएं आदि वस्तुएँ इसी विचार धारा की प्रतिफल हैं। अत एव प्रेम-भावना के बिना संसार में सुख की आशा करना बाल-हठ है। मस्तिष्क का कितना भी विकास हो जाए, विज्ञान कितनी भी उन्नति करले, परन्तु बिना अपने पदार्थों के प्रति प्रेम-भाव रखे मनुष्य जीवन सुखमय नहीं बन सकता है। प्रेम-भावना और कुछ नहीं रति भाव के अन्तर्गत हृदय का पूर्ण निवेदन वाला तत्त्व है।

नायिका भेद कथन की आवश्यकता—इष्ट का वियोग एवं तज्जन्य व्यथा के अनुभव द्वारा ही आदि कवि की वाणी प्रस्फुटित हुई थी। अतः शृंगार भावना ही काव्य की आदि एवं मूल प्रेरणा ठहरती है। काव्य के वर्ण्य विषय मुख्यतया तीन हैं। १—मानव-प्रकृति का चित्रण २—प्रकृति-सौन्दर्य का वर्णन तथा ३—मानव और प्रकृति के पारस्परिक प्रभाव एवं आकर्षण का निरूपण। मानव के मन मानस में मन्मथ अपने रङ्ग विरंगे कुसुम-चापकों द्वारा भाँति-भाँति की केलि क्रीड़ायें किया करता है। यही दशा प्रकृति की है। फूलों पर भ्रमर प्रेम के कारण ही मँडराता है उनके सौरभ पर रीझ कर उनके रस का पान करता है। तितलियाँ फूलों पर किलोलें करतीं और प्यार में भर कर उनके गले मिलती हैं। फूल भी उनके रंग बिरंगे आकर्षक पंखों की हवा मात्र से मस्त होकर झूमने लगते और उन्हें बारम्बार अपने पास बुलाते हैं। उनके पारस्परिक स्पर्श होते

को स्तम्भित कर देते हैं। मधुमक्खी और पुष्प की विहार की भी यही कथा है। असंख्य कीट पतंग और स्थूल दृष्टि से निर्जीव कहे जाने वाले पदार्थ भी पारस्परिक आकर्षण जन्य प्रेम में आनन्दमग्न हैं और रति कार्यों में रत एवं संलग्न हैं। इसी कारण हम कहते हैं कि शृङ्गार रस-काव्य का मूल और फल दोनों है।

पुरुष और स्त्री की मनोदशाओं के निरूपण के विचार से नायिका-भेद कथन प्रारम्भ हुआ था। उसके अन्तर्गत यह बताया गया कि विभिन्न परिस्थितियों में स्त्री-पुरुषों के मन की क्या दशा होती है। चूंकि नाटक में चरित्र-चित्रण तथा कथोपकथन लिखने के लिए इस तत्व से परिचित होने की अत्यधिक आवश्यकता है, इसी कारण "नाट्यशास्त्र" में ही सर्व प्रथम इस विषय की चर्चा की गई। सफल चरित्र चित्रण के विचार से यह प्रकरण साहित्य के लिए भी उपयोगी सिद्ध हुआ। बाद में प्रेम भावना के विचारान्तर्गत विषय का आवश्यकतानुसार विस्तार कर दिया गया। नायिका निरूपण करने वाले आचार्यों ने विषय को तीनों ही दृष्टियों से पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है।+

"नायिका भेद के कथन में स्त्री पुरुष के अनेक स्वकीय विचारों एवं भावों का भी बड़ा सुन्दर चित्रण है।' उनमें ऐसे जीते जागते चित्र हैं कि हृदयों पर अद्भुत प्रभाव डालते हैं। स्त्री पुरुष की प्रकृतियों एवं व्यवहारों में धीरे धीरे कैसे परिवर्तन होते हैं, किस अवस्था में उनके कैसे विचार होते हैं, उन विचारों का परस्पर एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है। + स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में कैसे कटुता और कैसे मधुरता आती है, जीवन-यात्रा के मार्ग में कैसे-कैसे रोड़े हैं, प्रेम-पथ कितना कण्टकाकीर्ण और दुर्गम है, समाज के स्त्री-पुरुषों की रहन-सहन प्रणाली साधारणतः क्या है वह कैसी विचित्रतामयी है उसके चक्कर में पड़ कर जीवन-यात्रा में क्या क्या परिवर्तन हो जाते हैं, हिन्दू-समाज की व्यापक रूढ़ियाँ क्या हैं, स्त्री पुरुषों में क्या क्या चालबाजियाँ होती हैं, वे आपस में एक

+ देखें पाठ तीन।

+ देखें पाठ तीन।

मरे के साथ कैसी-कैसी कुचेष्टाएँ करते हैं वियोग अवस्था में उनकी क्या दशा होती है और उनके सुख के दिन कैसे सुन्दर और आनन्दमय होते हैं, इन सब बातों का व्यापक वर्णन आपको नायिका-भेद ग्रन्थों में मिलेगा। (रसकलश की भूमिका)।

नन्ददास ने भी यही बात कही थी कि—

बिन जाने यह भेद सब, प्रेम न परचे होइ।

—"रसमंजरी" १

विज्ञान का यह युग जब कीट-पतंग आदि का विश्लेषण करना आवश्यक समझता है, तो हमारे विचार से मानव-प्रकृति का अध्ययन एवं विश्लेषण तो बहुत ही आवश्यक और यह अति उच्च स्तर की चर्चा समझी जानी चाहिए। हमें आश्चर्य है कि वैज्ञानिकों ने नायक-नायिका-निरूपण पर अभी तक क्यों विचार नहीं किया है। विभिन्न स्थितियों में पड़ कर, विभिन्न परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर, पुरुष और स्त्री की मानसिक स्थितियों, उनके मानसिक संस्थानों में क्या प्रतिक्रियाएँ होती हैं, इन बातों की वैज्ञानिक चर्चाएँ समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं लाभप्रद सिद्ध होंगी। उन्हें पढ़ कर हम अपने गार्हस्थ-जीवन को सुखी बना सकते हैं, पति-पत्नी एक दूसरे की स्थिति, मन की दशा, विवशता आदि को ध्यान में रखकर व्यवहार करना सीख सकते हैं। तब शायद गृह-कलह कम हो जाएँ और हिन्दू कोड बिल को पास करने की आवश्यकता न रह जाए। यहाँ एक बात की ओर ध्यान आकर्षित करना है। नायिका-भेद शृङ्गार रस का विषय है तथा कामवृत्ति के साथ उसका सीधा सम्बन्ध है। अतः काम देव के पाँच बाणों से त्रस्त रह कर ही हमें इस विषय-साम्राज्य का पर्यवेक्षण करना होगा। श्री हरिऔध ने, लोक-सेविका, जाति सेविका आदि नवीन जाति कार्यों की उद्भावना कर के एक नवीन दृष्टिकोण सम्मुख रखा था। यह उद्भावना "देव" की विभिन्न वधूटियों, तथा सुनारिन चमारिन आदि विभिन्न जाति की स्त्रियों के परिगणन के समान थी। विषय का प्रसङ्ग के साथ मेल न बैठा, पर रसानुकूल सिद्ध नहीं हुआ। इसी कारण देव के समान हरिऔध भी इस दृष्टि से सफल न हो सके।

आधुनिक मनोविज्ञान शास्त्रियों ने हिस्टीरिया, पागलपन आदि कतिपय रोगों को कामवासना से सम्बद्ध कर दिया है। काम-वासना की तृप्ति तथा काम-वासना के उन्नयन को ध्यान में रख कर अनेक रोगों की सफल चिकित्सा भी होने लगी है। हमारे विचार से नायिका-भेद का वैज्ञानिक निरूपण मानव-समाज के लिए अवश्य ही रचनात्मक कार्य कर सकेगा।

शृंगार सत्साहित्य का सृष्टा—शृङ्गार-रस और परिष्कृत शृङ्गार-साहित्य का हमारे जीवन के सत्य पक्ष से सीधा सम्बन्ध है। लौकिक प्रेम ही अलौकिक प्रेम में परिणत हो जाता है। अपनी पत्नी के प्रेम प्रवाह में मुर्दे को नाव समझ कर नदी के पार जाने वाले तुलसीदास कालान्तर में राम नाम की नौका बना कर भवसागर को पार करने वाले गोस्वामी जी बन गये थे। यह प्रेम मार्ग इसी लोक में होकर जाता है और अन्त में हमें कल्याण की ओर मोड़ देता है। इस राज-डगर पर चल कर साधक साक्षात् निःश्रेयस का साक्षात्कार प्राप्त करता है। भारतीय भक्ति-मार्ग का भव्य-भवन प्रेम की इसी पृष्ठभूमि पर समाधारित है। हृदय का पूर्ण निवेदन उसका सब से बड़ा लक्षण है।

समाज के लिए "शृङ्गार', लोक रंजनकारी तत्त्व का कार्य करता है। जन्मजात मनोभाव होने के कारण मानव सर्वेव ही शृंगार के स्वरूप दर्शन का इच्छुक रहता है। प्रिय मिलन के समय वह जीवन के सुखद पक्ष का उपभोग करता और ससार के सतापों का विस्मरण कर देता है तथा प्रिय-वियोग के दिनों में वह विरह-व्यथा से संतप्त होने के कारण जीवन के दुःखद पक्ष का अनुभव करता है। इष्ट प्राप्ति और इष्ट-वियोग अथवा अनिष्ट प्राप्ति, इन दो पहियों पर चलने वाले ससार के समस्त कार्य-कलापों के मूल में शृंगार-भावना ही है। जिसे हमारे आर्य ऋषियों ने पवित्र उज्ज्वल, दर्शनीय, उत्तम आदि विशेषणों से विभूषित किया है।

विश्व की समस्त भाषाओं के साहित्य में शृंगार-रस की प्रधानता पाई जाती है। बिना प्रेम-चर्चा और प्रेम-प्रकर्ष के कोई भी कथानक, कोई भी कहानी,

कोई भी वार्त्ता, कोई भी घटना पूर्ण और रोचक नहीं हो सकती है। शृंगार रस के उपकरणों, रति, प्रीति, प्रेम, भक्ति में ही यह सामर्थ्य है जो काव्य को हृदय को द्रवीभूत कर के सिर झुका देने की क्षमता प्रदान करती है।

"शृंगार" का अर्थ सजाना है, नग्न चित्रण एवं कुत्सित वर्णन उसकी आत्मा के विरोधी हैं। शृंगार-रस के विकास का अर्थ है सत् साहित्य का सृजन और भाव-क्षेत्र का परिष्कार एवं परिमार्जन।

———

सहायक ग्रन्थों की तालिका

(अ) संस्कृत

ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
१—अग्निपुराण	महर्षि व्यास
२—अथर्ववेद	
३—अमरुक शतक	
४—उत्तर रामचरित नाटक	भवभूति
५—ऋग्वेद	”
६—काव्य प्रकाश	मम्मटाचार्य
७—काव्यालंकार	भामह
८—कुमार सम्भव	कालिदास
९—गाथा सप्तसती	”
१०—गीत गोविन्द	जयदेव
११—चन्द्रालोक	जयदेव पीयूष वर्ष
१२—दशरूपक	धनञ्जय
१३—ध्वन्यालोक	आनन्द वर्द्धन
१४—नाट्यशास्त्र	भरतमुनि
१५—वाल्मीकि रामायण	वाल्मीकि
१६—भगवद् गीता	”
१७—भागवत	”
१८—मनुस्मृति	मनु

ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
१९—मेघदूत	कालिदास
२०—रघुवंश	”
२१—रसगंगाधर	पंडितराज जगन्नाथ।
२२—रसमंजरी	भानुदत्त
२३—वक्रोक्ति जीवित	कुन्तक
२४—विष्णु भागवत	”
२५—बृहदारण्य य उपनिषद्	”
२६—वैराग्य शतक	भर्तृहरि
२७—शिव पुराण धर्म संहिता	”
२८—शृङ्गार शतक	भर्तृहरि
२९—सरस्वती कंठाभरण	राजा भोज
३०—साहित्य दर्पण	विश्वनाथ

(घ) हिन्दी

ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
१—इश्क चमन	नागरीदास
२—उत्तर रामचरित नाटक	सत्यनारायण
३—कल्याण हिंदू संस्कृति अङ्क	सत्यनारायण
४—कवित्त रत्नाकर	सेनापति
५—कविप्रिया	केशवदास
६—कवितावली	गो० तुलसीदास
७—कृष्ण गीतावली	” ”
८—काम विज्ञान	शिवशंकर मिश्र
९—कामायनी	जयशंकरप्रसाद
१०—कविकुल कल्पतरु	चिन्तामणि त्रिपाठी
११—गीतांजलि	कवीन्द्र रवीन्द्र

ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
१२—गीतावली	गो० तुलसीदास
१३—घनआनन्द मार्तंडपद	
१४—चिन्तामणि	रामचन्द्र शुक्ल
१५—नवरस	बाबू गुलाबराय
१६—निरोध लक्षण	वल्लभाचार्य
१७—पद्माकर पंचामृत	"
१८—पदावली	कबीर
१९—पद्मावत ग्रन्थावली	कबीर
२०—ब्रजभाषा का इतिहास	बा० गुलाबराय
२१—प्रिय प्रवास	हरिऔध
२२—प्रेमचन्द्रिका	देव
२३—प्रेम योग	वियोगी हरि
२४—बरवै रामायण	रहीम
२५—बरवै रामायण	गो० तुलसीदास
२६—बिहारी की वाग्विभूति	विश्वनाथप्रसाद मिश्र
२७—बिहारी सतसई	"
२८—ब्रजभाषा साहित्य	बा० गुलाबराय
२९—ब्रजभाषा में नायिकाभेद-निरूपण	प्रभुदयालु मीतल
३०—ब्रज भारती	"
३१—भवानी-विलास	देव
३२—भक्त शिरोमणि सूरदास	नलिनी मोहन सान्याल
३३—भ्रमरगीतसार	नन्ददास
३४—भ्रमरगीत सार	आचार्य शुक्ल
३५—भाव विलास	देव
३६—मतिराम ग्रन्थावली	
३७—मीरा पदावली	"

ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
३८—रस मंजरी	कन्हैयालाल पोद्दार
३९—रसिक रसाल	"
४०—रस कलस	हरिऔध
४१—रस रत्नाकर	हरिशंकर शर्मा
४२—रस विलास	देव
४३—रस प्रबोध	रसलीन
४४—रस रंग	ग्वाल
४५—रस मंजरी	नन्ददास
४६—रसवन्ती	दिनकर
४७—रसिक प्रिया	केशवदास
४८—रामचरितमानस	गो० तुलसीदास
४९—रामचन्द्रिका	केशवदास
५०—रामलला नहछू	गो० तुलसीदास
५१—रास पंचाध्यायी	नन्ददास
५२—रीतिकाव्य की भूमिका	डा० नगेन्द्र
५३—विद्यापति की पदावली	
५४—विनय पत्रिका	गो० तुलसीदास
५५—शब्द-रसायन	देव
५६—शब्दसागर	
५७—साहित्य-समीक्षा	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार
५८—सिद्धांत और अध्ययन	बा० गुलाबराय
५९—सुधा-सागर	
६०—सूर-सागर	
६१—शृंगार निर्णय	भिखारीदास
६२—शृंगार-संग्रह	पद्माकर
६३—हित-तरंगिणी	कृपाराम

ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
१७—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा
१८—हिंदी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल
१९—हिन्दी भाषा और साहित्य	डा० श्यामसुन्दरदास
२०—हिन्दुत्व	रामदास गौड़

(स) अंग्रेजी

1 An outline of psychology	WilliamM Dougall
2. A Survey of Indian History	K. M Panikkar
3 Basicw ritings of	Sigmund Freud
4 Chaitanya and his age	Dinesh Chand Sen
5 Classical Sans krit literature Heritage of India series	A Keith
6 Encycl opaedic History of In dian Philosophy	A Keith
7 Elements of	Mellove and

ग्रंथ का नाम	लेखक का नाम
Psychology	Drummond
8 Every man's Encyclopaedia	...
9, History of Urdu literature	Ram Babu Saksena
10 Instincts of Man	James
11 Influence of Islam on Indian culture	Dr Tarachand
12 Kamsutras of Vatsayan	Dr, B N Basu
13 Loves Philosophy	william Shelley
14 Love in Hindoo Literature	Dr Vinay Kumar Sarkar
15 Persian Influence on Hindi Poetry	Dr Ambika Pd. Bajpai
16 Psychological Studies in Rasa	Rakesha Gupta
17 Rokoby	Sir Walter Scott
18 Sexology of the Hindus	S C Chakravarti
19 Theories of Rasa and Dwani	Dr Sankaran
20 Science of Emotions	Dr Bhagwan Das

ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
21 The Mansiou's of Philosophy	Will Durant
22 The Religions of India	A. Barth
23 Vaishanism and Shavism Reli gious Systems	Sir Rrm Krishna Gopal Bhandarkar